कर ग्रंथमाला—६

मतिराम

(ग्रंथावली)

ग्रंथमाला-संपादक-मंडल

कृष्णदेवप्रसाद गौड़, हरवंशलाल शर्मा, सुरेश अवस्थी,
करुणापति त्रिपाठी, सुधाकर पांडेय, भोलाशंकर व्यास,
शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' (संयोजक)

संपादक

स्व० कृष्णबिहारी मिश्र • स्व० ब्रजकिशोर मिश्र

कविसंस्तवन

करुणापति त्रिपाठी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, नागरी मुद्रण, वाराणसी

संवत् : २०२१ वि०, प्रथम संस्करण, १६०० प्रतियाँ

मूल्य : २५)

आकर ग्रंथमाला का परिचय

नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी हीरकजयंती के अवसरपर जिन भिन्न-भिन्न साहित्यिक अनुष्ठानो का श्रीगणेश करना निश्चित किया था उनमें से एक कार्य हिंदी के आकर ग्रंथो के सुसंपादित संस्करणो की पुस्तकमाला प्रकाशित करना भी था। जयतियो अथवा बडे बडे आयोजनो पर एकमात्र उत्सव आदि न कर स्थायी महत्व के ऐसे रचनात्मक कार्य करना सभा की परपरा रही है जिनसे भाषा और साहित्य की ठोस सेवा हो। इसी दृष्टि से सभा ने हीरक जयती के पूर्व एक योजना बनाकर विभिन्न राज्य सरकारो और केंद्रीय सरकार के पास भेजी थी। इस योजना मे सभा की वर्तमान विभिन्न प्रवृत्तियो को संपुष्ट करने के अतिरिक्त कतिपय नवीन कार्यो की रूपरेखा देकर आर्थिक संरक्षण के लिये सरकारो से आग्रह किया गया था, जिनमे से केंद्रीय सरकार ने हिंदी शब्दसागर के सशोधन परिवर्धन तथा आकर ग्रंथों की एक माला के प्रकाशन मे विशेष रुचि दिखलाई और ६-३-५४ को सभा की हीरकजयती का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेंद्र प्रसाद जी ने घोषित किया—'मै आपके निश्चयों का, विशेषकर इन दो (शब्दसागर संशोधन तथा आकर ग्रंथमाला) का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए की सहायता, जो पॉच वर्षों में, बीस बीस हजार करके दिए जायँगे, देने का निश्चय हुआ है। इसी तरह से मौलिक प्राचीन ग्रंथो के प्रकाशन के लिये पचीस हजार रुपए की, पॉच वर्षो मे पॉच पॉच हजार करके, सहायता दी जायगी। मै आशा करता हूँ कि इस सहायता से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम में अग्रसर होगे।'

केंद्रीय शिक्षामत्रालय ने ११-५-५४ को एफ ४-३-५४ एच ४ संख्यक एतत्संबधी राजाज्ञा निकाली। राजाज्ञा की शर्तों के अनुसार इस माला के लिये सपादक मंडल का संघटन तथा इसमे प्रकाश्य एक सौ उच्चोत्तम ग्रंथो का निर्धारण कर लिया गया है। संपादक मंडल तथा ग्रथसूची की संपुष्टि भी केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने कर दी है। ज्यो ज्यो ग्रंथ तैयार होते चलेंगे, इस माला में प्रकाशित होते रहेंगे। हिंदी के प्राचीन साहित्य को इस प्रकार उच्च स्तर के विद्यार्थियो, शोधकर्ताओ तथा इतर अध्येताओ के लिये सुलभ करके केंद्रीय सरकार ने जो स्तुत्य कार्य किया है उसके लिये वह धन्यवादार्ह है।

प्रकाशकीय वक्तव्य

अपनी स्थापना के समय से ही नागरी लिपि एवं हिंदी साहित्य के उन्नयन एवं विकास के विभिन्न विधायक संकल्पों के साथ ही नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी के युगनिर्माता मूर्धन्य साहित्यस्रष्टाओं की ग्रंथावलियों का प्रकाशन भी आरंभ किया। हिंदी के सुप्रसिद्ध गंभीर शीर्ष विद्वानों का सहयोग इस क्षेत्र में सभा को सतत मिलता रहा। फलतः, तुलसी ग्रंथावली, भूषण ग्रंथावली, भारतेंदु ग्रंथावली, रत्नाकर (कवितावली), पृथ्वीराज रासो, बाँकीदास ग्रंथावली, व्रजनिधि ग्रंथावली और श्रीनिवास ग्रंथावली आदि का प्रकाशन सभा ने किया।

अपनी हीरक जयंती के अवसर पर सभा ने इस दिशा में केंद्रीय सरकार की सहायता से योजनाबद्ध रूप से नूतन प्रयत्न आकर ग्रंथमाला के रूप में आरंभ किया। इस ग्रंथमाला में अबतक भिखारीदास ग्रंथावली, मान राजविलास, गंग कवित्त, पद्माकर ग्रंथावली का प्रकाशन सभा कर चुकी है। इधर धनाभाव के कारण यह कार्य कुछ शिथिल था किंतु ग्रंथमाला का कार्य चलता रहा। जसवंतसिंह ग्रंथावली यंत्रस्थ है और शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है।

दादूदयाल ग्रंथावली (सं०-पं० परशुराम चतुर्वेदी), बोधा ग्रंथावली (सं०-पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र), नागरीदास ग्रंथावली (सं०-डा० किशोरीलाल गुप्त) एवं ठाकुर ग्रंथावली (सं०-श्री चन्द्रशेखर मिश्र) को संवत् २०२१ तक प्रकाशित करने का हमारा संकल्प है। केंद्रीय सरकार के शिक्षा विभाग की आर्थिक सहायता से यह संकल्प मूर्त हो रहा है। इसके लिये सभा सरकार के प्रति कृतज्ञ है और हमें विश्वास है कि शीघ्र ही इस दिशा में उसका स्वप्न पूर्णतः साकार होगा।

इस ग्रंथमाला के छठे पुष्प के रूप में मतिराम ग्रंथावली का प्रकाशन हो रहा है। इसका संपादन कार्य श्रीकृष्ण बिहारी मिश्र तथा श्री डा० व्रजकिशोर मिश्र, प्राध्यापक लखनऊ विश्वविद्यालय को सौंपा गया था किंतु दुर्भाग्य कि वे अब न रहे। मतिराम के कविसत्तव लेखन का कार्य सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० करुणापति त्रिपाठी को सभा की प्रबंध समिति ने सौंपा। इस ग्रंथ में रससिद्ध कवि की संपूर्ण रचनाएँ ही नहीं उनके साहित्य एवं कृतित्व का बृहद् गंभीर विद्वतापूर्ण मूल्यांकन भी है। विश्वास है कि यह ग्रंथ अपने क्षेत्र में अद्वितीय समान का अधिकारी अपने गुण धर्म के कारण होगा।

काशी, १० पौष, २०२१ वि०।

सुधाकर पांडेय
प्रकाशन मंत्री

संपादकीय वक्तव्य

कविवर मतिराम का उल्लेख, हिंदी काव्य साहित्य के यशस्वी इतिहासकार, श्री शिवसिंह सेंगर ने, अपने 'शिवसिंह सरोज' मे, सर्वप्रथम सन् १८७७ ई० मे किया था। उन्होने इनका महत्व 'भाषा काव्य के आचार्यों' मे इनकी स्थापना करके निर्धारित किया था। सन् १६१० ई० में पूज्यपाद मिश्रबंधुओ ने 'हिंदी नवरत्न' का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया। त्रिपाठी बंधु के नाम से महाकवि भूषण और मतिराम को इसमे गौरवपूर्ण स्थान मिला। इनके विषय मे कहा गया 'सिवा चार छह परमोत्कृष्ट कवियो के और किसी हिंदी कवि की रचना आपकी कविता की समता नहीं कर सकती'। मतिराम जी के काव्यसौष्ठव का उद्घाटन करके उन्हे हिंदी साहित्यक्षेत्र मे प्रतिष्ठित पद पर स्थापित करना मिश्रबंधुओ का ही प्रशसनीय कार्य था।

सन् १६२५ के लगभग मतिराम का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास 'मतिराम ग्रंथावली' के द्वारा किया गया। मतिराम जी के आश्रयदाता, तत्कालीन इतिहास तथा कवि के काव्यसौष्ठव की विस्तृत, विद्वत्तापूर्ण विवेचना, उक्त ग्रथावली की भूमिका मे की गई। तुलनात्मक आलोचना शैली तो लेखक की विशेषता थी ही। अपने समय मे इस ग्रंथावली का संपादन एक नवीन प्रयास था और हिंदी संसार ने इसका उपयुक्त आदर किया। आज भी इस पुस्तक का महत्व इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि इसी का मार्गानुसरण करते हुए मतिराम जी के ऊपर दो शोधप्रबध प्रस्तुत हो चुके हैं।

लगभग ३५ वर्ष के उपरात 'मतिराम ग्रंथावली' का यह नवीन संस्करण हिंदी संसार के संमुख उपस्थित हो रहा है। यो तो इसके पूर्व, दो सस्करण प्रकाशित हुए अवश्य, किंतु उनमे यत्र तत्र छोटे मोटे संशोधन के अतिरिक्त कोई विशेष परिवर्तन परिवर्धन नही हुए। इस दृष्टि से यदि प्रस्तुत संस्करण को ही द्वितीय संस्करण कहा जाय तो अनुचित न होगा। इसे वर्तमान रूप प्रदान करने का सपूर्ण श्रेय आचार्य श्री पं० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र को है, जिन्होने अपने विद्वत्तापूर्ण निर्देशन मे इस ग्रथ का पुनः संस्करण किया है। उनके अतिरिक्त इस कार्य को और कर भी कौन सकता

था ? पाठनिर्धारण संबंधी महत्वपूर्ण कार्य के अतिरिक्त 'फूलमंजरी' नामक मतिराम जी की प्रथम रचना का समावेश भी इस संस्करण मे किया गया है।

यह दुर्भाग्य का विषय है कि नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से इस ग्रंथ का प्रकाशन पूज्यचरण स्वर्गीय पिता जी के जीवनकाल में न हो सका। हमने कई बार उनसे इसका पुनःसंपादन करने का आग्रह किया था और वे उसे स्वीकार भी करते थे, किंतु कुछ तो स्वभाववश और कुछ परिस्थितियो के कारण वे उस कार्य को टालते ही रहे। यो हमें ज्ञात है कि वे मतिराम के काव्य पर विशेष मनन करते रहते थे और 'मतिराम मति-मुकुर' नाम से एक स्वतंत्र ग्रंथ की योजना बना चुके थे। संभवतः प्रस्तुत ग्रंथावली की भूमिका उसमें संनिविष्ट होती और वह कवि के काव्य का सर्वांगीण उद्घाटन करती। किंतु उनके आकस्मिक निधन ने वह सारी योजनाएँ छिन्नभिन्न कर दी।

हिंदी साहित्य के इस शोधयुग में प्राचीन कवियो के काव्यग्रंथो का प्रकाशन विशेष महत्वपूर्ण तथा आवश्यक कार्य है। जो ग्रंथ प्रकाश मे आ चुके हैं, उनकी सुरक्षा तथा उनके आधार पर विस्तृत अध्ययन भी आवश्यक है। प्रस्तुत ग्रथावली के पूर्वप्रकाशक महोदय ने अभी कुछ समय पूर्व, इसको दो खंडो में प्रकाशित करने का आश्वासन दिया था—भूमिका खंड तथा ग्रंथ खंड। बहुत समय तक प्रतीक्षा करने के उपरात भी केवल भूमिका भाग तो छपा किंतु ग्रंथमाला प्रकाशित न हुई! ऐसी स्थिति मे 'आकर ग्रथ-माला' के संमाननीय संमादक महोदय आचार्य श्री विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र ने इसके प्रकाशन का भार स्वीकार किया, यह हमारे लिये कृतज्ञता का विषय है।

हमें आशा है, कि ब्रजभाषा साहित्य-प्रेमी इस ग्रंथावली को पूर्ववत् अपनाकर हमें आभारी करेंगे।

३५, विष्णुनगर,
लखनऊ
२६–६–६१

ब्रजकिशोर मिश्र

कविसंस्तव

मतिराम : कविसंस्तव

'मतिराम ग्रथावली' का पंडित कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा संपादित नवीन सस्करण प्रकाशित होकर हमारे सामने आ रहा है। आशा की गई थी कि इस संस्करण में, कवि के जीवन और कृतित्व से सबद्ध ऐतिहासिक और समीक्षात्मक उपलब्धियों एवं साहित्यिक मूल्यांकन का नव्यतम परिचय संपादक द्वारा मिलेगा। आधुनिक समीक्षापद्धति की विवेचनदृष्टि के परिप्रेक्ष्य मे महाकवि की कला और काव्यप्रतिभा का भी स्वरूपज्ञान प्राप्त हो सकेगा। यह भी आशा थी कि डा० ब्रजकिशोर मिश्र द्वारा लिखित समालोचना मे, उनके अध्यापकजीवन के अनुशीलन और काव्यचिंतन का सारामृत सामने आएगा तथा अद्यतनतम समीक्षामान्यताओं के प्रकाश मे 'मतिराम' के साहित्यिक आयामों का विश्लेषण भी हो सकेगा। पर दैवदुर्विपाक से दोनों महानुभाव दिवंगत हो गए। उनके चिरचिंतित पर्यालोचन का परिपक्व फल हमें मिल न सका। अतः उस कमी के यत्किंचित् पूर्तिप्रयास मे प्रस्तुत परिचयविवरण तैयार किया जा रहा है। 'मतिराम' से सबद्ध नूतन विषयों का—या यह कहना अधिक ठीक होगा कि नव्य दृष्टि से परिप्रेक्षित पूर्व विषयों का—सूत्ररूप से आकलन करने के विचार से यहाँ कुछ बातों की पुनःचर्चा हुई है।

महाकवि मतिराम : जीवनवृत्त

गार्सां द तासी, श्री शिवसिंह सेंगर और जार्ज ग्रियर्सन द्वारा रचित हिंदी साहित्य की प्रारंभिक इतिहासकृतियों के रचनाकाल से 'मतिराम' के जीवनवृत्त और ग्रंथों का ऐतिहासिक विवरण उपस्थित किया जाने लगा है। उसके बाद से 'महाकवि' के सबंध में—ऐतिहासिक और साहित्यिक—बहुत सी बातें बराबर विवेचित होती रही हैं। 'हिंदी नवरत्न' और 'मिश्रबंधुविनोद' के द्वारा कवि-संबंधी अनेक खोजपूर्ण विवरण उपस्थित किए गए। इन सबके पश्चात्

पं० कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा संपादित और गंगापुस्तकमाला द्वारा प्रकाशित--मतिराम ग्रंथावली के तीन संस्करणों की भूमिका मे—पहली बार, पर विस्तार के साथ—'मतिराम' के ऐतिहासिक और साहित्यिक पक्षों का शोधपूर्ण और विचारपुष्ट परिशीलन उपस्थित किया गया। विक्रम की बीसवीं शती के नवमदशम शतक मे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी 'मतिराम' के साहित्यिक वैभव का प्रौढ़ शब्दों मे उल्लेख किया—यद्यपि इतिहासपक्ष के लिये मुख्य रूप से उन्होने 'विनोद' का ही सहारा लिया। इनके अतिरिक्त पं० भगीरथ प्रसाद दीक्षित और याज्ञिकबंधुओं ने अनेक ऐतिहासिक प्रश्नों और समस्याओं को—शोधपूर्ण प्रमाणो पर आधारित अनुमानों द्वारा—अपने लेखों, ग्रंथो आदि मे सुलझाने का प्रयास किया है। 'भूषण' संबंधी अपने ग्रंथ मे प्रसंगतः 'मतिराम' से संबद्ध ऐतिहासिक विषयों पर विस्तार से विचार करते हुए पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने कुछ नई मान्यताएँ उपस्थापित की हैं। डा० महेंद्रकुमार और डा० त्रिभुवन सिंह ने भी अपने अपने उपाध्यर्थ लिखित शोधग्रंथों में (क्रमशः 'मतिराम : कवि और आचार्य' तथा 'महाकवि मतिराम और मध्यकालीन हिंदी कविता मे अलकरणवृत्ति'-नामक प्रबंधकृतियों मे) विस्तार के साथ उभय पक्षो पर नए सिरे से विवेचना की है।

स्पष्ट हो इन दोनों शोधप्रबंधो के विवेचन की दृष्टि, शीर्षक के अनुसार ही भिन्न है। फिर भी—जहाँ तक जीवनवृत्त का संबंध है—दोनों ही शोधार्थियों ने 'मतिराम' के जीवन से संबद्ध समस्त प्रमुख और स्वज्ञात सामग्री का उपयोग करते हुए कवि के जीवन और कृतित्व का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन प्रबंधो मे कृतियों के संबध मे भी विस्तार के साथ ऐतिहासक पक्ष के तथ्यनिर्धारण का प्रयास लक्षित होता है। डा० महेंद्रकुमार की पुस्तक में 'मतिराम' के जीवन और ग्रंथो से संबद्ध, इतिहासपरक प्रसंगों को निर्धारित करने का विशेष अध्यवसाय लक्षित होता है। लेखक ने, जैसा कि उनके ग्रंथ मे निर्दिष्ट विवरणों से ज्ञात होता है, 'मतिराम' के जीवन से संबद्ध माने जानेवाले स्थानों, वंशोद्‌भूत व्यक्तियों एवं पड़ोसियों से साक्षात् विवरण प्राप्त करने का श्लाघ्य श्रम किया है।

समय समय पर पत्र-पत्रिकाओं में भी बहुत सी प्रकाशित सामग्री—विभिन्न विद्वानो के लेखों मे बिखरी पड़ी है। इतना सब होने पर भी कुछ मौलिक प्रश्न ऐसे हैं जिनका निर्णयात्मक समाधान अब तक प्रस्तुत नहीं हो सका है। केवल

अनुमान के आधार पर ही कुछ बातें घोषित करने की चेष्टा करनी पड़ी है।

जन्मस्थान

बहुत दिनों से यह कहा जाता है कि 'मतिराम'का जन्मस्थान तिकवाँपुर था और वे 'चिंतामणि' तथा 'भूषण' के भाई थे। इन त्रिपाठीबंधुओं के त्रिक में एक चौथे पुरुष—जटाशंकर या नीलकंठ—का भी नाम लिया जाता है। जैसा कि आगे बताया जायगा, इस संबंध मे ऐसे ठोस और सर्वतःमान्य ऐतिहासिक प्रमाण नही दिए जा सके हैं जिनसे पक्ष या विपक्ष में असंदिग्ध और प्रामाणिक रूप मे कथ्य पूर्णतः ग्राह्य हो सके। इसी प्रकार उनके जन्मस्थान के विषय में भी कुछ ऐसी चर्चा होती रही है जिससे तिकवाँपुर को जन्मस्थान, अधिकांश विद्वानों द्वारा मान लेने पर भी, पंडित भगीरथप्रसाद दीक्षित के अनुमान और डा० महेंद्रकुमार की यात्राओं से उपलब्ध विवरण और साक्ष्य—उक्त मान्यता को असंदिग्ध नहीं रहने देते। इसी प्रकार उनकी दो एक रचनाओ के विषय मे भी संदेह या विवाद का कुछ अवकाश बना रह जाता है। अनेक कृतियों के रचनाक्रम का निर्धारण भी—बहुत दूर तक—अनुमान के आधार पर प्रतिपादित किया गया है।

इन विवरणों की संक्षिप्त सूचना यथाप्रसंग उपस्थित की जायगी। यहाँ केवल इतना ही कथनीय है कि कवि के जीवनसबद्ध विषयो और प्रसंगो में कुछ अंश असंदेह की भूमि पर अब तक प्रतिष्ठित नही हो सके हैं। इसी प्रकार कुछ 'ग्रंथों' के विषय मे भी विभिन्न पहलुओं से तर्क वितर्क होते रहते हैं। श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित ने अपने शोधसंबंधी ज्ञान और अनुभव के आधार पर अधिक प्रमाणपुष्ट और तर्कसम्मत ढंग से कवि के जीवनसंबंधी वृत्तों और कृतियो की चर्चा करने का प्रयास किया है और कुछ अंशतक संबद्ध विषयों मे निर्णयात्मक मत भी उपस्थित करने का साहस किया है। 'हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों के संक्षिप्त विवरण' मे तथा अपने लेखों और 'भूषणविमर्श, 'भूषण', आदि ग्रंथो में दीक्षित जी ने मतिराम के जीवन और ग्रंथों के सबध में जो सूचनाएँ उपस्थित की उनपर याज्ञिकबंधुओं ने अपने अपने प्रमाणों और अनुमानों के आधार पर जो खंडनमंडनात्मक परिकल्पनाएँ उपस्थित की है—वे कुछ भिन्न है। विशेष विस्तार में न जाने पर भी प्रमुख मतों के सारांश का यहाँ सूत्रात्मक उल्लेख—आवश्यक समझकर—किया जा रहा है।

जन्मकाल

'शिवसिंहसरोज' मे मतिराम का जन्म संवत् (उ० काल) १७३८ वि० बताया गया है[1]। मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' मे (भूषण से छोटा होने के कारण)

---

१. इस सबध मे आचार्य विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र ने एक अत्यत आवश्यक और विचारणीय विषय की चर्चा उठाई है। उन्होने बताया है—"नवलकिशोर प्रेस से 'शिवसिंह सरोज' जब प्रकाशित हुआ तब उसमें सन्-संवतों के अनतर 'उ०' छापा गया। सबसे पहले नाम के आगे'—उ०' 'उत्पन्न हुए' रूप मे सामने आया। फल यह हुआ कि 'सरोज' में जितने सन् सवत् दिए गए हैं वे कवियों के जन्मकाल मान लिए गए। ऐसा करने से हिंदी साहित्य के इतिहास मे भारी भ्राति हो गई। इसका निराकरण हिंदीहित के विचार से अत्यत आवश्यक है।"—भूषण, प्रथम संस्करण, पृ० ७६।

मिश्र जी ने १६२३-२५ के हस्तलिखित ग्रथों के खोजविवरण के आधार पर कहा है—"सरोज मे ऐसा जान पड़ता है कि पहले 'उ०' नहीं था।...... उसमे किसी कवि के सवत् के आगे 'उ०' या 'उत्पन्न हुए' नहीं है" (वही० पृ० ७६)। इस सबध में दो स्थितियों की उन्होंने कल्पना की है—(१) स्वय ग्रथकार ने अपनी प्रति मे 'उ०' लिखा हो और प्रकाशन के अवसर पर सपादक ने 'उ०' को 'उत्पन्न हुए' समझकर या मानकर पहले नाम के 'उ०' को 'उत्पन्न हुए' छाप दिया हो। (२) दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि 'सपादक ने इन सन् संवतों को जन्मकाल या उत्पत्तिकाल मानकर अपनी ओर से इसे बढ़ाया हो। मिश्र जी के आकलनानुसार यदि 'उ०' लेखक लिखित था तो उसे उपस्थितिकाल का सक्षिप्त रूप मानना चाहिए। क्योंकि 'शिवसिंह-सरोज' के सन् सवत् काव्यकाल के ही हैं, जन्मकाल के नहीं'। इसके साथ साथ वे यह मत भी व्यक्त करते हैं कि 'सरोज' के सन् सवत् पूर्णतः प्रामाणिक भी नहीं हैं।

अपनी उक्त स्थापना (अर्थात् 'उ०' द्वारा 'उपस्थितकाल' सूचित है) को तर्कपुष्ट हेतुओं से प्रमाणित करने के अनंतर वे लिखते हैं—'इन सब बातों से स्पष्ट है कि सन्-सवत् देने मे वे उपस्थितिकाल का उल्लेख करते थे।'

आगे उन्होंने लिखा है—"किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने कविता-काल देने में बहुत सावधानी रखी है।" कहीं कवि के रचित ग्रंथों में सन् सवत् होने पर 'सरोजकार' ने 'वहाँ उन्हें (रचनाकाल को) ही दिया है' और कहीं जिस

उनका जन्मसंवत् १६६६ वि० माना है। परंतु आगे चलकर 'मिश्रबंधुविनोद' में ही संवत् १६७४ वि० को जन्मवर्ष ठहराया गया है। 'हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों के संक्षिप्त विवरण' में पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित ने उनका जन्मकाल सं० १६६४ वि० निर्धारित किया है। पर नए ग्रंथों और प्रमाणों के प्रकाश में उनके मत बदलते चलते हैं। आगे चलकर वे 'भूषण' संबंधी अपने ग्रंथ—'भूषणविमर्श' मे—प्रथम 'मतिराम' का जन्मकाल सं० १६३० वि० के आसपास मानते हैं। इतना ही नही उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि 'मतिराम' नाम के दो कवि हुए। इन नामों के कवियों द्वारा १६५५ वि० से लेकर १३० वर्षों तक ग्रंथो का निर्माण होता रहा। दीक्षित जी के अनुसार प्रथम 'मतिराम', 'ललितललाम,' 'रसराज' आदि ग्रंथ के निर्माता हैं और उनका समय अधिक से अधिक १६३५ से लेकर १७२५ वि० तक निर्धारित होता है। प० कृष्णबिहारी मिश्र ने मतिराम ग्रंथावली की अपनी भूमिका में प्रस्तुत कवि का समय अंतिम रूप से स० १६६० के आसपास स्वीकार किया है।

कवितासग्रह के ग्रथ से जिस कवि की कविता सकलित की गई उसी संग्रहग्रथ के काल को 'उस कवि का सन्-सवत् मान लिया गया है।'

यहाँ विस्तार के साथ उक्त प्रसंग की चर्चा का अर्थ यह है कि 'सरोज' का उक्त सवत् यदि 'मतिराम' की उपस्थिति का काल मानकर 'भूषण' के प्रसग मे उनका भी उपस्थितिकाल समझा जाता तो अनेक अनुशीलकों को विविध क्लिष्टकल्पना और प्रमाणदुर्बल नाना अनुमान करने की कदाचित् आवश्यकता न पड़ती। प० भगीरथप्रसाद जी को भी दो 'मतिराम' मानकर प्रथम को भूषणपूर्ववर्ती और द्वितीय को भूषणसमकालीन मानने का प्रयास कदाचित् न करना पड़ता और न अपने 'महाकवि भूषण' नामक ग्रंथ (प्र० सं० पृ० ६) मे अतिप्रयास द्वारा यह सिद्ध करने का अतिश्रम उठाना पड़ता कि 'भूषण' (शिवराजभूषण) के एक ही दोहे (छद० ३८०) में श्लेष से भूषण का जन्मकाल तथा 'शिवराजभूषण' का निर्माणकाल—दोनों का उल्लेख किया गया है।' १७३८ सवत् को ठीक बैठाने के लिये द्वितीय 'मतिराम' को १७३८ वि० के आसपास—१७३० वि० का उत्पन्न भी न बताना पड़ता। 'सरोज' मे १७३८ वि० को 'भूषण' और 'मतिराम' का उपस्थितिकाल मान लेने पर एक ही वर्ष मे दोनों के जन्म मे दिखाई पड़नेवाली 'कुछ असगति' का भी अवकाश न रह जाता।

इस प्रकार उनका जन्मकाल १६२५ से लेकर १६६४ वि० तक या १६७४ तक दिखाई देता है। उपर्युक्त दोनों शोधग्रंथकर्ताओं ने इनका समय पूर्वोपलब्ध समस्त प्रमाणों के आलोडन-विलोड़न करने के अनंतर, करीब करीब वही निर्धारित किया जो पं० कृष्णबिहारी मिश्र मानते हैं। डा० महेंद्र कुमार के मत से सं० १६६१ वि० के आसपास 'मतिराम' का जन्मकाल ग्राह्य हुआ है और डा० त्रिभुवन सिंह ने १६६० से १६६४ के बीच (अथवा सन् १६६५ के लगभग) जन्म होने का अनुमान किया है। इस प्रसग में दोनों शोधकर्ता प्रायः सभी प्रमुख पूर्वमत और उनके आधारो को सामने रखने का प्रयास करते दिखाई देते है। दोनों के निष्कर्ष भी करीब करीब एक ही से हमारे सामने आते हैं। इस समयनिर्धारण का सबसे प्रमुख आधार 'फूलमंजरी' का वह प्रसिद्ध दोहा है जिसमें जहाँगीर और आगरे का नामोल्लेख करते हुए 'मतिराम' ने उक्त कृति के निर्माण की बात कही है—

हुकुम पाय जहँगीर को नगर आगरे धाम।
फूलन की माला करी मति सो कबि मतिराम॥

इस दोहे के साक्ष्य पर ही उनके जन्मकाल का अनुमान निर्णयात्मक रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इस प्रसंग मे—जैसा कि पं० कृष्णबिहारी मिश्र ने संकेत किया है—मुशी देवीप्रसाद द्वारा अनूदित 'जहाँगीरनामा' के आधार पर उक्त कल्पना सामने आती है। उस अनुवाद में जहाँगीर के शाही बाग का नाम 'नूर अफ्शाँ' बताया गया है परंतु जहाँगीर लिखित 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' के 'अलेक्जेंडर रोजर्स' कृत अनुवाद मे उस बाग का नाम 'गुल ए-अफ्शाँ' है (डा० महेंद्रकुमार ने इस अनुवाद को अधिक प्रामाणिक स्वीकार किया है—मतिराम : कवि और आचार्य—पृ० २३ की पाद-टिप्पणी)। 'मतिराम' सबंधी अनुशीलनकर्ताओं का और विशेष रूप से पं० कृष्णबिहारी मिश्र का अनुमान है कि 'फूलमंजरी' का आरभ आगरे में ही किसी विशेष अवसर पर हुआ रहा होगा। इसका संबध भी मतिराम' को हुक्म देनेवाले जहाँगीर से ही संभवतः अवश्य रहा होगा। अतः इसे सम्राट् जहाँगीर के शासनकाल का कोई उत्सव माना जा सकता है। इस उत्सव का अवसर जहाँगीर के राज्यकाल का १६वाँ जलूसी वर्ष रहा हो तो कोई असंभव नहीं—ऐसा पंडितो का अनुमान है। इस अनुमान का साधक सद्हेतु भी है।

जहाँगीर ने बड़ी धूमधाम के साथ यह उत्सव मनाया था। शृंगार, सजावट, ठाटबाट और जशन की सामग्री के प्रसंग मे 'तुज़ुक-ए-जहाँगीरी' (फारसी) में उक्त 'गुल-ए-अफ्शाँ' की चर्चा विस्तार से हुई है। यद्यपि उक्त ग्रंथ में 'मतिराम' का नाम नही मिलता तथापि अपनी 'आत्मकथा' में बादशाह ने बडे उल्लास के साथ उक्त बाग की प्रशसा की है और लिखा है कि उन्होने (जहाँगीर ने) इस बाग की सैर १६७६ वि० मे की थी। दूसरी बात यह है कि इस उद्यानचर्चा के अंतर्गत जिन विशेष फूलों की प्रशंसा जहाँगीर ने की है उनमे से अधिकांश पुष्पों का उल्लेख 'फूलमंजरी' मे है।

इन साक्ष्यों के प्रकाश में ऐसा अनुमानमात्र है कि जहाँगीर की आज्ञा से इस लघुकृति की रचना करनेवाले 'मतिराम' ने इसी अवसर पर, उक्त उद्यान के फूलों की प्रशंसा मे, 'फूलमंजरी' बनाई होगी। महाकवि 'मतिराम' के जन्म-काल का निर्धारण करते हुए यह कहा जा सकता है कि स्वच्छ, ललित और समर्थ भाषा लिखनेवाले कवि की उत्कृष्ट रचनाओं की तुलना मे 'फूलमजरी' एक महत्वहीन कृति है, कवित्वशक्ति की दृष्टि से उत्कर्षरहित है और 'मतिराम' की प्रौढ कवित्वशक्ति का प्रकाश उसमे नहीं दिखाई देता। अतः वह 'मतिराम' की रचना नही है। पर उसका कारण यह है कि उस समय विवेच्य कवि किशोर अथवा १५-१६ वर्ष की वय का रहा होगा और उसकी प्रथम रचना होने से 'रसराज' या 'ललितललाम' की सी प्रौढ़ता या सरसता उसमें नहीं है। इसी कारण पंडित और अनुमानप्रवण शोधकों ने महाकवि का जन्मकाल सं० १६६०-६१ के आसपास अनुमित किया है। संप्रति उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर इससे अधिक अन्य मत विशेष प्रामाणिक ढंग से कहा भी नहीं जा सकता।

अन्य कृतियों में निर्दिष्ट उल्लेखो के साक्ष्य पर—आगे जैसा बताया जायगा—'मतिराम' के ग्रथो की कालसीमा निर्धारित करनी पड़ती है। उन सब प्रसगों के साथ सगति बैठाते हुए—यह मानकर कि 'महाकवि मतिराम' को लगभग ६० वर्ष की दीर्घायु मिली थी और उन्होंने प्रथम रचना के रूप मे 'फूलमंजरी' का निर्माण किया था—हम अभी किसी दूसरे स्वीकरणीय जन्मकाल की चर्चा नहीं कर सकते। पर इतना अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि यदि 'फूलमंजरी' इन्ही प्रस्तुत कवि 'मतिराम' की रचना है तो अवश्य ही वह १६वे जुलूस के अवसर पर ही लिखी गई

थी और उस समय कवि की अवस्था १५-१६ वर्ष की थी। ये बातें केवल अनुमित ही है। इनके साधक कोई अन्य पुष्ट अतःसाक्ष्य या बाह्य प्रमाण नहीं हैं। केवल 'जहाँगीर' की आज्ञा और 'गुल-ए-अफ़्शाँ' के अधिकांश पुष्पों की—जो 'फूलमंजरी' मे हैं—चर्चा ही उक्त अनुमानसाध्य कल्पना का साधकहेतु है।

—

गोत्र : बंधु

'मतिराम' के गोत्र और भ्रातृवृंदों के संबंध मे भी मतभेद और अनुमानो की श्रृंखला इसी प्रकार दिखाई देती है। एक पक्ष उन्हें **कश्यप गोत्रीय** मानता है और दूसरा वर्ग उन्हे **वत्सगोत्रीय** कहता है। 'मतिराम', 'चिंतामणि', भूषण' और 'नीलकंठ' या 'जटाशकर'—ये चार भाई थे, ऐसा उल्लेख 'शिवसिंहसरोज' में मिलता है।[२] इसमे भी कुछ लोग केवल तीन को ही भाई मानते है, 'नीलकंठ' या 'जटाशंकर' को नही; और कुछ लोगों का मत है कि चिंतामणि' और 'मतिराम' दो ही भाई सहोदर थे, 'भूषण' नही।

---

२. 'चिंतामणि त्रिपाठी' के प्रसग मे बताते हुए सरोजकार लिखते है—'चिंतामणि त्रिपाठी टिकमापुर जिले कानपुर वाले स० १७२९ मे 'उ०'... राजेश्वरी भगवती प्रसन्न ह्वै चारि मुड दिखाय बोली यही चारों तेरे पुत्र होंगे निदान ऐसा ही हुआ कि चिंतामणि १ भूषण २ मतिराम ३ जटाशकर या नीलकंठ चारि पुत्र उत्पन्न हुए...।'

आगे चलकर 'मतिराम' के संबध मे बताया है—'मतिराम त्रिपाठी टिकमापुर जिले कानपुर के स० १७३८ मे 'उ०'। ये महाराज भाषा काव्य के आचार्यों में गिने जाते है हिंदुस्तान में बहुधा बड़े राजों महाराजों के इहाँ थोरे थोरे दिन रहे औ राजा उदोतचंद कुमाऊँनरेश औ भाऊसिंह हाड़ा छत्रसाल राजा कोटा बूँदी और शंभूनाथ सुलंकी इत्यादि के इहाँ बहुत दिनों तक रहे ललितललाम अलकार ग्रथ राव भाऊसिंह कोटा वाले के नाम से बनाया और छदसार पिंगल फतेसाहि बुंदेला श्रीनगर के नाम से रचा और रसराज ग्रथ नायकाभेद का बहुत सुदर बनाया है।'

इस उद्धरण के देने का कारण यह है कि 'सरोज' का उल्लेख आगे अनेक प्रसंगों मे यत्रतत्र आता रहेगा। अतः उसका ठीक ठीक रूप पाठकों के ध्यान मे रहे। साथ ही इस बात की ओर ध्यान दिलाना भी आवश्यक है कि 'सरोज' मे

पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी से प्राप्त एक वंशावली, अपने 'भूषण' नामक ग्रंथ में प्रकाशित की है, जो मथुरा के एक चौबे की बही से 'पं० जवाहरलाल जी चतुर्वेदी को प्राप्त हुई थी।'[3] इस वंशावली के अनुसार 'मतिराम' के पिता का नाम 'रतिनाथ' था।

अनेकानेक वृत्त-वृत्तात केवल किंवदतियों और दतपरपराओं या 'हेतु' से असाधित अनुमितियों के आधार पर अटकलपच्चू ही प्रामाणिक मान लिए गए है। उदाहरणार्थ यहाँ 'शभुनाथ' को 'सुलकी' कह दिया गया है जो वस्तुतः अन्य कोई नहीं बल्कि शिवाजी के पुत्र 'साहू' जी हैं।

३. 'मतिराम' के वंशज श्री शिवसहाय तिवारी आदि ने यात्राप्रसग में मथुरा जाकर—कन्हैयालाल छगनलाल मानिकचौक मथुरा की—बही में अपना वंशपरिचय अपने ही हाथों लिखा है। उसी के आधार पर प० विश्वनाथ-प्रसाद जी ने निम्ननिर्दिष्ट वशवृक्ष बनाया है ('भूषण', प्र० स०, पृ० ९७)—

- रतिनाथ
  - मतिराम
    - जगन्नाथ
      - शीतल
        - बिहारीलाल
          - काशीदत्त
        - शिवगुलाम
          - शिवराखन
      - बैजनाथ
        - शिवसहाय
          - गयादत्त
        - रामदीन
          - प्रयागदत्त
          - नंदकिशोर

इस वशावली के साथ 'कवि बिहारीलाल' की 'रसचंद्रिका' का वश-परिचय मिल जाता है (जिसका उद्धरण आगे मिलेगा)। इस परिचय मे बताया गया है कि 'मतिराम' 'रतिनाथ' के पुत्र थे। ये 'गूदरपुर' तिवारी (कान्यकुब्ज) थे। तिकवॉपुर मे सुखवास करते थे। परतु डा० महेंद्रकुमार अपने व्यक्तिगत शोध के आधार पर इस प्रमाण को ही अप्रामाणिक मानते हैं। उनका कहना है कि जिस 'शिवसहाय' द्वारा यह वंशपरंपरा लिखित बताई

'मतिराम' के पिता का नाम उनके किसी ग्रंथ मे उल्लिखित नहीं है। 'भूषण' के पिता का नाम अवश्य ही 'काशिराज' वाली प्रति में 'रत्नाकर'

जाती है उसी के मतानुसार 'रामदीन', 'शिवसहाय' के भाई, 'मतिरामपौत्र' और 'बैजनाथपुत्र' ठहरते हैं। किंतु तिकवाँपुर निवासी 'शिवप्रसाद तिवारी' के पौत्र 'चद्रबली तिवारी' से डा० महेद्रकुमार को एक खडित छद प्राप्त हुआ है जो 'रामदीन' का रचित है। उसमे 'रामदीन' को 'विश्वनाथ' का 'अनुज' कहा गया है न कि 'शिवसहाय' का भाई। उस खडित छद में 'शिवसहाय' का कहीं भी नाम न होने के कारण महेद्र जी ने 'शिवसहाय' नामक व्यक्ति द्वारा लिखित वशपरिचय को अप्रामाणिक घोषित कर दिया है और कल्पना की है—'बिहारीलाल के अड़ौस पड़ौस का यह व्यक्ति प्रतीत होता है जिसने सुनी सुनाई बातों के आधार पर 'मतिराम' को 'रतिनाथ' का और 'जगन्नाथ' को 'मतिराम' का पुत्र तो कहा ही है, 'बिहारीलाल' और 'रामदीन' नामक कवियों के साथ अपना भी सबध जोड़ दिया है।' इसका आशय यह है कि उक्त 'शिवसहाय' ने संभवतः जानबूझ कर, अपनी बड़ाई के लिये, झूठा वशपरिचय ही नहीं लिखा है बल्कि अपने पिता के नाम की जगह अन्य के पिता और पितामह को अपना पिता तथा बाबा बना लिया है। उक्त खंडित छद—जिसके आधार पर उपर्युक्त कल्पना की गई है—निम्नाकित है—

भूषन सुकवि चिंतामनि······
　　　　मतिराम जू को पनाती प्रकट······
परमारथ मो लीन्हों नाती जगन्नाथ को······
　　जगत यह जानत है······
　　　　जगत जगत वेद विद्या प्रवीन है।
सीतल औ बैजनाथ जाको तन मन धन
　　　　······देवता अधीन है।
विदित बिहारीलाल कविवर विश्वनाथ
　　　　तिनको अनुज द्विज नाम रामदीन है।

डा० महेद्रकुमार—मतिराम कवि और आचार्य। पृ० २६।

इस खंडित छद मे दो तीन बातें ध्यान देने की हैं—(१) इस छद में खंडित-अखंडित नौ पक्तियाँ हैं; (२) इसमे 'भूषन', 'चिंतामनि' और 'मतिराम'

और संवत् १८१८ वाली प्रति मे 'रतिनाथ' मिलता है।[४] यदि 'भूषण' और 'मतिराम' भाई मान लिए जाते हैं तो 'मतिराम' के पिता का भी नाम

के नाम हैं; (३) इसमे भी 'कवि बिहारीलाल' और 'रामदीन' को 'जगन्नाथ' का नाती तथा क्रमशः 'शीतल' और 'बैजनाथ' को पुत्र कहा गया है। (४) 'रामदीन' के बड़े भाई का नाम 'विश्वनाथ' है न कि 'शिवसहाय'। केवल अंतिम बात मे भेद होने के कारण उक्त वंशावली को जाली या अप्रामाणिक अथवा प्रसिद्धिलोलुप की धूर्तता कह देना कदाचित् चिंतनपुष्ट निर्णय नहीं है। अन्य कल्पनाएँ भी संभव हैं। यह भी हो सकता है कि जो खंडित पद्य श्री महेंद्र को मिला है, वह कवि रामदीन रचित नष्टोन्मुख किसी खंडित प्रति से प्रतिलिखित हो और उसमे न पढे जाने के कारण 'शिवसहाय' का 'विश्वनाथ' लिख दिया गया हो। यह भी हो सकता है कि एक ही व्यक्ति के दोनो नाम हो। घर मे कभी कभी एक ही बालक को, कुछ गुरुजन एक नाम से पुकारते हैं और दूसरे लोग या कोई एक ही व्यक्ति अपने पसंद के नाम से। यह भी संभव है कि 'शिवसहाय' नाम कुछ बड़ा देखकर—कविता के लिये चार अक्षरों का अपना उपनाम उसी व्यक्ति ने 'विश्वनाथ' रखा हो और नामकरण का नाम 'शिवसहाय' ही रहा हो और उस व्यक्ति ने बही मे अपना उपनाम ही लिखा हो। इन विकल्प कल्पित अनुमानों का कारण यह है कि धर्मस्थान मे जाकर निष्प्रयोजन कोई अपनी झूठी वंशावली नहीं लिखता। तीर्थस्थलों के पंडे भी सामान्यतः वंश से परिचित होते हैं। 'संकल्प' आदि में मिथ्याप्रयोग छिप नहीं सकता। यह नहीं कहा जा सकता कि 'शिवसहाय तिवारी' पहले से ही जानते थे कि 'मतिराम' के विचारप्रसंग में चौबे की बही मे बँधा उनका नाम पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी और पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र की कृपा से हिंदीसाहित्य के अनुशीलन मे महत्व प्राप्त करके प्रसिद्ध हो जायगा और उस लोभ से 'शिवसहाय' ने बनावटी नाम लिखा हो। अतः उक्त चौबे-बही-वाली वंशावली को चट से अप्रामाणिक कहने के पूर्व बहुत सा ऊहापोह करना अपेक्षित होगा। इसके अतिरिक्त १८१८ वाली 'शिवराजभूषण' की प्रति के अनुसार 'भूषण' के पिता का नाम भी 'रतिनाथ' मिला है।

४. 'द्विज कनौज कुल कस्यपी रतनाकर सुत धीर।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनितनूजा तीर ॥
— काशिराजवाली प्रति

'काशिराज' की प्रति के अनुसार 'रत्नाकर' और १८१८ वाली प्रति के अनुसार 'रतिनाथ' है। यदि दोनो नाम एक ही व्यक्ति के हों तो 'मतिराम' के पिता के भी वे दोनों नाम थे—यह अनुमानसंगत हो सकता है।

इस संबंध मे मिश्र जी के अनुमान से हो सकता है कि दोनो नाम एक ही व्यक्ति के[५] हों या दूसरा उपनाम या पुकारने का नाम रहा हो।[६]

ये काव्यकुब्ज ब्राह्मण थे, कश्यप गोत्र के थे और 'रत्नाकर' के पुत्र थे तथा यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर) मे रहते थे। किंतु सवत् १८१८ वाली प्रति मे इसी दोहे का दूसरा पाठ है—

द्विज कनोज कुल कस्यपी रतिनाथ कौ कुमार।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा जमुना कठ सुठार ॥

इस दोहे के अनुसार इनका नाम 'रतिनाथ' था।'

['भूषण'—(संस्करण : प्रथम) पृ० ६६—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र]

इस दोहे मे 'भूषण' के पिता का नाम 'रतिनाथ' है और पा० टि० ३ मे निर्दिष्ट, और मथुरा के 'चौबे' की बही से प्राप्त 'मतिराम' के वशपरिचय मे 'मतिराम' के पिता का नाम भी 'रतिनाथ' है। अतः १८१८ वाली प्रति यदि प्रामाणिक है तो उक्त 'चौबे' की बही से प्राप्त वशपरिचय की प्रामाणिकता और भी पुष्ट होती है। इस सबध मे प० विश्वनाथप्रसाद जी का एक सुझाव यह भी है कि सभवतः दोनों एक ही व्यक्ति के—अर्थात् 'मतिराम' के पिता के—नाम हों।

५. सबका मिलान करने से स्पष्ट पता चल जाता है कि 'भूषण' और 'मतिराम' रतिनाथ के पुत्र थे, तिकवाँपुर रहते थे और 'कश्यपगोत्रीय' कान्यकुब्ज त्रिपाठी थे।—[वही, पृ० ६८]

६. 'इनके (भूषण के) पिता के (शिवभूषण की विभिन्न शाखा के हस्तलेखों के अनुसार) दो नाम ठहरते हैं—'रतिनाथ' और 'रत्नाकर'। हस्तलेखों में पाठ ही भिन्न भिन्न हैं और यह भी सभावना नहीं कि 'रतिनाथ' का स्थानापन्न 'रत्नाकर' पद हो सके या इसका विपर्यास। अतः दोनों के सबंध मे यह कल्पना की जा सकती है कि एक नाम है और दूसरा उपनाम। 'रतिनाथ' नाम पंडों की बही में है इससे यही उनका असल नाम है और 'रत्नाकर' उपनाम। 'रत्नाकर' पुकार का भी नाम हो सकता है और काव्य

वृत्तकौमुदी में इनके पिता का नाम 'विश्वनाथ' कहा गया है। कहने का तात्पर्य यह कि वंशपरिचय से संबद्ध तीन बातें हैं जिनमें मतभेद है—(१) मतिराम कश्यपगोत्रीय हैं या वत्सगोत्रीय। (२) चिंतामणि, मतिराम, भूषण और जटाशंकर (नीलकंठ)—चारों सहोदर थे या नहीं और भूषण मतिराम के भ्राता थे या नहीं। (३) प्रस्तुत कवि के पिता का नाम रत्नाकर, रतिनाथ या विश्वनाथ—इनमें से क्या था?

मे 'छाप' देने के लिये भी। यदि दूसरी स्थिति हो तो हिंदी के मध्यकाल मे भी एक 'रत्नाकर' के होने की सभावना है।'

—[वही-पृ० १६५]

इस स्पष्ट मत को और भी अधिक व्याख्येय मानकर डा० महेद्र ने लिखा है–"जहाँ तक 'रत्नाकर' अथवा 'रतिनाथ' नाम होने का प्रश्न है उसमें विवाद होने के लिये कोई स्थान नहीं है, क्योंकि दोनों नामों की एक ही राशि है, अतः हो सकता है कि वे दोनों नामों से ही अभिहित किए जाते हों। मिश्रजी का भी सभवतः यही विचार है। कान्यकुब्जों की वंशावली के आधार पर इन्होंने मतिराम को 'वत्सगोत्रीय' न मानकर गूदरपुर के तिवारी और बछईवश का सिद्ध किया है।'

—[मतिराम : कवि और आचार्य—डा० महेद्रकुमार, पृ० ११]

यहाँ महेद्र जी ने जो यह कहा है कि दोनों नामों की एक ही राशि होने से संभव है कि 'वे दोनों नामों से अभिहित किए जाते हों'—यह कल्पना ठीक नहीं है। क्योंकि प० विश्वनाथप्रसाद जी का यह आशय नहीं प्रतीत होता। उन्होंने अपना आशय स्पष्ट शब्दों मे स्वय लिख दिया है—'एक नाम है और दूसरा उपनाम या पुकार का नाम'। इसका कारण है कि 'राशिनाम' कोई नाम नहीं होता। उसका महत्व तो प्रथम अक्षर मात्र से है जो राशि के अंतर्गतस्थ नक्षत्रचरण का सूचकमात्र होता है। अक्षर से आरब्ध होनेवाले दो क्या पचीसों नाम किसी भी व्यक्ति के राशिनाम हो सकते हैं। पर इसके साथ ही राशिनाम से व्यक्ति को पुकारा नहीं जाता। राशिनाम का पुकारने या व्यवहार मे प्रयोग वर्जित होने से सदैव व्यवहार का नाम राशिनाम से अलग रखा जाता है। दुलार, प्यार या अन्य अनेक कारणों से अनेक बार व्यवहारनाम के अलावा भी घर आदि में पुकारने का, नाम या तो व्यवहार नाम का सक्षिप्त होता है या कभी कभी एकदम दूसरा भी।

जहाँ तक उनके गोत्र का संबंध है अधिकांश विद्वान् उन्हें कश्यपगोत्रीय मानते हैं। पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित 'वृत्तकौमुदी को उनकी रचना मानकर उसमे दिए हुए उल्लेख के अनुसार प्रस्तुत कवि को 'वत्सगोत्रीय' स्वीकार करते हैं। इन्होंने इस संबंध में यहाँ तक कह डाला है कि 'रसचद्रिकाकार' 'बिहारीलाल' और 'वृत्तकौमुदी' के कथन की असंगति भ्रममूलक है।[७]

७. बसत त्रिविक्रमपुर नगर, कालिंदी के तीर।
बिरच्यो भूप हमीर जनु, मध्यदेस को हीर ॥
भूषन चिंतामनि तहाँ कवि भूषन मतिराम।
नृप हमीर सनमान तैं कीन्हे निज निज धाम ॥
है पती मतिराम के सुकबि बिहारीलाल।
जगन्नाथ नाती बिदित सीतलसुत सुभ चाल ॥
कस्यप बस कन्नौजिया बिदित त्रिपाठी गोत।
कविराजन के वृंद मे कोविद सुमति उदोत ॥
—रसचद्रिका

इस टीकाग्रंथ मे निर्माणकाल भी दिया गया है—'दृग मुनि बसु ससि वर्ष (१८७२) मे, सिद्धि सोम मधु मास'। इससे 'मतिराम' के पती (परनाती), यमुना के किनारे तिकवाँपुर के निवासी सिद्ध होते हैं। 'भूषण', चितामणि' और 'मतिराम' तीनों ही किसी हमीर नरेश की (प० कृष्णबिहारी मिश्र के अनुसार यह हमीर नरेश छत्रप्रकाश के आधार पर धँधेरे के 'हम्मीर राजा' हैं) कृपा से अपने अपने धाम को बनाकर रहते थे। इनका गोत्र **काश्यप** था और कान्यकुब्ज ब्राह्मण त्रिपाठी थे। यह टीका स्पष्ट ही १८७२ के मधुमास अर्थात् चैत्र मे पूर्ण हुई थी।

दूसरी ओर 'वृत्तकौमुदी' मे ग्रथकार ने अपना परिचय देते हुए कहा है—

तिरपाठी बनपुर बसैं, बत्स गोत्र सुठि गेह।
विबुध चक्रमणि पुत्र तहँ गिरिधर गिरिधर देह ॥
भूमिदेव बलभद्र हुअ, तिनहिं तनुज मुनि-गान।
मंडित पडित मंडली, मंडन मही महान ॥

वंशपरंपरा

यहाँ विशेष रूप से दो बातें विचारणीय हैं। प्रथम यह कि 'मतिराम' (प्रथम या द्वितीय) ने अपने अन्य किसी भी ग्रंथ में जब अपने वंश,

---

तिनके तनय उदारमति, विस्वनाथ हुव नाम।
दुतिधर श्रुतिधर कौ अनुज, सकल गुननि कौ धाम॥
तासु पुत्र **मतिराम** कबि, निज मति के अनुसार।
सिंह स्वरूप सुजान को बरन्यो सुजस अपार॥
[छं० सा० ५ वाँ प्र०]

[यह पाठ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र और डा० महेंद्र द्वारा उद्धृत संदर्भों के आधार पर है। 'अलंकार प्रकाश' में श्री शूरवीर सिंह द्वारा उद्धृत पाठ कुछ भिन्न है; मुख्य भेद है द्वितीय पंक्ति में; वहाँ 'चक्रमणि' के स्थान पर 'चंद्रमणि' उद्धृत है। इसी प्रकार तृतीय पंक्ति का उत्तरार्द्ध है—'तिन तत्र मुति गान'। इसका अर्थ भी अस्पष्ट है। और पाठभेद सामान्य है।]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि 'वृत्तकौमुदी' के निर्माता 'मतिराम त्रिपाठी' 'बनपुर' के 'वत्सगोत्रीय' ब्राह्मण थे। 'चक्रमणि' के पुत्र गिरधर' और उनके तनय 'बलभद्र तथा उनके तीन पुत्रों—श्रुतिधर, 'द्युतिधर, विश्वनाथ'—में कनिष्ठ विश्वनाथ के पुत्र 'मतिराम' थे। उन्होंने अपने इस ग्रंथ में 'स्वरूपसिंह' के सुयश का वर्णन किया। 'मतिराम' ने 'वृत्तकौमुदी' का निर्माण, अपने आश्रयदाता 'स्वरूपसिंह' के निमित्त किया था—

वृत्तकौमुदी ग्रंथ की सरसी सिंह स्वरूप।
रची सुकवि **मतिराम** सौं पढ़ौ सुनौ कवि भूप॥
—[छंदसारपिंगल—सर्ग १, (भूषणविमर्श–प्र० सं०, पृ० १७)]

दूसरी ओर जब बिहारीलाल कश्यपगोत्री हैं तब वे कैसे वत्सगोत्री 'मतिराम' के पती (पनाती=प्रपौत्र) हो सकते हैं? क्योंकि 'मतिराम' के वंशज तिकमापुर के समीप 'सँजेती' और 'बाँद' नामक गाँवों (जिला कानपुर) में रहते हैं। वे अपने को कश्यपगोत्री बकुई के तिवारी कहते हैं। उन लोगों के यहाँ उपलब्ध वंशावली में भी 'बकुई तिवारी' को कश्यपगोत्री ही बताया और माना गया है।

गोत्र और कुल का परिचय नहीं दिया या उल्लेख नहीं किया है तब केवल 'वृत्तकौमुदी' मे क्यो अपने अभ्यास और शैली के विरुद्ध पूर्वजों का इतना

इस शका और प्रश्न के समाधान मे, दीक्षितजी ने 'भूषणविमर्श' (प्र० सं०) में अनुमान लगाया कि "वत्स, 'बछई' का ही अपभ्रश रूप है। अंतः उन्होंने बछई को 'वत्स' रूप देकर अपने को शुद्ध और परिष्कृत रूप मे लाने का प्रयत्न किया है। कान्यकुब्जों की वशावली मे आज भी निम्नकोटि के कनौजिया उच्चवश मे होने के लिये आस्पद और गोत्र बदल लेते हैं। मतिराम मे भी सभवतः यही भावना काम करती प्रतीत होती है।"

दीक्षितजी ने आगे यह भी कहा है 'बिहारीलाल' ने स्वय को 'कश्यप-गोत्रीय कनौजिया त्रिपाठी' कहकर अपने पितामह 'मतिराम' की त्रुटि का प्रच्छालन कर अपने को पुनः परिष्कृत किया।

पं० भगीरथप्रसाद जी के मत से तात्पर्य हुआ कि प्रथम 'मतिराम' ('रसराज' आदि के निर्माता) कवि 'भूषण' के जन्म के बहुत पहले मर चुके थे। पर दूसरे 'मतिराम', 'भूषण' के समकालीन होकर भी उनके सहोदर न थे। प्रथम 'मतिराम' के आश्रयदाता थे 'रहीम', 'जहाँगीर', 'गोपीनाथ', 'भाऊसिंह' और 'भोगनाथ'। उनकी कृतियाँ हैं—'बरवैनायिका भेद-संपादन', 'फूलमजरी', 'रसराज', 'ललितललाम' और 'मतिरामसतसई'। द्वितीय के आश्रयदाता थे, 'उद्योतचद्र', 'ज्ञानचद्र', 'फतहशाह', 'स्वरूपसिंह' और 'भगवंतराव खीची'। इनमें से 'स्वरूपसिंह बुँदेला' को छोड़कर (जिनके सरक्षण मे 'वृत्तकौमुदी' या 'छदसग्रह' या 'छदसारपिंगल लिखा गया)—शेष चार 'भूषण' के भी आश्रयद थे।

दीक्षितजी के कथन को यदि माना जाय तो 'बिहारीलाल' के प्रमाण पर द्वितीय 'मतिराम' ही—जो 'भूषण' और 'चिंतामणि' के समकालीन और उन्हीं के समान 'त्रिविक्रमपुर' (तिकवाँपुर) मे रहते थे— 'बिहारीलाल' के पितामह थे, वे ही वृत्तकौमुदीकार थे और वे वस्तुतः 'कश्यपगोत्री' थे। परतु 'रसचंद्रिकाकार' के अनुसार तिकवाँपुर वाले होकर भी 'वृत्तकौमुदीकार' के अनुसार अपने को बनपुरवासी वत्सगोत्री कहते हैं।

इन सब दूरारूढ कल्पना, अपुष्ट अनुमान और अतिश्रमसाधित निष्कर्षों मे असंगति स्पष्ट है। प्रथम 'मतिराम' के गोत्र का कुछ पता भी नहीं चल पाता। क्योंकि उनके विषय में तद्विषयक कोई लिखित अन्य प्रमाण नहीं

लंबा चौड़ा वर्णन लिखने में वे प्रवृत्त हुए? दूसरी बात है 'बिहारीलाल' के उद्धरण में 'मतिराम' से चलकर और 'बिहारीलाल'-तक का निर्देश होना।

भिन्नता। जिस द्वितीय 'मतिराम' का प्रमाण मिलता है—वह 'रसराज', 'ललितललाम' आदि का रचयिता नहीं है। भूषणसबद्ध वृत्तों से उसका कोई सबध नहीं है। संभवतः इन्हीं सब कारणों से दीक्षितजी ने अपने 'महाकवि भूषण' नामक ग्रथ मे कहा है—

'इन दोनों कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि मतिराम वत्सगोत्री विश्वनाथ के पुत्र थे और भूषण कश्यपगोत्री रत्नाकर के तनय बतलाए गए हैं। अतः दोनों कवि सहोदर बधु कदापि न थे।'...'अतः चिंतामणि और भूषण दो ही सहोदर बधु थे, यह निश्चित है।' इसी विषय को स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखते हैं कि—'मतिराम नाम के दो कवि उसी काल मे हो गए हैं जिनमें प्रथम रहीम खानखाना, बादशाह जहाँगीर, राजकुमार गोपीनाथ (बूँदी), महाराजा भाऊसिंह (बूँदी) तथा राजा भोगनाथ (जंबूनरेश) के आश्रित थे। इन मतिराम का समय भूषण से पहले पड़ता है..।' अतः दोनों मतिराम को एक नहीं किया जा सकता। यदि ये एक ही मतिराम हो तो इनका रचनाकाल स० १६६० वि० से १७९० वि० तक १३० वर्ष का पड़ता है जो कि संभव नहीं है। अतः हम दो मतिराम मानने के लिये बाध्य हैं।'

—[महाकवि भूषण—पृ० १७]

इस सबध मे उन्होंने यह भी कहा है कि द्वितीय मतिराम के पाँच (उद्योतचंद, ज्ञानचद, फतहशाह, स्वरूपसिंह और भगवंतराय खीची) आश्रयदाताओं में चार का उल्लेख छदसारपिंगल (वृत्तकौमुदी, सर्ग ४) के एक छंद मे मिला है—

दाता एक जैसे शिवराज भयो तैसो अब,
फतेहसाहि श्रीनगर साहिबी समाज है।
जैसो चित्तौर धनी राजा नरनाह भयो,
तैसोई कुमाऊँ पति पूरो रजलाज है।
जैसे जयसिंह जसवंत महाराज भए,
जिनको मही मै अजौं बढ्यो बलसाज है।
मित्र साहिनंद श्री बुदेल कुलचद जग,
ऐसौ अब उदित स्वरूप महाराज है॥

'वृत्तकौमुदी' मे चक्रमणि से चलकर 'मतिराम' तक का उल्लेख मिलता है। इसका तात्पर्य यह कि दोनों को एक सूत्र मे बाँधकर उनकी सगति बैठाना कठिन हो उठा है।

द्वितीय 'मतिराम' के उक्त आश्रयदाताओं मे 'स्वरूपसिंह बुंदेला' को छोड़कर शेष चार 'भूषण' के भी आश्रयदाता थे। इस कारण भी द्वितीय 'मतिराम', ही 'भूषण' के समकालीन और उनके साथ 'तिकवाँपुर' मे रहते थे। इन्हीं के पती 'बिहारीलाल' थे। गोत्रभेद के कारण 'मतिराम', 'भूषण' के सहोदर नहीं थे। इस संबंध की समस्त भ्रातियों का मूल उत्स वे मानते हैं 'शिवसिंह-सरोज' को—जिसने 'चिंतामणि', 'मतिराम' और 'भूषण' को सहोदर भाई कह दिया। इतना ही नहीं 'सरोज' से ४३ वर्ष पूर्व रचित 'सूर्यमल्ल' के 'वशभास्कर' और उससे भी प्राचीन 'मीर गुलाम अली बिलग्रामी' (सं० १८०३ वि०) के 'तजकरा-ए-सर्व आजाद' (फारसी) के तीनों त्रिपाठियों के सहोदरत्वपरक पूर्वोक्त उल्लेख को दतकथाओं पर आधारित और भ्रामक मानते हैं। यहाँ एक मजेदार बात ध्यान मे रखने की है। अपने 'भूषणविमर्श' (प्र० सं० पृ० ८) मे 'दीक्षितजी' ने लिखा है कि 'मतिराम-भूषण के विषय मे 'सरोज' की सामग्री अधिक विश्वसनीय है। क्योंकि 'ठा० शिवसिंह' की जन्मभूमि 'काँथा' 'तिकमापुर' से १५-२० ही मील के अतर पर है। 'साहित्य के इतिहासों में उन्हे भूषण-मतिराम सबंधी अशुद्धियाँ बहुत खटकती थीं। इसका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने सरोज की भूमिका में किया है; इसलिये उनका दिया हुआ समय अधिक शुद्ध मानना पड़ेगा। वास्तव में शिवसिंहसरोज की रचना ही भूषण-मतिराम के जीवनचरित्र को संशोधित कर परिष्कृत रूप देने के लिये हुई।'

'सरोज' के जिस 'उ०' को उपस्थितिकाल के बजाय उत्पत्तिकाल मानने से— प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के मतानुसार—भ्रम फैला उसे तो 'दीक्षितजी' ने सही माना और 'सहोदरत्व' वाली बात को भ्रममूलक मानकर 'सरोज' को ही भ्रम का मूलकारण कह दिया। जिस 'सरोज' का निर्माण, दीक्षितजी के अनुसार 'भूषण-मतिराम'-सबधी भ्रातियों के निराकरणहेतु हुआ और जिसके लेखक का निवासस्थान 'मतिराम' के वासस्थान से बहुत दूर नहीं था—उसी को दीक्षितजी भ्रांतिपूर्ण मानते हैं। इतना ही नहीं काल-व्यधान की दृष्टि से अत्यंत निकट परिचय रखनेवाले 'मीर गुलाम अली बिलग्रामी' को भी उन्होंने सर्वथा अमान्य ठहरा दिया।

'बिहारीलाल' ने यद्यपि 'मतिराम' के पूर्वपुरुषों का उल्लेख नहीं किया है तथापि 'त्रिविक्रमपुर नगर' और 'भूषण' एव 'चिंतामणि' के साथ 'मतिराम' का नामोल्लेख किया है। वे यह नही कहते कि वे तीनो भाई थे किंतु इतना तो कहते ही है कि वे तीनों एक साथ अपने अपने धाम में संमान के साथ बसाए गए थे। इसके अतिरिक्त 'कश्यप गोत्रीय' त्रिपाठी भी उन्हे कहा गया है। इस संपूर्ण वक्तव्य के साथ यदि पं० विश्वनाथप्रसादजी मिश्र द्वारा निर्दिष्ट 'चौबे' वाली बही और 'शिवराजभूषण' की सवत् १८१८ वाली प्रति की एकसूत्रता जोडी जाय तो बात, बहुत कुछ साफ हो उठती है और निष्कर्षात्मक अनुमान मे निश्चय ही सहायक होती है। मिश्रजी द्वारा नवीन सूचना प्रस्तुत है—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी के माध्यम से—जिसमे 'बिहारीलाल' के चचेरे भाई 'शिवसहाय', 'रामदीन' आदि द्वारा मथुरा की तीर्थयात्रा के प्रसंग मे लिखित वंशवर्णन है। इसकी प्रतिलिपि मिश्रजी के 'भूषण' ग्रंथ से उद्धृत की जा रही है—

'शिवसहाय, श्रीभाई बिहारीलाल तथा शिवगुलाम तथा रामदीन। बैजनाथ के बेटा दुइ, शिवसहाय व रामदीन, सीतलजू के बेटा दुइ बिहारीलाल व शिवगुलाम। जगन्नाथ के नाती, मतिराम कवि के पंती, रतिनाथ के परपंती। शिवसहाय के बेटा गयादत्त, रामदीन के बेटा दुइ भागदत्त व नंदकिसोर,

---

'मतिराम' कवि की इस रचना (छंदसारपिंगल=वृत्तकौमुदी) के हस्तलेखों का पता दो स्थानों पर 'दीक्षित जी' ने दिया है जिनका उल्लेख खोजरिपोटों मे भी है—(१) लालकवि महापात्र (नरहर कवि के वशज) असनी जिला फतहपुर, और (२) प० भवानीप्रसाद शर्मा, नारनौल (पटियालाराज्य)। पर समवतः आज इन दोनों स्थानों पर पांडुलिपियॉ अप्राप्य है—जिसकी चर्चा आगे होगी।

इन सबका निष्कर्ष यही निकलता है कि 'नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के खोजरिपोर्ट के संक्षिप्त विवरण' मे वर्णित 'मतिराम' सबधी दीक्षितजी के विचारों मे बराबर विकास और परिवर्तन होता गया। 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं मे अपनी नवीन उपलब्धियों के कारण उनकी अनुमिति-साधक कल्पनाएँ बदलती गई और 'भूषणविमर्श' तक पहुँचकर अपने निर्णयों की उलझन में फँस जाने के कारण ऐसी अविचारितरमणीय उक्तियों का उन्होंने जाल फैला दिया जिसमे फँसकर निकलना ही मुशकिल हो गया।

बिहारीलाल के बेटा काशीदत्त, शिवगुलाम के बेटा शिवराखन । तिवारी गूदरपुर के, सुखबास तिकवाँपुर बीरबलक अकबरपुर, म० गूदरपुर पट्टी सुराजपुर । सं० १८६६ भादों सु० ८ ।'

इसके अनुसार 'मतिराम' के पिता का नाम यद्यपि 'रतिनाथ' बताया गया है तथापि उनके पुत्र यहाँ भी जगन्नाथ ही निर्दिष्ट हैं और उनके नाती तथा 'मतिराम' के पंती (परनाती) चार हैं—'बिहारीलाल', शिवगुलाम', 'शिवसहाय और रामदीन ।' इनमे प्रथम दो 'शीतल' के पुत्र तथा अंतिम दो 'बैजनाथ' के तनय है । इस प्रकार 'बिहारीलाल' यहाँ भी 'मतिराम' के पंती और रतिनाथ के परपंती बताए गए हैं । इन्हे गूदरपुर का कान्यकुब्ज तिवारी कहा गया है । यह भी उल्लेख्य है कि वे 'तिकवाँपुर' मे सुखपूर्वक बास करते थे । इन्हीं 'मतिराम' के वंशज अच्छे काव्यमर्मज्ञ हुए ।

इस वर्णन के आधार पर 'रसचंद्रिका' मे निर्दिष्ट वर्णन का मेल कुछ दूर तक और बिलकुल ठीक ठीक बैठ जाता है । 'मतिराम' और 'बिहारीलाल' के संबंध तथा 'बिहारीलाल' का 'जगन्नाथ' का नाती और 'शीतल'-सुत होना समान है । इसके अतिरिक्त 'तिकवाँपुर' नामक वासस्थान भी वही है । इसमे यद्यपि 'गोत्रपरिचय' नहीं है तथापि 'मतिराम' से लेकर 'बिहारीलाल' तक के वंशपुरुषो का समान नामोल्लेख दोनों मे अभेद सूचित करने का पर्याप्त दृढ प्रमाण है ।

'वृत्तकौमुदी' को ही पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित सर्वाधिक प्रामाणिक और ग्रंथकार का स्वतः लिखित वंशपरिचय मानते हैं । इस आग्रह के कारण वे न तो 'भूषण' और 'चिंतामणि' को मतिराम का सहोदर स्वीकार करते हैं और न उनका मूल स्थान ही 'तिकवाँपुर' मानते है । उनके मत से 'मतिराम' मुख्यतः 'बनपुर' के निवासी हैं । 'तिकवाँपुर' में आकर शायद वे बस गए हों । इसी कारण यह कल्पना भी करनी पड़ी है कि 'मतिराम' नाम के दो विख्यात कवि हो गए हैं । प्रथम 'मतिराम'.'रहीम' के 'बरवैनायिकाभेद' के संपादक भी थे । क्योंकि 'बरवैनायिकाभेद' के कुछ हस्तलेख ऐसे भी मिलते है जिनमें लक्षणांश तो 'रसराज' के 'नायिकाभेद' से गृहीत हैं और लक्ष्यांश 'रहीम' के हैं । दीक्षितजी का अनुमान है कि कदाचित् 'मतिराम' 'रहीम' के आश्रित थे और उनके ही आश्रयकाल में 'बरवैनायिकाभेद' का संपादन किया जा चुका था । इस कारण द्वितीय 'मतिराम' ने 'अलंकारपंचाशिका' और 'वृत्तकौमुदी' की रचना की होगी । कृष्णबिहारी जी संभवतः इसी कारण 'वृत्त-

कौमुदीकार' को रसराजलेखक से भिन्न कवि के रूप मे अनुमानित करते हैं। अपने मत के आधारभूत प्रमाणों मे वे 'वृत्तकौमुदी' की क्लिष्टता और पृष्ठपेषण को कविभेद का साधक कहते हैं।

वृत्तकौमुदी का साक्ष्य

पं० कृष्णबिहारी मिश्र ने 'मतिराम ग्रंथावली' की भूमिका में लिखा है कि 'मतिराम' के जिस 'वृत्तकौमुदी नामक ग्रंथ के आधार पर 'दीक्षित जी' के अनुसार 'मतिराम' 'वत्सगोत्रीय त्रिपाठी' और 'बनपुर' के निवासी विश्वनाथ-पुत्र कहे जाते हैं—वह ग्रंथ ही सदेहास्पद सा लगता है क्योंकि दीक्षिजी ने 'वृत्तकौमुदी' की उपलब्धि का जो पता (पाद टि० ७ मे देखिए) बताया वहाँ से पता लगाने पर भी उक्त रचना के सबंध की बाते उपलब्ध न हो सकी। उन्होंने 'दीक्षितजी' से पता पूछकर उक्त दोनों व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार भी किया। पर वहाँ से उन्हे उत्तर मिला कि ग्रथ वहाँ नहीं है। 'दीक्षितजी' ने समाधान किया कि—अब वह ग्रंथ वहाँ नहीं है सभवतः नष्ट हो गया। इस कारण 'याज्ञिकबधुओं' आदि ने पहले ही जिस 'वृत्तकौमुदी' को 'मतिराम' की अप्रामाणिक रचना माना था उसे 'कृष्णबिहारी मिश्र' भी प्रसिद्ध 'मतिराम' की रचना नहीं मानते। उनका कथन है कि रसराजकार का प्रसिद्ध पिंगलग्रंथ 'छंदसार' अथवा 'छदसारसंग्रह' है। 'वृत्तकौमुदी' किसी अन्य 'मतिराम' की रचना है। अतः उसके आधार पर 'रसराज' आदि के कर्ता 'मतिराम' का पितृनाम, गोत्र और स्थान का निर्णय ठीक नही है।

डा० त्रिभुवनसिंह भी कुछ ऐसा ही मत व्यक्त करते हैं। याज्ञिकबधु भी अत्यंत अनुशीलनपूर्ण माधुरी के अपने लेख द्वारा इसी मान्यता के समीप पहुँचते हैं। प्रस्तुत विवेचनीय कवि द्वारा निर्मित 'वृत्तकौमुदी' को रसराजकार 'मतिराम' का ग्रंथ वे भी स्वीकार नहीं करते। उनके मत से—सभवतः तब तक—'मतिराम' दिवगत हो चुके थे जब संवत् १७५८ वि० में उसकी रचना हुई। वे यह भी कहते हैं कि 'रसराजकार' की रचना 'वृत्तकौमुदी' को मानने से 'रसचद्रिका' में निर्दिष्ट वंशपरिचय का मेल भी नहीं खाता है। इस कारण 'वृत्तकौमुदी' और उसके कवि का प्रश्न संदिग्ध है। अतः यज्ञिकबंधुओं का कहना है कि पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित के अतिरिक्त अन्य किसी विद्वान् के देखने के लिये वह ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ है। जब तक ग्रंथ न उपलब्ध

हो तब तक 'दीक्षितजी' को प्रमाण मानकर अन्य प्रमाणभूत सूचनाओं को गलत ठहराना समीचीन नहीं है। उन्होंने यहाँ तक कहा है कि 'अर्थ और यश-प्रशस्ति की इच्छा से किसी ने मतिराम' के नाम पर जाली पुस्तक तैयार कर दी हो तो असंभव नहीं है और इसी कारण वह पुस्तक एक बार दीक्षित जी के सामने आकर लुप्त हो गई।'

वृत्तकौमुदी : नई प्रतिलिपि

डा० महेंद्रकुमार इस संबंध मे कुछ नई सूचना देते हैं। उन्होंने 'मतिराम' से संबद्ध जीवनवृत्त और कृतियों के संग्रह मे विशेष प्रयास किया है। कौन सी पुस्तकें कहाँ उपलब्ध हैं—इस संबंध की सही और साक्षात् जानकारी एकत्र करने के लिये उन्होंने यात्राएँ आदि भी की हैं। दीक्षितजी के पत्रों से सूचना पाकर पं० भवानीप्रसाद शर्मा (नारनौल पटियाला) के यहाँ तक वे ग्रंथ देखने गए। 'शर्मा' जी से प्रत्यक्ष मिलने पर उन्हे पता चला कि उक्त पुस्तक उनके पास कभी तो अवश्य थी परंतु वह नष्ट हो गई। फलतः महेंद्रकुमार जी को 'वृत्तकौमुदी' देखने को न मिली। फिर भी दीक्षित जी के उद्धृत लेखांशों के आधार पर वे कार्य करते रहे और संयोगवश 'वृत्तकौमुदी' की एक प्रतिलिपि कैप्टन शूरवीरसिंह जी' से उन्हें प्राप्त हो गई। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ ग्रंथों—'फूलमंजरी', 'अलंकारपंचाशिका' और 'पिंगलछंदसार' के हस्तलेखों की भी प्रतिलिपियाँ—उन्होंने बड़े अध्यवसाय के साथ संगृहीत कीं।

इस ग्रंथोपलब्धि के कारण 'वृत्तकौमुदी' को वे अपने शोधग्रंथ में 'मतिराम' की ही रचना मानते हैं। उन्होंने लिखा है—'दीक्षित जी भी अपनी मान्यताओं के विषय में अनिश्चित होने के कारण यह धारणा बना बैठे हैं कि इस ग्रंथ (वृत्तकौमुदी) के रचयिता 'रसराजकार' से भिन्न हैं।' पर स्वयं महेंद्रकुमार जी के मत से इस पिंगलग्रंथ का नाम 'वृत्तकौमुदी' ही नहीं 'मतिराम' के अपने शब्दों में 'छंदसारसंग्रह' भी है। इस आधार पर वे स्वरूपसिंह बुंदेला के नाम पर लिखी गई 'वृत्तकौमुदी' का निर्माणकाल १७५८ वि० मानते हैं।

इस मान्यता को दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लेने से उन्होंने 'मतिराम' को 'वत्सगोत्रीय' और 'बनपुर' का मूल निवासी सिद्ध करने का भी प्रयास किया है। उनका अनुमान है कि 'छंदसारसंग्रह' ग्रंथ को न देखने के कारण

भ्रम मे पडकर 'छंदसारसग्रह' के स्थान पर ग्रंथ का नाम 'छदसारपिंगल' और 'स्वरूपशाह' के स्थान पर 'फतहशाह' लिखने की असावधानी 'सरोजकार' कर गए हैं। अतः डा० महेंद्र की निश्चित मान्यता है कि 'भूषण' और 'चिंतामणि' (जो सगे भाई थे) 'मतिराम' के सहोदर नही थे। हो सकता है—ममेरे या फुफेरे भाई रहे हों। साथ ही उनका कहना है कि पूर्वोक्त वशपरिचय मे 'बिहारीलाल' ने अपने को जो 'कश्यपगोत्रीय' कहा है उसी के कारण 'मतिराम' को उनका परदादा मानकर 'कश्यपगोत्रीय' स्वीकार करना भ्रांतिमूलक है। वस्तुतः 'पंती' शब्द परनाती का अर्थबोधक है। पती (परनाती) का 'नाती' शब्द 'पुत्री' के पुत्र (नाती) और 'पुत्र' के पुत्र (पौत्र)—दोनों का बोधक होता है। उसमें 'प्र' (या पर) लगने पर परनाती मे बना 'पंती' शब्द पुत्र के पौत्र का ही नही पुत्री के पौत्र का भी बोधकारी होगा।

'बिहारीलाल' वत्सगोत्रीय जगन्नाथ की कन्या के वंशज और कश्यपगोत्रीय थे। इसी मे वृत्तकौमुदीकार 'मतिराम का गोत्र'—'बिहारीलाल', के कश्यपगोत्र से भिन्न, 'वत्स' था।

'संमेलन पत्रिका' (भाग ४७, सं०-२) में डा० भगीरथ मिश्र ने 'मतिराम नामधारी दो कवि' शीर्षक निबंध लिखा है जिसमें उनका मत है कि 'फूलमंजरी', 'रसराज', 'ललितललाम' और 'सतसई'—इन चार ग्रंथों के निर्माता प्रथम 'मतिराम' है। परंतु मिश्रजी ने उन्हें तिकमापुर का निवासी, कश्यपगोत्रीय और 'चिंतामणि' एवं 'भूषण' का सहोदर—अपने तर्कयुक्त प्रमाणों के आधार पर—सिद्ध किया है। उन्हें कश्यपगोत्रीय कवि 'बिहारीलाल' का प्रपितामह माना है न कि परनाना (प्रमातामह)। उनके मत से 'वत्सगोत्रीय' बनपुरनिवासी 'मतिराम' दूसरे थे। इनका परिचय मुख्यतः केवल उतना ही मिलता है जितना 'वृत्तकौमुदी' से प्राप्त है। तदनुसार वे 'वत्सगोत्रीय, बनपुरवासी एवं बलभद्रपुत्र विश्वनाथ के तनय थे। 'अलंकारपंचाशिका', 'साहित्यसार', 'लक्षणशृंगार' और 'छंदसारसंग्रह' या 'वृत्तकौमुदी'—इन चार कृतियो के निर्माता ये ही उपर्युक्त द्वितीय 'मतिराम' थे।

अपने मत की पुष्टि मे डा० भगीरथ मिश्र जहाँ एक ओर कहते हैं कि श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा स्वरूपसिंह के आश्रय मे जाकर ६८ वर्ष की अवस्था मे ग्रंथ लिखना कम संभव लगता है वहीं उनका कथन है कि वशपरिचय के अनुसार दोनों 'मतिराम' भिन्न और पृथग्गोत्रीय हैं, दोनों

का समय और वासस्थानसंबद्ध कार्यक्षेत्र भिन्न है। रसराजादि के निर्माता प्रथम 'मतिराम' की भाषा समर्थतर और वैदग्ध्यपूर्ण है; अलंकारविधान और भावव्यंजना मे अद्‌भुत क्षमतासंपन्न है; छंदों मे पूर्णप्रवाह एवं मोहक गति है। परंतु वृत्तिकौमुदीकार की रचना मे उन काव्यगुणों की कमी और शैथिल्य है। रसराजकार ने कही स्ववंशपरिचय और रचनाकाल नही दिया है जब कि वृत्तकौमुदी की शैली मे उनका पूर्णोल्लेख है। और वैचारिक प्रौढ़ता एवं भाषासंबंधी परिपक्वता के अभाव के कारण 'अलंकारपचाशिका' और 'वृत्तकौमुदी'—दोनो ग्रंथ प्रथम नही—द्वितीय 'मतिराम' के स्पष्टतः जान पडते है। अतः डा० भगीरथ मिश्र के मत से भूषणसहोदर, कश्यपगोत्रीय, टिकमापुरवासी 'मतिराम' से द्वितीय 'मतिराम' भिन्न हैं—वे बनपुरवासी वत्सगोत्रीय है और 'अलंकारपंचाशिका', 'वृत्तकौमुदी' आदि इन्हीं द्वितीय 'मतिराम' की कृतियाँ हैं।

डा० भगीरथ मिश्र के निष्कर्षों पर विचार करते हुए श्रीभगीरथप्रसाद दीक्षित ने संमेलन पत्रिका (अंक ४७—भाग ४) में अपने 'भूषण और मतिराम' शीर्षक लेख द्वारा पुनर्विचार किया है? डा० मिश्र द्वारा दो 'मतिरामों' के स्वीकार करने पर तो उन्होंने हर्ष प्रकट किया है; पर यत. डा० भगीरथ प्रथम 'मतिराम' को भूषण का समकालीन, कश्यपगोत्रीय और सहोदर-बंधु तथा टिकमापुरवासी मानते हैं अतः इस मत के विरोधी दीक्षितजी इसे डाक्टर साहब की प्रमादवश की गई भूल सिद्ध करते हैं। उन्हीं की भूल नहीं अपितु 'शिवसिंहसरोज' से लेकर शुक्ल जी के इतिहास तक बराबर की गई भूल सिद्ध करते हैं। कृष्णबिहारी मिश्र के मत को—जिसके अनुसार 'फूलमंजरी' की रचना लगभग १८ बर्ष की वय मे 'मतिराम' द्वारा मानी गई है—गलत कहते हुए घोषित करते हैं कि 'उस समय मतिराम' की अवस्था कम से कम २५ वर्ष को थी।' परतु स्वयं दीक्षितजी के उस मतानुसार—जिसमे 'रहीम' के 'बरवैनायिकाभेद' का संपादन किया था 'रहीम' के आश्रित 'मतिराम' ने—कवि की आयु उस समय ४० वर्ष के लगभग ठहरती है।

'शिवसिंह सेंगर' के आधार पर वे अनुमान करते है कि 'भूषण-मतिराम-विषयक भ्रांतियाँ सामाजिक कारणों के अतिरिक्त राजनीतिक और साहित्यिक कारणों से फैलाई गई थीं और उनके निवारणार्थ श्रीशिवसिंह जी ने 'सरोज' में जो विवरण दिया है—'वह अधिकांश सही है।' अतः 'मतिराम' और 'भूषण' का विश्वस्तसूत्र से प्राप्त जन्मवर्ष १७३८ संवत् शुद्ध है। इसके

समर्थन मे दीक्षितजी ने वही अपना पूर्वमत दोहराया है जिसके अनुसार नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित 'शिवराजभूषण' के श्लिष्टार्थपरक दोहे में 'भूषण' का जन्मकाल और 'शिवराजभूषण' का रचनाकाल—दोनो व्यक्त किए गए हैं। 'उन्होंने 'रहीम' के आश्रित 'मतिराम' द्वारा 'फूलमंजरी' की रचना का काल संवत् १६७८ मे न मानकर सवत् १६७० मे माना है। क्योकि उनके अनुमान से संभवतः 'रहीम' के माध्यम से ही जहाँगीरी दरबार मे 'मतिराम' का प्रवेश हुआ था और चूँकि संवत् १७७८ मे 'रहीम' और 'जहाँगीर' के बीच मनमुटाव था अत. फूलमंजरी १७७८ वि० में नहीं १६७० वि० मे ही बन गई थी। इस कारण वे मानते हैं कि मतिराम का जन्म संवत् १६६० मे न होकर संवत् १६४५ में हुआ था। इसके अनंतर दीक्षितजी अपने पूर्वलिखित लेखों और ग्रंथों की बातें दुहराते हुए स्वमान्यता घोषित करते हैं कि 'सरोज' के अनुसार संवत् १७१८ ही 'भूषण' और द्वितीय 'मतिराम' का प्रामाणिक समय है। अतः प्रथम 'मतिराम' कथमपि 'भूषण' के समकालीन नही हैं, 'भूषण' बहुत बाद के कवि है और द्वितीय 'मतिराम' उनके समकालीन ही नही थे अपितु दोनो बहुत दिनों तक तिकमापुर मे साथ साथ रहते भी थे। परंतु 'भूषण' कश्यपगोत्रीय रत्नाकरसुत थे और 'मतिराम' 'वत्सगोत्रीय'। अतः दोनो सहोदर नहीं अपितु केवल मित्र या बंधु थे। हो सकता है कि फुफेरे या ममेरे भाई रहे हो। 'बिहारीलाल' की 'रसचंद्रिका' के आधार पर 'भूषण', 'मतिराम' और चिंतामणि—तीनों ही थे तो संभवतः मूलरूप से बनपुरवासी, पर लाकर बसाए गए थे ससत्कार हम्मीरनृप द्वारा तिकमापुर मे। श्री दीक्षितजी के अनुसार 'बिहारीलाल' भी इन तीनो को कभी सहोदर नहीं मानते थे। कवि 'मतिराम' ने स्वयं 'बछई' तिवारी होने के कारण तथा अपभ्रंशावस्था के तद्भव 'बछई'-रूप के मूल तत्सम शब्द 'वत्स' को पकडा और 'बछई' अपभ्रश के तत्सम रूप 'वत्स' को लेकर जाने या अनजाने अपने को वत्सगोत्री बताया है। (यहाँ यह स्पष्ट नहीं होता कि यदि भूल से द्वितीय 'मतिराम' ने अपने को वत्सगोत्रीय कह दिया तो क्या उनका भी वास्तव गोत्र 'कश्यप' ही था?) इस प्रकार दीक्षितजी ने अपने पुराने मत और तर्कों के दुर्बल आधार पर डा० भगीरथ के उत्तरांश को प्रमादवश लिखित कह दिया है।

पर 'संमेलन पत्रिका' (भाग ४१ – सख्या १) में श्री राजमल बोरा ने नए ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि 'भूषण' संवत्

१७३८ में उत्पन्न नहीं हुए थे वरन् उनका जन्म काफी पहले ही हुआ था। वे शिवाजी के यहाँ और उनके समय में थे तथा प्रथम 'मतिराम' के भी समकालीन थे। 'भारतीय इतिहास संशोधक मंडल' पूना से इन्हें नूतन और प्रामाणिकतर साक्ष्य मिले हैं।

श्री 'बोरा' ने 'काव्येतिहाससंग्रह' में प्रकाशित 'शिवराजभूषण' के आधार पर उसका रचनाकाल संवत् १७३० माना है। 'सप्तप्रकरणात्मक चरित्र' (चिटणीस बखर—मराठी) मे संतकवि 'तुकाराम' द्वारा शिवाजी को भेजे गए पत्र को उद्धृत करके उसके आधार पर 'भूषण पंडित विद्याध्ययन' अंश से तथा प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता द्वारा तदाश्रित निष्कर्षों के प्रकाश में—श्री बोरा ने—यह असंदिग्ध तथ्य सूचित करने का प्रयत्न किया है कि सन् १६४६ ई० (अर्थात् १७०६–७ संवत्) से पूर्व ही शिवाजी के दरबार मे 'भूषण' कवि थे। यदि यह अंश प्रक्षिप्त भी हो तो भी 'चिटणीस' की मृत्यु (१८२३ ई०) से पूर्व का यह क्षेपक भी तथ्य और परंपराविज्ञ द्वारा ही प्रक्षिप्त होने से प्रमाणकोटि सा मान्य ही समझा जायगा। अपने ग्रंथ मे भी 'चिटणीस' ने 'भूषण' के 'शिवाजी' के दरबार मे आने का उल्लेख किया है। अतः श्री बोरा पूर्ण विश्वास के साथ मानते हैं कि 'भूषण'—'शिवाजी' के समकालीन थे और प्रथम 'मतिराम' के भी। अतः दीक्षितजी का मत कि प्रथम 'मतिराम' के समय शिवाजी के काल में 'भूषण' जनमे ही नहीं थे—पूर्णत' सारहीन है। और तब कोई कारण नहीं रह जाता जिसके आधार पर पुराने लेखो और प्रसिद्धि-अनुसारी पंडितों के मत का तिरस्कार किया जाय एवं 'भूषण' और 'मतिराम' को सहोदर बंधु न माना जाय।

अलीगढ़ से 'भारत प्रकाशन मंदिर' ने कैप्टन शूरवीर सिंह पँवार द्वारा संपादित—'भूषण' के अलंकारप्रकाश—का प्रकाशन किया है। इस ग्रंथ के ४३३ वें दोहे में ग्रंथ का रचनाकाल भी स्पष्ट शब्दो मे—

> **पाँच सुन्न सत्रह बरिस कातिक सुदि छटि जानु।**
> **अलंकार परकासु को कवि कीनो निरमानु॥**

संवत् १७५५ बता दिया गया है। 'भूषण' ने अपने ४३२ वें दोहे में—

> **रामकृष्ण कश्यप कुलहि, रामेश्वर सुत तासु।**
> **ता सुत मुरलीधर कियो, अलंकार परकासु॥**

—अपने को कश्यपगोत्री, रामेश्वर का पुत्र कहा है। उनका वास्तविक नाम—इस मत से—मुरलीधर है। प्रत्येक प्रकाशांत की पुष्पिका में स्वयं को—

'रामेश्वर आत्मज कवि भूषण मुरलीधर विरचिते'—कहा है। इसे तथा ग्रंथ के पचासों पद्यो मे 'कवि भूषण कहत' आदि देखकर कवि का काव्य—छापनाम 'कविभूषण' या 'भूषण' जान पडता है।

श्री शूरवीर सिंह जी ने स्वसपादित इस ग्रंथ की भूमिका में 'कविभूषण' का नाम 'मुरलीधर' और 'मतिराम' के पूर्वजों का नाम 'गिरिधर', 'द्युतिधर' और 'श्रुतिधर' देखकर दोनो कविवंशो मे निकट संबंध तो माना है पर सहोदरत्व नही। वे भी मानते हैं—वृत्तकौमुदी के वत्सगोत्र को देखकर—कि 'मतिराम' वत्सगोत्री थे। अतः उनके मत से 'मतिराम' का घराना चाहे 'भूषण' का गुरुघराना रहा हो चाहे वे ममेरे-फुफेरे भाई रहे हो—पर वे सगे भाई और सगोत्र तो कदापि नहीं थे। 'भूषण' के गुरु भी धरणीधर (धरांत नामवाले) थे ही। इतना ही नही 'ललितललाम' को वे 'अलकारप्रकाश' से प्रभावित और यो बहुत कुछ उसके अनुकरण पर चलनेवाला सिद्ध करते हैं। 'वृत्तकौमुदी' के छंद ६ तथा 'शिवराजभूषण' के पद्य २४६ के आधार पर दोनो महाकवियों के आश्रयदाताओं मे भी समानता देखते हैं। 'शिवराजभूषण' मे कवि के पिता के 'रत्नाकर' नाम को कैप्टन साहब उपनाम और रामेश्वर' को नामकरण संस्कार का नाम मानते हैं। 'भूषण' विषय क चर्चाविस्तार यहाँ अभीष्ट नहीं है। इस 'विषय' में इतना ही कथ्य है कि डा० विश्वनाथप्रसाद और डा० किशोरीलाल के—उक्त भूमिका में निर्दिष्ट सदर्भाश्रित विवेचनो में कुछ त्रुटि और प्रमाणदृढ़ता का अभाव भले ही हो—पर यह अनुमान सर्वथा प्रत्याख्येय नहीं है कि 'अलंकारप्रकाश' के कर्ता कवि 'भूषण मुरलीधर', प्रसिद्ध 'महाकवि भूषण' से भिन्न थे। क्योकि 'महाकवि भूषण' के पद्यों मे प्रायः छाप नाम 'भूषण' (या भूषण भनत) मिलता है, संभवतः 'कवि भूषण' नही और 'मुरलीधर' तो कहीं भी नहीं; जब कि अलकारप्रकाशकार ने प्रायः सर्वत्र 'कवि भूषण कहत' आदि ही (भनत' भी नहीं) दिया है। 'मुरलीधर' कविनाम के रूप मे और 'मुद्रालंकार' की सी मुद्रा मे अनेकशः प्रयुक्त है। अंतःसाक्ष्य के आधार पर इस प्रसंग की विस्तृत चर्चा फिर कभी होगी।

यहाँ इतना ही कहना है कि श्री शूरवीर सिंह सभवतः एक ही 'मतिराम' और एक ही 'भूषण' को मानते हैं। 'मतिराम' वत्सगोत्रीय थे, 'भूषण' कश्यपगोत्रीय। दोनों सहोदर भाई नहीं थे। पर घनिष्ठ रूप से संबद्ध और हो सकता है—ममेरे-फुफेरे भाई रहे हों। बंधु दोनो अवश्य थे। 'भूषण' अधिक वयवाले थे।

जहाँ तक तर्कों और उपलब्ध सामग्री की व्याख्या बैठाने का प्रश्न है 'महेंद्रकुमार, जी की मान्यता अपने आप में संगत जान पड़ती है। पर दो एक प्रश्न ऐसे हैं जो शोधबुद्धिवाले अनुशीलकों की दृष्टि में कुछ असमंजस और संदेह उत्पन्न करते है। (१) सबसे प्रमुख यह बात सामने आती है कि १६७६ वि० मे अपने प्रथम ग्रथ का निर्माण करनेवाले 'मतिराम' १७५८ वि० तक निरतर साहित्यकृतियों की रचना कैसे करते रहे ? (यह अवधि ८२ वर्षों की होती है।) इसके अतिरिक्त 'फूलमजरी' की रचना से पहले कम से कम १६ वर्ष और जोड़ने पर ९८ वर्ष, कवि की आयु सिद्ध होती है। यद्यपि यह दीर्घायु बहुत असंभव नहीं है तथापि निरंतर ८२ वर्षों तक साहित्यसर्जन कुछ असामान्य सा जान पड़ता है। तब 'फूलमंजरी' भी उसी की रचना हो—इसमे कुछ संदेह हो सकता है।

(२) पं० कृष्णबिहारी मिश्र जी ने 'वृत्तकौमुदी' मे क्लिष्टता और पृष्टपेषण से संबद्ध जो चर्चा की है यदि वह सही है तो 'ललितललाम' जैसे लक्षणग्रंथ लिखनेवाले एव स्वच्छ, परिमार्जित, प्रसादगुणयुक्त और वैदर्भी रीति के लेखक —'मतिराम' को—अपनी प्रौढ़ावस्था में उस 'वृत्तकौमुदी' का—जिसकी भाषा, शैली और भावाभिव्यक्ति शिथिल और क्लिष्ट है—लेखक मानना बहुत सुसगत तब नहीं लगता जब कवि अपनी प्रतिभा और शिल्प के उत्कृष्टतम धरातल पर पहुँच चुका था।

(३) 'शिवसिंहसरोज' में निर्दिष्ट 'चिंतामणि', 'मतिराम' और 'भूषण' का सहोदरत्व पूर्णतः विश्वासजनक न हो तो भी 'सूर्यमल्ल' के वंशभास्कर का साक्ष्य भी भ्रममूलक ही है—यह मानने का कारण समझ में नही आता। इसी प्रकार उनसे भी बहुत पहले—हरदोई जिलांतर्गत'बिलग्राम' के रहनेवाले मीर गुलाम अली ने अपने तजकिरा-ए-सर्व आजाद (जो कुतुबखाना आसफिया हैदराबाद, दक्षिण से प्रकाशित है) में 'चिंतामणि' के संबंध मे लिखते हुए बताया है कि उनके दो भाई और हैं जिनके नाम 'मतिराम' और 'भूषण' हैं।

यह 'बिलग्राम' 'तिकवाँपुर' से बहुत दूर नहीं है और 'गुलाम अली' के मामा 'बिलग्राम' के रहनेवाले 'सैयद रहमतुल्ला साहब' भी हिंदीकाव्यज्ञाता थे। वे भूपाल सरकार की ओर से 'जाजमऊ' और 'बैसवाड़े' के दीवान थे। उन्होंने 'चिंतामणि' को पुरस्कृत किया था। ये सब बातें 'गुलाम अली' के उक्त ग्रंथ में उल्लिखित हैं। इतने समीपवर्ती ग्राम के निवासी और समीपकालीन लेखक

द्वारा लिखित ग्रंथ से ये सब सूचनाएँ मिलती हैं जिसका काल 'वृत्तकौमुदी (सं० १७५८) से केवल ५२ वर्ष बाद (सं० १८१०) है और जिसके जीवन का आरंभिक समय विक्रम की १६वी शताब्दी था। 'चिंतामणि' के भाइयों—'भूषण' और 'मतिराम'—के संबंध की बातें यदि वह अधिक यथार्थ और प्रामाणिक रूप में जानता रहा हो तो असभव नहीं।

(४) इसके अतिरिक्त मथुरा के चौबे के यहाँ से प्राप्त वंशावली और 'रसचंद्रिका' के उद्धरण का साक्ष्य भी तब उपेक्षणीय नही, अपेक्षणीय हो उठता है जब सैकडों वर्षों से परंपरागत किंवदंती पर आधारित जनविश्वास उसका समर्थन करता हो। फलतः इन सब प्रमाणों को 'वृत्तकौमुदी' के उक्त उल्लेख के आधार पर भ्रांतिपूर्ण और गलत मानने मे संकोच ही नहीं होता, वहाँ आस्था का भी अभाव होने लगता है। इस प्रसंग मे यह अनुमान भी असंभव नही हो सकता है कि 'महेंद्रकुमार' जी को 'कैप्टन शूरवीर सिंह' के यहाँ से जो प्रतिलिपि प्राप्त हुई है उसका भी संबंध उक्त शर्माजी की प्रति से अथवा किसी अन्य संबद्ध स्रोत से ही रहा हो। और यह संभावना भी हो सकती है कि मूल के प्रतिलेखक और उसके प्रतिलिपिकार ने किसी भ्रमवश अथवा किसी अन्य कारण से उक्त अंश प्रक्षिप्त कर दिया हो।

इस प्रसंग में एक और संभावना भी दिखाई पडती है जो यदि ठीक हो तो समस्त प्रश्नों का समाधान हो जाता है तथा 'मिश्रबंधुओं' और 'दीक्षितजी की उद्भावना एवं कृष्णबिहारी मिश्र के मत के साथ उसकी आंशिक संगति भी बैठती दिखाई देती है। डा० महेंद्र जी कहते है कि 'छंदसारसंग्रह' और 'वृत्तकौमुदी'—दोनों भिन्न ग्रंथ नहीं एक ही पुस्तक है। मेरा अनुमान है कि 'स्वरूपशाह' बुँदेला के यहाँ कोई दरबारी सामान्य कवि था जो 'मतिराम' उपनाम से कविता करता था। 'छंदसारसंग्रह' की कोई प्रति उसके हाथ लग गई। चूँकि प्रसिद्ध 'मतिराम' के ग्रंथो मे उक्त ग्रंथ की ख्याति नहीं थी अतः उस ग्रंथ मे थोडा बहुत बाहरी हेरफेर और अपने नाम, गोत्र एवं वश के अनुकूल अंश जोडकर उस ग्रंथ को स्वकृत कह दिया तथा अपने आश्रयदाता की कृपा और अनुकंपा प्राप्त करने मे समर्थ हुआ। 'पिंगल' का उक्त ग्रंथ 'मतिराम' ने, संभवतः अपनी अप्रौढ़ावस्था (संभवतः फूलमंजरी के बाद ही) में बनाया था। इसीसे 'ललितललाम'-कार आचार्य 'मतिराम' की कविप्रौढ़ता का वहाँ अभाव है, कवि के अभिव्यंजनाशिल्प और भाषा की सरस स्वच्छता वहाँ नहीं मिलती।

इस प्रकार की कल्पना का यद्यपि भाषाशैली और परिचयात्मक उपक्रमणिका के भिन्नप्रकारीय वर्णनोपक्रम के अतिरिक्त कोई अन्य ठोस आधार नहीं है तथापि इसे मान लेने पर केवल 'वृत्तकौमुदी' के प्रसंग में—दो 'मतिराम' वाला 'दीक्षितजी' का सिद्धांत भी ग्राह्य और मान्य हो जाता है। दोनों के गोत्रभेद की बात भी सिद्ध हो जाती है। किसी भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में आत्मपरिचय न देनेवाले विख्यात 'मतिराम' द्वारा 'वृत्तकौमुदी' में लंबा वंशसंस्तव मिलना भी सकारण लगता है। एक ही ग्रंथ के दो नाम क्यों हैं—इस अत्यंत प्रबलतर शका का और प्रौढ़ कवि की प्रौढ़तम अवस्था में निर्मित कृति में अप्रौढ़ावलब्धि का भी समाधान हो जाता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षरूप में केवल इतना ही कहना है कि पूर्व पंक्तियों में जो अनुमान जिन कारणो से करने की गुंजायश है वे सर्वथा उपेक्षणीय नहीं हैं। साथ ही इस प्रसंग मे याज्ञिकबंधुओं, मिश्रबंधुओं, कृष्णबिहारी मिश्र, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, भगीरथप्रसाद दीक्षित तथा दो नूतन उपाधिप्रबधलेखकों ने जो विचार व्यक्त किए है उनके संदर्भ मे असंदिग्ध मत देने का अवसर अभी नहीं दिखाई देता। यदि कालांतर में और प्रमाण मिल सके तो कदाचित् निर्णयात्मक ढंग से कुछ कहा जा सकेगा। यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि अधिक मान्य और परपरागत मत अभी स्वीकार कर लेने मे आपत्ति न होनी चाहिए। 'चिंतामणि', 'मतिराम' और 'भूषण'—इन तीन कवियों को भी सहोदर मानना परपरागत मान्यता और किंवदंती के अनुकूल बैठता है। 'वृत्तकौमुदी' अपने वर्तमान नाम और रूप मे—संभवतः—'रसराजकार' की रचना नहीं है। उसका मूल 'पिंगलछंदसार' या 'छंदसारसंग्रह' यदि प्रसिद्ध 'मतिराम' की आरंभिक रचनाओं में एक रही हो तो यह असंभव नहीं।

उपर्युक्त पंक्तियों द्वारा अत्यंत संक्षेप में जो कुछ कहा गया है उसका निष्कर्ष निम्नलिखित है—

(१) महाकवि 'मतिराम' के गोत्र के विषय में दो मत हैं—(क) वे 'रतिनाथ' या 'रत्नाकर' के पुत्र और 'कश्यपगोत्रीय' थे (अधिकांश विद्वान् इस मत को ही मानते है)। (ख) 'विश्वनाथ' के पुत्र और 'वत्सगोत्रीय' थे—इस मत के प्रवर्तक पं० भगीरथप्रसाद हैं। 'डा० महेंद्रकुमार' भी 'वृत्तकौमुदी'

के आधार पर तथा 'सजेती' गाँव और 'तिकवाँपुर' की अपनी यात्रा से सकलित स्थानीय सूचनाओ के कारण दृढ़ता के साथ उक्त मत को मानते हैं।

(२) इसी के साथ संबद्ध और विवेचित दूसरी बात है 'मतिराम' के निवासस्थान के संबध में। यहाँ भी दो वर्ग के विद्वानों मे परस्पर वही मतभेद है। यह तो सभी मानते है कि वे त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर या तिकमापुर) मे रहते थे। पर प्रथम वर्ग के विद्वान्—जिनकी संख्या अधिक है—उनका निवासस्थान और मूल स्थान दोनो को वहाँ ही मानते हैं जब कि दूसरे वर्ग के शोधक पंडित उन्हे 'बनपुर' के मूलवासी कहते हैं। वहीं से आकर 'हम्मीर राजा' के द्वारा 'तिकवाँपुर' मे वे ससंमान बसाए गए थे।

(३) 'मतिराम', 'भूषण' और 'चिंतामणि' के सहोदरत्व के संबंध में और चौथे भाई 'जटाशंकर' (नीलकंठ) के विषय में भी यद्यपि 'सरोजकार' से लेकर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी' तक अधिकांश सुधीजन प्रायः चारों को सहोदर लिखते आए हैं तथापि ऐतिहासिक विवेचन और प्रमाणों के आधार पर, विशेषतः 'गुलाम अली' द्वारा सर्वप्रथम निर्दिष्ट और 'वंशभास्कर' से समर्थित होने के कारण 'चिंतामणि', 'मतिराम' और 'भूषण'—इन तीनों को ही सहोदर मानने का पक्ष अधिक समर्थित है। पं० कृष्णबिहारी मिश्र जी ने भी अपने निर्णयात्मक निष्कर्ष में इन्हीं तीनों को सहोदर भाई, कश्यपगोत्रीय और तिकवाँपुर का निवासी स्वीकार किया है। 'भूषण' के संबंध मे पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा उद्धृत और वर्णित 'काशिराज पुस्तकागारवाले' 'शिवराजभूषण' की प्रति मे उपलब्ध जो दोहा है उससे मतिरामभ्राता 'भूषण' के गोत्र, स्थान और पितृनाम में कोई सदेह नहीं रह जाता—

> दुज कनौज कुल कस्यपी 'रतनाकर' सुत धीर।
> बसत त्रिबिक्रमपुर सदा तरनितनूजा तीर॥

इससे यद्यपि सहोदरत्व पर प्रकाश नहीं पड़ता तथापि पिता, गोत्र और स्थान का नाम—अन्य प्रमाणों से स्थापित—सहोदरत्व के अनुमान में सहायक है। 'वृत्तकौमुदी' के आधार पर उसके रचयिता द्वितीय 'मतिराम' को दीक्षितजी किसी का सहोदर स्वीकार नहीं करते। 'डा० महेंद्रकुमार' भी इस मत के पूर्ण समर्थक हैं। वे यह भी मानते हैं कि यद्यपि 'तिकवाँपुर में 'भूषण' और 'चिंतामणि' के साथ ही 'मतिराम' भी रहते थे, तीनों महाकवियों का मकान एक ही था, द्वार एक ही था, परंतु घर के भीतर वे

अलग अलग खंडों में रहते थे। परंतु वे तीनों सहोदर नहीं थे। 'मतिराम' बनपुर से आकर बसे थे। वे अकेले थे। 'भूषण' और 'चिंतामणि' उनके भाई नहीं थे। पर हो सकता है कि चचेरे या ममेरे भाई रहे हों।

डा० महेंद्र के उक्त आग्रहपूर्ण मत के कारण यह प्रश्न भी अब तक पूर्णतः निर्णीत नही कहा जा सकता। परंतु अधिकांश विद्वान् 'चिंतामणि', 'मतिराम' और 'भूषण' को सहोदर ही मानने के पक्ष में हैं।

पितृनाम

'मतिराम' के पितृनाम का प्रश्न भी अब तक अनिर्णीत है। पूर्व पृष्ठों मे इस विषय के विभिन्न प्रमाणों और तदाश्रित मतों की चर्चा की जा चुकी है। संक्षेप मे उसका निष्कर्ष कहा जा सकता है—(क) 'सरोजकार' से लेकर अब तक के अधिकांश विद्वज्जनों के अनुसार वह नाम 'रत्नाकर' था। (ख) पं० विश्वनाथप्रसाद जी के मत से उनका नाम 'रतिनाथ' अथवा 'रत्नाकर'—दोनों या कोई भी एक हो सकता है। (ग) पं० भगीरथ प्रसाद और डा० महेंद्र कुमार के विचार से 'मतिराम' के पिता 'वत्सगोत्रीय' 'विश्वनाथ' नामक थे।

प्रस्तुत महाकवि से संबद्ध इन प्रश्नों और तद्विषयक मतभेदों का क्रम अब भी बना हुआ है। संक्षेप मे कह सकते हैं कि अधिकांश पंडित 'मतिराम' को तिकवाँपुरनिवासी, 'रत्नाकरपुत्र, कश्यपगोत्रीय और 'चिंतामणि' एवं 'भूषण' का सहोदर मानने के पक्ष में हैं। पर 'वृत्तकौमुदी' को दीक्षितजी 'रसराज'-कार से भिन्न द्वितीय 'मतिराम' की और डा० महेंद्र प्रसिद्ध (ललितललामकार) 'मतिराम' की रचना मानते हैं। उनके विचार से 'मतिराम' वत्सगोत्रीय बनपुर में जन्म लेनेवाले, 'विश्वनाथ'-पुत्र हैं, 'चिंतामणि' या 'भूषण'; कोई भी उनका सहोदर नही था। प्रथम पक्ष के समर्थक कुछ विद्वान् 'जटाशंकर' या 'नीलकंठ' को भी उनका भाई मानते हैं।

'चिंतामणि', 'मतिराम' और 'भूषण'—इन तीनों को सहोदर मानने-वालों में भी ज्येष्ठ-मध्यम-कनिष्ठ-क्रम के संबध मे ऐकमत्य नहीं है। फिर भी सामान्यतः 'चिंतामणि' ज्येष्ठ, 'मतिराम' मध्यम और 'भूषण' कनिष्ठ माने जाते हैं। परंतु 'मतिराम' को ज्येष्ठ या कनिष्ठ अथवा 'चिंतामणि' या 'भूषण' को 'मध्यम' माननेवालो का भी अभाव नहीं है। अनुमिति-

सिद्ध उक्त मान्यताओं के विवाद में पड़ना यहाँ अभीष्ट नहीं है। उत्सुक जिज्ञासु तत्तद्ग्रथों में विस्तृत विवेचना देख सकते हैं।

कवि के आश्रयदाता

'मतिराम' के संबंध में दो प्रश्न और हैं जिन पर पंडितों ने विचार किया है—(१) उनकी कृतियाँ (और उपलब्ध कृतियाँ) तथा (२) उनकी रचना का पूर्वापरक्रम। परंतु इन प्रश्नों पर कुछ कहने और विचार करने से पूर्व यह देख लेना अधिक महत्वपूर्ण है कि 'मतिराम' के आश्रयदाता, पुरस्कर्ता या सरक्षक कौन कौन थे? क्योंकि कृतियों और उनके पूर्वापरक्रम के निर्धारण में आश्रयदाताओं और सरक्षकों का साक्ष्य सर्वाधिक सहायक है।

यदि प० भगीरथप्रसाद दीक्षित का मत मान्य हो तो 'मतिराम' को 'रहीम' के 'बरवैनायिकाभेद' का संपादक मानना चाहिए। तब 'अब्दुर्रहीम खानखाना' उनके सर्वप्रथम संरक्षक या आश्रयदाता ठहरेंगे। पर अधिकांश विद्वान् उक्त मत से असहमत हैं। वे यह मानने को नहीं तैयार हैं कि 'रहीम' ने नायिकाभेद के उदाहरणभूत केवल 'बरवै' लक्ष्यों का निर्माण किया था और तदनंतर 'मतिराम' ने अपने लक्षणभाग को यथास्थान जोड़कर 'रहीम' की रचना का संपादन किया, उसे पूर्ण बनाया तथा—आगे चलकर—उन्हीं दोहों को अपने प्रसिद्ध ग्रंथ—'रसराज'—में यथास्थान पिरो दिया। स्वरचित होने से ही 'बरवैनायिकाभेद' में पूर्वग्रथित लक्षणदोहों को 'रसराज' में गूँथकर साहित्यिकों के समक्ष रखने में कवि को कोई संकोच नहीं हुआ।

परंतु भाषाविषयक अप्रौढ़ता का जो रूप 'फूलमंजरी' में दिखाई देता है उसे देखकर यह नहीं स्वीकार किया जा सकता कि 'फूलमंजरी' का कवि—'फूलमंजरी' की शिथिल और अप्रौढ़ रचना के पहले ऐसे प्रौढ और गठे हुए लक्षणदोहों के निर्माण में कथमपि समर्थ था। 'दीक्षितजी' के मत से असहमति का दूसरा कारण यह भी है कि 'रहीम' के जीवनकाल में (संवत् १६८५ वि० के पूर्व) यदि 'मतिराम' ने उक्त ग्रंथ का निर्माण किया और कम से कम 'अलंकारपंचाशिका' (जिसका रचनाकाल १७४९ वि० के आसपास है) का भी प्रणयन किया तो उनका ग्रंथरचनाकाल ६० वर्षों का बड़ा लंबा हो जाता है जो प्रायः असंभव है। इसी असंगति से बचने के लिये 'दीक्षितजी' को दो 'मतिरामों' की कल्पना करनी पड़ी। उन्होंने 'भूषणविमर्श' में घोषणा करते हुए बताया कि कुछ अन्य कृतियों

के साथ साथ 'अलंकारपंचाशिका' तथा 'वृत्तकौमुदी' भी 'रसराजकार' की नहीं अपितु द्वितीय 'मतिराम' की कृतियाँ हैं। परंतु यह मत अनुसधायकों और अनुशीलकों को मान्य नहीं हो पाता। डा० महेंद्र ने 'ललितललाम' और 'अलंकारपचाशिका' की तुलनात्मक पर्यालोचना करते हुए स्पष्टतः सिद्ध किया है कि दोनों ग्रथ एक ही कवि के जान पडते हैं। इसके अतिरिक्त एक और बात है। 'रहीम' के उक्तग्रंथ मे निम्नलिखित दो पद्य मिलते हैं—

सुंदर चतुर धनियवा जातिउ ऊँच।
केलिकला परबिनवा सील समूच॥
पति, उपपति, बेसिकवा त्रिबिध बखान।
बिधि सो ब्याहो गुरुजन पति सो जान॥

इन छंदों से लगता है कि 'बरवैनायिकाभेद' में कदाचित् रहीम' कृत लक्षणांश भी रहा हो—जो किसी कारण नष्ट या लुप्त हो गया। दूसरे बरवै से यह इंगित भी होता है कि अंतिम पंक्ति मे पति का लक्षण लिखने के बाद आगे के बरवै मे 'उपपति' आदि के लक्षण भी संभवतः लिखे गए रहे हों। इससे यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि 'रहीम' के बरवैनायिकाभेद मे लक्षण अश भी बरवै छंद मे ही विरचित रहे होंगे और उनकी भाषा भी अवधी ही थी। परंतु कदाचित् लक्षण और लक्ष्य अंश अलग अलग पत्रों पर लिखे गए थे। वे बाद के हस्तलेख मे यथास्थान संयोजित होकर संपादित करने के विचार से रखे गए थे। पर उनका यथास्थान सयोजन न हो सका। पृथक् लिखा हुआ समग्र लक्षणभागवाला हस्तलेख संभवतः नष्ट हो गया। किसी साहित्यिक ने प्रसिद्ध 'रसराज' के दोहों को लेकर (कालांतर) मे उक्त 'बरवैनायिकाभेद' का सपादन कर दिया। यह कल्पना केवल अनुमानपुष्ट ही है पर असंभव नही। परंतु निश्चित रूप से इतना कहा जा सकता है कि 'रहीम' के आश्रय मे 'मतिराम' रहे हों—इसकी संभावना किसी प्रकार से भी दिखाई नहीं पड़ती। 'रहीम' की मृत्यु—सं० १६६५ के बाद है और १६६० विक्रम के आसपास 'मतिराम' का जन्मकाल माना जाता है।

पूर्वोक्त कथन को ध्यान मे रखते हुए 'मतिराम' का सर्वप्रथम संबंध 'जहाँगीर' के साथ ही प्रामाणिक रूप से स्वीकार किया जा सकता है। चूँकि 'फूलमंजरी' में स्पष्टतः 'जहाँगीर' और 'मतिराम' के नाम है अतः जब तक

अन्य दृढ़तर विरोधी प्रमाण नहीं उपलब्ध होते तब तक उसे 'मतिराम' की प्रामाणिक कृति मानने मे कोई आपत्ति नही है। 'मतिराम' जहाँगीर के आश्रित कवि थे अथवा अवसरविशेष के लिये उनके केवल कृपाभाजन—इस संबध मे कुछ कहना संभव नही है। 'जहाँगीरनामा' मे अन्य दरबारी कवियों के साथ 'मतिराम' का नामोल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है।

नवोदित होने के कारण बादशाह के दरबारी कवियों मे न रहने पर भी कम से कम १६वीं जलूस के 'नवरोज उत्सव' के समय 'मतिराम' को बादशाह का कृपाभाजन होने का सौभाग्य किसी न किसी रूप में अवश्य मिला था।

इसके बाद प्रामाणिक रूप मे 'मतिराम' के आश्रयदातापुरुष का सबंध 'ललितललाम' से ही सिद्ध होता है। इसकी रचना बूँदीनरेश 'राव भाऊ सिंह' के लिये हुई थी। इस अलकारग्रंथ के आरंभ में बूँदी और बूँदीनरेश का लंबा चौडा वर्णन २८ पद्यों मे देते हुए कहा गया है—

भावसिंह की रीझि कौं कविता भूषनधाम।
ग्रंथ सुकबि 'मतिराम' यह कीनौं ललितललाम॥

लक्ष्यभूत अनेक उदाहरणपद्यो मे भी उक्त आश्रयदाता की महिमा, वीरता और प्रशस्ति के वर्णन मिलते हैं। सूर्यमल्ल के 'वशभास्कर' मे बताया गया है कि 'मतिराम' को उस दरबार से चार हजार मुद्रा, ३२ हाथी और 'रिडी, चिडी' नामक दो ग्राम भी मिले थे। इस कृति के बाद 'अलकारपंचाशिका' के आधार पर निश्चित रूप से उनके तीसरे आश्रयदाता के रूप में कुमायूँनरेश का नाम लिया जा सकता है। इस ग्रंथ की समाप्ति १७४७ वि० मे ग्रंथ में ही निर्दिष्ट है—

संवत सत्रह सै जहाँ सैंतालिस नभ मास।
अलंकारपंचासिका पूरन भयो पचास॥

—अलंकारपंचाशिका ११६।

यह ग्रंथ कुमायूँ के राजा 'उद्योतचंद' के पुत्र 'ज्ञानचंद' के लिये लिखित है। प्रस्तुत ग्रंथावली की भूमिका मे 'अलंकारपचाशिका' का परिचय दिया

गया है। वहाँ लेखक ने बताया है कि कुमायूँ के अधिपति—पिता पुत्र दोनों—से 'मतिराम' का संबध था। उनसे सबद्ध कुछ दोहे और कबित्त भी वहाँ उद्धृत किए गए है। इनमें राजप्रशस्ति भी है। यह ग्रथ 'ज्ञानचंद' की राजप्रशस्ति में लिखा गया है या उन्हे पढ़ाने के लिये—यह स्पष्ट नही है। किंतु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह उन्ही के लिये लिखा गया था। |

सं० १७४७ वि० की रचना होने के कारण इसे दीक्षितजी किसी दूसरे—'रसराजकार' से अन्य –'मतिराम' की कृति मानते है। इस प्रसंग का विवेचन और खडनमडन—पूर्वपृष्ठो की पादटिप्पणी मे किया जा चुका है। यह सही है कि 'रसराजकार' की प्रामाणिक रचना के साधक प्रत्यक्ष साक्ष्य नही मिलते है और 'मतिराम' के अन्य प्रसिद्ध ग्रंथो से गृहीत छंद भी इसमे नही प्राप्त हैं। फिर भी वर्ण्यवस्तु, वस्तुवर्णन की शैली, भावाभिव्यक्ति और भाषा का स्वरूप—ये सभी इसे 'ललितललामकार' 'मतिराम' की ही रचना सिद्ध करते हैं। इस ग्रंथ मे प्रायः सबके सब पद्य प्रशस्ति के ही है। यदि उनके वर्ण्यविषय और वर्णनशैली आदि की तुलना—'ललितललाम' के तदनुरूप छंदों से--की जाय तो लक्षित होता है कि 'ललितललाम' मे 'भावसिंह' को पृथ्वी का 'पुरहूत' कहनेवाले 'मतिराम' ने 'ज्ञानचद' को मही का 'मघवा' कहा है। डा० महेंद्रकुमार ने इस संदर्भ मे अपने ग्रथ (पृ० ४८ से ६१ तक) मे प्रस्तुत ग्रथ को 'ललितललामकार' की रचना प्रमाणित की है। वर्ण्यवस्तु, भाव और भाषा आदि के आधार पर तुलनात्मक विवरण द्वारा उन्होंने अपना पक्ष सिद्ध किया है। उनके तर्क और प्रमाण पर्याप्त ठोस और ग्राह्य कहे जा सकते हैं। अतः अब तक उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर इस कृति को 'ललितललामकार' की ही रचना मानना समीचीन जान पडता है। फलतः कुमायूँनरेश 'राजा उद्योतचद' और राजा 'ज्ञानचद' उनके आश्रयदाता थे—यह भी असंदिग्ध है।

इन आश्रयदाताओं के अतिरिक्त अन्य अनेक सपन्न और आश्रयदान मे समर्थ पुरुषों के साथ 'मतिराम' के संपर्क की चर्चा की गई है। 'छंदसार-पिंगल' (छंदसारसंग्रह या वृत्तकौमुदी) के आधार पर 'स्वरूपसिंह बुँदेला' या 'स्वरूपशाह' को भी इनका आश्रयदाता कहा जाता है। परतु जैसा ऊपर कहा जा चुका है, असंदिग्ध रूप से इसे 'मतिराम' की कृति मानने में आपत्तियाँ हैं। इसी कारण 'स्वरूपसिंह' का आश्रयदातृत्व भी संदेहास्पद है।

'जहाँगीर' के अतिरिक्त 'शाहजहाँ' और 'औरंगजेब' के आश्रितत्व की अनुमिति और चर्चा करनेवाले विद्वान् भी है। परंतु 'जहाँगीर' के अतिरिक्त अन्य मुगल बादशाहों के साथ उनके संबंध का आधार प्रायः किंबदतियाँ ही हैं। राजा 'जयसिंह' और महाराज 'यशवतसिंह' तथा 'छत्रसाल' बुँदेला के साथ भी इनके संबंध की बात कही जाती है। ये 'छत्रसाल' बुँदेला बूँदीपति से भिन्न है। क्योंकि बूँदीपति दिल्ली के 'ढाल' या समर्थक थे और उपर्युक्त 'छत्रसाल बुँदेला' दिल्लीपति के द्रोही थे। इस सबंध का प्रमाण—एक लेख मे—(मतिराम और भूषण—माधुरी ६ जुलाई १६२४) सूचित किया गया है। इससे 'छत्रसाल' के यहाँ उनका जाना प्रमाणित होता है। इसका आधार उसी लेख मे उद्धृत एक छंद है। इसी प्रकार सतारागढ़ के महाराज 'साहू' के यहाँ भी इनके सपर्क का—कुमायूँ जाने से पूर्व—उल्लेख मिलता है। किसी 'भोगराज' के साथ इनके संपर्क का निश्चित निर्देश 'मतिरामसतसई' से सूचित होता है। परंतु इन संपर्कों ('भोगनाथ' के साथ सूचित संबंध के अतिरिक्त) की अधिकांश बातें प्रायः जनश्रुतियों या इधर उधर बिखरे हुए छंदों से सकेतित हैं। कवि की रचनाओं मे उनका साक्षात् उल्लेख नहीं है—यथा कवि की शिवाजी के साथ भेट और उनके दरबार मे जाना (जो 'याज्ञिक' महोदय के उपर्युक्त लेख मे उद्धृत—शिवाजीप्रशस्ति के—दो पद्यों से प्रमाणित है)। इसका कुछ संकेत 'मतिरामसतसई' से भी मिलता है।

सारांश यह कि मुख्य रूप से 'मतिराम' संभवतः, सर्वाधिक समय तक बूँदीनरेश 'राव भाऊसिंह' के आश्रय मे रहे। इसके अलावा, वे इधर उधर आते जाते भी रहते थे। बाद मे कुमायूँनरेश के आश्रय मे भी स्थिर रूप से कुछ दिनो तक उन्होने निवास किया। संभवतः बाकी समय—वे टिकवाँपुर के अपने घर मे राजा हम्मीर द्वारा संमानित होकर मुख्य रूप से रहते थे। समय समय पर या कुछ समय के लिये साहित्यप्रेमी अन्य सामंतों और नरेशों आदि के पास भी आते जाते रहते थे।

मतिराम के ग्रंथ

'गार्सा-द-तासी' में 'मतिराम' के केवल 'रसराज' का नाम उल्लिखित है। किंतु 'सरोजकार' ने उक्त ग्रंथ के अलावा 'ललितललाम' और 'छंदसार-पिंगल'—दो और ग्रंथों का उल्लेख किया है। नागरीप्रचारिणी सभा के

खोजविवरणों से 'मतिराम' कृत अनेक ग्रंथों के नाम धीरे धीरे ज्ञात हुए। इनमें 'मतिरामसतसई', 'साहित्यसार' और 'लक्षणशृंगार'—इन तीन ग्रंथों के नाम विशेष रूप से सामने आए। भगीरथप्रसाद जी ने 'वृत्तकौमुदी' (और रहीमकृत बरवैनायिकाभेद-संपादन) को भी 'मतिराम' का ग्रंथ बताया। पर वे द्वितीय ग्रंथ को द्वितीय 'मतिराम' का मानते हैं। 'याज्ञिकबंधुओं' ने 'फूलमंजरी' नामक लघुरचना को भी 'मतिराम' कृत सिद्ध किया। खोजविवरणों से 'पिंगलछंदसार' और 'अलकारपंचाशिका' का भी पता चला तथा इनमे से कुछ ग्रंथ लोगों के देखने में भी आए। सब मिलाकर 'मतिराम' के नाम से विविध विद्वानों द्वारा ('मतिराम'-कृत और तत्संपादित) निम्ननिर्दिष्ट ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—

(१) फूलमंजरी, (२) रसराज, ३) ललितललाम, (४) साहित्य-सार, (५) लक्षणशृंगार, (६) छंदसारपिंगल, या छंदसारसंग्रह (७) अलंकारपंचाशिका और (८) वृत्तकौमुदी तथा (९) सपादित—रहीम कृत बरवैनायिकाभेद। इनमे से 'साहित्यसार' और 'लक्षणशृंगार'—इन दो पुस्तकों की चर्चा नागरीप्रचारिणी सभा के खोज रिपोर्टों से ही पहले पहल मिलती है। इनके प्राप्तिस्थान ऊपर बताए जा चुके हैं। यह भी सकेत किया जा चुका है कि डा० महेंद्रकुमार के अनुसार ये पुस्तकें अब शायद नहीं हैं। उन्होंने लिखा है—'परतु मुझे अधिकृत रूप से ज्ञात हुआ है तथा मैंने वहाँ जाकर भी खोज की पर इनमे से किसी को न देख सका'।[९] 'फूलमजरी' की तीन विभिन्न प्रतिलिपियाँ याज्ञिकबंधुओ के सग्रह में - विभिन्न स्थानों से सकलित—उपलब्ध हैं। पटियाला के राजकीय संग्रहालय मे अब तक 'अलंकारपंचाशिका' सुरक्षित है। वहाँ से कुछ शोधकर्ताओं ने उसकी प्रति-लिपियाँ भी उपलब्ध की हैं। 'वृत्तकौमुदी' की जो प्रति दीक्षितजी ने निर्दिष्ट की थी—संभवतः वह तो अब नष्ट हो गई पर महेद्रकुमार जी को उसकी दूसरी प्रतिलिपि 'कैप्टन शूरवीर सिंह' के यहाँ देखने को मिल गई।

---

९. डा० भगीरथ मिश्र ने अपने ग्रथ—'हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास' (द्वि० स० पृष्ठ ८३) मे इन ग्रथों की पृष्ठसख्या और विषय तक का उल्लेख किया है। पर सभवतः उक्त वर्णन खोज रिपोर्ट के ही आधार पर है। मैं निश्चित रूप से कह नहीं सकता कि उन्होंने स्वयं उक्त ग्रंथ को देखा है या नहीं?

प्रकाशित ग्रंथ

'रसराज' और 'ललितललाम' के सैकड़ों हस्तलेख इधर उधर बिखरे पड़े हैं तथा उनके प्राचीन नवीन अनेक संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं। पं० कृष्ण-बिहारी मिश्र द्वारा 'मतिराम' ग्रंथावली बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी है। उसके तीन संस्करण भी हो चुके है। 'सतसईसप्तक' के अतर्गत बाबू श्यामसुंदर दास द्वारा मतिराम 'सतसई' भी इंडियन प्रेस से प्रकाशित हो चुकी है। डा० त्रिभुवन सिंह ने अपने शोधप्रबंध के परिशिष्ट मे 'मतिरामसतसई' को पुनः प्रकाशित किया है। इसकी विशेषता केवल इतनी है कि यहाँ 'रसराज' और 'ललितललाम' मे उद्धृत दोहों के सामने ग्रंथो के नाम और उदाहरणो के परिचयसंकेत उल्लिखित है। परतु पं० 'कृष्णबिहारी मिश्र' ने अपनी ग्रंथावली के पूर्व सस्करण की पादटिप्पणी मे सदर्भसंकेत का पूरा विवरण पहले ही दे दिया है। कहने का सारांश यह कि ये तीन ग्रथ प्रकाशित रूप में अनेक स्थानों पर उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त 'बरवैनायिकाभेद' के प्रकाशित संस्करण भी पाए जाते हैं। 'रहीम रत्नावली' मे एक ऐसा संस्करण मिलता है। 'फूलमजरी' का संपादन और प्रकाशन प्रस्तुत सस्करण में उपस्थित किया जा रहा है।

विभिन्न ग्रंथों में उल्लेख

'हिंदीनवरत्न के चतुर्थ सस्करण तक 'मतिरामसतसई' का नाम मिश्र-बधुओं ने दे दिया है। इसके पूर्व उन्होंने 'ललितललाम', 'रसराज', 'साहित्यसार' 'छंदसारपिंगल', 'लक्षणशृंगार' और 'अलंकार-पचाशिका' के नाम दिए है (भाग २ संस्करण २, पृष्ठ ४४५)। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी (अलंकारपंचाशिका को छोडकर) इन्हीं के नाम दिए हैं। पं० 'कृष्णबिहारी मिश्र' ने 'फूलमंजरी' और 'वृत्तकौमुदी' का भी उल्लेख किया है। किंतु वे 'वृत्तकौमुदी' को अप्रामाणिक या अन्य 'मतिराम' कवि की रचना बताते है।

'वृत्तकौमुदी' को सामने ले आनेवाले पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित हैं जिन्हें यह प्रति 'असनी' के एक सज्जन के यहाँ पहली बार देखने को मिली थी। डा० महेंद्रकुमार ने खोजकर उसे देखना चाहा पर वहाँ न मिली। हाँ अन्यत्र से उन्हें 'वृत्तकौमुदी की प्रतिलिपि मिल गई। कुछ लोग इसे अप्रामा-णिक रचना मानते हैं और दीक्षितजी इसे अन्य 'मतिराम' की कृति कहते

हैं। डा० महेंद्रकुमार ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि 'शिवसिंह-सरोज' मे लिखित 'छंदमारपिंगल' नाम गलत है और 'वृत्तकौमुदी' तथा 'छदसार' या 'छदसारसग्रह' दोनो रचनाएँ एक ही हैं।

इन ग्रंथों का पृथक् और संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

फूलमंजरी

'जहाँगीर' के शासनकाल मे 'फूलमजरी' की रचना होने से सं० १६६२ और स० १६८४ के बीच इसका निर्माण माना जाता है। यदि पूर्व उल्लिखित १६वें जलूसी वर्ष के उत्सव के अवसर पर 'नवरोजा' से सबद्ध 'नूरअफ्शाँ बाग' के विहार के समय की यह रचना है (या अधिक से अधिक उसके आसपास की) तो उसका समय भी निश्चितप्राय है। पं० कृष्णबिहारी मिश्र ने उसका समय सं० १६७८ वि० के आसपास अनुमित किया है। डा० महेंद्रकुमार भी करीब करीब यही समय मानते हैं। इसी समय या इसके दो तीन वर्षों के आसपास डा० त्रिभुवन सिंह इसका रचनाकाल निर्धारित करते है। सबके मत अनुमान पर ही आधृत है। इनसे अतिरिक्त अन्य अनुमान के लिये कोई दृढ आधार अब तक नही मिल सका। यह ग्रथ इस ग्रंथावली मे प्रकाशित है।

संदर्भपरिचय

उपलब्ध रूप मे यह लघुग्रथ शृंगारपरिधि के भीतर आता है। इस कृति के अधिकांश दोहो मे नायिका के प्रसंग को लेकर एक एक फूल का नाम आया है। कुछ के नाम तो अप्रस्तुत पक्ष के सदर्भ मे हैं, कुछ फूलों के नाम ऐसे हैं जो नायिका या नायक के हाथों मे है और कुछ नाम ऐसे भी हैं जो निर्दिष्ट तो हैं पर दोहे के प्रसगार्थ मे उनकी संगति पूरी नही बैठती है। दो एक दोहों में फूलो की महिमा (जैसे 'आक') देवसबध से प्रदर्शित है। पलाश पुष्प का वर्णन (४२ वें दोहे में) अवश्य चमत्कारसूचक सा है। सकेतित नायिकाओं की व्यजना से नायिकाभेद का रूढ़िसमत प्रभाव तो निश्चय ही इस कृति मे अनुमेय जान पडता है, पर स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं है। नायिका भी सामान्यतः स्वकीया ही प्रतीत होती है—कहीं कही परकीया भी। नायक की विद्यमानता प्रत्यक्षतः दृष्ट न होने पर भी नायिका की चिंता और उत्सुकता आदि से परोक्षरूप में उसकी अभिव्यक्ति हो जाती है। इसके नायिका-नायक प्रायः विवाहित दंपति से लगते हैं और किशोर या नवतारुण्य से भरित। उनमें प्रेम की दृढ आस्था झलकती दिखाई देती है।

भाषा और भावाभिव्यजन की दृष्टि से रचना को सभी आलोचक अप्रौढ कहते हैं। डा० महेद्र के अनुसार इसमे कुछ ऐसे शब्दो का प्रयोग भी मिलता है जो अन्य ग्रंथो के आधार पर 'मतिराम' के प्रिय शब्द कहे जा सकते हैं और बाद की रचनाओ मे अधिक भावबोधक सिद्ध होते हैं।

रसराज : रचनाकाल

'रसराज' की जो हस्तलिखित प्रतियाँ अब तक ज्ञात हुई हैं उनमे प्राचीनतम हस्तलेख संभवतः स० १७८० वि० का है। सभा' की खोजरिपोर्ट (१९२३-२५) मे यही प्रति कदाचित् प्राचीनतम है। इसके अतिरिक्त बाद के बहुत से हस्तलेख भी मिलते है।

'मतिराम' के संपूर्ण साहित्यिक ग्रंथों में 'रसराज' सर्वाधिक प्रसिद्ध और उत्कृष्ट रचना है। पर इसका निर्माणकाल निश्चित नही है। 'सरोज' मे रचनाकाल का कोई निर्देश नही है। मुख्यतः भाषा की प्रौढता, स्वच्छता, अभिव्यक्ति की प्रगल्भता, भावाभिव्यक्ति की 'सरसता' और लालित्य के आधार पर इस ग्रथ को मिश्रबधुओं ने कवि के उस काल की रचना माना है जब कृतिकार मे कवित्वशक्ति का काफी प्रौढ़ और परिपक्व विकास हो गया था। वे यह भी अनुमान करते हैं कि 'ललितललाम' की रचना के बाद जब 'मतिराम' का सबध बूँदीनरेश से टूट चुका था तब इसकी रचना हुई थी। वे यह भी कहते हैं कि 'ललितललाम' के कुछ उत्कृष्ट छंद चुनकर 'रसराज' में यथास्थान रखे गए है। चूँकि 'मतिराम' का संबंध 'राव बुद्ध' के राजत्वकाल मे बूँदी से छूटा था इसलिये 'रसराज' का रचनाकाल १७६५ वि० के आसपास या उसके बाद हो होगा।

परतु यह काल तो किसी भी रूप मे मान्य नही हो सकता। 'राव बुद्ध' के राज्यकाल तक उनका संबंध बूँदी से—किसी दृढ प्रमाण के आधार पर—सिद्ध नही होता। 'अलंकारपचाशिका' के साक्ष्य को लेकर 'कुमायूँनरेश' से उनका संबंध १७४५ से १७५५ वि० या इसके आसपास तक ही प्रमाणित किया जा सकता है। अतः बूँदीनरेश के साथ उनका संबंध अधिक से अधिक १७४५ वि० के ('राव भाऊसिंह' के शासनकाल से) बाद कथमपि सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह अधिक मान्य हो सकता है कि इससे भी पहले वे 'बूँदी' से अलग हो चुके रहे हों।

'पं० कृष्णबिहारी मिश्र', डा० 'महेंद्रकुमार' और डा० 'त्रिभुवन सिंह'—तीनों ही लेखकों ने 'फूलमजरी' के बाद 'रसराज' का निर्माण—अपने अनुमानसाधक हेतुतर्कों के आधार पर—सिद्ध करने का प्रयास किया है। 'प० कृष्णबिहारी जी' का जो सबसे मुख्य तर्क है उसे ही दूसरे रूप से डा० 'त्रिभुवन सिंह' ने भी बडे जोरशोर से प्रतिपादित किया है। इस मत के अनुसार 'ललितललाम' की रचना—संभवतः सं० १७१५ अथवा १७१८ से १७२१-२२ वि० के बीच निश्चित रूप से हो चुकी थी। उस समय तक 'मतिराम' की अवस्था ६० वर्ष की हो चुकी रही होगी। अतः यह ग्रंथ उसके बाद का नहीं हो सकता। यौवनकाल में भावमय और उच्छलित आवेग—शृंगारी और मधुर कल्पनाओ से ओतप्रोत तारुण्य की जो रसिकता—'रसराज' के लक्ष्यभूत पद्यों मे प्रवाहित मिलती है उसकी रचना तरुणहृदय का भावप्रवण और रसमत्त कवि की मस्ती ही कर सकती है। ६० वर्ष के बाद रसिक कवि की वृत्ति धीरे धीरे संसार से सिकुडने और वैलासिक शृंगारी क्षेत्र से हटने लगती है। तब ऐसी रचना नहीं हो सकती। इस कारण पं० कृष्णबिहारी जी 'रसराज' का रचनाकाल उस समय निर्धारित करते हैं जब कवि की अवस्था ३०-३५ के आसपास रही होगी।

यह समय १६९० वि० से १६०० वि० के बीच—उन्होंने अनुमित किया है। 'याज्ञिकबधु' भी बूँदी से कवि का संबंध स्थापित होने से पूर्व और—'फूलमजरी' के बाद—लगभग १७०० वि० के आसपास—इसका समय संभावित मानते हैं। 'डा० त्रिभुवन सिंह' ने अपने ग्रंथ मे इन्हीं प्रमाणों और अनुमितियों का आश्रय लिया है। वे यह भी कहते हैं कि 'रसराज' के लिये ही वे पद्य मूलतः निर्मित हुए थे जो बाद मे चलकर—आवश्यकतानुसार—'ललितललाम' में अलंकारों के उदाहरणार्थ रख दिए गए। चूँकि 'रसराज' मे किसी आश्रयदाता का उल्लेख नहीं है, अतः—उनके मत से—इसका निर्माण-काल वही रहा होगा जब महाकवि का सबंध किसी राजदरबार या आश्रयदाता से नहीं था। साथ ही वे यह भी अनुमान करते है कि 'रसराज' जैसी उत्कृष्ट रचना के निर्माण और प्रसिद्धि के साथ साथ 'मतिराम' की प्रसिद्धि होने के अनंतर ही उनका बूँदीनरेश मे संपर्क स्थापित हुआ होगा। अतः इनके मत से भी इस ग्रंथ का निर्माण सं० १६९१ के आसपास या उसके कुछ बाद हो सकता है।

'रसराज' और 'ललितललाम' की तुलनात्मक परीक्षा करने के अनंतर डा० महेंद्र भी रचनाकाल के संबंध में लगभग इसी काल के निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। उनकी दृष्टि मे भी दोनों ग्रंथों में उपलब्ध पद्य मुख्यतः 'रसराज' के लिये ही निर्मित हुए थे। उन्होंने ऐसे श्रृंगारपरक छंदों का भी निर्देश किया है जो 'ललितललाम' में हैं पर 'रसराज' में नहीं। यदि 'ललितललाम' के बाद 'रसराज' का निर्माणकाल होता तो उक्त (३६७ ललितललाम) छंद—अपनी सरसता के कारण—'रसराज' मे निश्चय ही 'ललिता' के उदाहरण में रखा गया होता। वे भाषा के आधार पर भी 'रसराज' को 'ललितललाम' से पूर्व की रचना मानते हैं। अतः वही मत—जो कृष्णबिहारी जी ने अनुमित किया है अर्थात् १६९० से १७०० वि० तक—डा० महेंद्र का भी अभिमत है। मेरा मत आगे निर्दिष्ट है।

रसराज का आरंभ

'रसराज' की अधिकांश उपलब्ध प्रतियो और हस्तलेखों मे आरंभ के तीन पद्य—पं० कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा संपादित ग्रंथावली की प्रथम गणेशवंदना तथा बाद के २ दोहे—नही मिलते। उनके संबंध मे मिश्रजी ने पादटिप्पणी मे बतलाया है कि 'वेंकटेश्वर प्रेस' और 'नवलकिशोर प्रेस' वाली प्रतियों मे ही वे छंद पाए जाते हैं। कुछ विद्वान् उन्हे 'मतिराम' कृत नहीं मानते। यद्यपि प्रथम सवैया और तृतीय संख्यक दोहे मे कवि का नाम स्पष्टतः निर्दिष्ट है। इन तीन पद्यों के अभाव को अधिकांश प्रतियों में देखकर—कुछ विद्वानो का अनुमान है कि 'ललितललाम' में ५ विभिन्न पद्यों द्वारा मंगलाचरण करनेवाले कवि ने 'रसराज' में भी अवश्य ही मंगल के छंद रखे रहे होंगे। उस अंश के खंडित हो जाने से—और ग्रंथ का एकाएक आरंभ—नायिकानायक के 'श्रृंगारालंबनत्व से प्रारब्ध देखकर—यह अनुमान करने का स्पष्ट अवकाश है कि 'रसराज' का मंगलाचरण और प्रस्तावनात्मक अंश, आज की अधिकांश प्रतियों मे यद्यपि अनुपलब्ध है तथापि मूलरचना मे वह अवश्य रहा होगा। इस ग्रंथ का अंत भी कुछ आकस्मिक सा लगता है। 'प्रभा' (वर्ष ५ खंड १ संख्या ३ जून १९२४) मे किसी जनश्रुति के आधार पर पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अनुमान किया है कि 'रसराज' में आरंभिक पद्य 'औरंगजेब' के नाम से बनाए गए थे। 'भूषण' का भाई होने के कारण आश्रयदाता औरंगजेब ने प्रस्तुत कवि को अपने दरबार से बहिष्कृत कर दिया। अतः

'मतिराम' ने भी आरंभ के पद्यों को 'रसराज' से हटा दिया था। इसी से मंगलाचरण और आरंभिक प्रस्तावना के पद्य वहाँ नहीं मिलते हैं।

'त्रिपाठीजी' के इस अनुमान का समर्थन या प्रत्याख्यान करनेवाले प्रमाण संप्रति मुझे उपलब्ध नहीं हैं और उक्त अनुमान का अवकाश भी मिल जाता है। फिर भी इसका कारण समझ में नहीं आता कि प्रस्तावनात्मक अंश काटकर अलग कर देने पर भी अनेक प्रतियों में मंगलाचरण क्यों अनुपलब्ध है? यह भी समझ मे नही आता कि औरंगजेब के आश्रय मे 'मतिराम' के रहने का कहीं भी कोई दृढ ऐतिहासिक प्रमाण क्यो नहीं मिलता? अतः इस संबंध मे निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

'रसराज' नाम से ऐसा सकेत अवश्य मिलता है कि प्रस्तुत ग्रंथ रसराज शृंगार का आश्रय लेकर लिखा गया है और ग्रंथकार ने शृंगार के रसराजत्व का प्रतिपादन भी—हो सकता है—इसमे किया रहा हो। पर रीतिकालीन अनेक आचार्यकवियो की भाँति 'मतिराम' भी शृगार के पूर्वस्वीकृत रसराजत्व को स्वयसिद्ध और ग्राह्य मानकर यदि ग्रंथ मे अपने वर्ण्य का आरभ कर चले हो तो कोई आश्चर्य नही! इसे वे आरंभ मे ही कहते है—

होत नायका नायकहि आलंबित शृंगार।
तातैं बरनौं नायका नायक मति अनुसार॥

संदर्भपरिचय

इस ग्रंथ का प्रायः आधा से अधिक भाग तो नायिका-नायक-निरूपण करनेवाला है और तदतिरिक्त शेषांश का भी काफी हिस्सा शृंगारी वर्ण्य का ही वर्णन करता है, चाहे उसका वर्णन प्रत्यक्षतः हो या परोक्षतः। 'रसराज' मे 'आलंबन' और तत्संबद्ध या तदंगभूत विषयों का लक्ष्यलक्षणात्मक विवरण—ग्रंथ का ईप्सिततम विवेच्य कर्म है। आलबनपरिधिसयुक्त निरूप्य विषयों के अतिरिक्त विवेच्य प्रसंगों मे उद्दीपन, सात्विक भाव, संभोग (और उसके अगभूत हावलीला आदि) तथा वियोग (और उसकी विभिन्न दशाओं मान आदि) के वर्णन है जिनके संक्षिप्त या सामान्य-विस्तृत विवेचन के साथ ग्रंथ का अंत हो जाता है। इस प्रकार ग्रंथ का वर्ण्य विषय—मुख्यतः नायक नायिका, उनके उद्दीपन, हाव, मंडन, सांगोपांग संयोग, वियोग आदि के सरस, भावमय और सहृदय निरूपण तक ही—सीमित है।

'भानुदत्त' की 'रसमजरी' के लक्षणांश का इसके लक्षणों पर—संभवतः आद्यंत सर्वाधिक प्रभाव और उपजीव्यता है। पर लक्ष्यांश प्रायः मौलिक हैं और सहृदय कवि के भावमय कल्पनाचित्रों का मनोरम अंकन करते हैं।

इनमें नायकनायिकाओं के रूपचित्रों का शृंगार हुआ है रीतिकालीन रँगभरी तूलिका से। श्रीराधाकृष्ण को भी इस मंच पर अवतरित करने के लिये पर्याप्त भूमिका अर्पित की गई है। भक्ति के आलंबनपरिधि से हटाकर लौकिक शृंगार के विलासमय और ललितरम्य मंच पर उन्हे प्रतिष्ठित किया गया है। फिर भी 'मतिराम' के अभिव्यंजन मे काफी अधिक स्थलों पर गृहस्थ जीवन का संयम और कुलवधू की स्वस्थ रुचिरता दिखाई पड़ती है। कामुक वासना और निर्दाम वैलासिकता से भरे दरबारी औधत्य की अभिव्यक्ति को—मतिराम ने स्वीयाचित्रों के अकन मे प्रायः बचाने का प्रयत्न किया है। स्वीयाभेदों के बिंबचित्र—रँगीले और चटकीले होकर भी कुलमर्यादा की सीमा में रहना चाहते हैं। भोगतर्पण की उन्मादभरी विह्वलता से निरंकुश नही हो उठे हैं। उनके विलासप्रसगों मे गृहस्थजीवन के स्पृहणीय विहार का सहज अभिलाष ही छलकता दिखाई देता है। लगता है परकीया या सामान्या के वासनोन्माद भरे रूपचित्रों की अपेक्षा 'मतिराम' की वृत्ति स्वीया के प्राकृतिक तृष्णाचित्रण मे अधिक रमी है। यथास्थान इसका विवेचन किया गया है।

भावाभिव्यक्ति की मर्मस्पर्शिता, प्रणयमूर्तियों के सहज विलास, प्रेमचित्रों का सजीव मूर्तन और यौवन के वेगमय प्रणय का उल्लसित—पर संयत—चित्रण करने मे 'मतिराम' के इस ग्रंथ को पर्याप्त सफलता मिली है। भावों के मधुर गुंजन से झंकृत होने पर भी प्रसादगुण से संपन्न और समर्थ भाषा के प्रयोग द्वारा कवि की अभिव्यक्तिशैली मे सजीवता और सप्राणता निखर उठी है। ग्रंथ के साहित्यिक मूल्य की चर्चा आगे होगी।

निष्कर्ष यह कि लक्षणांश संस्कृत के ग्रंथ से सहकृत और गृहीत होने पर भी शास्त्रीय गांभीर्य से रहित हैं। 'लक्ष्यांश' की दृष्टि से 'रसराज' मे मुक्तक पद्यों का उत्कृष्ट, ललित, समर्थ और रमणीय काव्यरूप प्रकट हुआ है।

ललितललाम : रचनाकाल

मिश्रबंधुओं ने 'हिंदीनवरत्न' और 'विनोद' मे इस अलंकारग्रंथ को प्रणीत 'रसराज' से पूर्व का स्वीकार किया है। इसके मुख्य दो आधार हैं—

(१) 'रसराज' की भाषा और अभिव्यक्तिशैली में प्रौढ़ता का उत्कर्ष (२) और बूँदी राज्य से विच्छेद के बाद उसका निर्माण। ऊपर कहा गया है कि 'पं० कृष्णबिहारी मिश्र', 'डा० महेंद्रकुमार' और डा० 'त्रिभुवन सिंह' आदि इसे 'रसराज' के बाद की रचना स्वीकार करते हैं। उनके अनुमान के साधक प्रमाणभूत आधारों का ऊपर की पंक्तियों मे संकेत हो चुका है। 'ललितललाम' का रचनाकाल 'पं० कृष्णबिहारी जी' १७१९ वि० के बाद—सामान्यतः सं० १७१८–१९ के बीच—निर्धारित करते हैं। इसके पूर्व ही वे सं० १७०० और १७१० के बीच 'छंदसारपिंगल' का निर्माणकाल मानते हैं जिसकी रचना—श्रीनगर के फतेहशाह बुंदेला के निमित्त—अनिश्चित होने पर भी अनुमेय समझते हैं। 'राव भाऊसिंह' के आश्रय मे 'ललितललाम' की रचना होने के कारण उनके राज्यकाल के भीतर ही निर्माणकाल की सीमा को संभव मानकर 'मिश्रबधुओं' ने—'नवरत्न' मे १७२१ वि० के लगभग और 'विनोद' मे १७१६ से १७२८ वि० के बीच—इसका समय बताया है।

'ललितललाम' के नृपवंशवर्णनवाले छंदों, 'राव भाऊसिंह' की प्रशस्ति से संबद्ध एवं अन्य' ऐतिहासिक घटनाओ से मेल खानेवाले लगभग ६० छंदो को प्रमाणकोटि मे रखकर—इसका रचनाकाल—डा० 'त्रिभुवन सिंह' उस समय मानते है जब उक्त छंदो में सकेतित ऐतिहासिक घटनाएँ तो घटित हो चुकी थी पर उनमे अनिर्दिष्ट और अवर्णित घटनाएँ अभी बाद में घटनेवाली थीं। ऐसे ही काल के आसपास 'ललितललाम' निर्मित हुआ रहा होगा।

इस प्रसंग मे कहा जाता है कि 'राव भाऊसिंह', १७२० वि० के बाद पुनः दिल्ली गए। वहाँ उन्हे दो वर्ष तक रहना पड़ गया। उस समय, संभवतः, 'मतिराम' भी 'भाऊ सिंह' के साथ दिल्ली गए हुए थे। 'मतिराम ग्रंथावली' की भूमिका में एक घटना वर्णित है (तृतीय संस्करण पृ० २४९)। पं० कृष्णबिहारी मिश्र ने इस सूचना में बताया है कि 'औरंगजेब' ने जब हिंदूनरेशो को अपने साथ भोजन करने का प्रस्ताव किया तब केवल 'भाऊ सिंह' ने अकेले ही उसका विरोध किया था। इस ओजस्विता के कारण—उक्त घटना के अनंतर—हिंदुओं मे उनका संमान बहुत बढा था। 'केशवराय' के मंदिर की रक्षा में भी इनका बड़ा हाथ था। इस प्रकार

हिंदुत्व के समर्थक और रक्षक के रूप में इनकी इज्जत—अपने जीवन के अंतिम सोपानों पर पहुँचने की अवस्था मे—देवता के समान हो गई थी। औरंगजेब के प्रस्ताव के एकाकी विरोध की चर्चा 'ललाम' मे अनुपलब्ध है। अतः इस कृति का रचनाकाल सं० १७१८ और १७२० वि० के आसपास वे मानते हैं। उनके अनुमान के अनुसार इसकी रचना 'भाऊसिंह' के राज्यारोहण के आरंभिक २–३ वर्षों मे ही हो गई रही होगी। अतः 'ललित' का निर्माणकाल १७१८ वि० के आसपास होना चाहिए।

डा० महेंद्र भी सामान्यतः १७१८ वि० से १७२१ वि० के बीच इसका रचनाकाल निर्धारित करते हैं। अपने अनुमान का कारण बताते हुए वे कहते हैं कि 'राव भाऊसिंह', १७१७ वि० मे शाइस्ता खाँ के साथ (पहली बार) और १७२१–२२ वि० मे अपने बहनोई 'महाराज जयसिंह' के साथ (संभवतः दूसरी बार) 'औरगजेब' के समर्थक होकर शिवाजी के विरोधी कार्यकर्ता हुए थे। इस कारण स० १७१८ और १७२१ के बीच या इसके आसपास वे बूँदी रहे होगे। 'ललितललाम' के एक छंद (१३१) मे 'बूँदीनरेश' के उक्त कार्यों का संकेत झलकता है। अतः १७१८ से २०-२१ के आसपास—जब 'भाऊसिंह' बूँदी मे रह रहे थे तभी—सभवतः,–'ललाम' का रचनाकाल डा० महेंद्रकुमार भी मानते है। १७२२ मे जयसिंह और शिवाजी के बीच संधि हो जाने के कारण उस युद्ध से 'भाऊसिंह' बूँदी लौट आए थे। पर कुछ ही समय पश्चात् (१७२३–२४ वि० से) शाहजादा मुअज्जम के साथ औरंगजेब ने उन्हे पुनः युद्ध के लिये बाहर भेज दिया। इसके अनंतर 'रावसाहब' जीवनपर्यंत युद्धादि मे उधर ही रहे। कहने का निष्कर्ष यह कि व्यापक रूप से मतिरामकृत ग्रंथो के रचनाकाल का विवेचन करनेवाले पूर्वोक्त तीनो विद्वानों का मत प्रायः सं० १७१८–१९ से १७२०–२१ के आसपास तक 'ललितललाम' का निर्माणकाल स्वीकार करता है।

हस्तलेख और प्रकाशित संस्करण भी इसके अनेक मिलते हैं। पर कोई भी प्राचीन प्रति ऐसी उपलब्ध नही है जो इस संदर्भ मे सहायक हो सके। अतः १७१८ वि० से १७२१ के बीच ही 'ललितललाम' की रचना का अनुमान करना पड़ता है।

संदर्भपरिचय

इस ग्रंथ मे लगभग ४०० पद्य हैं। मंगलाचरण के पाँच छंदों से इसका आरंभ होता है। बाद के १७+१९ छंदों में बूँदीराजवंश और

'भावसिंह की प्रशस्ति है। १८ वें दोहे में कहा गया है कि 'भावसिंह की रीझि कौ' इस 'ललितललाम' की रचना हुई है। उपमालंकार तथा ग्रंथ के प्रतिपाद्य अलंकारों के निरूपण से मुख्यतः निरूप्य विषय का आरंभ है। आशीर्वाद और शुभकामना के साथ इसकी समाप्ति की गई है।

'मतिराम' का यह अलंकारग्रंथ—मुख्य रूप से—रीतिकाल की उस शैली पर निर्मित है—आचार्य विश्वनाथप्रसाद जी के मत से जिनकी प्रकृति है—'चले तो इसी पद्धति (लक्षणग्रंथ की) पर, परंतु उनकी दृष्टि उदाहरणों पर विशेष थी लक्षणों पर उतनी नहीं।' इस प्रणाली के आरंभिक रीति-पंडितों में 'भूषण' और 'मतिराम' के नाम लिए जा सकते हैं। 'भूषण' के संबंध में पं० विश्वनाथप्रसाद जी ने कहा है कि 'अलंकार का अभ्यास भूषण को बहुत कम था। अलंकार के चक्कर में उनकी कविता विकृत हो गई और रसपरिपाक—जैसा चाहिए वैसा—नहीं हो सका.........। 'शिवभूषण' को अलंकार की दृष्टि से देखने पर निराश होना पड़ता है।' परंतु 'मतिराम' के 'ललितललाम' की स्थिति इससे भिन्न है। पंडित जी के शब्दों में 'मतिराम' के लक्षण 'बहुत साफ और उदाहरण भी स्पष्ट हैं'। वस्तुतः यह उनका ग्रंथ 'शिवराजभूषण' की अपेक्षा अधिक परिपूर्ण और प्रौढ़ है। अपने लक्ष्यभूत उदाहरणों की दृष्टि से भी इसे प्रसिद्धि मिली। 'मतिराम' मूलतः सहृदय और भावुक कवि हैं। इस कारण ही लक्ष्यभूत पद्यों में काव्यमयी संवेदना की विवृति अधिक मर्मस्पर्शी और रमणीय है। अलंकार के उदाहरण होने पर भी लक्ष्यों में भावोद्वेलित सरसता की झलक प्रायः सर्वत्र देखी जा सकती है।

इस ग्रंथ की रचना 'राव भाऊसिंह' के आश्रयकाल में और संभवतः उन्हीं के संमानार्थ, उन्हें प्रसन्न करने के लिये हुई थी। इसमें 'शिवराज-भूषण' के समान आयासपूर्वक सभी लक्ष्यों को आश्रयदाता के ऊपर घटाने का विशेष यत्न नहीं किया गया है। इसके अनेक उदाहरण 'सतसई' और 'रसराज' से लिए गए हैं। डा० त्रिभुवन सिंह के अनुसार 'लगभग ६० छंदों में भावसिंह की प्रशस्ति है। ४०१ छंदों में प्रायः १२८ ऐसे हैं जिन्हें कवि ने खासतौर पर अपने लक्षणग्रंथ 'ललितललाम' के लिये लिखा होगा।' तात्पर्य यह कि यदि संपूर्ण ग्रंथ का सिंहावलोकन किया जाय तो उसके समग्ररूपनिर्माण में अनेक प्रकार की प्रेरणाओं का योगदान मिलता है। निश्चय ही रीतिकाल की प्रवृत्तिविशेष के अनुसार शास्त्रकार

कवि की प्रेरणावृत्ति उसमें सबसे प्रमुख रही होगी। परंतु आश्रयदाता के वश और गुणशौर्य की प्रशस्ति की वर्णनकामना भी कम सशक्त प्रेरणा नहीं रही। कविहृदय की सहज भावुकता और उसके अभिव्यंजन की अदम्य भावना भी लक्ष्यभूत उदाहरणों के निर्माण मे कार्य करती रही। बहुत से उदाहरण—संभवतः—लक्ष्यरचना की दृष्टि से बनाए भी नहीं गए थे। वे सहज उद्गार की अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप निर्मित हुए थे।

पर युगप्रवृत्ति और काव्यशिल्प की रचनारूढ़ि के कारण अलकारों के चमत्कार से समन्वित रहने के फलस्वरूप वे पद्य—बाद मे—लक्ष्यपद्य बनाकर यहाँ (ललितललाम में) संगुफित कर दिए गए।

कहा जा सकता है कि 'मतिराम' मे आलकारिक चित्र—काव्यरचना की युगप्रवृत्तिपरक चमत्कारवादिता नहीं थी। क्योंकि उन्होने 'ललितललाम' में अनुप्रास, यमक, पद्मबध, खड्गबंध आदि चित्राकृतिक ऐसे लक्षणलक्ष्यों का (अपने ग्रंथ मे) संयोजन नहीं किया जो केवल शब्दक्रीडाप्रधान और कोरे चमत्कारपरक होते हैं, जिनमे नीरस अलंकारों का सायास पांडित्यमात्र रहता है और सहृदयभावुकता से जो दूर चले जाते हैं। फिर भी रीतिकाल में शाब्दिक योजना से जिस ध्वनिचमत्कार की, और चमत्कारदर्शी अर्थालंकारों के उपनिबंधन से जिन अर्थगत चमत्कृतियों की सर्जना एक सामान्य युगधर्म बन गया था उससे अपने को सर्वथा दूर रखने मे 'मतिराम' न तो समर्थ हुए और न हो ही सकते थे। फिर भी उनका सहज आसजन—काव्य में अलंकार को प्रमुख स्थान देनेवाले आचार्यों के सदृश न होकर रसाश्रित भावाभिव्यक्ति में अधिक था। उन्होंने रसवत्, भावोदय आदि अलंकारों को रसप्रतिनिधि के रूप मे स्थान नहीं दिया। रसभाव को काव्य मे सर्वप्रमुख तत्व माननेवालों मे ही उनका अनुराग था और युगरीति की सीमारेखा मे विचरणशील रहकर भी वे भावोद्यान के बिहार को रम्यतर समझते थे।

संस्कृत के लक्षणग्रंथों की प्रभावदृष्टि से 'चंद्रालोक' और तदुपजीवित 'कुवलयानद' की वर्णनशैली का इस पर सर्वाधिक प्रभाव जान पडता है।[१०]

---

१०. इस ग्रथ की रचना मे अलंकारो की संख्या तथा क्रम प्रायः कुवलयानंद से मिलता जुलता है। पर वहाँ का काव्यलिंग 'ललितललाम' मे अनिर्णीत है। 'भाषाभूषण' आदि के समान चित्र अलंकार को भी इसमें स्थान

'चंद्रालोक' और 'कुवलयानंद' ने रीतिकाल के अनेक अलंकारग्रंथों को उसी प्रकार प्रभावित किया जिस प्रकार 'भानुमिश्र' की 'रसतरंगिणी' ने नायिका-भेद के ग्रंथो को।

मिल गया है। 'चंद्रालोक' की वर्णनशैली का भी इस पर पर्याप्त प्रभाव है। कहीं कही लक्षणो पर 'साहित्यदर्पण' का अनुगमन भी झलक जाता है। साराश यह कि 'ललितललाम' मे 'कुवलयानंद' और 'चंद्रालोक' के अतिरिक्त 'साहित्यदर्पण' (एक आध स्थल पर 'काव्यप्रकाश') का भी अनुसरण किया गया है। सस्कृत के किसी एक ही लक्षणग्रंथ का नही। अलंकारो के भेदोपभेद भी सर्वत्र 'कुवलयानद' या किसी एक ही ग्रंथ के आधार पर नही हैं। ऐसा लगता है, कि अपनी रुचि के अनुसार—'मतिराम' ने—संस्कृत के अनेक आचार्यो का आधार लिया है। संभवतः इसी कारण भेदोपभेद के वर्णन और लक्ष्यलक्षण में कभी कभी संगति ठीक नहीं बैठ पाती। अर्थांतरन्यास आदि के भेद तो शास्त्रनिरूपणाश मे नहीं कहे गए हैं परंतु (कुछ दूर तक) उदाहरण भेदो के अनुसार हैं। भेदोपभेदो की सख्या भी संस्कृतग्रंथो से सर्वत्र मेल नही खाती। कुछ अलंकारनामो मे पर्यायमूलक परिवर्तन भी अकारण ही—केवल स्वरुचि के कारण या छंदोऽनुरोध से—कर दिया गया है, यथा—**कैतवापह्नुति**, **उत्प्रेक्षा**, **अन्योन्य** और **कारणमाला** को क्रमशः **छलापह्नुति** **गुप्तोत्प्रेक्षा** **परस्पर** तथा **हेतुमाला** लिखा गया है। इसी प्रकार **विशेष** नाम के स्वतंत्र अलंकार के रहने पर भी विशेषक अलंकार को **विशेष** नाम से अभिहित कर देने के कारण कुछ उलझन सी पैदा हो जाती है।

'मतिराम' ने संभवतः कुवलयानंद को ध्यान में रखने से ही—'ललितः क्रियते तेषा लक्ष्यलक्षणसंग्रहः'—'अलंकार' को भी 'ललित' शब्दबोध्य मानकर अपने ग्रंथ का नाम ही 'ललितललाम' रख दिया है। उदाहरणो और लक्षणो की ठीक ठीक संगति नहीं बैठने के कारण यह जान पड़ता है कि उन लक्ष्यो की रचना मे कवि की सहज काव्यभावना का अभिव्यक्तिप्रवाह बंधन के घेरे से बाहर निकल गया है। लक्षणबंधन की दिशा को लाँघ या तोड़कर काव्याभिव्यक्ति के बाहर फैल जाने से लक्ष्य मे लक्षणानुसारी संगति का रूप सटीक नहीं रह गया।

'मतिराम' ने अपने इस ग्रंथ के नामकरण में संभवतः 'ललाम' शब्द का प्रयोग उसी भाँति 'अलंकार' के लिये किया है जैसे 'वामन' ने 'सौंदर्यमलंकारः' द्वारा समस्त काव्यगत सौंदर्य के लिये 'अलंकार' शब्द का। परंतु वहाँ 'वामन' के 'अलंकार' शब्द की अर्थपरिधि में काव्य के समस्त सौंदर्याधायक तत्व आक्रोडित हैं और यहाँ 'अलंकार' का रूढ़ अर्थविशेष ही बोध्य है। 'ललित' शब्द भी संभवतः कलात्मकता या सहृदयरोचकता का अर्थबोध कराने के लिये प्रयुक्त है।

यह सही है कि 'मतिराम' का मन जितना लक्ष्यों के निर्माण मे तन्मय होकर रमा उतना उल्लास लक्षणांश के प्रणयन में नहीं लक्षित होता। दोहों में (यथासंभव संक्षेप के साथ) लक्षण लिखने की प्रवृत्ति के कारण कही कहीं अस्पष्टता और यदा कदा अपूर्णता का दिखाई पड जाना असंभव नहीं है। 'समासोक्ति', 'भेदकातिशयोक्ति' आदि के कुछ लक्षण अस्पष्ट कहे जा सकते हैं। (इनके संबंध मे श्री ओमप्रकाश ने कुछ विस्तृत विवरण देने की चेष्टा की है। डा० त्रिभुवनसिंह ने भी उसी के आधार पर विस्तार के साथ विषयचर्चा उपस्थित की है)। परंतु सब मिलाकर 'मतिराम' के लक्षण संक्षेपरुचिक हैं। दोहा छंद में निबद्ध होने पर भी—कुछ स्थलो को छोडकर—सामान्यतः स्पष्टार्थबोधक और साफ हैं। कुछ अंशों मे उन्हे 'चद्रालोक' और 'कुवलयानंद' की वर्णनशैली का अनुगामी कह सकते है।[११] संक्षेप में यदि निष्कर्षात्मक ढंग से हम कहना चाहें तो पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र जी के शब्दों में कह सकते हैं —"मतिराम के लक्षण बहुत साफ और उदाहरण स्पष्ट है।" इससे भी पूर्व आचार्य शुक्ल जी ने इतिहास में लिखा है—"ललितललाम में भी उदाहरण बहुत ही सरस और स्पष्ट है"—(पृ० ३०६)। यह सूत्रवाक्य केवल उदाहरण की स्पष्टता का ही नहीं लक्षणों की भी स्पष्टता की ओर इंगित करता है। अतः कहा जा सकता है कि 'ललितललाम' के उदाहरण तो प्रायः असंदिग्ध

---

११. इस प्रसंग मे श्री ओमप्रकाश के आधार पर डा० त्रिभुवनसिंह ने 'मतिराम' के अलंकारनिरूपण की शैलीरुचि का विवरण दिया है और अलंकारनिरूपण करनेवाले हिंदी के आचार्यों के साथ आलोच्य कवि का तुलनात्मक समीक्षण भी उन्होने प्रस्तुत किया है। इस विषय के विशेष जिज्ञासु—इन लेखको की उक्त कृतियो का अध्ययन कर सकते हैं।

रूप से अत्यंत स्वच्छ और सहज व्यंजना से रुचिर हैं ही, लक्षणों में भी साधारणतः स्वच्छता और स्पष्टता मिलती है।

'ललितललाम' के लगभग ६३ छंदों के अतिरिक्त (जिनमें प्रायः ६० भाऊसिंह तथा उनके पूर्वजों की प्रशस्ति के हैं) १४५ पद्य शृंगार, भक्ति और कृष्णकथा के (गोपी उद्धव संवाद आदि के भी) हैं। चित्रकाव्य के उदाहरण वाले केवल दो छंद हैं जिनमे एक अनुप्रास का और एक अंतर्लापिका का उदाहरण कहा जा सकता है। 'कुवलयानंद' का—जैसा ऊपर कहा गया है—अनुकरण करने पर भी 'अप्पयदीक्षित' के मत से भिन्नरुचि 'मतिराम' ने अन्य ग्रंथों से भी सहायता ली है तथा अपना मत व्यक्त किया है। कुछ अलंकारो के नये नामकरण भी उन्होंने किए हैं; जैसे—अधिक प्रचलित 'स्वभावोक्ति' के स्थान पर 'जाति', 'अन्योन्य' की जगह पर 'परस्पर', 'कैतवापह्नुति' के बदले छलापह्नुति' आदि। इस पद्धति के कारण, लक्षण की स्पष्टता और सुबोधत्व कहीं कहीं कुछ धूमिल भी हो उठा है। हो सकता है कि ये नामपरिवर्तन किसी विशेष उद्देश्य के कारण न होकर लक्षणभूत दोहाछंद के रचनानुरोध से ही हुए हों। पर प्रचलित नामों को बदल देने से कभी कभी कुछ भ्रांति की गुंजाइश हो जाती है। फिर भी कुल मिलाकर 'मतिराम' ने इस ग्रंथ में अपने आचार्यपक्ष का निर्वाह अच्छा किया है।

उनका यह अलंकारनिरूपण एक और बात सूचित करता है। उन्होंने संस्कृत के साहित्यशास्त्रीय अनेक लक्षणग्रंथों का पठन मनन किया था और उक्त विषय की उनकी जानकारी अच्छी थी। 'केशवदास', 'चिंतामणि', 'भिखारीदास' आदि विद्वानो के समान प्रौढ़ शास्त्रीय रचनाकार न होने पर भी उनका आचार्यत्व अपनी परिमित परिधि मे पर्याप्त महत्व रखता है।

'ललितललाम' में एक बात और भी देखने को मिलती है। शृंगार के ललितोद्गार मे सिद्धहस्त और रीतिसिद्ध कवि होने पर भी वीररस और युद्धोत्साह के वर्णन में 'मतिराम' सफल कवि कहे जा सकते हैं। 'राव भाऊ सिंह' की प्रशस्ति के उदाहरणभूत पद्य वीररस से ओतप्रोत हैं। अर्थ की दृष्टि से प्रसादगुणीय स्पष्टता होने पर भी—वीररसोचित ओजस्विता और कांतिमयी प्रौढ़ता के शैलीशिल्प से उनका अभिव्यंजन दीप्तिमान् है। यद्यपि वीरभाववाले इन पद्यों की भाषा सरल ब्रजी की अपेक्षा संस्कृतपदावली से अधिक चित्रित है तथापि अपनी कविता में ओज और वीरोचित वातारण

उत्पन्न करने के लिये 'मतिराम' ने इस प्रवृत्ति को अपनाया। इतना ही नहीं, वाणी को ओजोमयी बनाने के लिये कभी कभी फारसी के शब्द भी निःसंकोच-भाव से उन्होंने प्रयुक्त किए हैं। यह भी स्मरण रखने की बात है कि वीररस के अप्रतिम कवि 'भूषण' में भावाभिव्यक्ति के हेतु जिस सायास शब्द-प्रयोग की कृत्रिमता कहीं कहीं झलकती दिखाई देती है वैसा 'मतिराम' की भाषा मे बहुत ही कम है। ओजःसंपृक्त होने पर भी इनकी भाषा मे प्रसाद की सहजता प्रायः बनी हुई है।

शब्दक्रीडा और शाब्दिक चमत्कार मे आसक्ति न होने के कारण ही 'मतिराम' ने यमकादि अनुप्रासों को छोड दिया। अर्थालंकारो के प्रसंग में वक्रोक्ति के अंतर्गत श्लेष और काकु के प्रसंग आ गए हैं। इसी कारण उन्होंने अनावश्यक आडंबर से बचने की कोशिश करते हुए, रसवत् आदि, भावोदयादि तथा प्रमाणादि अलकारो को 'ललाम' मे नही रखा। 'केशव', 'भूषण' की तरह आदि या अंत मे ग्रंथ के अलकारो की फेहरिश्त भी उन्होंने पेश नहीं की है।

'ललितललाम' का अलंकारनिरूपण

इस ग्रंथ के अलंकारों की संख्या लगभग १८० के पहुँची है। परंतु इनमें बहुत से अलंकार ऐसे है जिनमे मुख्य अलंकार का लक्षण दिया गया है। उनके अवांतर भेदो के लक्षण तो नहीं पर नामोल्लेखपूर्वक उपभेदों के केवल उदाहरण दे दिए गए है। कहीं कही उन अवांतर भेदों मे लक्षण और लक्ष्य दोनों वर्णित हैं। प्रथम कोटि के अलंकारों मे उपमा और रूपक को उदाहरणार्थ लिया जा सकता है। वहाँ मूल अलंकार के लक्षण और लक्ष्य तो हैं पर अवांतर भेदों के लक्षण नही है, केवल सनाम उदाहरण हैं। दूसरी कोटि के अलंकारों मे प्रतीप को उदाहरणरूप मे देख सकते हैं। वहाँ प्रतीप के मुख्य रूप और अवांतर भेदों का निरूपण सलक्षण उदाहरणो के द्वारा किया गया है। एक तीसरी पद्धति भी अपनायी गई है, यथा—अपह्नुति अलंकार के प्रसंग मे मूल अलकार का लक्षण और उदाहरण दिए बिना ही उसके अवांतर भेदों के सोदाहरण लक्षण उपस्थित कर दिए गए हैं। अतिशयोक्ति का निरूपण भी इसी तृतीय पद्धति पर हुआ है।

रूपक के लक्षण के अनंतर यद्यपि अधिक, हीन, सम-उक्तियों से संबद्ध तीन अवांतर भेद निर्दिष्ट है; परंतु उदाहरण में लक्षण के अंतर्गत वर्णित

अभिन्न और तद्रूप दृष्टियों के आधार पर छह उदाहरण रखे गए हैं। कहीं कहीं लक्षण शिथिल और अस्पष्ट रह गए हैं। पूर्णोपमा का लक्षण शिथिल है। और कहीं उदाहरण भी अस्पष्ट हैं, जैसे—रूपकातिशयोक्ति का। पर्यायोक्ति के विवेचन मे लक्षण के अंतर्गत प्रथम और द्वितीय—पर्यायोक्ति के दो भेद प्रस्तुत किए गए हैं। कहने का सारांश यह कि शास्त्रीय निरूपण की पद्धति मे यत्रतत्र शैथिल्य से—'मतिराम' के आचार्यपक्ष की स्वल्पदुर्बलता लक्षित होती है।

युगप्रभाव

'मतिराम' ने अलंकारत्व का लक्षण नही दिया है। हो सकता है कि काव्य मे रस को सर्वप्रमुखता देने के कारण उन्होंने अलंकार—लक्षण को उपेक्षणीय समझा हो। परंतु आधारग्रंथों—'साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश' आदि—में उक्त विषय की उपलब्धि में उनको कोई कठिनाई न थी। अत: अलंकार के अलंकारत्व, कार्य, प्रयोजन और उपयोगित्व आदि का कुछ परिचय न देना वस्तुतः शास्त्रीय पद्धति की उपेक्षा सूचित करता है। यह भी हो सकता है कि चमत्कारप्रेमी विलासी पाठकों की रुचि के अनुसार ही इस ग्रंथ की रचना हुई हो।

विभिन्न अलकारों के लक्षणों मे भी प्रायः लक्षणपद्य के पूर्वार्ध तक ही अत्यंत संक्षिप्त और परिचयात्मक वर्णन दिया गया है। उत्तरार्ध में 'अलंकार' और 'कवि' के नाम के साथ साथ प्रायः भरती के शब्द आ गए हैं। इस पद्धति के कारण सक्षिप्त लक्षण और भी सक्षिप्ततर होकर अकसर अपूर्ण एवं अस्पष्ट रह गया है। 'मतिराम' ही नही रीतियुग के अनेक रीतिबद्ध ग्रंथकारो में यह पद्धति लक्षित होती है। अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव—इन दोषत्रय से शून्य लक्षणरचना की पद्धति को इस युग के आचार्य-कवियों ने प्रायः नही अपनाया है। संक्षेपण की इसी प्रवृत्ति और उपेक्षा के प्रभाव से निर्दिष्ट लक्षणो में अपूर्णता और अस्पष्टता बहुत से स्थलों पर दिखाई देती है।

कुछ दूर तक 'मतिराम' ने अपने लक्षणों को संस्कृत के आधारभूत लक्षणार्थ की बोधकतासीमा तक पहुँचाने का प्रयास किया है। यथा-शक्ति लक्षणों को पूर्ण और बोधगम्य बनाने की ओर भी वे उन्मुख थे।

पर संक्षिप्तता एवं शास्त्रीय पक्ष के प्रति अनाग्रह और अनासक्ति के कारण अनेक स्थलों पर अपूर्णता या अस्पष्टता आ ही गई है। 'मतिराम के कुछ आलोचकों का मत है कि कहीं कहीं उन्होंने भ्रामक लक्षण भी दे दिए हैं—यथा अप्रस्तुतप्रशंसा का लक्षण 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण' और 'कुवलयानंद' में बताया गया है कि 'प्रस्तुत का आश्रय लेकर चलनेवाला अलंकार 'अप्रस्तुतप्रशंसा' कहा जाता है।'[१२] इसका तात्पर्य इतना ही है कि जहाँ प्रस्तुत का आश्रय लेकर अप्रस्तुत का प्रशंसन अर्थात् कथन या वर्णन (व्यंजित) किया जाता है वहाँ 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलंकार होता है। यहाँ 'प्रशंसा' शब्द का अर्थ 'तारीफ' या 'बड़ाई' नहीं अपितु केवल कथन या वर्णन (निंदा भी) करना है। पर 'मतिराम' यहाँ कहते हैं—

अप्रस्तुतै प्रशंसिए प्रस्तुत लीने नाम।
तहँ अप्रस्तुत परसंस को बरनन है 'मतिराम' ॥१७३॥

इसका उदाहरण है—

आनँन-चंद निहारि-निहारि नहीं तनु औ धन जीवन वारैं।
चारु चितौनि चुभी 'मतिराम' हिए मति कौं गहि ताहिं निकारैं॥
क्यों करि धौं मुरली मनि कुंडल मोरपखा बनमाल बिसारैं।
ते धनि जे ब्रजराज लखैं गृहकाज करैं अरु लाज सँभारैं॥१७४॥

इस लक्ष्य के चतुर्थ चरण में कहा गया है कि वे धन्य हैं, वे रमणियाँ सचमुच प्रशंसायोग्य हैं जो ब्रजराज को देखकर भी अपने घरबार का कामकाज ठीक से करती रहती हैं और लोकलाज सँभाले रहती हैं! आशय यह कि मनमोहन नंदनंदन की मुखमाधुरी विचित्र है! सहृदय और रसिक रमणी उस मुखसुषमा की मदिरा का पान करते ही अपने तन, मन, धन और जीवन—सब कुछ को उसी पर निछावर कर देती हैं! मदनमोहन के मादक

---

१२. (१) काव्यप्रकाश—अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया। (१०।९८)

(२) साहित्यदर्पण—अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् सा यत्र प्रस्तुताश्रया। (१०।५८।६०)

(३) कुवलयानंद—अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् सा यत्र प्रस्तुताश्रया। (६६)

नयनबाण से घायल हो वे सुधबुध तक भूल जाती है ! आनंदकंद रसमूर्ति की बाँकी भगिमा, उनकी मुरली, लोल मनिकुडल, बनमाल और मोरपंख से युक्त उनकी याद को भुला सकना असंभव है ! इन्ही के प्रभाव मे पडकर ही तो गोपियाँ अपनी मर्यादा, लोकलाज, घरबार और कामकाज—सब कुछ बिसारकर वृंदावनबिहारी की याद में उन्मत्त बन गई है । जो इन सब प्रभावो से अपनी रक्षा करके स्वस्थ बनी रहती है वे रमणियाँ धन्य है ! उनका हृदय रसहीन है, वे मदनरस से अनभिज्ञ है ! यहाँ पर प्रस्तुत पद्य मे जो प्रशंसा है वह प्रस्तुत तो तत्वतः अधन्यता का ही बोधक है । पर उसी प्रस्तुत के माध्यम से 'गोपियो' की श्यामसुदर के प्रति अविचल और गाढ़तम प्रीति तथा सर्वस्वसमर्पण का अनन्य भाव प्रशंसित है । यद्यपि 'अप्रस्तुतप्रशंसा' मे 'वर्णन' या कथन के साथ साथ प्रशंसा या निंदा भी, उत्कर्षकथन भी, वैशिष्ट्यनिर्देश भी, छिपा रहता है पर उसका साक्षात् अर्थाग्रह नही रहता, शंसनव्याज से वह व्यंग्य सा रहता है ।

उदाहरणोपन्यास की पद्धति

'ललाम' के उदाहरणभूत बड़े छंदों मे बहुधा दिखाई देता है कि अंतिम चरण मे ही प्रायः प्रतिपाद्य अलंकार का लक्ष्य उपस्थित किया गया है । पर सर्वत्र ही ऐसा हो यह बात नहीं है । 'हिंदी अलंकार साहित्य' नामक ग्रंथ मे भी ओम्प्रकाश ने लिखा है—'जो उदाहरण कवित्त या सवैयों मे दिए गए हैं उनके पहले तीन चरण से अलंकार का प्रायः सबंध नही है । केवल चौथा चरण ही पर्याप्त समझा जा सकता है । इतना ही नही, अनावश्यक चरण पाठक को भ्रम में भी डाल सकते है । यह वर्णनप्रियता आचार्यत्व मे सर्वत्र बाधक है' (प्र० स०, पृ० ६७) । परंतु इस प्रसंग में स्मरण रखने की बात यह है कि इस पद्धति को अपनाने से उदाहरणीय वस्तु में स्पष्टता आ गई है । अंतिम चरण को उदाहार्य मानकर पाठक की जिज्ञासु दृष्टि—उदाहरणदर्शनार्थ—चट से वहीं जा पहुँचती है और वह उसी चरण में उदाहरण का ईक्षण और संगमन ढूँढने लगती है । लक्षणार्थबोध में —पाठक की दृष्टि से—स्पष्टता आ जाती है ।

'मतिराम' ने यह बचाने का भी यत्न किया है कि वर्ण्य अलंकार के अतिरिक्त अन्य अलंकारों की भीड़ मे कथ्यवस्तु प्रपंचग्रस्त न हो जाय । परंतु

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि सर्वत्र ही चौथे चरणवाली पूर्वोक्त पद्धति ही नियोजित है। छोटे छंदों अर्थात् दोहो मे तो इस पद्धति का अनुसरण प्रायः बहुत कम है। बडे छंदों मे भी कहीं कहीं अलकार का उदाहरण चतुर्थ चरण से भिन्न अन्य चरणो या पूरे पद्य मे भी दिखाई पड़ सकता है।

अनेक अलकारो के उदाहरण केवल दोहो मे है। दोहो के साथ साथ बहुत से स्थलो पर कवित्त या सवैया आदि का प्रयोग भी लक्ष्योपस्थापन मे किया गया है। कुछ ऐसा अनुमान करने का सकेत मिलता है कि जिन अलंकारो के अलंकरणत्व मे कवि का मन कुछ अधिक रमा और भावुक सहृदयता के स्वच्छंद विलसन को सहज अवकाश मिला वहाँ कवि ने उल्लास-पूर्वक छोटे छदो के साथ बडे छंदो का भी नियोजन किया है और एक से अधिक उदाहरण लक्ष्यायित हुए है। पर जहाँ मन को विश्राम नहीं मिल सका वहाँ केवल दोहा या सोरठा मे उदाहरण देकर त्वरित गति से कवि—रम्यस्थली का अनुसधान करता हुआ—आगे बढ़ गया। उक्त कथन की पुष्टि में स्मृति, भ्रम और संदेह के लक्षण-लक्ष्य-प्रसंग देखे जा सकते है। स्मृति का उदाहरण एक दोहे मे है, भ्रम का दो दोहो एक सवैया मे तथा संदेह का परंपरागत शैली मे रचित उदाहरणभूत कवित्त के चारों चरणो मे प्रदर्शित हैं। इस प्रसंग मे भ्रम का उदाहरण (सवैया) अत्यत ललित है और भाव-माधुरी की सरसता से मोहक एव उल्लसित है—

मान कियौ सपने मैं सुहागिनि भौंहैं चढ़ी 'मतिराम' रिसौंहैं।
बातैं बनाय मनाय लई मनभावन कंठ लगाय हसौंहैं॥
एते अचानक जागि परी सुख ते अँगिरात उठी अलसौंहैं।
लालन के लखि लोचन लाज ते होत न बाल के लोचन सौंहैं॥

इस लक्ष्य मे अभिव्यक्ति की मधुरिमा और काव्य का लालित्य पर्याप्त है। सुहागिन और सौभाग्यशालिनी बाला सपने मे मान करती है। फलतः रिसौंही भौंहे (कुटिल होकर) चढ़ जाती हैं। पर मनभावन नायक भी बडा चतुर है। इधर उधर की बाते बनाकर मानिनी को मना लेता है और उस नायिका को कंठ से लगा लेता है, उसकी रिसौंही मुद्रा के स्थान पर हँसौंही चेष्टाएँ झलकने लगती हैं। इतने मे बधू की नींद खुल जाती है। उसका मन और शरीर स्वप्नानुभूत आसन्न सुख के पुलक से भर उठता है। तंद्रिल बाला आलसभरी अँगड़ाई लेती हुई मानो जगकर भी कंठाश्लेष वा सुखभोग करती हुई उठती है। इतने मे वह अपने पार्श्वस्थ उस मनभावन के नयनों को देखती है

जिसके लोचन उसी की ओर बड़े रस और अनुराग के साथ निहार रहे हैं। बाला की आँखें लज्जा से भर उठती हैं। उसके नयन झुक जाते हैं, लाज के मारे वह अपने रमण की आँखों के संमुख देखने मे भी असमर्थ हो उठती है!

नायिका के इस शबल भावचित्र में रमणी का अत्यंत सहज पर मुग्धकर रूप अंकित हुआ है। फिर भी काव्यत्वचारुता के बावजूद भ्रमरूप वर्ण्यालंकार की सुसगति की अपेक्षा उसमें स्मृति के व्यजन की झलक अधिक रुचिकारी है।

छोटे छंदोंवाले उदाहरणों के विषय मे ऊपर कहे गए वक्तव्य का मतलब यह नही कि सर्वत्र उनमें कवित्व एवं तन्निष्ठ लालित्य का अभाव ही है। उनमें भी अनेकत्र अत्यत सरस अभिव्यक्तियाँ मिलती है, जैसे नीचे उद्धृत गुणोत्प्रेक्षा का उदाहरण है—

बाल रही इकटक निरखि ललित लाल-मुख-इंदु।
रीझभारि अँखियाँ थकीं झलके श्रम जल बिंदु॥ ११॥

इस दोहे में सात्विक भावजन्य स्वेदकणो के कारण जिस रीझभार से आँखों के थकने की संभावित कल्पना की गई है वह निश्चय ही नायिका की भावभास्वर प्रतिमा खड़ी कर देती है। यहाँ नायिका सब कुछ भूलकर, सुधबुध खोकर लाल के ललित मुखचंद्र को मुग्ध भाव से देख रही है और उसी अनुरागमयी आसक्ति के कारण उसकी आँखें—प्रीतिजन्य सुखबोध से रीझ का अति भार वहन करने के कारण—थक गई हैं। थक जाने से—भारवहनश्रांत होने से—गतिहीन हो गई हैं, एकटक निहारती ही रह जाती हैं। वहाँ से हट नहीं पाती हैं। वहाँ से तनिक भी हटने मे अशक्त हो गई है। उसी रीझभार के श्रम से स्वेद के कण प्रकट हो गए है जो उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। पर्याय के द्वितीय प्रकार (अनेक मे एक) का उदाहरण नीचे प्रस्तुत है—

सखी तिहारे दृगन की सुधा मधुर मुसकानि।
बसी रहत निसिद्योसहूँ अब उनकी अँखियानि॥ २६९॥

इस उदाहरण में अलंकार का प्रतिपादन सामान्य होने पर भी भावचित्र रमणीय है। आँखों की अमृतमधुर मुसकान का वर्णन लक्षणाजन्य व्यंग्यार्थ से अत्यंत सजीव और चित्रमय होकर उभर उठा है। आँखों का मुसकाना और उसमे सुधा की माधुरी—ये दोनो भावमय चित्र—रसपरिधि के जिस अंश का स्पर्श करते है उसकी रुचिरता मन को मोह लेती है। ऐसे उदाहरण—'ललित' से—अनेकानेक दिए जा सकते है।

दूसरी ओर दोहों के ऐसे उदाहरण कम नहीं हैं जिनमे कवि का मन न रमने से अलंकारप्रयुक्त चमत्कारसृष्टि तो हुई है पर वहाँ भावचारुता के चटकीलापन या मोहकत्व का निखार नहीं लक्षित हो पाता। ऐसे लक्ष्यों मे कही तो ऊहात्मक चमत्कार का निदर्शनमात्र ही है और कहीं कहीं उदाहार्य प्रस्तुत करने का कर्तव्यमात्र निबाहा गया है जैसे—

जे निसदिन सेवन करैं अरु जे करैं बिरोध।
तिन्हैं परमपद देत हरि, कहौ कौन यह बोध ॥ १३४ ॥
[द्वि० तुल्ययोगिता]

बिप्रनि के मंदिरनि तजि करत ताप सब ठौर।
भावसिंह भूपाल को तेजतरनि यह और ॥ ७२ ॥
[हीनोक्तिरूपरूपक]

कविजन कल्पद्रुम कहैं, ज्ञानी ज्ञानसमुद्र।
दुर्जन के गन कहत हैं, भावसिंह रन-रुद्र ॥ ७८ ॥
[द्वि० उल्लेख]

बड़े छंदवाले उदाहरणों में भी ऐसे लक्ष्य मिलते हैं जिनमें लक्षणानुसारी चमत्कारिक अलंकरण के रहने पर भी भावसौंदर्य की न्यूनता है।

इन विवेचनो का निष्कर्ष यह है—(१) 'मतिराम' में आचार्यपरक विवेचनप्रौढ़ता की कमी है। भावुक और स्वच्छंदवृत्तिवाले, कल्पनाप्रवण कलाकार की प्रतिभा का उन्मेष - उनमे अधिक लक्षित होता है। 'मतिराम' मनसा, वृत्या और प्रकृत्या कवि थे आचार्य नही पर युग की प्रवृत्ति, रूढ़ि और प्रवाह के वशीभूत होकर उन्हें आचार्य के आसन पर बैठना ही पड़ गया। (२) उनके अलंकारशास्त्र से संबद्ध ग्रंथ रीतिकालीन काव्यरूढ़ि के अनुगामी हैं। (३) उनके लक्षणनिर्देश मे संक्षिप्त कथन की प्रणाली अपनाई गई है और उसके कारण—लक्षणों मे शास्त्रीय शैली की विवेचनाप्रौढ़ि का अभाव है। (४) उनके लक्षण प्रायः सरल, सुबोध, स्पष्ट और विवेच्य के साधारण परिचायन मे समर्थ हैं। संक्षिप्त और परिचयात्मकमात्र होने पर भी अधिकतः शुद्ध, स्पष्ट और उलझनों से दूर हैं। लक्षण, लक्ष्य—दोनों में सफाई है। (५) संक्षिप्ति के कारण कही कहीं लक्षणों मे अस्पष्टता, कहीं कहीं पूर्ण-लक्षणार्थबोधकता का अभाव और कभी कभी त्रुटि या भ्रांति भी मिल जाती

है। 'ललितललाम' के लक्षणों में संस्कृत के अलंकारग्रंथों के लक्षणो सी कसावट, स्पष्टता और पूर्णता कम ही है। (६) अर्थबोध की पूर्णता और स्पष्टता के विचार से—'चन्द्रालोक' और 'कुवलयानंद'— दोनों मुख्य उपजीव्य ग्रंथो के अतिरिक्त 'काव्यप्रकाश', साहित्यदर्पण' आदि से भी कभी कभी सहायता ली गई है। (७) प्रायः लक्ष्यभूत पद्य, सरस, सुबोध, काव्य-लालित्य से युक्त है। कुछ उदाहरणों मे अपवादस्वरूप—अस्पष्टता, भ्रांति अथवा लक्षणानुसारी लक्ष्यासंगति आदि भी मिल जाती है। इनकी संख्या अधिक नहीं है। (८) यमक आदि शब्दालंकारों, अलंकृतचित्रकाव्यादि तथा रसवत् प्रभृति एवं भावसंधि आदि अलंकारों को 'ललितललाम' मे स्थान नहीं मिला है। (९) कुछ अलंकारों के उदाहरण कवित्त, सवैया आदि बड़े और दोहा आदि छोटे—दोनो प्रकार के छंदों मे है, पर कुछ के उदाहरण छोटे छंदों में ही हैं।

सतसई : हस्तलेख और आश्रयदाता

बहुत दिनों तक 'मतिराम' की सतसई का ज्ञान नहीं रहा। 'शिवसिंह—सरोज' और 'मिश्रबंधुविनोद' के आरंभिक सस्करणों मे इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। सभा द्वारा प्रकाशित १९०९-११ की खोज रिपोर्ट (पृष्ठ २८९-८६) मे फतेहपुर के शिवदुलारे दुबे के यहाँ 'सतसई' के संपूर्ण हस्तलेख की सूचना मिली जिसे उन्होने गगापुस्तकमाला के अधिकारियों को बेच दिया। परंतु इसमे तिथि का उल्लेख नही है। पं० कृष्णबिहारी जी की 'मतिराम' ग्रंथावली की भूमिका मे इस ग्रंथ को गंगा पुस्तकमाला वालों के यहाँ देखने का विवरण मिलता है। इसी के साथ साथ 'श्री भवानीशंकर याज्ञिक' के पास भी एक खंडित प्रति उन्हे देखने को मिली। कागज और लिपि के आधार पर मिश्र जी का अनुमान है कि संभवतः उक्त दोनो प्रतियाँ एक ही लेखक द्वारा हस्तलिखित है। परंतु याज्ञिक जी की खडित प्रति अधिक शुद्ध है। हरताल लगाकर पुस्तक शुद्ध भी की गई है। संवत् का १७ अंक तो पढ़ लिया जाता है और अंत का ४ भी। पर बीच का अंक अपाठ्य है। अतः उक्त प्रति १७९४ से बाद की नही हो सकती। खोज रिपोर्ट की प्रति में ८४० दोहे बताए गए हैं। 'सतसई' की रचना किसी 'भोगनाथ' नरनाथ के लिये बताई गई है। 'सतसई' के निम्नांकित दोहों में उनकी प्रशंसा है—६१२, ६१३, ६२३, ६२४, ६४४, ६४६, ६६६, ६७०, ६९३-९६ तथा ७०२।

इस स्थिति में 'सतसई' का रचनाकालनिर्धारण तब तक अनिश्चित है जब तक 'भोगनाथ' का समय असंदिग्ध रूप से ज्ञात न हो जाय। इसके अनेक दोहे 'रसराज' और 'ललितललाम' मे भी मिलते है, यहाँ तक कि 'ललितललाम' का मंगलाचरण भी इनमे गुँथा हुआ है। इसके आधार पर मिश्र जी का अनुमान है कि 'सतसई' की रचना 'रसराज' और 'ललितललाम' के बाद हुई है।

पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित ने 'भूषणविमर्श' (पृ० १६) मे 'भोगनाथ' का स्थान 'जंबू' बताया है। पर डा० महेंद्रकुमार इस मत से असहमत हैं। उनका अनुमान है कि शिवाजी के सहायकों या समर्थकों में कोई 'भोगनाथ' रहा होगा और वह संभवतः बुंदेलखंड अथवा कूर्माचल का मामूली शासक या सामंत था। 'सतसई' मे शिवाजी की प्रशंसा का भी एक दोहा है—

सुजस ओज सों साहसुत सिवा सूर सिरदार।
सरदचंद आतप कियो सुचि आतप इक बार ॥३२४॥

इस पद्य को शिवाजी के प्रति श्रद्धांजलि मानकर डा० महेद्र कहते हैं कि इसकी रचना शिवाजी की मृत्यु (१७३८ वि०) के पश्चात् हुई होगी। अतः उक्त 'भोगनाथ' भी इसी समय के आसपास रहे होंगे। उनके विचार से भी इसकी रचना 'ललितललाम' एवं 'रसराज' के बाद की है। सारांश यह कि प्रस्तुत ग्रंथावली के संपादक पं० कृष्णबिहारी जी की कल्पना को वे भी मानते हैं। पर भोगनाथविषयक दीक्षित जी के मत को अग्राह्य कहते हुए उनका स्थान पूर्वोक्त जगहों मे से कही अनुमान करते हैं।

खोज रिपोर्ट २३-२५ में 'सतसई' के एक हस्तलेख का विवरण पुनः प्रकाशित हुआ जिसे दीक्षित जी आगरा के पास का बताते हैं। इसके श्लोको (दोहों) की संख्या ७१६ है और अंत मे अंकित है कि विविध विषय के ७०५ श्लोकों का संग्रह समाप्त। डा० त्रिभुवनसिंह ने इसके अतिरिक्त नागरीप्रचारिणी सभा की प्रतिलिपि का भी उल्लेख किया है जिसका लिपिकाल अत्यंत अर्वाचीन (ज्येष्ठ कृष्ण १५ सं० १६८३ दिया हुआ) है। ७०३ दोहों पर इसकी समाप्ति है। यह 'रत्नाकरसंग्रह' का हस्तलेख है जिसकी प्रतिलिपि 'रत्नाकर जी' ने कहीं से कराई थी। डा० त्रिभुवनसिंह का कथन है कि प्रायः सभी प्राप्य प्रतियों के आरंभ मे उपलब्ध ५ दोहे तक के अंश मिल जाते हैं।

भवानीशंकर जी याज्ञिक की खंडित प्रति के कुछ दोहे खोज रिपोर्ट से भी मिल जाते हैं। इनका मत यह है कि 'मतिराम' के मुख्य आश्रयदाता भाऊसिंह के अतिरिक्त और कोई नहीं था उसी काल मे इसका निर्माण हुआ रहा होगा। 'भोगनाथ' के आश्रयदातृत्व मे इसके निर्माण का भ्रम 'बिहारीसतसई' की निर्माणप्रेरणा के आधार पर है। बिहारी को आश्रयदाता द्वारा प्रत्येक दोहे के लिये द्रव्य का मिलना परंपरया माना जाता है।

परंतु 'भोगनाथ' से ऐसा कोई सबंध 'मतिराम' का कहीं सूचित नहीं मिलता जिससे शासनस्थान, निवास और समय के विषय में निश्चित संकेत मिले। यहाँ केवल अनुमान ही आधार है। अतः उनको 'सतसई' का प्रेरक और 'मतिराम' का आश्रयदाता मानना अत्यंत विचारणीय और विवदनीय है। 'भोगनाथ' संबंधी दोहो से 'श्लेषार्थ' के आधार पर इतना ही सूचित होता है कि देवगुरु बृहस्पति के हितवचनों को सुनते और मानते हुए देवराज इंद्र जैसे देवताओं के साथ रहते थे वैसे ही गुरुजनों के हितवचनो को भूमिशूरनाथ, भोगनाथ भी सुनते या कान देते हुए पंडित या गुणीजनों के साथ या उनसे घिरे हुए रहते थे। और रस मे पगे हुए रहनेवाले नरपति 'भोगनाथ' शरणागतों के महापालक, अत्यंत धीर, दान और युद्ध मे वीर थे।

त्रिभुवनसिंह का अनुमान है कि सामान्य प्रशंसा के रूप में किसी समय 'भोगनाथ' से उपकृत और संमानित होने के कारण 'मतिराम' ने उन दोहों को लिख दिया होगा जिनमे 'नरनाथ' शब्द भी महत्त्वहीन है। बाद में 'सतसई' के सग्रहकर्ताओ ने इन दोहो को 'मतिराम सतसई' मे जोड दिया होगा। इन दोहों का रचनाकाल (त्रिभुवनसिंह के मत से) सं० १७१९ और १७३३ वि० के बीच होने पर भी—इस काल को **सतसई** का रचनाकाल मानने में कोई प्रमाण नहीं है। वैसे भी सं० १७१९ से १७३८ वि० तक महाकवि के आश्रयदाता बूँदी नरेश ही माने जाते हैं जिनके दान और संमान का उल्लेख पहले हो चुका है। अतः उस समय के बीच किसी 'भोगनाथ' के आश्रयदातृत्व और उनके संमान मे 'सतसई' के निर्माण का अनुमान—आपाततः—अमाननीय लगता है। इसके अतिरिक्त 'सतसई' के ७०२ संख्यक दोहे में—'भोगनाथ' के प्रति आशीर्वादात्मक कुछ पद्यों में भी—उनके सामंत या जागीरदार का रूप ही संकेतित है।

रचनाकाल

'सतसई' की रचना (किसी कालसीमा के अंतर्गत) ७०० दोहों के संग्रह-योजना को मानकर हुई या नहीं यह भी अनिश्चित है। यह भी ठीक ठीक पता नही कि 'सतसई' रूप में इसका संग्रथन 'मतिराम' के जीवनकाल में हुआ था या नही। इन सब बातों का विचार करते हुए डा० त्रिभुवनसिंह का मत है कि इस विवेच्य कृति के छंदो की रचना किसी निश्चितकालसीमा के भीतर नहीं हुई थी अपितु समय समय पर इनका निर्माण होता रहा। क्योंकि 'सतसई' मे लगभग २५० ऐसे दोहे हैं जो 'रसराज' और 'ललित-ललाम' मे उदाहृत है। इनमे से अधिकतः ऐसे हैं जो स्व-स्वरूप मे ही लिए गए हैं और कुछ ऐसे हैं जो लक्षण के अनुकूल सामान्य परिवर्तन से प्रभावित होकर लक्ष्य के रूप मे गूँथे गए हैं। डा० सिंह ने एक दोहे के विभिन्न सस्कारवाले रूपों को उद्धृत किया है—

बाल निहाल भई लखे ललित लाल मुख इंदु।
मनु पियूष बरषा भई नैननि झलके बिंदु ॥२१३॥

—सतसई

बाल रही इकटक निरखि लाल बदन अरबिंदु।
सियराई नैनन परी पियराई मुख इंदु ॥३२२॥

—रसराज

बाल रही इकटक निरखि ललित लाल मुख इंदु।
रीझभार अखियाँ थकी झलके श्रम जल इंदु ॥११०॥

—ललितललाम

इन भिन्न पाठसंस्कारो के आधार पर उन्होने कल्पना की है कि मूलतः यह या ऐसे अन्य दोहे स्वतंत्र रूप से अथवा 'सतसई' के लिये ही पहले लिखे गए होंगे और बाद में 'रसराज' या 'ललितललाम' मे लक्षणानुसारी परिष्कार-सहित लक्ष्यरूप में ढाल दिए गए। अतः 'सतसई' या उसमें संगृहीत दोहे 'ललितललाम' और 'रसराज' की रचना से पूर्व ही निर्मित होने लगे होंगे। इस सबंध में श्री त्रिभुवन सिंह का निष्कर्ष यह है—'मतिराम के जो दोहे किसी अन्य रचना में नही मिलते (केवल सतसई में हैं)—अवश्य ही उनकी रचना समय समय पर होती रही है। 'भोगनाथ'-संबंधित दोहों की रचना के बाद इन सबको 'मतिराम सतसई' के नाम से संभवतः संगृहीत कर दिया गया।

कभी स्वयं कवि ने ही—अपने पिछले दिनों मे (हो सकता है)—अपने इन दोहों को एकत्र कर दिया हो। 'भोगनाथ' का समय सं० १७१५ और १७२० के पहले और पीछे कभी भी हो सकता है। ऐसी स्थिति मे यह कहना कठिन है कि 'मतिराम सतसई' का सग्रह कब और किसने किया था, किंतु इतना निर्विवाद है कि इसके श्रेष्ठ दोहे 'रसराज' और 'ललितललाम' के पूर्व लिखे जा चुके थे।'

डा० महेद्रकुमार का कथन है कि चूँकि 'सतसई' मे 'भोगनाथ' की प्रशस्ति के १६ दोहे मिलते हैं, इसमे अनुमान होता है कि यह ग्रथ उन्हीं को समर्पित किया गया है। उनके इस कथन का निष्कर्ष यह भी निकलता है कि प्रस्तुत संग्रह स्वयं 'मतिराम' ने 'भोगनाथ' के प्रसादनार्थ किया। अंत के दो आशीर्वादात्मक दोहे संकलनसमाप्ति के सूचक होने के साथ साथ बिखरे दोहों के 'सतसई' मे संग्रथन को सूचित और समर्थित करते हैं।

उपर्युक्त समस्त मतमतांतरो की विवेचना और 'सतसई' मे 'भोगनाथ'-संबंधी दोहो का सकलन तथा उक्त नरेश की प्रशस्ति सूचित करती है कि 'मतिराम' के दोहो का 'सतसई' के रूप मे संग्रथन—संभवतः—'मतिराम' के द्वारा ही हुआ। संकलनसमाप्ति के समय तक महाकवि का संपर्क 'भोगनाथ' के साथ स्थापित हो चुका था। संकलनसमाप्ति भी शायद उसी समय हुई जब किसी न किसी रूप मे—भोगनाथ' से 'मतिराम' संबद्ध थे। हो सकता है कि राजसभा या उनके आश्रय मे भी कवि 'मतिराम' कुछ दिनो रहे हों। डा० त्रिभुवनसिंह के मत से इसका संकलनकर्ता स्वयं कवि था या अन्य कोई—संदिग्ध है। पर यह मत अनुमानपुष्ट भी नहीं जान पडता। जिस रूप मे 'सतसई' हमारे सामने उपलब्ध है उस रूप मे यदि वह संकलित की गई तो सामान्यतः यही जान पडता है कि स्वयं कवि ने ही वह कार्य किया है। क्योकि उपसंहारात्मक आशीर्वाद और प्रार्थना से संबद्ध दो दोहे—अंत मे ही रखने का आशय स्पष्टतः कुछ संकेत करता है।

डा० त्रिभुवनसिंह का कथन है कि 'भोगनाथ' का समय १७१५ और १७२० वि० के पहले और बाद हो सकता है। सामान्यतः यह ठीक सा आभासित होता है; क्योंकि 'मतिराम' और 'भाऊसिंह' का घनिष्ठ संबंध इन्हीं ५ वर्षों बूँदी मे रहा। इसके बाद बूँदीनरेश १७२२-२३ से १७३८ वि० तक अपने जीवन के अंतपर्यंत, अपने राज्य से दूर—औरंगजेब की ओर से

युद्ध करने में लगे रहे।[13] अतः 'भोगनाथ' का समय—उपर्युक्त दोनो काल हो सकते हैं। परतु अधिक संभावना यही जान पड़ती है कि 'राव भावसिंह" के निधन या कम से कम उनके बूँदी से दूर रहने के काल में ही 'मतिराम' का 'भोगनाथ' से सपर्क स्थापित हुआ रहा हो। उन्हीं वर्षों मे मतिराम सतसई के वे दोहे निर्मित हुए जिनमे 'भोगनाथ' का उल्लेख है। यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान मे रखने की है कि 'भोगनाथ' का उल्लेख करने वाले जो १८ दोहे सतसई मे हैं वे सबके सब सतसई के षष्ठशतक के बाद ही आए है। इसका एक अर्थ यह हो सकता है कि सतसई की

१३. डा० महेंद्रकुमार ने अपने शोधप्रबंध—'मतिरामः कवि और आचार्य' (पृ० ५०) में लिखा है—इसके पश्चात् अर्थात् संवत् १७२२ वि० के बाद इस ग्रंथ (ललितललाम) का रचनाकाल इसलिये भी नहीं माना जा सकता, क्योकि भाऊसिह बूदी में नहीं रहे। संवत् १७२२ वि० में जयसिंह की शिवाजी से सधि हो जाने के पश्चात् ये जैसे ही लौटे, वैसे इन्हें संवत् १७२३–२४ वि० में चाँदा के युद्ध में सलग्न रहना पड़ा और फिर औरंगजेब ने इन्हें शाहजादे मुअज्जम के साथ औरंगाबाद भेज दिया, जहाँ ये जीवन पर्यंत रहे।"

अपने उपर्युक्त कथन का प्रमाण भी डा० महेन्द्र ने उसी पृष्ठ की पाद-टिप्पणी (संख्या ५) में दिया है। इसके पूर्व के पृष्ठ (४६) मे उन्होंने 'मआसिरुल उमरा' (अनुवादक श्री ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण पृ० २५६) के आधार पर 'रावभाऊ' का जीवनान्त सवत् १७३४ वि० बताया है।

इन सबका निष्कर्ष कम से कम इतना अवश्य निकलता है कि भाऊ-सिंह संवत् १७२० वि० से १७२२ तक दिल्ली रहे और उसके बाद कदाचित् १७२३–२४ वि० से जीवन के अंत समय तक अधिकतः वे बूँदी से बाहर रहे। मतिराम सतसई के 'शिवाजी'–प्रशस्तिपरक (३२४) दोहे की संगति बैठाने के लिये कुछ विद्वानो ने उसे शिवाजी की मृत्यु के बाद दी गई श्रद्धाजलि मान ली है। कहा जा चुका है (पृ० ३५–३६) कि 'अलंकारपंचाशिका' की रचना 'उद्योतचंद ज्ञानचद' के लिये सं० १७४५ में बतायी जाती है। अतः उसके पूर्व 'सतसई' का संग्रहण मानना कदाचित् अनुचित न हो।

नहीं मिलते जिससे यह कभी भी इस काल की रचना नहीं हो सकती। इसकी रचना या तो संवत् १७३८ के पश्चात् या संवत् १७१२ के पूर्व हुई होगी जब कि 'मतिराम' जी को रावभाऊसिंह का आश्रय नहीं मिला था", (ग) "इसमे संदेह नहीं कि 'मतिराम-सतसई' के दोहों की रचना एक निश्चित कालसीमा के भीतर नहीं हुई। इसकी रचना कवि द्वारा विभिन्न समयों पर होती रही"; (घ) "इस प्रकार 'मतिराम सतसई' का आरंभ उस समय हो गया था, जब 'रसराज' और 'ललित-ललाम' की रचना नहीं हुई थी"; (ङ) "···भोगनाथ संबधी दोहो की रचना के बाद 'मतिरामसतसई' के दोहे संगृहीत कर दिए गए होंगे या कवि ने स्वयं अपने पिछले दिनो मे कर दिया होगा।"—

[महाकवि मतिराम०— डा० त्रिभुवन सिंह—पृ० १४७–१४६]

इन उद्धरण-खंडों को यहाँ दिखाने का तात्पर्य यही है कि डा० सिंह के सिद्धांतपक्षीय मत से 'मतिराम' की सतसई का संकलन बहुत बाद मे हुआ, चाहे कवि ने अपने पिछले दिनोमे यह कार्य स्वयं किया हो या अन्य संग्रहकारो ने। और यह हुआ भोगनाथ संबंधी दोहों की रचना के बाद। उक्त सतसई के अनेक श्रेष्ठ दोहे 'रसराज' और 'ललितललाम' की रचना के पूर्व ही रचित हो चुके थे।

डा० सिंह का उपर्युक्त मतसार प्रायः उचित जान पड़ता है। आगे-पीछे की उनकी पंक्तियों व्यक्त विचार कहीं कहीं अपने सिद्धांतपक्ष के निर्णयों से व्यतिरिक्त भी हैं। इनका परीक्षण समीक्षण—कुछ विस्तार के साथ आगे किया जा रहा है।

मेरे विचार से भी रसराज या मतिराम सतसई के अधिकांश भाग की रचना निश्चय ही सं० १७१९ अर्थात् बूँदी नरेश से 'मतिराम' की संबध-स्थापना के पूर्व हो चुकी थी। अन्यथा, कम से कम 'रसराज' में बूँदी नरेश की चर्चा का कोई न कोई पद मिल जाता। पर इसका यह अर्थ नहीं, जैसा

किया गया बिहारी सतसई के अनुकरण पर। वह समय निश्चय ही—डा० सिंह के मत से-सं० १७२५ और १७३३ के बाद का होगा। क्योंकि सतसई-रूप में ग्रंथन के पहले ही भोगनाथ के संबंधवाले दोहे निर्मित हो चुके थे।

डा० त्रिभुवन सिंह मानते हैं कि 'रसराज' और 'सतसई'—दोनों की रचना सं० १६९० तक हो गई थी।

इस मत को न मानने के कारण हैं। "सं० १६८० तक जिस कवि ने फूलमंजूरी के सदृश शिथिल और उत्कर्षहीन रचना की थी—उसने बाद के दस वर्षों मे ही रसराज और सतसई के (कम से कम भावव्यक्ति की दृष्टि से प्रौढ एवं रम्यतम) दोहों की ऐसी रचना कर डाली जो उनके कृतित्व मे चरमोत्कर्षवान् कहा जा सकता है और उसके अनंतर उनकी भावाभिव्यक्ति—भावोल्लास के उस धरातल तक कभी पहुँच ही न सकी"—ऐसा नहीं मान सकते। हाँ, यह कह सकते हैं कि स० १७१५ के पूर्वतक रसराज की रचना हो चुकी थी और तब तक 'मतिराम' (जो दोहा छंद मे भावव्यक्ति के उत्कृष्ट कलाकार थे और जो फूलमंजरी के दोहों की रचना से ही संभवतः सत्कवियों की शृंखला मे ग्रथित हुए थे) द्वारा रचित मुक्तक दोहों की संख्या भी काफी हो चुकी थी। इन दोहों मे से सुंदर और लक्षणानुरूप छंदों को तद्वत् या ईषत् परिवर्तन के साथ यथावसर रसराज और ललितललाम मे स्थान दिया गया। प्रौढावस्था मे बिहारी सतसई की कीर्ति और प्रसिद्धि से प्रभावित होकर 'मतिराम' ने भी अपने हजारो दोहों मे से ७०० दोहों को लेकर सतसई का संकलन किया। उस समय रसराज और ललितललाम के कुछ चारुतर दोहे भी वहाँ पिरो दिए गए।

"सं० १६९० तक या उसके पूर्व ही 'मतिराम' के भावपक्षीय कविकर्म का उत्कर्षशाली निर्माण समाप्त हो चुका था और तदनतर साठ वर्षों से भी अधिक काल तक वे कलापक्ष के काव्यनिर्माण-सबंधी कौशल की केवल लीक पीटते चले गए"—यह सिद्धांत मान्य नहीं हो सकता। अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि सं० १७१५ के पूर्व (बूँदी राज्याश्रयारभ से पहले) सभवतः रसराज निर्मित हो चुका था। जहाँतक उत्कृष्ट भाववाले दोहों का प्रश्न है—उनमे से बहुसंख्यक दोहे भी 'मतिराम' तबतक बना चुके थे। पर सतसई-सकलन का कार्य बहुत बाद मे हुआ। रसराज के विषय मे असदिग्ध रूप से यह कहना भी कठिन है कि सं० १७२२ के बाद उसकी रचना नही हुई। हो सकता है कि जब बूँदीनरेश—औरंगजेब की आज्ञा से स० १७२२ के बाद अनेक वर्षो के लिये युद्ध करने चले गए थे तब 'मतिराम' अपने घर रहने लगे रहे हों और उसी समय रसराज निर्मित हुआ हो। क्योंकि असंदिग्ध और निर्विवाद रूप से रसराज—

'मतिराम' की उत्कृष्टतम रचना है और इसकी निर्मिति तभी हुई होगी जब कवि की कारयित्री प्रतिभा सर्वाधिक प्रौढ़ हो चुकी थी। ६०-६२ वर्ष की अवस्था के बाद कवि रसराज मे प्रदर्शित श्रृंगारी भावोल्लास के तुल्य भावप्रकाशन में असमर्थ हो जाता है—यह पूर्वाग्रह सर्वथा संगत नहीं है। 'रामचंद्रिका' के लेखक कविवर केशवदास के बारे में कहा जाता है कि श्वेतकेश हो जाने पर तरुणियो द्वारा 'बाबा' का संबोधन उनके हृदय को व्यथित कर देता था। तब यदि ६०-६२ वर्ष की काव्यरचना की प्रौढ़तम अवस्था मे रसराज का निर्माण हुआ हो तो असंभव नहीं कहा जा सकता। अतः इतना मान लिया जा सकता है कि रसराज की रचना सभवतः स० १७१५ वि० के पूर्व हो चुकी थी। परंतु यह भी सर्वथा असंभव नहीं है कि स० १७२१-२२ के बाद भी उसके कुछ अंतिम अशो का निर्माण हुआ हो।

बिहारी और मतिराम: सतसइयो की पूर्वापरता

'बिहारी' और 'मतिराम'—दोनो के सतसई ग्रंथों की तुलनात्मक विवेचना करते हुए डा० त्रिभुवन सिंह ने अपना एक विशेष मत व्यक्त किया है—"बिहारी सतसई के आरभ और समाप्त होने के पूर्व मतिराम सतसई के अधिकांश दोहों की रचना हो चुकी थी, उनका ग्रंथाकार सग्रह चाहे जब किया गया हो। बिहारी सतसई के आरंभ होने का सूत्र अनुमान से सं०१६६१-६२ तक जाता है। यह एक प्रकार से निश्चित सा जान पडता है कि बिहारी सतसई के सभी अथवा अधिकांश प्रमुख दोहों की रचना उसके प्रथम ऐतिहासिक दोहे—

'नहि परागु, नहिं मधुर मधु, नहीं बिकास इहिकाल।
अली कली हो सो बँध्यो आगे कौन हवाल॥'

के पश्चात् ही हुई क्योंकि इसी दोहे से प्रसन्न होकर उनके आश्रयदाता जयसिंह ने ऐसे ही रचे जानेवाले दोहों पर एक एक मोहर प्रति दोहा पुरस्कार देने का अपना निश्चय कविवर को सुनाया और परिणाम स्वरूप सतसई के मार्मिक एव सरस दोहो की रचना मोहरों के पुरस्कार के साथ हुई।[१५]......इस प्रकार सतसई राजाश्रय में प्राप्त कृपा और धनसंपत्ति के

---

१५. यहाँ डा० सिंह का मत सर्वथा मान्य नहीं हो सकता। हमारे पास इसके लिये कोई प्रमाण नहीं है कि उपर्युक्त उद्धृत दोहा ही बिहारी सतसई

बीच की रचना है जो कम से कम संवत् १७०३ के पूर्व तो नहीं ही समाप्त हो सकती ।'

अपने मत के समर्थन मे डा० सिंह ने अनेक अनुमानित तर्क प्रस्तुत किए हैं। उनके कुछ प्रमुख तर्कों का सारांश निम्नांकित रूप मे उपस्थित किया जा

की रचना का सर्वप्रथम हैं। इसके विपरीत यह अनुमान करना अधिक तर्क-संगत जान पड़ता है कि सं० १६६२ के पूर्व से ही उत्कृष्ट कोटि के कलात्मक और साहित्यिक दोहाकार के रूप मे 'बिहारी' की काफी ख्याति हो चुकी थी। कदाचित् अपने कवित्व के उत्कर्ष से ही वे बूँदी, जोधपुर और आगरे आते जाते और संमानित हुआ करते थे। इसी ख्याति के कारण ही जयसिंह के यहाँ भी वे पहुँचे थे। यदि वहाँ बुलाए न भी गए रहे हो तो भी वहाँ संमानित होने का कारण उनका कवियश और काव्यकरिता मे निपुणता ही रही होगी।

इसी कारण उनका दोहा राजा जयसिंह तक पहुँच पाया और अभीप्सित प्रभाव डालने मे समर्थ हुआ। यदि वे प्रसिद्ध कवि न होते तो मंत्रियो द्वारा न तो उनका आदर होता, न उनपर भरोसा ही किया जाता और न उनका दोहा ही महाराज के पास भेजा जाता। दूसरी एक बात और भी है। बिहारीसतसई के प्रथम ही दोहे की रचना अवसरोचित, सशक्त और अभीप्सित प्रभाव डालनेवाली रही हो—यह भी साधारणतया संभव नहीं लगता है। निश्चय ही उसके पूर्व 'बिहारी' उत्कृष्ट कोटि के और सुख्यात कलाकार थे। रीतिकालीन मुक्तक दोहो की रचना में सं० १६६१ तक निश्चय ही वे भावसिद्ध कलाकार के सोपान तक पहुँच चुके थे।

इसी कारण यह मानना कि 'बिहारी' के सभी अथवा अधिकाश प्रमुख दोहो की रचना—उक्त तथाकथित प्रथम दोहानिर्माण के बाद ही हुई—ठीक नहीं जॅचता। 'बिहारी' जैसे कवि की उत्कृष्ट रचना प्रति दोहा एक-एक मोहर पुरस्कार के लोभजन्य प्रेरणा का प्रतिफल है—यह मत भी ग्राह्य नहीं लगता। मार्मिक और सरस दोहो की रचना-पुरस्कार के लिये भी वही कवि कर सकता है जो मर्मज्ञ कल्पनाप्रवण, संवेदनशील और रसिक हो। काव्यनिर्माण की पटुता के अभाव मे एक क्या दस दस मोहर का पुरस्कार पाकर भी कोई असमर्थ कवि भाव भरे और रसस्निग्ध काव्य का निर्माण नहीं कर सकता।

सकता है (१) मतिराम सतसई के दोहों में मुख्यरूप से दो कोटि के दोहे है—(क) काव्यकला की दृष्टि से पूर्णतः खरे दोहे, (ख) मार्मिकता और हृदय की सच्ची एव स्वाभाविक अनुभूतियाँ व्यक्त करनेवाले दोहे—जिनमे कलात्मकता की प्रौढ़ि प्रथम कोटि की रचना के समान नहीं हैं। संख्या मे दो सौ से भी अधिक इस कोटि के दोहों को कवि के ललितललाम और रसराज में भी संग्रह किया गया है। (२) रसराज की रचना १६६० वि० के पूर्व ही हो चुकी थी। लगभग २०० सतसई मे मिलनेवाले दोहे भी रस-राज मे मिलते है। अतः ये दोहे निश्चित रूप से बिहारी सतसई की रचना से पूर्व के हैं। (३) भावप्रौढ़िवाले 'मतिराम' के उक्त कोटि के दोहे-अपेक्षा-कृत पूर्वकालीन रचनाएँ हैं पर कलात्मक प्रौढिवाले दोहे बाद के है। क्योंकि कलात्मक दृष्टि से प्रौढ रचना की सामर्थ्य अभ्यासवश प्रौढावस्था में होती है और भावोल्लास की स्निग्धता युवावस्था में अभिव्यक्ति पाती है। (४) द्वितीय कोटि मे आनेवाले दोहे—'काव्यकला तथा भाव'–प्रत्येक दृष्टि से प्रथम कोटि की रचनाओं से घटकर है—इसमे संदेह नहीं। (५) ललितललाम और रसराज मे अनुद्धृत मतिराम सतसई के भावप्रौढ़ दोहे—उक्त प्रौढग्रथो की रचना के बाद के हैं—यह कहना कठिन हो जाता। निश्चय ही—अधिकांश वे दोहे "जो भाव, भाषा एवं कला की दृष्टि से रसराज एवं ललितललाम मे आए हुए दोहों से घटकर हैं"—प्रथम कोटि की रचनाओं के पूर्व के निर्माण है। (६) मतिराम सतसई के अधिकांश दोहों की रचना सवत् १६६० के पूर्व हो चुकी थी और उसके बाद बिहारी सतसई के दोहों की रचना आरंभ हुई। (७) यतः हिंदी नायिकाभेद की निरूपण-परंपरा में 'मतिराम' के रसराज के नायिकाभेद अधिक प्रसिद्ध हुआ अतः—रीतिमुक्त होने पर भी नायिकाभेदानुसारी नायिकाओं के रूपचित्रों और व्यापारबिम्बों को अंकित करनेवाले—'बिहारी' पर भी रसराज के नायिकाभेदपरक लक्ष्यलक्षण का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। क्योंकि तब तक रसराज लिखा ही नहीं जा चुका था वरन् प्रसिद्धि भी पा चुका था। (८) 'मतिराम' की कृतियो से 'बिहारी' का प्रभावित होना सभव है किंतु 'मतिराम' का 'बिहारी' से प्रभावित होना सभव नहीं। (९) 'बिहारी' से 'मतिराम के प्रभावित होने की पुष्टि मे कुछ लोगों द्वारा तर्क दिया गया है कि 'बिहारी' के अनेक दोहों के भावसाम्य से प्रेरणा लेकर और उसकी भावच्छाया का अनुकरण करते हुए 'मतिराम' ने अपने

अनेक दोहों का निर्माण किया है। इसी कारण अनुकर्ता की कृति में अनु-कार्य की रचना-तुल्य प्रौढता न आ पाई। पर इस मत से असहमति प्रकट करते हुए डा० त्रिभुवन सिंह ने कहा है सापेक्ष दृष्टि से 'मतिराम' की अपेक्षा 'बिहारी' के दोहे या दोहों की प्रौढतरता—उनकी कृति के पूर्ववर्तित्व का नहीं अपितु परवर्तित्व का ही पोषक है। क्योंकि पूर्ववर्त्ती कवि वस्तुतः मौलिक उद्भावक होता है और काव्योक्ति के मूलस्वरूप का निर्माण करता है। बाद का कवि तो निर्मित 'स्वरूप' को अनायास सामने पा जाता है। अतः उसका मुख्य प्रयास होता है 'स्वरूप' का शृंगार करना। 'बिहारी' और 'मतिराम' के भावसाम्य वाले अनेक दोहों (कम से कम एक उद्धृत दोहे) में 'बिहारी' का कृतित्व निश्चय ही उत्कृष्टतर है।[१६]

इन समस्त तर्कों में अधिकाश का आधार डा० सिंह की एक मान्यता है। उन्होंने पूर्णरूप से और असदिग्ध एवं निर्विवाद रूप मे यह मान लिया है है कि 'रसराज' की रचना सं० १६६० के पूर्व हो चुकी थी। फलतः सतसई के अधिकांश भावसुंदर और रसमय दोहे भी कवि के तारुण्यारंभ की अवस्था में स० १६६० के पूर्व निर्मित हो चुके थे। इसी के साथ साथ वे यह भी मान बैठे हैं कि उक्त सवत् के पूर्व रसराज प्रसिद्ध ही नहीं काफी

---

१६. अपने कथन की पुष्टि मे डा० सिंह ने यहाँ दोनो कवियो से ऐसा एक-एक दोहा उद्धृत किया है जिनमें भावसाम्य है। इसके विषय में उन्हीं का मत है कि 'निश्चित ही बिहारी का दोहा मतिराम के दोहे से अधिक प्रौढ़ है'—

'होत दस गुनो अंक है, दिए एक ज्यो बिंदु।
दियै ढ़िठौना यौ बढी आनन आभा इन्दु ॥ मतिराम सतसई
'कहत सबै बेदी दिये, आँक दसगुनो होत।
तिय लिलार बेंदीं दिये, अगनित बढत उदोत ॥ बिहारी सत०

यहाँ डा० सिंह मानते हैं नायिका की शोभा के रूपचित्र का वर्णन करने-वाले दोनो दोहो मे 'बिहारी' की उक्ति अधिक प्रौढ़ इस लिये हो सकी कि 'बिहारी' को 'मतिराम' की शिथिल अतिशयोक्ति के स्थान पर प्रौढ़ अल-कार द्वारा मूर्त्ति को चारुतर शृंगार और साजसज्जा से आमंडित करना रह गया था—जिसमें वे सफल हुए।

प्रसिद्ध हो चुका था । वे यह भी मान लेते हैं कि हिंदी-नायिका-भेद को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाला ग्रंथ रसराज था जो केवल प्रभावित करने-वाला ही नहीं था वरन् स० १६६० तक इतना प्रसिद्ध और प्रामाणिक हो चुका था कि 'बिहारी' ने भी अपनी सतसई के नायिकाभेदसमत रूपचित्रों के निर्माण मे 'मतिराम' के रसराज से सर्वाधिक प्रेरणा ही नही ली वरन् उसका अनुकरण भी किया और अनुगमन भी । डा० त्रिभुवन सिंह के व्यंजित संकेत के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कविवर 'बिहारी' ने अपने दोहो मे परंपरामान्य या रीतिस्वीकृत जिन नायिकाचित्रो का अंकन किया है वह सभवतः सर्वाधिक प्रभावित है 'मतिराम' के रसराज-वर्णित नायिकाओ के विभिन्न लक्षणो से । परंतु डा० सिंह की यह कल्पना 'मतिराम' के काव्योत्कर्ष मे उनके अत्यासंजन और पूर्वग्रह के कारण प्रसूत है । अन्यथा कृपाराम, केशवदास आदि के हिंदी मे निर्मित नायिकाभेद के ग्रंथ तो 'बिहारी' के सामने थे ही—भारत का नाट्यशास्त्र, रुद्रभट्ट का शृंगारतिलक आदि से लेकर साहित्यदर्पण और भानुमिश्र की रसतरंगिणी तक में संस्कृत-विकसित नायिकाभेद का प्रौढ़ साहित्य भी अवश्य ही उनके समक्ष था । ऐसी स्थिति में लगभग अपने समकालीन 'मतिराम' के रसराज का अध्ययन करके तल्लक्षणा-नुरूप साँचे बनाना और अपनी नायिकामूर्तियो को उन्ही मे ढलना—'बिहारी' के सदृश रससिद्ध कवि के लिये असंभवकल्प ही जान पडता है ।

डा० सिंह की दूसरी मान्यता—अर्थात् भाव सुंदर और रसमय उद्गारवाले, पर कलादृष्टि से अल्पोत्कृष्ट दोहे तारुण्यारभ की रचनाएँ हैं और कलात्मक उत्कर्षवाले प्रौढ़वयकी कृतियां हैं—भी ग्राह्य नही जान पडती । शास्त्रीय लक्षणों को लेकर चलने पर लक्षणानुकूल बंधनो के कारण प्रायः भावों के सहज-स्वच्छद उद्गिरण की धारा मे कुछ न कुछ अवरोध आ ही जाता है। दूसरी ओर लक्षणानुकूल कलात्मक आमंडन मे विशेष आयास भी करना पड़ता है । अलंकारलक्षण के सांचे मे लक्ष्य को ढालने के सफल प्रयास का ही यह परिणाम था कि ललितललाम के लक्षणों मे भावपक्ष उतना नहीं उभर पाया और भावलालित्य का उतना प्रभावपूर्ण अभिव्यंजन नही हो सका । मतिराम सतसई के उनके अनेक दोहों मे जहाँ कलात्मकता अधिक और भावपक्षीय उत्कृष्टता कुछ कम है—वहाँ इसी प्रकार की कुछ स्थितियाँ बाधक रही होगी । केवल इसी आधार पर कृति या कविता के रचनाक्रम की पूर्वापरता का निर्धारण अविचारित रमणीयता है ।

यहाँ यह भी ध्यान रखने की बात है कि 'मतिराम' के अनेक उत्कृष्ट छंद ऐसे हैं जो रसराज और ललितललाम, दोनो मे हैं। अतः यह मान बैठना कि वे रसराज से लिए गए हैं—ठीक नही। इसी प्रकार यह कहना कि—सतसई के वे दोहे जो ललितललाम मे मिलते हैं, सतसई से लेकर वहां रखे गए हैं और जो रसराज में मिलते हैं वे रसराज मे लेकर सतसई मे रखे गए हैं—केवल कोरी और आधारहीन कल्पनामात्र है। वे दोहे सतसई के प्राचीनतम भी हो सकते है (जिन्हे उक्त रूप मे 'मतिराम' बनाते रहते थे) और वहीं से लेकर यथाप्रयोजन उसी रूप मे या थोडे बहुत परिवर्तन के साथ अन्य ग्रंथों मे भी रखे गए हो सकते हैं। चूकि सतसई-संग्रथन का कार्य (मेरे मत से) बिहारी सतसई की प्रसिद्धि के बाद हुआ—अतः सतसई में अनेक सुंदर दोहे, दोनों ग्रंथों (रसराज और ललितललाम) से लेकर भी जोड़ दिए गए।

इस प्रसंग की यह मान्यता भी विचारपुष्ट नही है कि शृंगारी भावोद्‌गार का ग्रंथ पहले बना होगा क्यों कि तारुण्यारंभ में ही उस प्रकार के भावों का उच्छलन अधिक संभव होता है। श्री सिंह के इस मत का प्रत्याख्यान इस विश्लेषण से स्पष्टतः सिद्ध हो जाता है कि ललितललाम मे शृगारपरक ललितोद्‌गार के छदो की संख्या सापेक्ष दृष्टि से कम अवश्य है, परंतु उसका कारण लक्षणग्रथ का निरूपण-विषय और परिस्थिति है न कि कवि की उम्र का ज्यादा होना। इस पक्ष के समर्थन मे यह भी कहा जा सकता हैं कि 'ललाम' का प्रतिपाद्य विषय अलंकार था। इस कारण अलंकारमूलक कलासर्जना की ओर ध्यान देना वहाँ कवि का मुख्य कर्म बन गया था। इसीसे वहाँ शृंगारी भावोद्‌गार का आग्रह शिथिल पड गया था। दूसरी बात यह है कि ललितललाम की रचना चूंकि 'भावसिंह की रीझि कौं' की गई थी इस कारण उसमे राव भावसिंह की प्रशस्ति के छंदों का यत्रतत्र आ जाना स्वाभाविक हो गया था। अतः वीररस तथा प्रशस्ति के भी पद्य यत्र तत्र वहाँ मिलते रहते हैं। अलंकार के साँचे का बधन कभी कभी इतना कठोर हो जाता है कि ललित भावों का संयोजन हो पाना दुष्कर हो उठता है। इस कारण यह कहना ठीक नहीं है कि ललितललाम की रचना परिणत वय में हुई थी इसी से वहाँ शृंगारी भावो के प्रकाशन की तीव्रता का अभाव था।

'मतिराम' श्रृंगार के ही मूलतः कवि हैं और अंत तक रहे भी। ललाम मे भी जहाँ उन्हें अवकाश मिला वहाँ शृगार की रम्य भावधारा बहाने में वे पीछे

नहीं रहे। पिछले पृष्ठों (२२ और २७) में सोदाहरण दिखाया गया है कि 'मतिराम' के वर्ण्य अलंकार के लक्ष्यों में अनेकत्र कलाचारुता की अपेक्षा ललित और मोहक भावचित्रों के रूपसौष्ठव का सर्जन अधिक सफलता के साथ किया है। ललितललाम में ऐसे लक्ष्यों की संख्या कम नहीं है जिनमें शृंगारी भावों की रम्यता का झंकार अत्यंत उभर कर गुञ्जायमान है। निम्न-निर्दिष्ट कुछ उदाहरणों से उक्त कथन का प्रामाण्य परखा जा सकता है—

मोचन लागी भुराई की बातनि सौतनि सोच भुरावन लागी ;
मंजन कै नित न्हाय कै अंग अँगोछि कै बार झुरावन लागी।
मोरि मुखै मुसकाय कै चारु चितै 'मतिराम' चुरावन लागी ;
ताही सकोच मनो मृगलोचनि लोचन लोल दुरावन लागी ॥१०६॥

मनमोहन आय गए तितही जित खेलत बाल सखीगन मैं;
तँह आप ही मूँदे सलोनी के लोचन चोर मिहीचनि खेलनि मैं।
दुरिबे कौ गई सगरी सखियाँ, 'मतिराम' कहै इतने छन मै,
मुसकाय कै राधिके कंठ लगाय छिप्यौ कहूं जाय निकुंजन मैं ॥१८१॥

बातनि जाय लगाय लई रस ही रस मैं मन हाथ कै लीनौं;
लाल तिहारे बुलावन को 'मतिराम' मैं बोल कह्यो परबीनौं।
बेग चलौ न बिलंब करौ लखौ बाल नवेली के नेह नवीनौं;
लाजभरी आँखियाँ बिहसीं बलि बोल कहैं बिन उत्तर दीनौं ॥१६७॥

मृदु बोलत कुंडल कानन डोलत, कानन-कुंजनि ते निकस्यौ;
बनमाल बनी 'मतिराम' हिए पियरो पट त्यो कटि मै बिलस्यौ।
जब ते सिर मोरपखानि धरे, चित चोरि चितै इत ओर हँस्यौं;
तब तैं दुरि भाजि कै लाज गई, अब लालचु नैननि आनि बस्यौ ॥२६८॥

पाइ इकंत कै बाल सो बालम जो रतिरूप कला दरसावै;
नाहीं कढ़ै मुख नारि के नाह जहीं हिय सौं हियरो परसावै।
काम बढ्यौ 'मतिराम' तहीं, अति लाल बिलासनि को सरसावै;
जोवै, त्रसै, मन मौवे अनंद मैं, रोवै, हँसै, रस को बरसावै ॥२७८॥

मोरपखानि किरीट बन्यो मुकतानि के कुंडल स्रौन बिलासी;
चारु चितौनि चुभी 'मतिराम' सुक्यौं बिसरै मुसकानि सुधा-सी।

काज कहा सजनी कुलकानि सौं लोग हसैं सिगरे ब्रजवासी,
मैं तो भई मनमोहन के मुखचंद लखै बिन मोल को दासी ॥३२२॥

चलत सुभाय पाय पैजननि की झनक
उर उपजन लागे केलि के कलोल हैं।
फूलन के हार हियरे सौं हिरकन लागे
छलकन रस नैन तामरस लोल है।
श्रौन के सरोज के परस 'मतिराम' लाल
कंटकित होन लागे कोमल कपोल हैं;
तौ बनै बनाव मिलै जोबन मै कहू नीके
लोचन के जोवन के बासर अमोल है ॥ २९७ ॥

इन कतिपय उदाहरणों के अतिरिक्त २३३,२८०,२८४,३३२,३३५,३६५, ३६७, तथा ३६८ संख्यक छंदो मे तथा अनेक दोहों मे ललित शृंगार की आवेगमयी अभिव्यक्ति (ललितललाम मे) देखी जा सकती है। इनके अतिरिक्त पचीसों शृंगारी वे पद्य भी हैं जो रसराज और ललितललाम— दोनों ग्रंथो में पाए जाते है। अतः 'मतिराम' के ग्रंथो के रचनाकाल का निर्धारण करते समय भावावेगवत्ता या कला की कारीगरी को उम्र का तकाजा मानकर तदनुसार फैसला सुना देना साक्ष्यहीन निर्णय ही रह जाता है। अतः असदिग्ध और निर्विवाद रूप मे यह नहीं मान्य हो सकता कि रसराज सं० १६९० तक विरचित हो चुका था और मतिराम सतसई के भी भावपक्ष के सुष्ठुतम दोहे प्रायः तब तक बन चुके थे। रसराज की प्रसिद्धि तथा 'मतिराम' के अन्य दोहो की ख्याति के कारण 'बिहारी' का रसराज से प्रभावित होना भी इसी कारण ग्राह्य और मान्य नहीं हो सकता। बिहारी सतसई का मतिराम सतसई से प्रभावित होने का विचार करना भी तर्कविरुद्ध है।

स्वयं डा० सिंह ने कहा है—"जहाँ तक सतसइयों का संबध है, बात तो वस्तुतः यह है कि दोनों के प्रेरणास्रोत एक रहे दोनों में से किसी एक ने भी दूसरे का प्रभाव ग्रहण नहीं किया हैं। ...इन दोनो कवियों के रचनाकाल मे जितना अंतर है उसके बीच दोनों सतसईकार एक दूसरे के दोहों से परिचित हो सके होगे, (इसमे) हमे सदेह है।" यह निष्कर्ष मेरी समझ से प्रायः ठीकसा है। पर इस संदर्भ मे यह संभावना हो सकती है कि 'जयसिंह' वाली घटना और स्वर्णमुद्रापुरस्कार के कारण 'बिहारी' की सत-

सई लोक में बहुत विख्यात हुई होगी। सतसईकार के रूप में 'बिहारी' के कीर्तिप्रसार ने—सभव है—'मतिराम' के हृदय को भी सतसई-संकलन के प्रति प्रेरित किया हो। बहुत से दोहे वे तब तक लिख चुके थे और मुक्तक काव्य के रूप मे फूलमंजरी के बाद से वे बराबर दोहे लिखते भी आ रहे थे। ललितललाम और रसराज मे भी रसमधुर, भावसुदर एवं कलात्मक—अनेक दोहे निर्मित हो चुके थे। अतः यदि उन्होंने बिहारी सतसई की प्रेरणा से अपनी सतसई का संगुफन किया हो तो आश्चर्य नहीं।

पर इस संबंध मे प्रसंगानुसार अभिव्यक्त, डा० सिंह की एक कल्पना या अनुमान पूर्णतः अमान्य ठहरता है। ऊपर कहा गया है कि दोनों कवियों के कुछ दोहों मे भावसाम्य और 'बिहारी' के दोहो की चारुतरता और सुष्ठुतरता के कारण अनेक लोग मानते हैं कि 'बिहारी' का 'मतिराम' पर प्रभाव भी पडा है और उन्होंने कहीं कहीं भावच्छाया ग्रहण भी की है। श्री त्रिभुवन सिह इस तर्क को अमान्य बताते हुए अपना मत व्यक्त करते हैं और कहते है और कि 'यतः स्वरूपनिर्माण के पश्चात् शृंगार होता है न कि शृंगार के पश्चात् स्वरूपनिर्माण—अतः 'मतिराम' के वे दोहे काव्य के स्वरूप तथा साधना की वह आधारभूमि हैं जिनका कविवर बिहारी ने शृंगार किया तथा उनपर उक्ति-वैचित्र्य का चमत्कार दिखलाया है।'

इस प्रसग की कुछ चर्चा पूर्व पृष्ठों मे की जा चुकी है। यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि काव्यसौष्ठव और कवित्वप्रतिभा के प्रौढतर उन्मेष के कारण 'बिहारी' को 'मतिराम' से प्रभावित मानना सर्वथा तर्कविरुद्ध है। तथ्य तो यह है कि जिस कवि की प्रतिभा, भावबोध, संवेदनशीलता, कला-नैपुण्य और जीवन का यथार्थबोध (चाहे वह अभिजात वर्ग, सामंत वर्ग, दरबारीजन अथवा जनसामान्य का जीवनबोध हो) जितना ही प्रौढ़ होगा उसकी काव्यरचना भी सामान्यतः उतनी ही प्रौढ होगी। कवि और उसके काव्य अथवा कला मे प्रौढता की अभिसर्जना होती है कवि की प्रतिभा से, उसी के कारण कवि की अभिव्यक्तिचेतना संवेद्य प्रेषणीयता एवं संकल्प-चित्रों से संपन्न होता है। यहाँ 'मतिराम' और 'बिहारी'—दोनो में से किसी को छोटा और बडा कवि सिद्ध करना प्रयोजन नहीं है। इतना ही कथ्य है कि प्रतिभाप्रसूत अभिव्यक्ति की कला से संपन्न होने के कारण यह सम-

मना कि 'बिहारी' ही 'मतिराम' से प्रभावित थे और 'मतिराम' ने स्वरूप-निर्माण किया तथा परकालवर्त्ती 'बिहारी' ने उसे सँवार सजाकर उसका शृंगारीकरण किया, उसे प्रौढ़तर और उत्कर्षतर बनाया—तथ्यविचेन के पथ से स्खलित होना है।

अपने क्षेत्र (दोहा निर्माण) की कला और भावबोध की प्रौढ़ि मे निश्चय ही 'बिहारी' उत्कृष्टतर कलाकार थे। इस क्षेत्र में सामान्य रूप से वे 'मतिराम' की अपेक्षा ऊँचे सोपान तक पहुँच चुके थे। 'मतिराम' और 'बिहारी' का समय एक दूसरे से इतना निकट है कि सामान्यत. किसी एक की कविता से दूसरे की रचना का प्रभावित होना कठिन जान पड़ता है। डा० सिंह भी इस मत का समर्थन करते हैं। परंतु अनेक परिस्थितियों और कारणों से प्रतिभाशाली कवि के रूप मे 'बिहारी' की चर्चा चल पडी थी। 'स० १६७९ में शाहजहाँ ने वृंदावन की यात्रा की थी। वहाँ उसने लोक-विश्रुत महात्मा नरहरिदास के दर्शन किए। शाहजहाँ के समक्ष होनहार 'बिहारी' की महात्मा जी ने प्रशसा की। इनकी प्रतिभा देखकर शाहजहाँ ने इन्हें आगरे मेआकर रहने के लिये कहा। कहा जाता है कि इनकी कविता पर प्रसन्न होकर खानखाना साहब ने इन्हें बहुत सा पुरस्कार दिया।' [बिहारी—आचार्य विश्व-नाथ प्रसाद मिश्र सं० २०१८ पृ० ३०]

'शाहजहाँ के किसी उत्सव मे भारत के बहुत से राजे महाराजे आमंत्रित हुए।' उस समय उनकी (बिहारी की) काव्यप्रतिभा देखने का अवसर उन नरेशों को मिला। इनकी कविता पर प्रसन्न होकर उन लोगों ने इनकी वृत्ति बाँध दी। [वही, पृ० ३०]। इसका निष्कर्ष यह है कि 'बिहारी' की कविता और 'सतसई' सभवत. बहुत ही शीघ्र विख्यात हो गई थी। अपने प्रबंध ग्रंथ में डा० सिंह ने 'बिहारी' की 'सतसैया' के 'दोहरे' की ख्याति के जो कारण (उक्तिवैचित्र्य, वाग्वैदग्ध्य, काव्यशिल्प की कारीगरी, चमत्कृतिशीलता आदि) बताए हैं तथा परिस्थितियों की जिन अनुकूलताओं का उल्लेख किया है—उन्हीं कारणों से 'बिहारी' की अपूर्व कृति राजपूताना, ब्रजमंडल, बुन्देलखंड आदि में लोक-विश्रुत और विदग्धगोष्ठीमंडन बन गई थी। इसी कारण 'मतिराम' भी अपने रचित और रचिष्यमाण दोहों के सकलन द्वारा उक्त काव्यविधा के निर्माण में प्रवृत्त हुए हों तो आश्चर्य नहीं।

यह समझना कि जो कवि पहले होता है, उसकी रचना की अपेक्षा अनुकर्ता की काव्यसृष्टि उत्कृष्टतर होती है—सर्वथा वस्तुस्थिति से अपरिचय सूचित करता है।

लोककाव्य के आदिकवि ने रामगाथा को लेकर जिस प्रथम सांस्कृतिक काव्य का निर्माण किया—उसके अनुकर्ताओं की शृंखला अबतक बढ़ती जा रही है। परंतु काव्योत्कर्ष के उस धरातल पर आजतक भी कोई नहीं पहुँच सका जहाँ से आदि कवि के क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगज शोक ने काव्यश्लोक के रूप मे प्रथमावतार लिया था। महाकवि कालिदास भी इस तथ्य के अत्यत सुख्यात उदाहरण हैं। 'मेघदूत' द्वारा अलौकिक काव्यसकल्प करते हुए महाकवि ने जिस दूतकाव्य की साहित्यविधा का आविष्कार किया था-उसका अनुकरण करनेवाले सैकडो दूतकाव्य संस्कृत मे (और हिंदी आदि में भी) निर्मित हुए। उनके श्लोकों के एकएक चरण को लेकर अपनी रचना से उनकी पूर्ति करनेवाले दूतकाव्य भी बने। परंतु मेघदूत मे जिस भावमाधुरी और अनुभूति सुकुमारता का लालित्य अभिव्यक्त हुआ, वियोग के संवेदो का जो मर्मस्पर्शी चित्र बिंबित हुआ तथा प्रकृतिसौंदर्य के जो मनोरम और सहज स्वरूप रूपायित हुए हैं—उनकी समता अन्यत्र कहीं देखने को भी नही मिलती। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' और 'विक्रमोर्वशीय' द्वारा नाटकरचना शिल्प के क्षेत्र मे दृश्यकाव्य को जो संवेदनीय गरिमा कवि ने दी और धरती से लेकर अमरावती तक के दिव्यादिव्य प्रणय की जिस मन्दाकिनी को बहाया—उसकी अनुपम रम्यता आज भी अपूर्व है। 'रघुवंश' के माध्यम से लोककाव्य के क्षेत्र मे अद्भूत पुराणशैली की जिस गाथा को महाकवि ने गाया उसका अनुकरण करना भी परवर्त्ती कवियों के लिये दुष्कर ही बना रहा। राम के करुणाकल्प वियोगकथा को भवभूति ने जिस संवेद्यता के उत्कर्ष पर पहुँचा दिया—वहाँ तक जा सकना-आज के कवि के लिये भी-अब तक संभव नहीं हो पाया। 'मिल्टन' की उदात्त कल्पना ने 'पैरेडाइज़ लास्ट' और 'पैरेडाइज़ गेन्ड' के द्वारा स्वर्ग और धरित्री की जीवनकल्पना का जो रूप अंकित किया उसका स्पर्श तक करना—परवर्त्ती कवियो के लिये असभव बना रहा। 'शेक्सपियर' के नाटकों में मानवमन के संकल्पविकल्प, संयोग वियोग, अन्तर्द्वन्द्व और बहिःसंघर्ष आदि का जो सहज और हृदय को झकझोर देनेवाला चित्रण हुआ तथा मानव के वैयक्तिक अंतर्मनसंबंधी वैचित्र्यों का जो स्वाभाविक चित्रण किया गया—उसकी मिसाल मिलना आज भी अत्यंत कठिन है। 'प्रसाद' ने

'कामायनी' के निर्माण द्वारा जीवनदर्शन और मानव के वैकासिक वैषम्यजन्य विरोधों का जैसा प्रभावशाली और सवेद्यरूप—अपनी भावुक काव्यशैली में उपस्थित किया, उस ऊँचाई तक उसका अनुकरण करना आज के कवि के लिये भी संभव नहीं हो पाया।

इस विस्तृत वक्तव्य का अभिप्राय केवल इतना ही है कि समस्त विश्व के काव्यक्षेत्र मे रचना का उत्कर्ष, साध्य और सिद्ध होता है कवि की सर्जनात्मक काव्यकल्पना की क्षमता द्वारा, उसके प्रेषणीय संवेदों की प्रवाहमयी शक्तिमत्ता द्वारा, साधारणीकृत भावलोक के अनुभूतिबोध की यथार्थता द्वारा, अभिव्यंजन शिल्प की गतिमती सवेदना द्वारा और उसके अनुभव ज्ञान, सहृदयता, सामाजिकता, नैपुण्य और सहजात कविप्रतिभा की सर्जनशीलता द्वारा। कालकृत पौर्वापर्य और परानुकरण के कारण अथवा स्वेतरकवि की पूर्वरचना का सहारा लेकर कोई भी कलाकार—कवित्व के उत्तुंग शिखर पर नहीं पहुँच सकता। अत. 'बिहारी' के दोहो की प्रौढि, 'मतिराम' के कृतित्व से उधार ली हुई आधारभित्ति के कारण नहीं वरन् अपनी ही कवित्वशक्ति की महिमा से प्रस्फुटित है।

यह सही है कि युग, युगप्रवृत्ति, दरबारी परिवेश, रीतिकालीन-काव्य-सर्जना की परपरारूढ़ि और स्वसमाज के संस्कारों के कारण 'बिहारी' ने सैकड़ों से भी अधिक दोहे ऐसे लिखे हैं जिनमें या तो वाग्वैदग्ध्य या उक्तिचमत्कार का ही वैशिष्ट्य है और कुछ मे आलंकारिक उक्ति को चमकानेवाले मणि-खंडों को बड़ी कारीगरी के साथ जडा गया है। दूसरे शब्दों में—रीतियुगीन काव्यरूढियो की बोधचेतना का प्रभाव, 'बिहारी' और उनकी काव्यसृष्टि पर काफी गहरा है। दरबारी और सामंती परिवेश की काव्यपरक एवं कलागत अभिरुचियों का रंग भी उनकी सतसैया पर कम नहीं चढ़ा है। कविप्रौढोक्ति-सिद्ध अथवा कविनिबद्ध—प्रौढ़ोक्तिसिद्ध भणितियो में वक्रता का वैदग्ध्य भी बडे आयास से प्रकट किया गया है (दे० दो० ३४,५४९ तथा ५५३-बिहारी रत्नाकर)। श्रृंगार के जिस क्षेत्र को बिहारी ने वर्ण्य बनाया है उसका प्रसार भी प्रायः रीतिरूढ़ि की सीमा के भीतर रहता है। विषय की स्वच्छंद भूमि मे बिहारी की अपेक्षा वे परिमित परिधि के भीतर ही श्रृंगारी दोहों की सर्जना करते हैं। हाँ यह अवश्य है कि उस परिमिति के भीतर भी नूतन प्रसंगो की उद्भावना द्वारा नव्यता और ताजगी की सृष्टि कर देने में वे निपुण हैं—

बिथुरयौ जावकु सौतिपग निरखि हँसी गहि गाँसु।
सलज हँसौहीं लखि लियौ आधी हँसी उसाँसु॥
(बिहारी रत्नाकर ५०७)

इस प्रकार के दोहों की संख्या 'बिहारी' की सतसई मे पचासों है। इनमें रुढ़िजुष्ट भाववृत्तियों के प्रतिबिम्बनार्थ कवि ने नूतन परिस्थितियों को उद्भावित की हैं। इसी से उनमें प्रसन्नता की चारुता और शोभा दिखाई देती है। इनके अर्थान्वयन के लिये कभी कभी रूढ़िबोध भी आवश्यक होता है—यथा—३८३,६०८,५६५,४५५,४२३, आदि मे रीतियुगीन संयोग-वियोग की नाना रूढियों से परिचित रसिक पाठक उनके बोध्यार्थ का आस्वादन झट कर लेता है। इसीप्रकार एक दूसरी परिस्थिति भी होती है। वहाँ गूढ अथवा अगूढ ऊहात्मक कल्पनाओं का बोधक होता है रूढिमूलक मान्यता का आधार—जिसके अपरिचय से अर्थास्वादन फीका हो जाता है। ऐसा आधार लेकर चलनेवाले दोहे भी वहाँ काफी हैं। ऐसे अर्थबिम्बों के चित्रांकन से भी कलाकार की शिल्पप्रौढि-मूलक सर्जनशक्ति ही सूचित होती है—

द्वैज—सुधादीधित-कला वह लखि, दीठि लगाइ।
मनौ अकास—अगस्तिया एकै कली लखाइ॥ (वही—६२)॥

किसी नायक ने अगस्त्य वृक्ष के अधःस्थ कुञ्ज मे (परकीया) नायिका से शरद् ऋतु की शुक्ल द्वितीया को चंद्रास्तवेला में मिलन का संकेत निश्चित किया था। पर उस दिन विस्मृति के कारण या अन्य किसी हेतु से नायिका चंद्रास्त के समय गुरुजनों के बीच बैठी रह गई है। नायक की दूती नायिका के पास आकर गुरुजनो के बीच बैठी नायिका को दूज का चाँद दिखाने का बहाना करती हुई नियत दिन, स्थान और समय की याद दिलाती है और इंगित करती है वहाँ जाकर उस प्रीतम से मिलने के लिये—जो सहेट में प्रतीक्षा कर रहा है। 'बिहारी' के दोहों मे इस प्रकार के संदर्भगर्भित दोहे भी अनेक हैं, यथा-६०६, ७४, १२७ आदि—(वही)।

ग्रामीण नायिकाओ की चर्चा भी 'बिहारी' ने कभी कभी की है, पर कम ही और उसमे भी न तो उनका आसंजन ही देख पडता है न वर्णित चित्र में लालित्य की गहराई। केवल रस्म अदा करने के लिये मानो उन्होंने 'गँवैलिनो' का नामोल्लेख कर दिया। प्रायः इसी प्रकार प्रकृति और प्राकृतिक छविचित्रो का उल्लेखन भी हुआ है। उद्दीपन रूप मे उनकी चर्चा

अधिक है। प्रस्तुत और आलंबन रूप मे प्राय नहीं के बराबर हैं। उद्दीपनपरक कहे जानेवाले दोहों में एकाध ऐसे भी मिल जाते हैं, जिनकी वर्णनशैली से प्रस्तुत रूप का अर्थबोध लक्षित होता है--

छकि रसाल-सौरभ सने मधुर माधुरी गंध।
ठौर ठौर झौंरत झँपत भौंर भौंर मधु-अंध ॥ (वही-४६६॥)

इसे यद्यपि वसंत का वर्णन कहते हुए भी शृंगार की उद्दीपनकोटि मे रखा जा सकता है तथापि कोई शब्द ऐसा नही है जो प्रत्यक्षतः उद्दीपन का संकेतकर्ता हो। अतः शुद्ध वर्णनीय रूप में भी वसंतवर्णन इसे कह सकते हैं।[१७] इसी प्रकार--

---

१७. वायु का वर्णन भी अप्रस्तुत की रँगीली आकृति से चटकीला बनाकर 'बिहारी' ने अकित किया है—पर यहाँ भी प्रत्यक्ष उद्दीपनता लक्षित नहीं है ('बिहारी रत्नाकर' के अनुसार यहाँ और आगे भी दोहा संख्या है।)

लपटी पुहुप-पराग-सर, सनी स्वेद-मकरंद।
आवत नारि नवोढ लौं, सुखद वायु गति मंद ॥ ३६२ ॥

शिशिर के पूस मास में दिन अत्यंत छोटा हो जाता है—

आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु।
घरह जँवाई लौं घट्यो खरौ पूस-दिन-मानु ॥ ७१ ॥

इसे भी उद्दीपनात्मक कहना ठीक नहीं है—यद्यपि उक्ति में रम्यता नही है। वर्षा में पानी बरसते समय की हवा का निम्नांकित वर्णन उद्दीपनात्मक भी है और रम्यचारुता से हृदयहारी भी—

विकसित-नवमल्ली-कुसुम-निकसित परिमल पाइ।
परसि पजारति बिरहि हिय बरसि रहे की बाइ ॥ १७५ ॥

अथवा 'झर बरसौंहैं मेह' का नीचे उद्धृत वर्णन भी उद्दीपनात्मक कहा जा सकता है—

तिय-तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह।
घर परसौंहैं ह्वै रहे झर बरसौंहैं मेह ॥ ४८४ ॥

प्रसंगमूलक अवतरणिका का बिना आकलन किए—यह वर्णन केवल विशेषणविशिष्ट ही है। झड़ी बाँधकर बरसानेवाले मेघ के प्रभावात्मक

रनित-भृंग-घंटावली, झरित दान मधुनीर।
मंद मंद आवत चल्यौ, कुञ्जरु कुंज-समीर ॥ (वही ३८८)

में श्लिष्ट-रूपक के आलंकारिक चमत्कार का स्वर काफी गूँजता सुनाई पड़ता है और इस प्रकार अप्रस्तुत का गाढ़ा रंग चढ़ा हुआ है। फिर भी 'कुंजसमीर' की शीतलता, मंदता और सुरभिरम्यता का यहाँ अच्छा बोध होता है। परंतु ऐसे वर्णनों की संख्या बहुत ही कम है। अतः निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि सामान्यतः 'बिहारी' का मुख्य काव्यक्षेत्र शृङ्गार है और उसके वर्ण्य विषय भी अधिकतः युग की रूढ़िचेतना के रीतिबोध से मुखरित हैं—

रुक्यौ साँकरै कुंज-मग, करति झाँझि झकुरातु।
मंद मंद मारुत तुरँगु, खुँदतु आवतु जातु ॥ ६८४ ॥

अवतरणगर्भित करके इसे भी उद्दीपनगामी कहा जाता है। कुंज की चर्चा होने के कारण तथा कुंज आदि को रीतिरूढ़ 'सहेट' मान लेने से उद्दीपनप्रसंग सुलभ हो जाता है। परंतु तुरंग के साथ मारुत का साङ्गरूपक बाँधकर अवर्ण्य की (तुरंग की) चाल का वैशिष्ट्य-सूचन भी तत्वतः अप्रस्तुत-विधान का ही शिल्प है और उसी का चमत्कार दिखाना यहाँ मुख्य प्रयोजन मान लिया जा सकता है! इस प्रकार के अनेक दोहे--'बिहारी' की सतसई में मिलते हैं जिनमें प्रकृतिका वर्णन विभिन्न परिस्थितियों और प्रवृत्तियों के के परिप्रेक्ष्य मे अंकित हुआ है। उनमें कहीं तो रीतिबद्ध रसपरिधि की उद्दीपनात्मक रूढि है और कही गुणीभूत व्यंग्य की संयोजना के कौशल से अलंकारगत चमत्कार की सर्जना हुई है। प्रायः सर्वत्र रीतियुगीन काव्यरूढियो के किसी न किसी अंग का स्पर्श उनमे मिलता है। पर कहीं कहीं अवश्य ही 'बिहारी' की भावुक कविवाणी के झंकार से उनमे रम्य काव्यस्वर भी मुखर हो उठता है।

परिणामों का उल्लेखन ही मुख्य हो गया है। नीचे का दोहा रूपकालंकार-मूलक है जिसमें शरद ऋतु को सुंदरी का रूप दिया गया है—

अरुन-सरोरुह-कर-चरन, दृग-खंजन, मुख-चंद।
समै आइ सुंदरि सरद, काहि न करत अनंद ॥ ४८७ ॥

इस दोहे को उद्दीपनसीमा में रख सकते हैं पर यहाँ प्राधान्य है रूपक का और इसमें चमत्कारिक पक्ष है अप्रस्तुत–योजना का।

प्रकृति से इतर क्षेत्रों में भी रीतिरूढ़ियों का पाशमोचन करने में 'बिहारी' समर्थ नहीं हो सके हैं। किंतु बंधनसीमा से संकुचित मार्ग पर चलते हुए भी 'बिहारी' में नव्यता और प्रत्यग्रता का अभाव नहीं है।

शब्दालंकार और अर्थालंकार--उभयमूलक अवरकाव्य (अधमकाव्य) का आदर--आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त और मंमट की काव्यालोचनसरणि में भले ही न रहा हो, परंतु 'सुबंधु की वासवदत्ता', 'दण्डी का दशकुमारचरित', 'बाण की कादम्बरी', 'भारवि के किरातार्जुनीय', 'माघ के शिशुपालवध' और 'श्रीहर्ष के नैषधचरित'—आदि, संस्कृत के मध्ययुगीन शत-सहस्र गद्यपद्यात्मक दृश्यश्रव्यकाव्यों मे शब्द-अर्थ-मूलक चित्रकाव्यविधा की अलंकरणवृत्ति का व्यापक प्रभाव छा गया था। हिन्दी के भक्ति और रीति–उभययुग के काव्यों मे अलंकृत-काव्यशैली का चमत्कार कम नहीं है। सूर, जायसी, तुलसी आदि के समान महाकवियों का मन भी कभी कभी शब्द एवं अर्थ से सबद्ध चित्रक्रीड़ा में रम ही जाता था। तब यदि रीतिरूढियो मे शृंगारप्रभाव के अनतर सर्वाधिक बलशाली अलकारप्रभाव ने 'बिहारी' की सर्जनावृत्ति को अभिभूत कर लिया तो—युगचर्या के विचार से—उसे स्वाभाविक कहा जा सकता है। फिर भी आलंकारिक कारीगरी के चमत्कारिक शिल्पविधान में 'बिहारी' की बहुत सी उक्तियाँ ऐसी भी हैं जिनमे भावसवेद्य और रसबोध की रम्यता भरी हुई।

फारसीशायरी और मुगलिया दरबार से उसकी प्रभावव्याप्ति के कारण उक्तिगत वक्रता और ऊहात्मक वैचित्र्यबोध की आवाज भी 'बिहारी' के दोहों से सुनाई पड़ जाती है—

औंधाई सीसी सु लखि बिरह-बरनि बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ, छीटौ छुई न गात ॥ २१७ ॥
इत आवत चलि जात उत लगी छ-सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै लगी उसासनि साथ ॥ २१८ ॥
पलनु प्रकटि, बरनीनु बढ़ि, नहिं कपोल ठहरात।
अँसुवा परि छतिया, छिनकु, छनछनाइ छिपि जात ॥ ६५९ ॥
छाले परिबे कैं डरनु सकै न हाथ छुवाइ।
झझकत हियैं गुलाब कैं झँवा झँवैयत पाइ ॥ ४८३ ॥

—इन दोहों में चमत्कार- सृष्टि की अत्यधिक लिप्सा के कारण ऐसी ऊहात्मक कल्पनाओं के चित्र उपस्थित किए गए है जो अस्वाभाविक भी हैं और असभव

भी। 'विरह-बरनि' (विरह की तपन या ज्वाला) ऐसी प्रचंड बताई गई है कि गुलाबजल की पूरी की पूरी शीशी 'बिहारी' की विरहिणी पर उडेल दी जाती हैं। पर नायिका की विरहज ज्वाला की लपटों से भाप बनकर सब गुलाबजल उड़ जाता है! उसका छींटा भी शरीर का स्पर्श नहीं कर पाता। दूसरी बिरहिन गलकर इतनी दुबली और हलकी हो गई है कि उसास के वेग से छह-छह सात-सात हाथ तक इधर उधर उड़ सी जाती है। उसका शरीर सूखे पत्ते सा हो जाता है! तीसरी नायिका की विरहजन्य उरज्वाला ने उसके हृदय को आग से लाल तवा सा करा दिया है—जिस पर आँसू की बूँदें जब जब पडती है तब छनछना कर लुप्त हो जाती हैं। गनीमत यही है कि पहने हुए वस्त्र (शायद फायरप्रूफ होने के कारण) जलकर भस्म नहीं हो जाते और विरहभवन जलकर खाक नहीं हो उठता! चतुर्थ नायिका के शरीर को तो सखियाँ या नाइन, इस डर से नहीं छूती कि कहीं हाथ में छाले न पड़ जायँ!

अवश्य ही इन ऊहोक्तियों पर फारसी उर्दू शायरी का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य है। निश्चय ही हिंदी कविता मे भी उस समय तक ऐसी उक्तिओं का थोड़ा-बहुत प्रचलन अवश्य हो गया था। 'बिहारी' पर भी उसका प्रभाव पड़ा। पर उनमें ऐसे अभिव्यंजन बहुत अधिक नहीं है। कविप्रौढोक्तिसिद्ध उक्तियाँ अवश्य काफी हैं। इनमें नायिकामुख आदि का चंद्रादि के साथ साम्य-प्रदर्शन करने के साथ-साथ उपमान के प्रकाश, कौमुदी, पर्वफल आदि का वर्णन भी कर दिया गया है। इसी प्रकार तनुलतिका के चंपकवर्ण, सौकुमार्य, स्वर्णि... आदि के आलंकारिक वर्णन में स्वर्ण का अंगाभा में तद्गुणित हो जाना, अभिसार मे प्रकाश फैलाना, कर्कशस्पर्शमात्र से बोधगम्य होना—इत्यादि वर्णन भी बहुत मिलता है। परंतु अभिव्यक्तिपक्ष का यह वर्ण्यरूप नया नहीं अपितु संस्कृत मे बहुत पहले से चला आ रहा था। कविसमय, कवि-वर्णनरूढि अथवा कविप्रौढक्तिसिद्ध प्रस्तुताप्रस्तुतरूप मे इनकी स्वीकृति तद्युगीन कविसमाज के गोष्ठीरसिकों मे ग्राह्य भी थी और सवेदनीय भी मानी गई थी। 'बिहारी' ने भी उसी लीक पर चलकर इनकी रचना की—

दीप-उजेरैँ हू पतिहि हरत बसनु रति-काल।
रही लपटि छवि की छटनि, नैँकौ छुटी न लाज॥ ४६..

भूषन-भारु सँभारिहै क्यौं इहि तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परै सोभा ही कै भार ॥ ३२२ ॥

डीठि न परत समान-दुति कनकु कनक सैं गात।
भूषन कर करकस लगत परसि पिछाने जात ॥ ३२३ ॥

करतु मलिन आछीं छबिहिं, हरतु जु सहजु बिकास।
अंगरागु अंगन लगैं, ज्यौं आरसी उसासु ॥ ३२४ ॥

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाइ।
सौंधे कैं डोरैं लगी अली चली संग लाइ ॥ ७ ॥

अंग-अंग-नग जगमगत दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै बड़ौ उजारो गेह ॥ ६६ ॥

इस वर्ग की उक्तिचमत्कृति 'बिहारी' मे बहुत है। 'पत्रा ही तिथि पाइत...' अथवा 'पाइ महावरु देन कौं...' आदि दोहे इन्हीं श्रेणियों में आते हैं। 'गात-रूप' को देखकर 'जातरूप' के रूप का 'दुर जाना' आदि अभिव्यक्तियाँ—इतनी रूढ़ और परपराभोग्य हो गई थी जिनके लिये 'बिहारी' के भावबोध और रसभोग को हृदयहीन नहीं कहा जा सकता। 'मतिराम' में भी इस पद्धति की उक्तियों का अभाव नहीं है। वस्तुतः इस प्रकार की कलाबाजी तथा कविसमयनिबद्ध प्रौढ़ोक्तियों की विधानक्षमता के बिना—उस युग के काव्यगोष्ठीरसिक नागरों या सामाजिकों के बीच कवि को समादर ही प्राप्त नहीं होता था। अतः काव्यज्ञशिक्षा तथा अभ्यास द्वारा कवि के लिये उन अर्जनाओं की उलब्धि अत्यंत अपेक्षित होती थी। तद्युगीन काव्यरूढ़ियों के भोगबोध मे उनका संश्लेषण अभेद्य बन गया था। 'बिहारी' की वह कलापरक चमत्कारवृत्ति—जिसे डा० सिंह ने 'मतिराम' की अपेक्षा 'बिहारी' के भावपक्ष की हीनता के रूप मे बताया है—रीतियुगीन काव्यशिल्प का अनिवार्य अंग था। चाहे 'बिहारी'[१९] हों या 'मतिराम', चाहे 'भूषण' हों या

---

१९ इसी कारण निम्नाकित रंग की परपरामान्य काव्यरूढियों का रीतिकाल में पर्याप्त प्रयोग हुआ है—

लखि गुरुजन-बिच कमल सौं सीस छुवायौ स्याम।
हरि सनमुख करि आरसी हियैं लगायी बाम ॥ ३४ ॥

'देव',—सब पर उसका व्यापक प्रभाव था। 'मतिराम', की 'सतसई' में उस प्रभावसीमा का दिग्दर्शन आगे कराया जायगा।

उपर्युक्त प्रकार की काव्योक्तियों पर जिस प्रवृत्ति की प्रभावव्याप्ति—ऊपर चर्चित हुई है उसी प्रकार की एक प्रवृत्ति थी शब्दार्थगत अलकारों द्वारा उक्ति में वक्रता तथा अर्थगत भंगिमा का सर्जन। दूसरे शब्दों मे कह सकते हैं कि संस्कृत काव्यशास्त्र की परपरा से आगत और विकसित पारिभाषिक अलंकारो की योजना द्वारा उक्ति में वकिम भंगिमा का विधान। अवर्ण्य और अप्रस्तुत के विधान या सयोजन से प्रस्तुत के स्वरूपबोध या अर्थचित्र में उत्कर्ष की सृष्टि ही—अनेक प्रयोजनों मे—एक मुख्य अभीप्सित होता है। पर अलंकारमूलक उक्तिभंगिमा की चमत्कारसर्जना ही जब मुख्य होने लगती है और प्रस्तुतपक्ष उपेक्षित पडा रहता है तब अलंकार द्वारा उक्तिमंडन भार बन जाता है और कभी कभी उस शुष्क चमत्कार से सहृदय के हृदय में विरुद्धबोध भी हो जाता है।

'बिहारी' या 'मतिराम'—दोनो की रचना मे शब्दार्थमूलक अलंकार-विधान द्वारा काव्यसृष्टि को चित्रित करने का प्रयास हुआ है। 'बिहारी' की सतसई में आलंकारिक चमत्कार द्वारा उक्तिगत वक्रता की सृष्टि करनेवाले दोहे (-सोरठे) बहुत से मिलते हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

जोग-जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता काननु सेवत नैन॥१३॥

डारे ठोढ़ी गाड़, गहि नैन बटोही, मारि।
चिलक-चौंध मैं रूप-ठग, हाँसी-फाँसी डारि॥१७॥

नख-रुचि-चूरन डारि कै, ठगि, लगाइ निज साथ।
रह्यौ राखि हठि लै गए हथाहथी मनु हाथ॥५५०॥

कौड़ा आँसू-बूँद, कसि साँकर बरुनी सजल।
कीने बदन निमूँद, दृग-मलिंग डारे रहत॥२३०॥

बिरह-बिथा-जल-परस-बिन बसियतु मो-मन-ताल।
कछु जानत जल-थंभ-बिधि दुर्योधन लौं लाल॥४१४॥

स्पष्ट है कि इन छन्दों मे आलंकारिक पच्चीकारी करने में कवि के बुद्धि-बल ने काफी कसरत की है। फिर भी उनके द्वारा वर्ण्य अर्थचित्र में भावस्पर्शी

रम्यता का अभीप्सित उन्मेष नहीं हो पाया है। जहाँ इनमे व्यंग्यार्थ गुणीभूत (गौण) हो गया है, वहाँ उसके बोध में रुकावट भी है और अप्रधानता भी, और वाच्याद्यर्थ ही मुख्यबन गए है। उनमे, कौतूहलजनक उक्तिवक्रता का वह अलकरणमात्र है जिसके द्वारा केवल अर्थवैचित्र्य एवं आर्थिक चमत्कार की सर्जना होती है हृदयस्पर्शी संवेदनाबोध की नही।

परंतु केवल इन लक्ष्यों पर ही ध्यान रखकर 'बिहारी' के बारे में डा० त्रिभुवनसिंह का यह कहना सगत नहीं है कि 'बिहारी' के छदों में कलाकार का चमत्कार ही अधिक है—हृदय का स्पर्श करनेवाली भावसुंदर उक्तियो की रम्यता कम। यह (निर्णय) इस कारण है कि उन्होंने सतसैया के बहुसख्यक अन्य छंदो की गवाही की ओर ध्यान कम दिया। 'बिहारी' मे अलंकारों की योजना के एक नहीं सैकडों ऐसे उदाहरण हैं जो अलकार्यपरक होकर उसी अलकार्य के संश्लिष्ट-चित्रीकरण अथवा मूर्त्तप्रत्यक्षीकरण में उत्कृष्ट शिल्प प्रकट करते हैं—

भीने पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार।
सुरतरु की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार॥१६॥

सहज सेत पँचतोरिया पहिरत अति छवि होति।
जल-चादर के दीप लौं जगमगाति तन-जोति॥३४०॥

इन दोहों में कवि के आलकारिक अप्रस्तुतविधान द्वारा रूपचित्र के दृश्यपक्ष की रेखाएँ चटकीली होकर सहृदय के कल्पनापट पर अकित हो उठती हैं।

ललित स्याम लीला, ललन, बढ़ी चिबुक छवि दून।
मधु-छाक्यौ मधुकरु पर्यौ मनौ गुलाब प्रसून॥२७०॥

गुलाबी रंग के चिबुक पर काले गोदने की सुंदरता का वर्णन करते हुए कवि ने गुलाब के फूल पर बैठे हुए मधुमत्त मिलिंद के अप्रस्तुत चित्र की योजना की है। इसके द्वारा अवर्ग्यपक्ष के स्पष्ट चित्र अतर्पटपर उभर आता है और नायिका की अंगवल्लरी के सौंदर्यबोध के साथ साथ उसके सौकुमार्य, मंजुलत्व, मृदुता, स्वस्थता आदि अनेक विशेषताएँ भी ध्वनित होती हैं। इस अप्रस्तुत योजना में नव्यता है, ताजगी है।

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट-पट झीन ।
मानहु सुरसरिता-बिमल जल उछरत जुग मीन ॥५७६॥

सोनजुही सी जगमगति अँग अँग जोवन-जोति ।
सुरँग कुसूँभी कंचुकी दुरँग देह - दुति होति ॥१९०॥

तिय, कित कमनैती पढ़ी, बिनु जिहि भौंह-कमान ।
चल-चित-बेझैं चुकति नहिँ बंकबिलोकनि-बान ॥३५६॥

को छूटै इहिं जाल परि, कत, कुरंग अकुलात ।
ज्यौँ-ज्यौँ सुरझि भज्यौ चहत,त्यौँ-त्यौँ उरझत जात ॥६७१॥

छिप्यौ छबीलौ मुँह लसै नीलैँ अंचर चीर ।
मनौ कलनिधि झलमलै कालिंदी कैँ नीर ॥५३८॥

लाज लगाम न मानहीँ नैना मो बस नाहिँ ।
ए मुहजोर तुरंग लौँ ऐँचत हूँ चलि जाहिं ॥६१०॥

अधिक उद्धरण अनावश्यक है । कथ्य इतना ही कवि है कि 'बिहारी' के छंदों में अप्रस्तुतपरक योजनाएँ—एक नहीं सैकड़ों ऐसी हैं जिनमे संश्लिष्ट चित्रों का मनोहर अकनशिल्प दिखाई देता है । इन चित्रो मे एक ओर तो रूप, रंग, रेखा या प्रभाव के वर्णन द्वारा बोधाकार अधिक प्रभावशाली, स्पष्टतर और उभरकर सामने अया है तथा दूसरी ओर वर्ण्यप्रसंग के भावबोध में अप्रस्तुतयोजना पर्याप्त योगदान करती है ।[20] अलकारविधान के कौशल से अथवा अनुभाव, विभाव, सात्विक भाव, संचारी भाव [भाव, हाव, हेला (अंगज, अयत्नज तथा स्वभावज अलकार)], भावोदय आदि के बहुत

---

२०. सागरूपक के समान कठिन अलंकार को छोटे दोहे मे इस ढंग से बाँधना कि इप्सित और वर्ण्यार्थबोध मे सहायता पहुँचे—दुष्कर कार्य हैं । पर 'बिहारी' इसमें भी सफल है—

खौरि पनच, भृकुटी धनुष, बधिक समर तजि कान ।
हनत तरुन-मृग तिलक सर सुरक भाल भरि तान ॥

इसमें रूपक के सफल निर्वाह के साथ साथ रूपाकार और प्रभाव—दोनों के साम्य को कवि ने सफलता के साथ निबाहा है ।

ही सुंदर शब्दचित्रों का 'बिहारी' ने अंकन किया है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं जिनसे रससंवेदना और भावबोध के विषय में कवि के आसंजन और उनके चित्रण की शिल्पक्षमता का प्रमाण मिलता है। साथ ही यह भी प्रकट होता है कि भावपरिधि के जीवन्त चित्रों के रचनाकौशल में कवि कितना पटु और नदीष्ण है। काव्य में शब्दों द्वारा चित्रोत्थापन की कला कदाचित् कविकर्म की बहुत बड़ी सफलता है। इसमें 'बिहारी', 'मतिराम' 'पद्माकर' और 'रत्नाकर' आदि रससिद्ध कवि विशिष्ट स्थान रखते हैं। 'बिहारी' और 'रत्नाकर' ने इस शिल्प में उत्कृष्ट कीर्ति अर्जित की है। 'बिहारी' के अनुभावादि-विषयक कुछ भावचित्रों का परिचय निम्ननिर्दिष्ट उदाहरणों से मिल जाता है जिनमें उपर्युक्त काव्यगुणों के साथ साथ कहीं कहीं अलंकारों का भी बड़ा ही सटीक और चारुत्वसर्जक संयोजन है—

भौंह उँचै आचरु उलटि, मौरि मोरि, मुह मोरि।
नीठि नीठि भीतरि गई, दीठि दीठि सौं जोरि ॥२४२॥

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं नैननु ही सौं बात ॥३२॥

त्रिबली नाभि दिखाइ, कर सिर ढकि, सकुचि समाहि।
गली, अली की ओट कै, चली भली बिधि चाहि ॥८६॥

सुनि पग-धुनि, चितई इतै न्हाति दियैं ही पीठि।
चकी, झुकी, सकुची, डरी, हँसी, लजी सी डीठि[२१] ॥६२३॥

२१—अन्यत्र भी—

डगकु डगति-सी चलि, ठुठकि चितई, चली निहारि।
लिए जाति चितु चोरटी वहै गोरटी नारि ॥१६॥

उन हरकी हँसि कै इतै इन सौंपी मुसुकाइ।
नैन मिलैं मन मिलि गए दोऊ, मिलवत गाइ ॥१२८॥

हँसि हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति।
बलकि बलकि बोलत वचन, ललकि ललकि लपटाति ॥१७६॥

छला छबीले लाल कौ नवल नेह लहि नारि।
चूँबति, चाहति, लाइ उर पहिरति, धरति उतारि ॥१२३॥

हँसि ओठनि-बिच, करु उचै, किये निचौं है नैन।
खरैं अरैं प्रिय कैं प्रिया लगी बिरी मुख दैन ॥६२७॥

लखि लखि अँखियनु अधखुलिन, आँगि मोरि अँगिराइ।
आधिक उठि, लेटति लटकि, आलस भरी जम्हाइ ॥६३०॥
भौंहनु त्रासति, मुँह नटति, आँखिन सौं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करु, इँची आगै आवति जाति ॥६८३॥
कर समेटि, कच भुज उलटि, खएँ सीस-पटु टारि।
काकौ मनु बाँधै न यह जूरा-बाँधनिहारि[२२] ॥६८७॥

इन उक्तियों में स्फुटालंकार का प्रयोग प्रायः नहीं है। परंतु प्रायः सभी छंदों से नायिका की ऐसी जीती-जागती तसवीरें खड़ी कर दी गई हैं जो रसिकों के मनों को बरबस मोह लेती हैं। नायिकाओं की अलंकारमयी विविध चेष्टायें और अनुभाव आदि के चित्रों की प्रभावशीलता गत्यात्मक और शक्तिमंत हो उठी है। इन्हें पढ़कर शायद ही कोई कहेगा कि 'बिहारी' मे भावपक्षीय चेतना का दौर्बल्य था और काव्यगत कारीगरी का कौशलाधिक्य था। इनमें तथा इस ढंग के सैकड़ों दोहों मे अर्थालंकार द्वारा उक्तिगत वक्रता की ओर—भावमग्न कवि की—वृत्ति अनासंजित है, दूसरी ओर—इन पद्यों मे अंकित चित्र अत्यंत स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी हैं।

बहुत से इस श्रेणी के ऐसे दोहे भी मिल सकते हैं जिनमें सुकुमार भाव-मूर्ति को अलंकार ने दबा दिया है पर बहुत से ऐसे भी हैं जहाँ अलंकार के ईषत् स्पर्श से रूपबिंब और भावचित्र के रंग और आकार रँगीले और चटकीले हो उठे हैं।—

कंजनयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार
कच-अँगुरी-बिच दीठि दै, चितवति नंदकुमार ॥६२॥
झटकि चढ़ति उतरति अटा, नैक न थाकति देह।
भई रहति नट कौ बटा, अटकी नागर नेह ॥१६४॥
सटपटाति सैं ससिमुखी, मुख घूँघट-पट ढाँकि।
पावक झरसी झमकि कै, गई झरोखा झाँकि[२३] ॥६४६॥

२२—कर लै चूमि, चढ़ाइ सिर, उर लगाइ, भुज भेटि।
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि ॥६३५॥

२३—फेरु कछुक करि पौरि तैं, फिरि चितई मुसकाइ।
आई जावनु लैन, जिय नेहै चली जमाइ ॥१४४॥

नहि अन्हाइ, नहि जाइ घर, चित चिहुट्यौं तकि तीर ।
परसि, फुरहरी लै फिरति, बिहँसति, धँसति न नीर ।।६४५।।

—अतः यह न समझ या मान बैठना चाहिए कि (क) 'बिहारी के असंख्य साहित्य मर्मज्ञों के कंठहार बनने का एकमात्र कारण है उनके दोहों में उक्तिवैचित्र्य द्वारा अद्भुत चमत्कार उत्पन्न करने की शक्ति जिससे पाठक या श्रोता सहसा चमत्कृत हो जाता है', या (ख) 'गांभीर्य से विरत उछलकूद और उक्तिवैचित्र्य के कारण 'बिहारी' को वह जादू की छड़ी मिली जिससे अपने युग मे वे सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए' अथवा (ग) 'बिहारी सतसई के दोहे जितना बुद्धि को प्रभावित करते हैं, उतना हृदय को नहीं' । इसके विपरीत तथ्य यह है कि वे हृदय और बुद्धि, कलापक्ष और भावपक्ष—सर्वत्र उच्चकोटि का कविकर्म प्रकट करने में समर्थ हैं ।

निष्कर्ष

प्रसंगवश यहां 'बिहारी' के सबंध में कुछ विस्तार से चर्चा करनी पड़ गई । परंतु इसकी आवश्यकता और प्रयोजन इतना ही दिखाना है कि 'बिहारी' उच्चकोटि के काव्यकर्मनिपुण कवि और संवेद्यभावों के प्रेषणशिल्पी थे । वे सौंदर्यबोध, भावबोध, लालित्यबोध और रसबोध को सर्जनात्मक चेतना से उल्लसित करने मे समर्थ थे । रूपबिंब तथा भावपरिधि के बिंबचित्रों के वे सफल कलाकार थे । अवश्य ही परपरा, रूढ़ि, रीति, विदेशीकाव्योक्तिशैली, चमत्कारचेतना और अलंकरणवृत्ति से संबद्ध देशकालव्यापी गुणधर्मों का स्वर भी उनकी रचनात्मक प्रक्रिया को प्रभावित करनेवाले प्रबल उपकरण थे । अतः कविकर्मविषयक उनकी उत्कृष्टता से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि 'मतिराम' की गढ़ी हुई उक्तिप्रतिमा पहले से ही उनके समक्ष थी—इस कारण उनका शृंगार और आमंडन संपन्न करने से ही वे उत्कृष्ट दोहे बनाने में समर्थ हुए ।

मतिराम का भावबोध

'बिहारी' की महत्ता स्वीकार करने से मतिराम सतसई के काव्योत्कर्ष का महत्व किसी प्रकार कम बताना हमारा उद्देश्य नही है । निश्चय ही इनके दोहों में सहज एव स्वाभाविक भावबोध का अकृत्रिम और मर्मस्पर्शी अंकन मिलता है । इनकी काव्योक्तियों में उक्ति की ऋजुता, अनुभूतियो की

दुचितैं चित हलति न चलति, हँसति न झुकति, बिचारि ।
लखत चित्र पिउ लखि, चितै रही चित्र लौं नारि ।।२६४।।

स्वाभाविकता और भावसंवेदना का मनोरम स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है। उनकी सतसई में भी बिहारी सतसई की भाँति शृंगारपरिवेश के दोहो की प्रधानता दिखाई पडती है। उनके दोहों में भी संवेदनबोध, लालित्यचेतना तथा भाव व्यंजना की रम्यता के साथ साथ ताजगी और मर्मस्पर्शिता दिखाई देती है। शृंगारी परिवेश के सयोग-वियोग के संश्लिष्ट चित्रणो मे उनके भावबोध में रसिक कवि की सहृदयता आद्यंत झलकती है। मिलनविरह के सुखदु:ख की अनुभूतियो, आवेगों, चेष्टाओ तथा हावभावादिपरक नायिकानिष्ठ आलंबनगत चित्ररूपो के विधान मे 'मतिराम' का काव्यशिल्प—अपने समस्त आकर्षणों के साथ—सतसई मे निखर उठा है। पूर्व पृष्ठों मे अनेक बार यह कहा जा चुका है—इनमे परकीयासंपृक्त रूपचित्रों की अपेक्षा स्वीया के प्रति कवि का आसंजन अधिक सक्रिय है (दे० ३०)।

नारी की—नायिका की—आँखो मे 'अलसानि', 'चितवन में मंजुविलासों की सरलता' देखदेख, 'मुसकान' की मिठास पर बिना मोल बिक जानेवाले 'मतिराम' की नारी-सौदर्य पारखी आँखों ने अत्यत निकट से अपने विदग्ध नयनों द्वारा श्यामा रामा की अगलतिका की खरी निकाई का रसपान किया था। कोमलता और मादकता से भरे नारीकलेवर के समस्त अवयवों की प्रभावव्याप्ति और रतिबृंहणता का अनुभव भी किया था। परंतु, रसविदग्ध नवल तरुण के हृदय में मदनभाव का मादन अनुभव कराने में रसप्रवीण दो अंगों की—नयन और उरोजों की—सामर्थ्यव्याप्ति से कदाचित् 'मतिराम' का मानसिक रसबोध अधिक प्रभावित था। फलतः उनकी सतसई में कुल मिलाकर लगभग सौ अधिक दोहे ऐसे (ढूँढ़ने पर) पाए जा सकते है जिनमें इन दोनों के सौंदर्य,व्यापार की मोहकता, मादकता और प्रभावशक्ति का व्यापक चित्रण हुआ है। इसके अतिरिक्त कभी प्रत्यक्षवर्णन में और कभी परोक्षरूप से—कभी प्रस्तुत रूप मे और यदाकदा अप्रस्तुत ढंग से भी संयोग शृगार के विविध पक्षों, व्यापारो और ललित प्रसंगो का भी पर्याप्त संख्या में वर्णन मिलता है। समागम और संयोग से संबद्ध दोहे भी यद्यपि बहुत हैं तथापि प्रस्तुत सतसई के ४८६ से ५०३ तक के दोहे इस प्रसग के उदाहरण रूप में देखे जा सकते है। इसी प्रकार ५५१ से ५६१ तक के दोहे भी संयोगपरिकर के विलासो का वर्णन करते हैं। उनके अतिरिक्त भी शृंगारक्षेत्रीय बहुत से दोहे इस सतसई में ऐसे भरे पडे हैं जिनमें शृङ्गार के अंगों का चित्रात्मक वर्णन मिलता है। आज की दृष्टि से संयोगशृङ्गार की

श्लीलसीमा का अतिक्रमण करते हुए विपरीतरति आदि का स्थूल संकेत करने वाले युगरूढ़ि के अनुगामी वर्णन भी इसमे हैं।

मतिराम सतसई मे चूँकि रसराज के लक्ष्यानुसारी दोहे भी सग्रथित हैं अतः नायिका भेद और तदितर श्रृङ्गारक्षेत्र के अनेक प्रसंग यहाँ अनायास मिल जाते है। इसीकारण, हावभाव, लीलाविलास आदि के मुद्राचित्रों, भावबिंबो और भावमूर्तियो का अकन करनेवाले चित्र भी मतिराम सतसई में अनेक हैं।

कोरे अलंकार या ऊहात्मक चमत्कार वाले दोहे मतिराम सतसई में नही है—ऐसी बात नहीं है। पर उनकी संख्या कम अवश्य है। सब मिलाकर कह सकते है कि यदि कोरे अलंकार-चमत्कृत या उक्तिवक्रता के चमत्कार वाले, और नीतिभक्ति आदि के कुछ दोहो को छोड़ दिया जाय तो 'मतिराम' के अधिकाश दोहे सरस, भावसंपृक्त, स्वाभाविकता-संपन्न और मर्मस्पर्शी हैं। उनकी उक्तियों में स्पष्टचित्र हैं, आयासहीन सरसता की मिठास है और नायक-नायिका के प्रेमप्रवण मन का सहज उल्लास है। उनके चित्रों में भावुक कवि की मस्ती और विलासी तथा अभिजातवर्गीय गृहस्थ की वासना का वेग है। विविध पक्षो के थोडे थोड़े दोहों का नमूना नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

ऊहात्मकता, उक्तिवक्रता तथा अलंकारिक चमत्कार—

मन जद्यपि अनुरूप है, तऊ न छूटति रंक।
टूटि परै जनि भार तें, निपट पातरी लंक॥ ४२२॥
बिरह बचे हिय कुचनि लौं असुआँ सकत न आइ।
गिरि उड़गन ज्यों गगन तें बीचहि जात बिलाई॥६६५॥
कनक-बेलि में कोकनद, तामे श्याम सरोज।
तिनमें मृदु मुस्कान है, तामें मुदित मनोज॥४२४॥
लाल तिहारे नैन सर अचरज करत अचूक।
बिन कंचुक छेदैं करैं छाती छेद छटूक॥६२॥
राधिक के दृग खेल में मूँदे नंदकुमार।
करनि लगी दृग कोर सौं, भई छेद उर पार॥ २१६॥
उदै भयो है जलद तू जग कौ जीवन दान।
मेरो जीवन हरत है कौन बैर मनमान॥ ४१६॥

कुंद न पावत रदन रुचि कुंदन अंग प्रकास।
चंद न पावत बदन छवि चंदन अंग सुबास ॥ ५०७ ॥

कलकल कलिका कुल ललक कोकिल कुल की केलि।
लोलै कला कलोल कै लाल लाल कंकेलि ॥ ६०६ ॥

सरद चंद की चाँदिनी को कहिए प्रतिकूल।
सरद चंद की चाँदिनी कोक हिए प्रतिकूल ॥ ४४२ ॥

बिहसत नील दुकूल में लसत बदन अरबिंदु।
झलकत जमुना रूप में, मानो पूरन इंदु ॥ ४७६ ॥

जरतारी सारी ढके नैन लसति मतिराम।
मनो कनक पंजर परे खंजरीट अभिराम ॥ ४७६ ॥

नयन, चितवन और मुसकान

हियो हिए सो मिलि चल्यो, नैन चले मिलि नैन।
इतै उतै मारी फिरै, लाल कहूँ ठहरै न ॥ ६२ ॥

बाँधी दृग डोरानि सों, घेरी बरुनि समाज।
गई तऊ नैनानि ते निकसि नटी-सी-लाज ॥ ३५६ ॥

पिय समीप कौ सुख सखी कहे देत ये नैन।
अबल अंग, निरबल बचन, नवल सुनींदे नैन ॥ ३०६ ॥

तलफत घाइनि जीव कों कौन जियावत आनि।
जो न होति उन दृगनि मे सुधा मधुर मुस्कानि ॥ ३६० ॥

मानत लाज लगाम नहिं, नेक न गहत मरोर।
होत तोहि लखि बाल के, दृग तुरंग मुख जोर ॥३७३॥

खेलत मार सिकार है डारे पास समेत।
नैन मृगन सों बाधिकै नैन मृगन गहिलेत ॥ ३३ ॥

लचकौहीं सो लंक उर, उचकहीं-सो ऐन।
बिहसौहे-से बदन मैं लसत नचौं हैं नैन ॥ २५ ॥

हसत बाल के बदन में यौं छबि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि ते झरत चमेली फूल ॥४१५॥

करति केलि अति प्रेम सों पगे प्रेम मद नैन।
अबर में चंचल लसैं खंजरीट-से नैन ॥ ३९८ ॥

रूप बैस मदिरा मदन, मदन मदारि से नैन।
प्रेम छके पिय छबि छके, हटके नेक रहैं न ॥ ४५६ ॥

नैननि को आनंद है जिय को जोवन जागि।
प्रकट दरप कंदरप को तेरो मृदु मुसकानि ॥ ४७१ ॥

वक्षोज और परिरंभ

ज्यो ज्यों ऊँचे होत हैं उरज बाल के ऐन।
सब सौतिन के होत हैं त्यौ त्यौ नीचे नैन ॥ ११५ ॥

अति अवदात महा मिही कसी उरोज उतंग।
केसरि रंग लगी लगै अँगिया अंगनि संग ॥ ५८४ ॥

कुच कठोर पाषाण तें, क्यों न करैं उर पीर।
बड़े नरम जगनैन कत, होत विषम विषतीर ॥ ३७८ ॥

मन भावन कीं भाँवती भेटति रस उतकंठ।
बाँहों छुटै न कठ तें, नाहीं छुटै न कंठ ॥ ३१७ ॥

रोस-भरी अँखियानि लखि लोगनि में अनखाइ।
हँसिय कंठ लपटाय कैं एक रूप लै जाइ ॥ २५३ ॥

आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव, हाव, सात्विकभाव, संचारीभाव, मान आदि के चित्र—

श्रम-जल-कन झलकन लगें अलकनि कलित कपोल।
पलकनि रस छलकन लगे ललकन लोचन लोल॥१६४॥

तरनि-किरनि झलमलित मुख, लालो ललित कपोल।
प्यास लगावति दृगनि मे प्यासो बाल अमोल ॥ ५४॥

चलन लगीं अँखियाँ चपल, चलन लगी लखि छाँह।
तन जोबन आवन लग्यो मन भावन मन माँह ॥१०७॥

गंगनीर बिधु रुचि झलक मृदु मुसिक्यानि उदोति।
कनक भौन के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ॥ ४७६ ॥

कंटक काढ़त लाल की चंचल चाह निबाहि ।
चरन खैंचि लीनो तिया हँसि झूठे करि आहि ॥७३॥
सकुचि न रहियै साँवरे, सुनि गरबीले बोल ।
चढ़ति भौंह, बिकसत नैथन, बिहसत गोल कपोल ॥३१६॥
औरै कछु चितवनि चलनि, औरै कछु मृदु मुसकानि ।
औरै कछु सुख देत हैं, सकै न बैन बखानि ॥४०४॥
फिरि फिरि आवति जति चलि अँगरानी मुसिक्याति ।
बाल लाल को ललित मुख लखि लजाति ललचाति ॥४२६॥

इन प्रसंगो के लिए आगे निर्दिष्ट दोहो को भी देखिए—१६६,४०,८८, ४४,४८,१२८,५६१,३१५,१२४,२०३,४१६, ३४६, २६, ११४, ३५७, ३६७, ४८०,५८०,६०८,५२२ और ६९६ ।

संयोग-वियोग और तत्संबद्ध विविध प्रसंग—

पिय मिलाप को सुख सखी कह्यो न जाइ अनूप ।
सौतुक तौ सपनो भयो सपनो सौतुक रूप ॥ १९६ ॥
परै न धुनि सुनि सखिनिको लाजनि होत अधीर ।
कर कमलन सों गहि रहै सुरत मुखर मंजीर ॥४९७॥
लसत सुरत श्रम सलिल कन, ललित बाल नँदलाल ।
फली मनो मुकता फलनि कंचन बेलि तमाल ॥४७८॥
बैठि रहै, रोवै, हँसै, आतुर उतरि उताल ।
प्रथम सुरति बिपरीति की रीति न जानति बाल ॥४९४॥
ज्वाल जाल बिज्जुलि छटा घटा धूम अनुहारि ।
बिरहिनि जारनि कौ मनो लाई मदन दवारि ॥ ५०६ ॥
लाज छुट्यो, गेहौ छुट्यो, सुख सो छुट्यो सनेह ।
सखि कहियौ वा निठुर सों, रही छूटिबें देह ॥ ८१ ॥
तन दुरबल, मनमथ प्रबल, ढिग बसंत, पिय दूरि ।
अचल बिरह, चलि जीव सखि, तनक न सुख,दुख भूरि॥६०८॥
सखिन करति उपचार अति, परति बिपति उत रोज ।
झुरसत ओज मनोज के, परसि उरोज सरोज ॥५२१॥

इन प्रसंगों के और दोहे देखिए—१३१,३५७,१३६, २७६, ३५२, ४१३, ५४१,५८२, ४१५,४४८,५००,५६१,५१५,५२२ और ५८३ ।

कुलवधू और स्वकीयावर्णन में 'मतिराम' के आग्रह का उल्लेख किया जा चुका है। उस कुछ उदाहरण नीचे हैं—

निसि-दिन निंदति नंद है, छिन-छिन सासु रिसाति।
प्रथम भए सुत को बहू अंकहि लेति लजाति ॥ १५६ ॥
पासे गर्भवती तिया सिथिल हाथ ढरकाइ।
हसत लाल लोचन लखैं, लोचन रही नवाइ ॥ १०६ ॥
पिय-अपराध अनेक निज आँखिनि हू लखि पाइ।
तिय इकंत हूँ कंत सों मानो करति लजाइ ॥ १६८ ॥

इनके अतिरिक्त श्रद्धा, भक्ति, नीति आदि नाना विषयों से संबद्ध पद्य भी इस सतसई में यत्रतत्र बिखरे पड़े हैं—

गुन औगुन को तनकऊ प्रभु नहिं करत बिचार।
केतक कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार ॥ ४२ ॥

निज बल के परिमान तुम तारे पतित बिसाल।
कहा भयो जु न हौं तरतु, तुम न खिस्याहु गुपाल ॥ ४७ ॥

जो निसि दिन सेवन करै, अरु जो करै विरोध।
तिन्हैं परम पद देत प्रभु, कहौ कौन यह बोध ॥ ४०५ ॥

स्याम रूप अभिराम अति सकल बिमल गुन धाम।
तुम निस-दिन मतिराम की मति बिसरौ मति राम ॥४५०॥

प्रतिपालत सेवक सकल पलन दलमलत डाँटि।
संकर तुम सब साँकरे प्रबल साँकरै काटि ॥ ४५६ ॥

कोटि कोटि मतिराम कहि जतन करो सब कोई।
फाटे मन अरु दूध मैं नेह न कबहूँ होइ ॥ ७० ॥

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है:—(१) 'मतिराम' की सतसई में अधिकांश दोहे श्रृंगारी परिपार्श्व के बीच अभीष्ट चित्रों का अंकन करते हैं। (२) इस सतसई का विषय परिवेश मुख्यतः बिहारी सतसई की भाँति श्रृंगारी है और उसी की तरह स्तुति, भक्ति, नीति, राजप्रशस्ति आदि के छंद यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं। (३) अपने ललित दोहों को एकत्र संकलित करके उसे सतसई का रूप देने की प्रेरणा—संभवतः 'मतिराम' को—बिहारी सतसई से तब मिली जब वह मुक्तकसंग्रह अभिजातवर्गीय (या आधुनिक

शब्दों में सामन्ती)रसिकों के समाज में अत्यंत प्रिय एवं विख्यात हो चुका था। (४) यह संकलन 'भोगनाथ' के राज्यकाल का था और अनुमानतः १७३८–३९ वि० के बाद ही 'मतिराम' का यह संग्रह बना। परंतु इसमें गुंफित दोहे संवत् १६६० से पूर्व के भी हो सकते हैं जो 'फूलमंजरी'—निर्माण के अनंतर बिरचित हुए थे। (५) तत्कालीन रसिक वर्ग की सहृदयता के विचार से भावसंवेदना, सौंदर्यबोध और रसचर्वणा की दृष्टि से 'बिहारी' के दोहों में 'मतिराम' की अपेक्षा कला का बोध और आस्वादन उत्कृष्टतर है। (६) नयन का (किसी भी रूप मे) चित्रण, 'मतिराम' की सतसई में सर्वाधिक प्रिय विषय है, साक्षात् और परंपरया—उभय रूप से यदि आकलन किया जाय तो कहा जा सकता है १५० दोहो से भी अधिक छंदो मे प्रस्तुत, अप्रस्तुत, मुख्य, सहायक या प्रासगिक ढग से नयन, चितवन आदि का उल्लेख हो गया है। इसके अनंतर—श्यामा वामा के रति उद्दीपक अवयव के रूप मे—सर्वाधिक चर्चा उरोजों की है, लगभग १०० दोहों से कम में नहीं; और फिर मुस्कुराहट, हसित आदि की। (७) शृंगार और विशेषरूप से संभोगपक्ष के वर्णन की दृष्टि से 'मतिराम सतसई में नग्नता की कमी नहीं है, वैलासिक वासना और आवेशात्मक आवेग के रूप में उस पक्ष का अंकन मिलता है। फिर भी परकीया या सामान्या की अपेक्षा स्वकीया का आग्रह और उसकी बोधचेतना का आभोग यहाँ बलवत्तर और प्रियतर पक्ष है। यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि 'सौत' की चर्चा स्वकीयापक्ष को ही पुष्ट करती है। (८) 'मतिराम' मे नागरों और छैलों के प्रणयव्यापार की चित्रांकनलालसा ही प्रियतर वर्ण्य विषय नहीं था, वरन् वे ग्रामीणों के सहजतः सरल और वासनाविकल कामक्रीड़ाओ को मुग्धतर भाव से आस्वादित और अंकित करते थे।

[१] साहित्यिक मूल्यांकन—कुछ आलोचकों की दृष्टि में

आलोचनदृष्टि से 'मतिराम' के साहित्यिक उत्कर्ष का वर्णन कदाचित् मुख्य रूप से सर्वप्रथम— मिश्रबंधुविनोद' मे मिलता है। वहाँ कवि के ग्रथों की पृथक पृथक् चर्चा हुई है। बिना गुरु के अलंकार का सामान्य ज्ञान करानेवाला ग्रंथ—वहाँ ललितललाम कहा गया है। रसराज को भावभेद का परमोज्वल ग्रंथ—वे मानते हैं। इसकी कविता को प्रसाद गुणपूर्ण और समस्त ग्रंथ को उत्तमता का चमत्कारसूचक बताया गया है। 'देवप्रशंसक' 'मिश्रबंधुओं' के विचार से रसराज के छंद इतने उत्कृष्ट हैं कि 'देव' के पद्यों को छोड़कर

हिंदी साहित्य में उसकी बराबरी के छंद नहीं मिल सकते।'मतिराम' की भाषा के समान सुष्ठु, श्रुतिमधुर और समर्थ भाषा 'देव' से अन्य के ग्रंथों मे प्रायः दुर्लभ है। इनकी उपमा की योजना अच्छी कही गई है और मानवप्रकृति के इनके चित्र भी कहीं कहीं परमोत्कृष्ट बताए गए हैं। 'मतिराम' के अधिकांश छंदों को मनोहर और दोहा छंद की रचना में उन्हें निपुण शिल्पी माना गया है। अन्य छंदों में इनकी तुलना 'देव' से और दोहो के प्रसंग में 'बिहारी' से निःसंकोच—विनोदकार के मत से—की जा सकती है। उनके विचार से 'मतिराम' में भाषासौंदर्य और भाव गांभीर्य उच्चकोटि का है तथा आचार्यत्व की दृष्टि से भी इनका स्थान ऊँचा है।

श्रीकृष्णबिहारी मिश्रजी ने मतिराम ग्रंथावली की अपनी भूमिका में विस्तार के साथ 'मतिराम' के जीवनवृत्त, आचार्यत्व और कृतित्व का विवेचन किया है। उस संबंध में यहाँ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है। प्रस्तुत मतिराम ग्रंथावली के साथ वह भूमिका प्रकाशित है।

साहित्यिक समीक्षासिद्धांत की आधुनिक दृष्टि से साहित्यिक कृतियों का हिंदी में प्रौढ़ मूल्यांकन सर्वप्रथम उपस्थित करनेवाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास में सूत्ररूप से 'मतिराम' के साहित्यिक वैशिष्ट्य का मार्मिक परिचय हमें मिलता है। उनके मत से'मतिराम' की रचना में सबसे बड़ी विशेषता है—"उसकी सरलता और स्वाभाविकता। उसमें न तो कृत्रिम भावों की योजना का बाहुल्य है और न भाषा में शब्दाडंबर का आटोप। अनुप्रासविषयक शाब्दिक सौंदर्य के लिये उसमें अशक्त शब्दों की भरती कहीं नहीं है। शब्दों और वाक्यों का प्रयोग सामान्यतः सर्वत्र भावव्यंजना के लिये ही उपयोग में आया है। ऐसी स्वच्छ, चलती और स्वाभाविक भाषा रीतिग्रंथवाले कवियों में कम पाई जाती है। पर कहीं कहीं वह अनुप्रास के जाल में जकड़ी हुई भी है।" "सारांश यह कि 'मतिराम' के सदृश रसस्निग्ध और प्रसादपूर्ण भाषा, रीतिप्रवृत्ति का अनुसरण करनेवालो में बहुत ही कम मिलती है। उनके भाव भी कृत्रिम (प्रायः) नहीं हैं और उनसे व्यंजित व्यापार और चेष्टाएँ भी स्वाभाविक हैं। भावों के चित्रण में ऊहात्मक कल्पना का प्रयोग साधारणतः उन्होंने नहीं किया है। इस कारण भावों के व्यंजक व्यापारों की शृंखला 'मतिराम'में सीधी और सरल पाई जाती है न कि 'बिहारी' के समान चक्करदार। शब्दवैचित्र्य के समान वचनवक्रता भी 'मतिराम' के सच्चे कवि हृदय को बहुत पसंद न

थी" । "वे यदि समय की प्रथा के अनुसार रीति की बँधी लीकों पर चलने के लिये विवश न होते और अपनी स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार चलने पाते, तो और भी स्वाभाविक और सच्ची भावविभूति दिखाते, इसमें संदेह नहीं । भारतीय जीवन से छाँटकर लिए हुए इनके मर्मस्पर्शी चित्रों में जो भाव भरे है, वे समान रूप से सबकी अनुभूति के अंग हैं ।"

आचार्य शुक्ल के अनुसार—'रसराज' और 'ललितललाम'—अपने विषय के दोनों अनुपम और बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है तथा रस और अलंकार का बोध कराने में उनका उपयोग बराबर होता चला आया है । अपने उदाहरणों की रमणीयता के कारण इन ग्रंथों द्वारा रसों और अलंकारों का अभ्यास अनायास होता चलता है । ललितललाम के अलंकार—संबधी उदाहरण बहुत ही सरस और स्पष्ट हैं, इसी कारण दोनों ही ग्रंथ बहुत ही सर्वप्रिय रहे है ।

उन्होने यह भी कहा है—"सरल व्यंजना और चलती भाषा की दृष्टि से रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों मे 'पद्माकर' को छोडकर किसी की भाषा में 'मतिराम' की सी सुष्ठुता नहीं मिलती ।" 'बिहारी' की वचनवक्रता और भावव्यंजक व्यापारों की श्रृंखला को शुक्ल जी सीधी और सरल न मानकर चक्करदार कहते हैं और उसे वास्तविक काव्य से पृथक् वस्तु एवं ख्याल की झूठी बारीकी मानते है ।

'मतिराम' का आचार्यत्व अपनी प्रौढ़ विवेचना के लिये अत्यधिक आदरणीय नहीं है । पर लक्षणो के उदाहरणों में स्वच्छता, सफाई और रमणीयता प्राय. सर्वत्र मानी जाती है । इन दोनों रचनाओं मे भी रसराज को शुक्लजी उत्कृष्टतर मानते हैं ।

बाद के अनेक हिंदी साहित्य के इतिहास लेखको ने शुक्लजी के समीक्षासूत्रों का भाष्यात्मक विस्तार किया है। कहीं कहीं उनमे कुछ बातें ऐसी भी अवश्य मिलती हैं जिनमें 'मतिराम' के नवीन वैशिष्ट्यों का भी उद्घाटन होता है । परंतु इतिहासकारों की इन चर्चाओं में विशिष्ट महत्त्व की अधिक बातें शुक्लजी के संकेतसूत्रों से अधिक आगे बढ़ी नहीं दिखाई देती हैं ।

डा० भगीरथ मिश्र ने अपने 'हिंदी काव्यशास्त्र' नामक ग्रंथ मे यथाप्रसंग अलंकारपंचाशिका, रसराज, और ललितललाम की चर्चा की है । उनका मत भी शुक्ल जी के संकेत की ओर चलता दिखाई देता है । उन्होंने जो कुछ कहा है उसका सारांश यह है—(१) 'मतिराम' की

कृतियों के आधार यद्यपि संस्कृतग्रंथ हैं तथापि उनके स्वनिर्मित उदाहरण सरस और रमणीय हैं तथा उदाहरणों की सरसता में शायद ही कोई उनके बराबर हो। साथ ही लक्ष्यों में काव्यात्मक उत्कृष्टता भी है। रसराज का आचार्यत्व शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से उच्चकोटि का नहीं है। (२) 'मतिराम' सबसे पहले और प्रमुख रूप मे कवि हैं, 'चिंतामणि' के समान मुख्यतः आचार्य नहीं। ललितललाम में भी उनका कविरूप ही उत्कृष्ट है। इस कारण उदाहरण तो रमणीय और मनोहर हैं पर लक्षण चलते ढग के। परंतु ललितललाम में रसराज की अपेक्षा अधिक शास्त्रीयता है। (३) रस और अलंकार के (छंद ?) अतिरिक्त उन्होंने काव्यशास्त्र के अन्य पक्षों पर प्रकाश नहीं डाला है, अतः आचार्य के रूप में उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। अलग से उत्तम काव्य का लक्षण या स्वरूप परिभाषित न करने पर भी उनके काव्य के स्वरूप से निपुण कलाकार का परिचय मिल जाता है। रस और अलंकार—इन दोनों की दृष्टि से उनके पद्यों में साहित्यिक समृद्धि लक्षित होती है। यह भी जान पड़ता है कि काव्य में चमत्कारमूलक शब्दालंकारों की अपेक्षा भावरूप या प्रसंग की चित्रव्यंजना में सहायक अर्थालंकारों के उचित रूप—उनको अधिक प्रिय थे। चमत्कारपरक शब्दालंकारों में चित्रालंकारों का ही लक्षण है जो स्वतः संकीर्ण है और उसके उदाहृत दो लक्ष्यपद्य भी लाटानुप्रास और अंतर्लापिका के अंतर्गत रखे जा सकते हैं।

कहने का सारांश यह कि 'डा० भगीरथ' मिश्र की दृष्टि से 'मतिराम' लक्षणग्रंथकर्ता आचार्य के रूप में साहित्य के रंगमंच पर अवतरित होकर भी सहज स्वाभाविक अभिनय द्वारा अपने कविरूप को ही विशेष सुष्ठुता के साथ और मर्मस्पर्शी रूप में प्रकट करते हैं।

'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' ने अपने 'हिंदी साहित्य' में 'मतिराम' की कुछ चर्चा की है। उनके ललितललाम आदि ग्रंथों को रीतिग्रंथों के प्रकारविशेष में वे अंतर्भुक्त करते हैं। उनका भी मत है कि भाषा के सहज प्रवाह और भावों के अनाडंबर प्रकाशन में 'मतिराम' के साथ, भाषा के बहुत थोड़े कवियों की तुलना की जा सकती है। 'यद्यपि रसराज और ललितललाम में लक्षण और उदाहरण के बहाने ही कविता लिखी गई है पर भावों का ऐसा सरस चित्रण दुर्लभ है'। ('मतिराम' सहज प्रवाहमयी भाषा का सर्वत्र निर्वाह करने में समर्थ हुए हैं।) उनके अधिकांश समस्त उदाहरण—सुंदर भाषा और मोहक भावों के नमूने हैं।

"वस्तुतः 'मतिराम' 'बिहारी' के समान उक्तिवैचित्र्य के उतने अच्छे कवि नहीं हैं। परंतु जहाँ तक सरल और सहज भाव से हृदयानुराग को व्यक्त करने का प्रश्न है, 'मतिराम' बहुत ही मर्मस्पर्शी कवि हैं। इनकी उक्तियों मे परंपरा का वैसा बोझ नही हैं और इसीलिये उनमें 'शोभा' के भार से 'सूधो पाँय' धर न सकने की आशंका बहुत अधिक नहीं है। रीतिकाल के बहुत थोडे से कवियों के साथ मतिराम का नाम लिया जा सकता है।"

'आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र' ने अपने हिंदी साहित्य का अतीत (श्रृंगारकाल, भाग २) नामक ग्रंथ मे 'मतिराम' को रीतिबद्ध कवि के अंतर्गत स्थान दिया है। यद्यपि उन्होंने समीक्ष्य कवि के संबध मे संक्षिप्त रूप से ही चर्चा की है तथापि 'मतिराम' के महत्व का संकेत अन्य बहुत सी जानकारी के साथ वहाँ उपलब्ध हो जाता है। ललितललाम ग्रथ के नाम का वैशिष्ट्य बताते हुए उन्होंने लिखा है—'ललित और ललाम दोनों शब्द सौंदर्य और सुंदर के अर्थ में व्यवहृत होते है। जान पडता है कि 'ललित' शब्द विशेषण और 'ललाम' विशेष्य है। शब्दालंकार उतने सौंदर्यविधायक नहीं माने जाते जितने अर्थालंकार। 'ललित' शब्द विशेषण के रूप में अर्थालंकारों की ओर संकेत करता है। 'ललित ललाम' का अर्थ हुआ 'उत्तम सौंदर्यबोधक अलंकारो का विचार करनेवाला ग्रंथ"। अलंकारपंचाशिका के सबंध में उन्होंने बताया है कि "उक्त ग्रंथ मे अलंकारों का क्रम उदाहरणों के अनुसार है, अलंकारों के क्रम से उदाहरण नहीं हैं।" उनके मत से भी 'मतिराम' जैसे सहज और रसिक कवियों के लिये अलंकार आदि व्याज मात्र थे'। 'तत्वतः ये कविता ही लिखना चाहते थे। लक्षण केवल सहारे का काम देते थे'। मतिराम सतसई को वे बिहारी सतसई की प्रसिद्धि से प्राप्त प्रेरणा के कारण लिखित मानते हैं। रीतिबद्ध काव्य करनेवालों मे वे 'मतिराम' को विलक्षण कवि मानते हैं। युगानुरोध से अलंकारों और छंदों की ग्रंथरचना मे प्रवृत्त होने पर भी मिश्रजी के मत से उनके छंदों और अलंकारो से संबद्ध उदाहरण भी ऋजुमार्गगामी हैं। 'उनके लक्ष्यो में भावमय कविहृदय अपनी विशेषता को पूरी तरह से झलकाने में पूर्ण समर्थ हुआ है'।

[२] मूल्यांकन: कुछ विशेष ग्रंथों में

'मतिराम' के ग्रंथों मे निबद्ध प्रतिपाद्य विषय का परिचय—ग्रंथों का रचनाक्रम बताने के प्रसंग मे उल्लिखित हो चुका है। उनका साहित्यिक मूल्यां-

की विधाएँ तथा उनके वर्णनरूप, राजवैभव का विवेचनात्मक निरूपण आदि है। इनमें—शृंगारिकता और वीरकाव्य–इन दोनों पक्षों का वर्णन विस्तार के साथ सांगोपांग किया गया है। नवम अध्याय में उनके कलापक्ष और दशम मे आचार्यत्व तथा एकादश मे 'मूल्यांकन' करने का लेखक ने सफल प्रयास किया है। वस्तुतः कलापक्ष और आचार्यत्व एक ही परिधि के दो विभाजित खंड है।

इन शोधप्रबंधों में 'मतिराम'—विषयक जो साहित्यसमीक्षा की गई है उसकी उद्धरणी या पुनःसमीक्षा यहाँ अपेक्षित नहीं है। वस्तुतः पं० कृष्णबिहारी मिश्र जी ने स्वयुगीन हिंदी आलोचन पद्धति के अनुसार विवेच्य कवि के साहित्य और कविकर्म की समीक्षा और मूल्यांकन किया है। उपर्युक्त शोधप्रबंधों में साहित्यलोचन के विचार से कोई अत्यंत महत्व का और नवाविष्कृत आलोचनापक्ष उद्घाटित नहीं किया गया है। मिश्र जी की आलोचना महत्वपूर्ण होने पर भी अद्यतन पद्धति से कुछ दूर पड़ गई थी। अतः उपर्युक्त प्रबंध लेखकों के विवेचन मे—विषयगत नूतनता में क्रांतिकारी परिवर्तन के न रहने पर भी स्वर और रूप की नव्यता, दृष्टिभेद, आधुनिक शब्दावली का प्रयोग और आलोच्य वस्तु का नूतन विश्लेषण आदि हैं जिनका अपना महत्व है। क्रमयोजना और गुंफनशिल्प, नयी साजसज्जा और आमंडन ने इन प्रबंधों को नूतन भूमिका के साथ नवीन रूप दे दिया है।

त्रिभुवन सिंह ने अपनी कृति में परिशिष्टांश के अंतर्गत मतिराम सतसई के दोहों का भी पूर्ण संकलन दिया है। रसराज और ललितललाम मे मिलनेवाले दोहों का सप्रसंग निर्देशात्मक संकेत भी कर दिया है। इसमे अभी और श्रम तथा धैर्य के साथ हस्तलेखों के परस्पर पाठो को मिलाना आवश्यक था। इस संपादन मे कोई खास बात नहीं है। डा० महेंद्र कुमार ने अपने परिशिष्ट मे रसराज और ललितललाम—उभयत्र प्राप्त समान कवित्त, सवैये और दोहे—इनकी सारिणी दे दी है। उसमें भी ग्रंथनाम और संख्या का निर्देश है। इसी प्रकार रसराज और सतसई, ललितललाम और सतसई एवं रसराज, ललितललाम और सतसई—क्रमशः इनमें उपलब्ध समान दोहों की सारिणियाँ देकर डा० त्रिभुवन जी के सतसई संपादन का सारसूत्र मानों उपस्थित कर दिया है।

[२] मूल्यांकन : कविकर्म के कुछ बिंदु

कवि की यथार्थ परख होती है कवि की भावाभिव्यक्ति से। सामान्य मानव-अनुभूतियों की यथार्थ संवेदना को जिस गहराई के साथ स्वसंवेद्य करने तथा सरल और सहज ढंग से जितनी यथार्थ पूर्णता के साथ उद्घाटित करने मे वह समर्थ होता है उतना ही उसका कविकर्म सफल कहा जाता है। संकल्पमयी कल्पनाशक्ति ही उसकी सबसे अधिक सक्रिय क्षमता है। सक्रिय क्षमता से यहाँ तात्पर्य है मानव के अंतर्लोक मे पहुँचकर वहाँ के भावबोध के सहज चित्रों का साक्षात्कार करना और पुनः सामाजिकों के मन में अपने काव्य द्वारा उनका प्रभावकारी अंकन कर सकना। कवि का भावबोध और उसकी प्रतिभा—मानवमन के अमूर्त्त और अंतस्थ संवेद्‌चित्रों का जिस यथार्थरूप में अनुभव करती है उसी रूप में उनकी प्रेषणीय अभिव्यक्ति करना भी सच्चे कवि की पहचान है। कल्पनाजुष्ट प्रतिभा और संवेदनाशील सहृदयता ही इसमें सर्वाधिक सहायक होती है। इसीलिये कलाकार की संवेदना का भावनशील होना आवश्यक कहा जाता है। इस क्रिया को हम चाहें तो भावनव्यापार भी कह सकते हैं। इसके योग से संवेदना प्राणवंत और बोधप्रवण होती है तथा इसीके प्रभाव से अंतश्चित्रों की रेखाएँ स्पष्ट और रंग चटकीले होते हैं।

कुशल काव्यशिल्पी की कृति मे सहज और यथार्थ भावों की समग्र अभिव्यक्ति इन्हीं के द्वारा होती है। उसकी रचना भावक पाठकों के हृदयतंत्री में झंकार और स्वरराग उत्पन्न करती है। कल्पना, भावना, अभिव्यक्ति, शिल्पनैपुण्य और क्षमता—इनके योग से ही प्रतिभासहकृत कवि की कला जीवंत शब्दचित्रों को हमारे सामने उपस्थित करती है और पाठकों के मन में अभीष्ट अनुभूति को प्रबुद्ध करने में सफल होती है। जिस कवि में ऐसी मनीषा है उसका कविकर्म यथार्थ कलाकार का प्रतिष्ठित आसन प्राप्त करता है। इन्हीं क्षमताओं के अनुपात में सच्चे कवि की परख और परीक्षा होती है।

इस कथन के प्रकाश में कहा जा सकता है कि लोकजन के हृदय में सामान्यतः अनुभूयमान अनुराग और विराग, हर्ष और पीड़ा, सुख और दुःख क्रोध और भय, उत्साह और शम आदि के अभीप्सित चित्रों को जिस अनुपात में और जितने प्रभावकारी ढंग से रूपायित करने की क्षमता जिस कवि में होती है उतना ही उत्कर्ष उसके काव्यशिल्प में दिखाई देता है।

इस दृष्टि का एक पक्ष और है जो उपर्युक्त विवेच्य परिधि के भीतर आता है, फिर भी उल्लेख्य है। अनुभूतियाँ एक ओर तो अमूर्त होती हैं दूसरी ओर परिस्थितियों के बीच उनका उद्भव होता है। रागविराग आदि से संबद्ध समस्त अनुभूतियाँ परिस्थिति के भीतर ही पनपती और प्रकट होती हैं। अनुभूति—सिद्धांत सत्तात्मक भी है और उसका उद्भव परिस्थितिसापेक्ष भी। अतः पृष्ठभूमि के रूप मे जिन परिस्थितियों के बीच कवि अनुभूतियों का कल्पनाचित्र अंकित करना चाहता है उनका भी जीवन के यथार्थ के साथ साम्य और तथ्यात्मक रूप में संदर्भित होना नितात अपेक्षित है। इस आधार-पीठिका के अभाव मे प्रस्तुतीकृत सकल्पचित्र—मानसलोक की भावदृष्टि के संमुख निःसत्व हो उठता है। अतः परिस्थितिगत परिपार्श्व की यथार्थता के परिवेश में भावचित्रो का आकलन भी कविकर्म की कसौटी बन जाती है।

'मतिराम' उस युग के कलाकार हैं जिसे हम 'रीतिकाल' या 'शृंगारकाल' कहते हैं। युग के बधनों मे बँधे रहकर भी भावचित्र की सहज अभिव्यंजना में अपने स्वाभाविक अभिनिवेश के कारण वे उत्कृष्ट और सच्चे कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। काव्यनिर्माण के क्षेत्र मे उस युग की अनेक रूढ़ियाँ थीं। काव्य और कला—धनसंपन्न अभिजात वर्ग के समाज मे सीमित हो गई थी। गुप्तकाल से लेकर—राजो, महाराजों, सामंतों और श्रेष्ठियों की राज-सभाओं, दरबारों और गोष्ठियों तक ही उसका समादर और प्रचार परिसीम हो गया था। उच्चवर्गीय समाज के जीवन मे जिस कृत्रिमता अथवा दूसरे शब्दों में रूढ़िमूलक मान्यताओं का स्थान महत्वपूर्ण बन गया था और उनके जीवन में जिस ढंग के अलंकरण, आमंडन, साजसज्जा, विलासिता और अनुभूतियों की रूढिग्रस्त स्वीकृति प्रचलित हो गई थी उसका विकास—अपने क्षेत्र के अंतर्गत संस्कृतकाव्यो के काल से ही होता चला आ रहा था। कादंबरी, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधचरित—आदि सर्वाधिक प्रसिद्ध कृतियों के अतिरिक्त भी सैकड़ों हजारों पद्य गद्य की ऐसी कृतियाँ—चतुर्थ पंचम शताब्दी विक्रम से लेकर १४ वीं १५ वीं शती तक—निरंतर निर्मित होती रही हैं, जिनमें आमंडन, अलंकरण, वैलासिक भोग, अभिजातवर्गीय अहबोध एवं शृंगारी वासनात्मकता का सशक्त प्रभाव लक्षित होता है।

अनपेक्षित विस्तार में न जा कर इतना ही संकेत यहाँ पर्याप्त है कि हिंदी-रीतियुग में जिन रीतिकालीन प्रवृत्तियों का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है वह

कोई आकस्मिक घटना नहीं है। भारतीय काव्यधारा की अनेक उपधाराओं में शृंगारिक, वैलासिक और संकुचित काव्यमूल्यों के आदर्श को लेकर विशिष्ट वर्ग के बीच अत्यंत सप्राण वेग से बहनेवाला यह प्रवाहविशेष—अनेक शताब्दियों से बहता चला आ रहा था। दूसरी ओर लोकसाहित्य के रूप मे तथा विविध प्रकार के धार्मिक और सांप्रदायिक वाङ्मय की रचनाओं में अन्य अनेक उपधाराएँ भी निरंतर—ऐतिहासिक और धार्मिक सामाजिक और वैचारिक प्रेरणाओं से निर्मित होती रहीं हैं। इनकी दृष्टि और मान्यता का अपना भिन्न स्वर, भिन्न स्तर और पृथक् स्वरूप था। फिर भी संस्कृत, प्राकृत और तदुत्तरवर्ती लोकभाषाओं मे अलंकरण-आमंडन प्रधान शृंगार की साहित्यिक ध्वनि सर्वाधिक प्रबल और आकर्षक हो उठी थी।

हिंदी का रीतिकाल भी युग की संचित और परंपरागत प्रवृत्तियों तथा मान्यताओं का प्रतिध्वनन मात्र है। इस स्वर को काव्यगोष्ठीरसिक श्रोता और युगरस तथा युगमान्यता से मोहित कलाकार—समान रूप में आसंजनयुक्त और आदरभरे हृदयलोचनों से निहारते और अपनाते रहे हैं। आश्रयदाताओं का संपन्न वर्ग भी उसी भाव और उसी रंजनपूर्ण वृत्ति मे उन्हें अपने उत्संग में स्थान देता रहा है। दूसरे शब्दों में काव्यरचना के संरक्षक, काव्यमकरंद के मधुप और काव्यरस के निष्पादक कलाकार—तीनों ही परंपरायुक्त रूढ़िप्रवाह से ऐसे प्रभावित थे कि जिसे हम आज संकुचित विलासिता की परिधि का नाम दे देते हैं। परतु उत्पत्तिक्षेत्र के सीमाविचार से रीतिकाल का यह काव्यरूप—वस्तुतः परंपरागत था। इस रूप की स्वीकृति, सहज और परंपरागत रूढ़ि बन गई थी। इस रूढ़ि का प्रत्याख्यान करना उन कवियों के लिये संभव नहीं था जो रसिकगोष्ठी के विदग्धमंडन थे।

'मतिराम' के सदृश भावुक कवि भी इस युग में यदाकदा होते रहे हैं जो बंधनबद्ध रहकर भी युगबोध के अनुरूप यथार्थ की स्वतंत्रत भावना को अंकित करने मे विशेष आग्रहशील दिखाई पड़ते हैं।

शृंगारमोह

भावुक और सहज कवि होते हुए भी अपनी रसमयी भावनाओं के अभिव्यंजनार्थ 'मतिराम' ने जो मार्ग ग्रहण किया उसमें शृंगारी भावना के प्रति विशेष मोह और आसक्ति थी, वह मुख्यतः रीतिकालीन था। उस पर

तद्‌युगीन प्रवृत्तिरूढ़ियों का पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। 'मतिराम' के कविकर्म का विचार करते हुए यदि हम उनके अलंकार और छंद की कृतियों को छोड़ दें तो कह सकते हैं कि सामंतयुगीन शृंगारी प्रवृत्ति के वे कवि थे। संभवतः उनका सर्वप्रिय विषय शृंगार भी था और उसके अंगभूत परिकरों से संबद्ध प्रसंगों की भावमयी अभिव्यक्ति भी। भावक्षेत्र के रससिद्ध कवि होने पर भी युग की सर्वाधिक प्रचलित रूढ़रीति की अनुगामिता से वे अपने को मुक्त करने मे समर्थ न हो सके। उन्होने अपने शृंगारी काव्यसर्जन के लिये 'रसराज' का वह माध्यम अपनाया जो उस युगरूढ़ लक्षणग्रंथों के प्रकाश मे अपना पथ बनाता रहा।

पर 'मतिराम' की सतसई लक्षणशास्त्र के बंधन से मुक्त रचना है--जो पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार--'रससिद्ध' बिहारी कवि की 'सतसई' से प्रेरित है। शृगारिकता मे भी 'मतिराम' की सतसई—बिहारी का अनुगमन करती है। रीतिसिद्धता की तुला से भी यदि 'मतिराम' का मूल्य आँके तो कह सकते हैं कि वे भी काफी दूर तक—कम से कम मतिराम सतसई में, रीतिसिद्ध के ही कविशिल्प को प्रकट करते हैं। पूर्णतः न कहकर 'बहुत दूर तक' कहने का अभिप्राय यह है कि उनकी सतसई मे शताधिक दोहे ऐसे हैं (लगभग १८५ दोहे) जो रसराज और ललितललाम में लक्षणों के उदाहरण की भूमिका लेकर अवतीर्ण हुए है। इनसे 'मतिराम' की रीतिबद्धता लक्षित होती है। अतः लक्षणग्रंथों का अनुसरण करनेवाले रीतिबद्ध कवि की कोटि मे भी उन्हे रखना युक्तिसंगत है। ललितललाम, अलंकर-पंचाशिका, छंदसार-संग्रह, लक्षणशृंगार और साहित्यसार आदि कृतियाँ लक्षणग्रंथ ही है।

रीतिबद्ध लक्षणग्रंथो के मार्ग का अनुयायी होकर भी यदि कवि उत्कृष्ट कोटि की भावाभिव्यक्ति, सहज भावना के रूपचित्रो का रुचिर निर्माण और कल्पनाप्रेरित संश्लिष्ट चित्रो की सजीव योजना करने मे—निपुण और सफल दिखाई देता है तो निश्चय ही उसका स्थान उत्कृष्ट कवियों मे होगा। इस दृष्टि से रीतियुगीन कवियों के ऊँचे कलाकारों मे 'मतिराम' का स्थान कहा जा सकता है। जनसामान्य के अंतःपट पर विविध परिस्थितियों में उभर आनेवाली चित्रमाला के सहृदय भावन और साक्षात्करण में उनकी प्रतिभा अत्यंत संवेदनशील है। मानवमन के भावचित्रो को संवेद्यता का भागी बनाने में 'मतिराम' की मनीषा सर्वथा समर्थ है। उनकी अभिव्यक्तिकला में

ऐसे शब्दचित्रों को अंकित करने की सामर्थ्य है जो संप्रेषणीयता के कारण पाठकों को अनुभूतिलोक में ले जाकर अभीष्ट बोधचित्रों का उद्बोधन और आस्वादन कराती है।

शृंगारचित्रण की दृष्टि से मुख्य रूप में हम उनकी दो कृतियों—रसराज के उदाहरण और सतसई—को ले सकते हैं। 'रसराज' नाम से ग्रंथ का विवेच्य शृंगार ही लक्षित होता है। इस ग्रंथ में वही निरूप्य प्रतीत होता है। इसमे भी सर्वाधिक विस्तार और स्थान मिला है नायिकाभेद निरूपण को—यह कहा जा चुका है।

शृंगार : रीतिकालीन लक्षणग्रंथ

उत्तर मध्यकालीन आचार्य कवियों के लक्षणग्रंथों की रचना को इन्होंने-अपनाया। इसमें शृंगारी परिधि के लक्ष्यों का ही निर्माण अधिक हुआ। शास्त्रीय विवेचन प्रायः नाममात्र का ही रहा, रसों के विवेचन में भी शृंगार-सबंधी चर्चा अधिक रही, उसमें भी नायिकाभेद, नखशिख, उद्दीपनात्मक ऋतु-वर्णन, नायिकाओं के हाव भाव और 'अलंकार', ललित चेष्टाएँ एवं अनुभाव के वर्णनों पर विशेष जोर दिया गया। अन्य रसों का निरूपण प्रायः संक्षिप्त ही मिलता है। अलंकार आदि के उदाहरणों मे भी शृंगारसंबद्ध उदाहरणों की सख्या बहुत पर्याप्त है। केवल नायिकाभेद (नायक भेद भी) और तत्संबद्ध दूतियों आदि की शब्दमूर्तिनिर्माण करनेवाले स्वतंत्र ग्रंथों की भी कमी नहीं है। इसके अतिरिक्त नखशिख और ऋतुवर्णनपरक छोटी मोटी शृंगारी रचनाएँ भी काफी मिलती हैं।

इन सबसे यह सूचित होता है कि उस युग के आचार्य—कवियों का सर्वप्रिय विषय शृंगार था। फलतः उसके शास्त्रीय पक्ष के निरूपण की अपेक्षा तल्लक्ष्यरचना, उनका प्रियतर उद्देश्य था। इसी कारण पं० विश्वनाथ जी युग की इस मुख्य प्रवृत्ति को देखते हुए इस काल को शृंगारकाल कहना अधिक पसंद करते हैं। वैसे शुक्लजी से लेकर आज तक व्यवहार में निरंतर प्रयोग के कारण 'रीति' शब्द भी अत्यत समर्थ है। उसके आक्रोड में उस युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ आ जाती हैं और उस पद से सबका बोध हो जाता है। तद्युगीन हिंदी काव्य की कुछ अन्य आवश्यक रूढ़ियों का भी बोध कराने में 'रीति' शब्द की सामर्थ्य को सफलतर कहा जा सकता है।

इस युग मे नायिकाभेद के (और नायक भेद के भी) रूपचित्रों को अत्यधिक उत्साह और उल्लास के साथ उपस्थित करना ही कदाचित् युग की 'रीति' से भावित और प्रभावित—हिंदी के कवियो और आचार्यों का इप्सिततम कर्म बन गया था। कहीं तो शास्त्रीय विवेचना के अंगरूप से और कहीं स्वतंत्र रूप से यह भावना व्यक्ति पाती रही। 'मतिराम' भी इसी वर्ग के एक शास्त्रीय साहित्यकार है। इसका तात्पर्य यह है कि उन्होने अपने कवित्व और रसिकतावृत्ति के लिये काव्य का निर्माण करते हुए शास्त्रीय लक्षणग्रंथ का—मुख्य रूप से रसराज का—सहारा लिया। परंतु उनका मुख्य उद्देश्य था शृंगार की रसमयी रचनाओं के माध्यम से काव्य के ललित रूप का निर्माण।

'रसराज' नाम—जैसा ऊपर कहा जा चुका है—दो अभिप्रायों का संकेत करता है। (१) ग्रंथ का शृंगाररस - निरूपकत्व और (२) शृंगार का रसराजत्व। शृंगार का यह रसराजत्व 'मतिराम' की मौलिक और नवीन उद्भावन नहीं अपितु परंपरागत ही है। इसी मान्यता को ग्राह्य बताकर 'मतिराम' अपने को उसका अनुगामीमात्र सूचित करते हैं।

शृंगाररस से सबद्ध होने के कारण इस ग्रथ के आरंभ मे शृंगाररस का शास्त्रीय निरूपण आचार्यों की पद्धति से होना चाहता था। परतु रीतिरुचि के कारण आरंभ में ही उक्त रस के आलंबनभूत नायिका और नायक का निरूपण शुरू कर दिया गया। आरभिक ३ पद्यो के बाद केवल विषय की प्रस्तावना का संकेत करते हुए वर्ण्य उपस्थापित कर दिया गया है—

होत नायिका-नायकहि आलंबित शृंगार।
तातैं बरनौ नायका नायक मति अनुसार॥
उपजत जाहि बिलोकि कै चित्त बीच रसभाव।
ताहि बखानत नायका जे प्रबीन कबिराय॥

इसका कारण है उस युग के वातावरण की रसिकता मे कवि का आसंजन। दरबारी या सामंती अथवा विदग्ध रसिको और नागर विलासियों की गोष्ठी मे समादृत रीतिरसिकता से ही ऐसी रचनाएँ होती रही है। 'मतिराम' भी उस युगरीति के कलाकार थे। उस युग के बिलासी काव्यप्रेमी की कल्पना जिस रमणीमूर्ति के रूप और सौंदर्य, हावभाव और ललित चेष्टाओं की मधुर मदिरा पीने के लिये लालायित रहती थी उस नायिका-

सामान्य की शब्दमयी मादक प्रतिमा—आरंभिक लक्ष्यछंदों में उन्होंने निर्मित कर दी—

कुंदन कौ रँगु फोको लगै, झलकै अति अंगन चारु गुराई।
आँखिन मै अलसानि, चितौन मैं मंजु बिलासन को सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं 'मतिराम' लहै मुसकानि-मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई॥

जाल-रंध्र-मग ह्वै कढ़ै तिय तनु दीपति पुंज।
झिझिया कैसो घट भयो, दिन ही मैं बनकुंज॥

इन उद्धरणों में चित्रशब्दशिल्पी 'मतिराम' ने नायिका का जो रूपबिंब गढ़ा है वह नायिका के किसी भेदविशेष की मूर्ति नहीं है अपितु नायिकाभेद में निरूप्यमाण समस्त नायिकाओं का ऐसा सामान्य और गुणपरक चित्रबिंब है—स्वीया, परकीया, सामान्या के समस्त भेदों में जिसका वर्तमान रहना आवश्यक है। नायिकात्व के साधक इन गुणधर्मों के अभाव में उस वैलासिक युगलिप्सा का संतर्पण नहीं होता था। प्रत्यक्ष जीवन में उपर्युक्त विशिष्ट गुणों से संपन्न नायिका, रसिकों को उपलब्ध हो पाती थी या नहीं—यह दूसरी कथा है। परंतु वैलासिक वासना से संश्लिष्ट रसिकजनों की लालसा उन विशिष्ट गुणों से संपन्न रमणी के मनोहर कलेवर की अभिलाषा में सदा उत्कंठित रहती थी। शास्त्र के निरूपण का बहाना लेकर ही सही—उस मादक रूपसंपत्ति का संकल्पचित्र देखने की कामना (सभी कलाओं के माध्यम से) उस वर्ग के रसिकों की अतर्प्य लिप्सा थी। काव्य के अतिरिक्त उस युग के चित्रों और संगीत के पदों में भी उसका दर्शन किया जा सकता है। उत्तर भारत के नृत्य में, विशेषतः कत्थक शैली के नाच में भी आगे चलकर उसी तृष्णा की प्रेरणा काम करती दिखाई देती है।

यह तृष्णा इस युग की नूतन उद्भावना नहीं थी। नायिकाभेद का निरूपण बहुत पहले से संस्कृत के आचार्यों द्वारा प्रारंभ हो चुका था। 'भानुदत्त' की रसमंजरी तक संस्कृत के अनेक बड़े बड़े आचार्यों ने इसका विस्तृत विवेचन किया था। 'भरत' ने दृश्यकाव्य के संदर्भ में विभिन्न प्रसंगों पर नायिकाओं की जो चर्चा की है वहीं से इस विषय का आरंभ है। पर आगे चलकर श्रव्यकाव्य के रसविवेचन के अंतर्गत इस प्रसंग का विस्तृत निरूपण

होने लगा था। वात्स्यायन के द्वारा प्रवर्तित तथा उनके अनुगामियों के कामशास्त्रीय विविध उपायों, प्रयोगों, सप्रयोगों तथा तत्र निर्दिष्ट उपायों अध्यवसायों आदि का भी नायिकाभेद निरूपण पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। परंतु कामशास्त्रीय हस्तिनी आदि नायिकाएँ यहाँ गृहीत न हुईं। हिंदी कवियों ने पद्मिनी को जरूर अपनाया। 'रुद्रट', 'रुद्रभट्ट' और 'धनंजय' ने 'भरत' के नायिकावर्णन को श्रव्य-दृश्य-काव्यों के परिवेश मे व्यवस्थित रूप दिया। इसकी अखड परंपरा १७ वीं शताब्दी तक ही नहीं उसके बाद भी संस्कृत मे चलती रही। जिस प्रवृत्ति की प्रेरणा से हिंदी के कवि रीतिकाल मे शृंगारी रचना की ओर प्रवृत्त हुए और नायिका-भेद-संबंधी सदर्भों का रीतिकाल या शृंगारकाल मे प्रचुर निर्माण हुआ, उन्हीं शताब्दियों मे उसी ढंग की और उसी प्रेरणा से अभिमंत्रित अनेक संस्कृत के आचार्यकवि भी नायिकाभेद के ग्रथों का निर्माण करते रहे। इस विषय का विस्तृत विवरण अन्यत्र ('सस्कृत में नायिकाभेद और रसिक जीवनम्', शीर्षक निबध, नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६४ स० २०१६ अंक ३-४) इन पक्तियों के लेखक ने दिया है। कहने का प्रयोजन इतना ही है कि 'मतिराम' ने जिस युग और वातावरण की प्रेरणा मे रसराज में नायिकाभेद के प्रसंग से ग्रंथ का आरंभ किया है वह युग का ही प्रभाव है।

[४] मूल्यांकन : मतिराम की भावभूमि

मतिराम की शृंगारपरक कविता

रीतियुग का स्वरूपनिर्माण होता है उस युग की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर। जिन्हें हम रीतिकाव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ कहते है, उनके अतिरिक्त भी उस युग मे अन्य काव्यधाराओं के अंतर्गत रचनाएँ होती रही है। सगुण निर्गुण भक्ति की विभिन्न शाखाओं के काव्यों का प्रचुर मात्रा में प्रणयन–उस युग में अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में हो रहा था। निर्गुणी सतो के विविध पंथों और मतों के अनुयायियों, सूफी कवियों और कृष्णभक्ति एवं रामभक्तिशाखा के सगुणोपासकों द्वारा बड़ी मात्रा में साहित्य की रचना तीव्रगति से हो रही थी। रामभक्ति मे मधुरस्वर के रसिक उपासकगण और राधावल्लभ तथा सखी संप्रदायों के भक्त भी बड़े उत्साह और उल्लास के साथ निरंतर साहित्य-

निर्माण में प्रवृत्त थे। इनके अतिरिक्त बोधा, आलम, घनानंद आदि कवि भी रीतिकालीन काव्यों से भिन्न मान्यता के अनुसार ऐसी काव्यरचनाएँ कर रहे थे, जिन्हें हम रीतियुग की स्वच्छंद काव्यधारा का नाम देते हैं और जिनकी प्रेमविवृति की पद्धति पर फारसी-उर्दू-कविता का प्रभाव स्पष्ट था। पर इन सबके भीतर और बाहर—मनोविज्ञान की दृष्टि से—रीतिकालीन काव्य की प्रेरक मनोवृत्तियों का अंतर्योग स्पष्ट दिखाई देता है। कृष्णोपासक भक्तों और रसिक भाववाले रामोपासकों के अलावा सूफियों की प्रेमाश्रय भावोपासना में भी प्रेम और विरह की अनुगूँज स्पष्ट रूप में सुनाई देती है। मीरा और रसखान की रचनाओं में भी प्रीतिमिश्रित अनुरागवंशी का अनुगायन मुखरित मिलता है। संतों तक के निर्गुणोपासना में सहजप्रेम और संयोगवियोग के परिकर का प्रतीकात्मक सहयोग प्रत्यक्ष लक्षित होता है। आध्यात्मिक दृष्टि और साधनापद्धति के अनुसार इनकी व्याख्या होती और हो सकती है। पर उनके मूल में—'फ्रायड' के मतवाले कामतत्व की प्रेरकता अन्वेषित कर लेंगे। वह प्रेरणा—चाहे अचेतन या अवचेतन मन के अज्ञाततम-स्तर के नीचे छिपी हो और चाहे उक्त भावना का उदात्तीकरण (सबलिमेशन) हो गया हो। स्वच्छंद काव्यधारा के प्रेममस्त कवि भी—रीतिबंधनों से चाहे कितने ही मुक्त रहे हों, परंतु उनकी वाणी में भी प्रणय के संयोग और वियोग, मुख्यतः विरह, इश्क और मुहब्बत, प्रिय की उपेक्षा और कठोरता तथा प्रेमी का विरहदुःख और तड़प आदि के वर्णन आद्यंत मिलते हैं।

वस्तुतः मध्ययुग की प्रायः समस्त काव्यधाराओं में रति और स्नेह के किसी न किसी अंचल की शीतल या उष्ण छाया फैली हुई है। रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों में 'श्रृंगाररस' और 'रतिभाव' के राग का स्वर तीव्रतम कहा जा सकता है। अलंकारप्रियता (शब्दार्थालंकारों के साग्रह प्रयोग) आश्रयदाताओं की प्रशस्ति, वैलासिक भावनाओं और भोगसुख का अत्यधिक प्रभाव, जीवन और जगत् के प्रति रूढ़िग्रस्त दृष्टि से भावों का अभिव्यंजन और प्रकृति के प्रति उद्दीपनात्मक प्रवृत्तियों में वह देखी जा सकती हैं। इनके कारण काव्य में बहुधा रागमय अंतःप्रेरणा से प्रतिभासित और संवेदना के आकुल उद्गार से सवलित स्वच्छंद काव्य की अभिव्यक्ति और रचना में पर्याप्त बाधा पड़ी। सुप्रसिद्ध काव्योक्तियों द्वारा युग के रसिकों के मनोरंजन की लालसा के कारण कवियों में काव्य के अलंकरण की लिप्सा प्रबलतर होती गई। चमत्कारिक, वक्रतापूर्ण, अयथार्थ और कोरी ऊहात्मक उक्तियों के बोझ से दबी कविताओं

की सर्जना, उस युग में कम नहीं हुई। रूढ़ि से आक्रांत होने के कारण अनेक प्रकार के दृष्टिसंकोच, उस युग के समाज और कलाओं में प्रभावशाली बन गए। साहित्य मे भी उसकी गहरी छाप देखी जा सकती है। उसी के प्रभाव से उस युग के संस्कारी अनेक कवि सीधे सीधे काव्यरचना में प्रवृत्त न होकर लक्षणशास्त्र के माध्यम से कविता के अखाडे में उतर पड़े।

'मतिराम' भी रूढ़ि से ग्रस्त ऐसे ही युग के कवि हैं। भावुकता के विचार से युगप्रभावित होकर भी वे उत्कृष्ट कलाकार हैं। शास्त्रज्ञ होकर भी वे ललित काव्य के स्रष्टा हैं, मनोरम और हृदयस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति के वे निपुण-शिल्पी है। उनकी रचना में ललित संकल्पचित्रो, भावचित्रों, और वर्ण्य-मूर्त्तियो का समर्थ अंकन हुआ है। उनके द्वारा अभिव्यक्त भावों और अनु-भूतियो में संवेदना की गहराई है। सहज ऋजुता के कारण उनकी उक्तियों मे रसिकमन को मोहित करने की क्षमता है। परंतु युग के अनुरोध से चमत्कार, अलकरण एवं आमडन की प्रवृत्ति का आसजन भी रचना में कम नहीं है। फिर भी उनके कारण कवि के भावो और संकल्पात्मक चित्रों की अभिव्यक्ति प्रायः विकृत अथवा अत्यधिक बोझिल नहीं होने पाई है। अधिकत: उनकी कविता मे कविजनोचित काव्यप्रतिभा का सहज और अकृत्रिम उन्मेष है। इन सबके रहने पर भी 'फूलमंजरी' और सतसई को छोड़कर प्रायः सब रचनाएँ (जो उपलब्ध हैं) लक्षणशास्त्रीय हैं। सतसई मे भी प्रायः दो सौ दोहे (कभी कभी यत् किंचित् परिवर्तन के साथ) रसराज और ललित के लक्षणलक्ष्य हैं।

निष्कर्ष यह कि 'मतिराम' की अधिकांश उपलब्ध रचनाओं मे रीति-कालीन शास्त्रीय रचना की पद्धति का अनुसरण अधिक है। पर काव्यशिल्प और अभिव्यंजन के विचार से उनकी कविता मे उत्कर्ष और लालित्य का स्थान अक्षुण्ण है। उनके काव्यवर्ण्य का सर्वमुख्य क्षेत्र शृंगार है, जिसके भावबोध, रससंवेदन और अनुभूतिचेतना की दृष्टि से 'मतिराम' के काव्य में लालित्य की, मंजुल और मर्मस्पर्शी धारा बहती पाई जाती है। वे मुख्यत. शृंगार के कवि हैं।

१ रसराज : लक्षण-लक्ष्यमूलक-शृंगार—रसराज 'मतिराम' का मुख्य शृंगारी ग्रंथ है। रीतिशृंखला के आरंभिक ग्रंथों में यह बड़ा ही लोक-प्रिय हुआ। मुक्तक कविता मे भावमयी कल्पना, सहज प्रतिभा और मनोहारी

अभिव्यक्ति की शक्ति से समन्वित 'मतिराम' का रसराज युग की उत्तम रचना है। इसमें कवि ने नायिकाभेद के अतिरिक्त भाव की परिभाषा दी है। भाव के लक्षण में 'केशव' ने आँखों, मुँह और वाणी से मन की बात प्रकट करना बताया है और 'चिंतामणि' ने भी प्रायः उसी का अनुकरण किया है। पर 'मतिराम' ने भाव प्रकट करनेवाले उपकरणों में परिधि का विस्तार किया है। उन्होंने कहा है—

लोचन, बचन, प्रसाद, मृदु हास, भाव, धृति, मोद।
इनते प्रगटत जानिये बरनहि सुकवि विनोद ॥३१०॥

नायिकाभेद संबंधी इनके उदाहरण अत्यंत सरस, रमणीय और हृदयस्पर्शी हैं। उदाहरणों की भावमयता और चारुता में 'मतिराम' का कवित्व निखर उठा है। उनका रसराज, लक्षणपांडित्य की गहराई और शास्त्रीय वैदुष्य का प्रकाशक न होकर भी रसिकगोष्ठी में अधिक प्रिय हुआ। इसका कारण था लक्षणों की सहज सरलता, कथ्य की सफाई और अर्थबोधन की ऋजुपद्धति। इनके कारण वे आगे के लक्षणकार रीतिकवियों के लिये स्पृहणीय बन गए और उनपर इन्होंने पर्याप्त प्रभाव भी डाला। इनका नायिकाभेद शास्त्रीय दृष्टि से किसी नवीन उद्भावना का प्रवर्तक नहीं कहा जा सकता। शास्त्रीय पक्ष में यत्र तत्र लघु दोष ढूँढ़ भी निकाला जा सकता है।

परंतु नायिकाओं की मनोदशाओं का जो अनुभूतिबोध और भावचित्र—'मतिराम' ने अंकित किया है, वह अत्यंत सरस और मनोहर होने के साथ साथ सूक्ष्म भी हैं। उनकी अधिकांश कविताओं मे रसांग के विविध पक्षों का चित्रण स्वाभाविकता से अनुप्राणित हैं। प्रेमपरिधि के उनके भावचित्र जहाँ एक ओर सहज मर्मस्पर्शिता से रुचिर हैं, वहाँ दूसरी ओर रीति कलाविधान की प्रवृत्ति से भी संयुक्त हैं। लज्जावती मुग्धा नायिका का एक चित्र नीचे उद्धृत है। यौवन के आने पर रूपमादकता और तारुण्यसंपत्ति के विलास से मुग्धा की अंगलतिका भर उठी है। नायक की आँखों में उसे निहारने की प्यास निरंतर बढ़ती जा रही है—

अभिनव जौबन-ज्योति सौं जगमग होत बिलास।
तिय के तनु पानिप बढ़े, पिय के नैननि प्यास ॥

ज्ञातयौवना मुग्धा का एक दूसरा चित्र निम्नांकित कवित्त मे है। इसमें मदनभाव के आविर्भाव से नायिका की चेष्टाओं में जिस लालित्य और केलि-रस की लालसा जग पड़ी है, उसका रमणीय स्वरूप रूपायित हो उठा है। साथ ही कामभाव की प्रेरणा से अनायास प्रकट होनेवाले अनुभाव भी वहाँ व्यक्त हो रहे हैं। यौवना का परम आकर्षक रूपचित्र नायक के रतिभाव को उद्दीप्त करनेवाला हो उठा है। तारुण्य सरोवर में सौंदर्यजल की दीप्ति उमड़ उठी है तथा अंगों से बचपन की काई का तम न जाने कहाँ गायब हो गया है—

कानन लौं लागे, मुसकान प्रेम-पागे लौंने,
लाज-भरे लागे लोल लोचन-अनंग ते;
भारु धरि भुजनि डुलावति चलति मंद,
ओरैं ओप उलहत उरज उतंग ते।
'मतिराम' जोबन-पवन की झकोर आय,
बढ़िकै सरस रस तरल तरंग ते;
पानिप अमल की झलक झलकन लागी,
काई-सी गई है लरिकाई कढ़ि अंग ते॥ २२॥

इस छंद मे चत्मकार और अलंकार का समावेश होने पर भी तरुणी के ललित और भावाभिव्यंजक सौदर्य की प्रतिमा ऐसी मोहक बन गई है, जो रसिक के मन को लुभा लेती है। नायिकाभेद के अधिकांश उदाहरण प्रायः सरस, मोहक और भावपूर्ण हैं। रीतिरूढियो के बंधनों से आबद्ध होने पर भी बहुधा उनकी कविता मे भावबोध के सरल, पर मर्मस्पर्शी संकल्पचित्र अंकित हैं।

मतिराम : रूपवर्णन

रूपाकर और सौदर्यचित्र की वर्णनपद्धति में नायिका का शरीरसौंदर्य विशेष स्थान रखता है। नखशिख या शिखनख का वर्णन करते हुए नायिका के रम्य और मादक अवयवों का मादनमोहन और वासनोद्दीपक अंगचित्रण किया जाता है। इस पद्धति मे सामान्यतः रीतिकाल के कवियों ने परंपराभुक्त प्रस्तुतों और अप्रस्तुतो का अधिक आश्रय लिया है। पर प्रतिभाशाली कलाकारों ने नूतन अप्रस्तुतो का भी सहयोग लेकर रूपचित्र को बक्रता प्रदान की

है। ऐसे स्थलों में सौंदर्य की भावपुष्ट गतिमत्ता केवल बोध्यार्थमात्र से संयुक्त न होकर आंतरिक प्रभविष्णुता से शक्तिपुष्ट हो गई है। इसी में सच्ची कविप्रतिभा का दर्शन होता है।

'मतिराम' ने परंपरागत सरणि को ग्रहण करते हुए भी अपनी भावप्रेरित रुचिर संयोजना और नूतन अप्रस्तुतों के समर्थचित्रण द्वारा अनेक वर्णनों में अनास्वादित फल की रसमाधुरी भर दी है। उनके अंगसौंदर्य के चित्रण में तन्मयकारी मोहकता आ गई है। इसके लिये उन्होंने लाक्षणिकता और व्यंजकता का भी उपयोजन किया है। "बदन श्रृंगार रस बेलि आलबाल भे,", "चढ़ति भौह, विकसत नयन, विहँसत गोल कपोल", "बाँही छुटै न कंठ ते नाहीं छुटै न कंठ", "नयन तरंगनि ते भये तरल तुरंग सुरंग", "रूप भौन में जगमगै मनो दीप की ज्योति" (तुलना कीजिये—छबिगृह दीप शिखा जनु बरई—तुलसी)", "मन ते नयनन को चली नयनन ते मन काज। ह्वै दीपक की छाँह लौं बीच बिलानी लाज", "अँसुआँ बरुनिकन चलन जल चादर के रूप। कमल कपोलनि की झलक झलकति दीप अनूप", "डोलनि लगी रसाल", "मोहन तन पानिप गई लाज दृगन की धोई" इत्यादि अभिव्यक्तियों में भावबोधित रसदृष्टि स्पष्ट देखी जा सकती है। इनमें समर्थ विशेषणों, लाक्षणिक एवं व्यंजक वक्रताओं तथा चित्रोत्थापक अप्रस्तुतों की विनियोजना द्वारा वर्ण्य में रम्यता, ताजगी और मर्मस्पर्शिता आ गई है।

अवयववर्णन मे 'मतिराम' ने मुख, कपोल, वेणी, नेत्र, अधर, वक्षोज, कटि, हाथपाँव आदि का वर्णन किया है। परंतु उनकी सतसई में सर्वाधिक वर्णन नेत्रों का है। इनमें काव्यनिष्ठ चारुता के साथ साथ उसकी प्रभावसीमा अत्यंत विस्तृत और गतिशील है। नयनों के अनंतर वक्षोजों का वर्णन भी उन्होंने विशेष अनुराग के साथ किया है और सतसई पद्यों में उनकी भी काफी संख्या है। अधर, कटि, कपोल, मुख आदि के वर्णन, इनसे कम महत्व के और संख्या मे भी कम हैं। नेत्रों के व्यापार और मुसकान की गतिशीलता भी वर्णित है। नायिका के कलेवर की सुनहली अंगकांति और रूपमाधुरी का वर्णन अनेक स्थानों में मिलता है। परंपरागत होने पर भी इनमें भावपरक प्रभविष्णुता है। रसराज का प्रथम पद ही इसका अच्छा उदाहरण है। विशेषण प्रयोग के 'मतिराम' उत्कृष्ट शिल्पी भी हैं। इस कारण अंगसौष्ठव के वर्णन में समर्थ शब्दों द्वारा प्रभावसीमा को विस्तृत बना देते हैं। लहलही,

गहगही, उलही, सतरौ हैं, ललचौंहैं, नचौहैं, बिहँसौहै आदि जैसे शब्दों के योग से वर्णित चित्र को स्पष्टता के साथ उभारने और मूर्तिमत्ता देने में वे अत्यंत सफल हैं।

'मतिराम' के काव्यचित्रों में जो प्रतिमाएँ अंकित हुई हैं, उनमें वर्ण (रंग) और रेखायें सरल, स्पष्ट और सौंदर्यबोध की मार्मिक अनुभूति से सप्राण हैं। रीतिकाल मे इन विशेषताओं का सहज संयोजन अपेक्षाकृत कम कवियों में दिखाई देता है। शब्दों द्वारा अंकित उनके बिंबचित्रों मे यद्यपि स्थूल आकारों की रचना कम नहीं है, तथापि भावबोध से निष्पादित आनंद और तुष्टि देने की क्षमता भी उनमे पर्याप्त है। 'मतिराम' ने बड़ी मस्ती के साथ ऐसी अनेक भावमूर्तियो का सर्जन किया है। जहाँ रूपचित्रों मे स्थूल और इन्द्रियपरक वासना की गूँज ही सुनाई नहीं पडती, अपितु मन के अनुभूतिगत आनंद का चित्र भी उभर आता है, यथा—

आनन-पूरनचंद लसै, अरबिंद-बिलास-बिलोचन पेखे ;
अंबर पीत लसै चपला, छबि अंबुद मेचक अंग उरेखे।
काम हू तैं अभिराम महा 'मतिराम' हिए निहचै करि लेखे ;
तैं बरनैं निज बैनन सौं, सखी मै निज नैनन सौं जनु देखे ॥२७६॥
लिखति अवनितल चरन ते बिहँसति बिमल कपोल।
अधनिकरे मुख इंदु ते, अमृत-बिंदु ते बोल ॥३६७१॥-सत०।
जलपूरित घनस्याम रुचि उनई अँखियनि आइ।
रही कंदब कलोनि की अगबेलि छबि छाइ ॥६०७-सत०।

उद्दीपन, हाव, वेशभूषा, वस्त्राभूषण आदि के प्रयोग से मूर्त्तिबिंब को रूपाकार देने मे रेखाएँ स्पष्ट और रस से ओतप्रोत है। वय.सधि का एक चित्र नीचे है—

चलन लगी अँखियां चपल, चलन लगी लखि छांह।
तन जोबन आवन लग्यौ मनभावन मन मांह ॥२०७॥

वस्त्राभूषण का वर्णन और आमंडनप्रसाधन का रूप समझने के लिये 'रसराज' की अभिसारिका के उदाहरणवाले (१६३ पद्य से २०४ छंद तक) छंद देखे जा सकते हैं।

अनुभाव चित्रण के द्वारा बिंब को जीवंत बनाने मे भी 'मतिराम' सफल हुए हैं। इन अनुभावचित्रों मे रीतियुगीन आभिजात्य रसिकता और शृंगारो

रुचि के साथ साथ वैज्ञानिक नागरिकता भी दृष्टिगत होती है। इनमें स्थूल देहपरक वर्णन के साथ साथ अनुभूतिपरक अंतश्चेतना का रूप भी उभर आया है—"मुसकाय के राधिका कंठ लगाय छिप्यो कहीं जाय निकुंजन में", "मोर लजौहैं मुख फेर के लजौहैं ललचौहैं चारु चखनि चितै कैसो चली गई", 'फिरि फिरि आवति द्वार तें झूठे झुकि अलसात। जेति आग तिलनी बहू ओ बीच ही बुझात;" या—"अनमूँदी अँखियन दई मूँदी प्रीति उघारि'। इन उद्धरणों में अनुभावादि के चित्रों में भावबोध का रंग चटकीला हो उठा है। कहीं कहीं इन चित्रों में सात्विक भावजन्य और हावमूलक चेष्टाएँ भी मिल गई हैं। उनमे आलंबन के भावव्यंजक व्यापारों में मोहकता आ गयी है। ऐसे चित्र 'रसराज' और सतसई में ही नहीं अपितु ललित-ललाम में भी बिखरे पड़े हैं।

नीचे की पंक्तियों में भावसंधि और भावशबलता के रूप देखे जा सकते हैं, जिनमें अनुभाव, संचारीभाव, सात्विक भाव और हावों का भी यथायोग मिश्रण है—

"एक ही भौन दुरे इक संग ही, अंग सो अंग छुवायो कन्हाई।
कंप छुट्यो,घन स्वेद बढ़्यो,तन रोम उठ्यो, अँखियाँ भरि आईं"॥१६॥
"लोचन रूप पियो ही चहैं अरु लाजनि जाति नहीं छवि देखी।
नैन नमाय रही हिय-माल मैं, लाल की मूरति लाल मैं देखी" ॥७४॥
"आय गए 'मतिराम' तबै, जबै देखत नैन आनंद भए रत।
भौन के भीतर भाजि गई, हँसि कै हरुवै हरि को फिरि हेरत" ॥२१६॥

"कंटक काढ़ति लाल को चंचल चाह निबाहि।
चरन खैंच लिनो तिया हँसि झूठे करि आहि ॥७३॥" (सतसई)

प्रथम उदाहरण में रतिभाव के उदय के साथ ही साथ कंप, स्वेद, रोमांच और अश्रूद्गम दिखाई देता है। नायक के पक्ष में अंग से अंग छुवाना उसका अभिलाष और सुखविशेष के प्रति औत्सुक्य प्रकट करता है। दूसरे उदाहरण में औत्सुक्य, अभिलाष, लज्जा और व्यापार वैगुण्य आदि के द्वारा नायिका का लिप्त, मोग्धभाव अंकित हुआ है। तृतीय उदाहरण में आनंद, लज्जा, उत्कंठा आदि प्रकट होते हैं! चतुर्थ में नायिका की हावहेलादि की केलिविदग्धता के साथ साथ रतिभाव, अनुभाव तथा 'झूठी आह' करने से जिस

मादनमोहन मूर्ति की अभिव्यक्ति होती है वह अत्यंत रसमय है और श्रृंगार के मधुमय व्यापरचित्र को उपस्थित करती है।

संयोगश्रृंगार के वर्णन में 'मतिराम' ने ऐसे अनेक चित्रों को अंकित किया है, जो आज की दृष्टि के अनुसार अपरिष्कृत और अश्लील कहे जा सकते हैं। रतिकेलि और सुरतांत के प्रसंगों एवं स्थितिओं का चित्रण 'मतिराम' के तीनों प्रमुख ग्रंथों (ललितललाम, रसराज और सतसई) मे है। अनुरीति और "विपरीत" के वर्णन (प्रत्यक्षतः और अप्रत्यक्षतः) अनेक दोहों में मिलते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि श्रृंगारी परिकर के रूप-चित्रों में 'मतिराम' की सौंदर्यभावना और काव्यचेतना जिस उल्लास और अनुराग से प्रवृत्त हुई है, वह युगप्रभाव से समुद्भूत हैं।

वियोगश्रृंगार का वर्णन भी कवि ने किया है। विरह के पूर्वराग, मान और प्रवास के तीनो पक्षों के—उन्होंने रसराज के अतिरिक्त सतसई में भी बहुत से चित्र खींचे हैं। कुछ चित्र अत्यंत स्वाभाविकता के साथ उभर कर सामने आते हैं। परंपराभुक्त होने पर भी मान के रूपचित्र (विशेषतः स्वकीयासंबद्ध) बड़े ही मधुर और सरस हैं।

संचारी भावों के अंकन मे 'मतिराम' की रेखायें और चित्रों के रंग स्पष्ट और समर्थ हैं। औत्सुक्य, अभिलाष, स्वप्न, चिंता और स्मृति तथा दूसरे पक्ष मे उन्माद, व्याधि जड़ता और उद्वेग आदि के भी सरस चित्रों के स्वरूप-निर्माण मे उनकी प्रतिभा अपने रसबोध और भावबोध की गहराई का परिचय देती है। उदाहरणों का विस्तार अनावश्यक है। मुख्यतः रसराज के तत्प्रसंगों में इन्हे देखा जा सकता है।

कहने का तात्पर्य यह कि आलंबन, उद्दीपन, सात्विक भाव, अनुभाव, सचारी भाव एवं हावभाव आदि के बहुत ही सजीव, अकृत्रिम एवं प्रभाव-शाली चित्रो का 'मतिराम' की तूलिका ने अंकन किया है। इनसे कवि की प्रतिभा, भावबोध और अनुभूति प्रेषणीयता का असंदिग्ध प्रमाण मिल जाता है। इसी प्रकार नायक, दूती, दूत आदि के वर्णन भी प्रायः मनोहर हैं। संयोग और वियोग, उपालभ, परिहास, मान आदि के वर्णनचित्र पर्याप्त रूप से हृदय को आकृष्ट करते हैं।

सामंती परिवेश मे रहकर भी इनकी रचना में ग्राम्य जीवन के कुछ चित्र मिल जाते हैं। ऐसा लगता है, गाँव के सरलजीवन, सहज आकर्षण ने उनको

प्रभावित करने में जो योग दिया है वह कम नहीं है। सीधे सादे और सरल जीवनवाले नारीनर के अकृत्रिम प्रेम ने और गाँवों की नैसर्गिक सुषमा ने उनके रसिक हृदय को मुग्ध किया था।

अतः उनके मन की सहज धारा उस दिशा में बह जाने के लिये आकुल लगती है। यह ठीक है कि ग्राम्यजीवन के विविध पक्षों और स्तरों के बहुसंख्यक चित्र—उनके काव्य में अंकित होने का अवसर न पा सके। परंतु नरनारी के सहज अनुभूतियों के जो थोड़े बहुत चित्र उन्होंने प्रस्तुत किये हैं, उनमें सहज माधुरी, अकृत्रिम सौष्ठव प्राकृतिक तथा भावमय अनुभूतियों का शृंगारी रूप काफी चटकीला और निखरा हुआ है। बागबगीचों और खेतखलिहानों के बीच गाँव की किशोरी और उसके प्रेम को उपस्थित करने में 'मतिराम' के शृंगार का विशेष आग्रह लक्षित होता है। इस प्रसंग के कुछ छंद तो वृन्दावन और गोकुल का वातावरण लेकर कृष्ण, गोपी और राधा के संदर्भ को सामने रखते हैं और कुछ विशुद्ध ग्राम्य चित्र उपस्थित करते हैं। यथा—

बेलनि सो लपटाय रही है तमालन की अवली अतिकारी,
कोकिल-केकी-कपोतन के कुल, केलि करें जहं आनँद भारी।
सोच करो जिन होहु सुखी 'मतिराम' प्रबीन सबै नरनारी;
मंजुल बंजुल-कुंजन मे घन, पुंज सखी ! ससुरारि तिहारी॥ ८६॥

इस उद्धरण में प्रकृतिचित्रण के साथ साथ गोकुल के जिस मंजुल बंजुल-कुंज का वर्णन है उसमें प्रसंगानुकूल भाव की रुचिर अभिव्यक्ति हुई है। एक दूसरे लक्ष्य मे यमुनातीर के सहेटनिकुंज को गिरते देखकर सोच में पड़ी नायिका का सुंदर भावचित्र अंकित है। इस चित्र के पृष्ठपट में बरसात की ठंढी हवा, घनघोर वर्षा और कदंब की भीनी भीनी महक आदि प्रकृति की सुषमा वर्णित है—

आई ऋतु पावस अकास आठौं दिसन मैं,
सोहत स्वरूप जलधरन की भोर को।
'मतिराम' सुकबि कदंबन की बास जुत,
सरस बढ़ावैं रस परस समीर को॥
भौन ते निकसि वृषभानु की कुमारि देख्यो,
ता समै सहेट को निकुंज गिर्‌यो तीर को।

नागरि के नैननि तैं नीर को प्रबाह बढ़्यो,
निरखि प्रवाह बढ़्यो जमुना के नीर को ॥ ८६ ॥

एक दूसरा चित्र भी नीचे दिया जा रहा है। परकीया उत्कंठिता का कल्पना-चित्र अङ्कित करते हुए 'मतिराम' ने यमुनातट के मनोरम वातावरण का रूपविधान उपस्थित किया है। उस सहज और स्वाभाविक परिवेश के बीच नायिका का उत्कंठित रूप हृदय के कल्पनामय लोचनों के संमुख बलात् उपस्थित हो उठता है—

जमुना के तीर बहै सीतल समीर तहाँ,
मधुकर करत मधुर मंद सोर हैं;
कवि 'मतिराम' छबि तहाँ सौं छबीली बैठी;
अंगन ते फैलत सुगंध के झकोर है।
पीतम बिहारी की निहारिबे को बाट ऐसी,
चहूँ ओर दीरघ दृगन करी दौर हैं;
एक ओर मीन मनो, एक ओर कंज-पुंज,
एक ओर खंजन, चकोर एक ओर है ॥१६३॥

नागरी, सामंती और कामकेलि मे निपुण रमणी की रतिकलाविदग्ध क्रीड़ाओं की अपेक्षा ग्रामतरुणी की भोलीभाली चेष्टाओं और उनके सहज सौंदर्य में 'मतिराम' को कम आकर्षण न था। अपनी सतसई मे गाँव की सुंदरी के 'दृगधनुही' की चोट को, उन्होने हृदय मे अधिक गहराई के साथ पैठनेवाली कहा है। कालिदास भी 'मेघदूत' मे कहते है—

'त्वयायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।

नयनों की प्रभावसीमा के कौशल मे प्रवीण नागरी किशोरी की बंकिम भ्रूलता, का चालन उस सहज सुषमा को नही प्राप्तकर पाता और न उसका हृदय पर वैसा स्थायी प्रभाव ही पड़ता है, जैसा कि भ्रूविलासानभिज्ञ और प्रीति-स्निग्ध ग्रामवधू के लोचनो के रसभाव और सौंदर्य की मिठास का प्रभाव अधिक गहरा और मुग्धकारी होता है—

"नागरि-नैन-कमान-सर करत न ऐसी पीर।
जैसे करत गँवारि के दृग-धनुही के तीर" सत० ॥५॥

'मतिराम' के कुछ दोहों में विशेषत :—सतसई के छंदों में ऐसे अनेक अंश हैं, जिनमें गाँव के बीच प्रणय परिकर की सहज अनुभूतियों के रूप-सुंदर चित्र खींचे गए हैं —

बरषा रितु बीतन लगी, प्रतिदिन सरद उदोति।
लहलह जोति जुवार की अरु गँवारि की होति ॥१०॥
निडर बटोही बाट में ऊखनि लेत उखारि।
अरे गरीब गँवार तैं काहे करत उजारि ॥४८॥
सूखी सुता पटेल की सूखी ऊखनि पेखि।
अब फूली-फूली फिरै फूली अरहर देखि ॥६७॥
जानति हों वा खेत सों आई बीनि कुसुंभ।
कलित कंटकनि कायकुल, कुसुम कलित कुच कुंभ ॥१५१॥
खेत निहारो धान को. यों बूझति मुसिक्याइ।
यहौ हमारे पिय कहौ सघन ज्वारि दरसाइ ॥३२७॥

कहने का सारांश यही है कि सामंती शृंगार के बीच रहते हुए और उसमें डूबे रहने पर भी 'मतिराम' की भावुक वृत्ति, गाँव की नायिकाओं के सच्चे भाव और भोले सौंदर्य पर निछावर थी।

स्वीया की ओर झुकाव—'मतिराम' की नायिकाओं में स्वीया का वर्णन विशेष उल्लास के साथ किया गया जान पड़ता है। उन्होंने मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा—ये तीनों भेद भी स्वीया के ही माने हैं। अधिकांश आचार्यों ने भी ऐसा ही माना है। पर रीतियुग के अनेक लक्षणशास्त्री कवियों ने परकीया के भी उक्त भेद मानने में आग्रह प्रकट किया है। उसका कारण स्पष्ट है। सहजिया, वैष्णव सम्प्रदाय आदि से प्रभावित चैतन्य आदि की कृष्णभक्ति के क्षेत्र में परकीया प्रेम का जो प्रभाव बढ़ा उसके कारण रीतिकाल में खुलकर उसका अनुगमन हुआ। रीति-काल के सामंती और विलासी वातावरण की वासनामयी भावाभिव्यक्ति के लिये वह सर्वथा अनुकूल भी था। इसी कारण इस युग के अनेक ग्रंथों में परकीया के विलास और कामकेलि का वर्णन बड़े मनोयोग और उल्लास के साथ हुआ है। सामान्या का भी स्थान समाज और साहित्य दोनों में कम नहीं था। उसका प्रभाव और महत्व भी व्यापक था। उच्चवर्गीय संपन्न

जनों के जीवन में गणिका और नर्तकी के संगीत, नृत्य और कामविलास तक का संपर्क पर्याप्त रूप में प्रभावशाली था। उसके अतिरिक्त राजपूताना और देशी राज्यों में तथा मुसलमानों और विशेष रूप से मुगल साम्राज्य-काल में दासियों बाँदियों और गुलाम युवतियों के तारुण्य का भोग विलास अबाध गति से चल रहा था। रीतिकाल के कवियों और आचार्यों ने वात्स्यायन के समय से चली आती हुई गणिकाओं और सामान्या नायिकाओं का वर्णन बड़ी रुचि के साथ किया। यद्यपि परकीया की अपेक्षा कम उत्साह के साथ उनका वर्णन हुआ, तथापि साकिओं और बाँदियों दासियों से संबद्ध विलासचर्या और कामकेलि का वर्णन इन कवियों में प्रायः नहीं के बराबर दिखाई देता हैं। परंतु परंपरा से आती हुई नायिका की सखियों और दूतियों आदि की मदनलीला का वर्णन काफी मिल जाता है। नायिकाओं के साथ छल करती हुई दूतिकाएँ नायकभुक्ता के रूप में भी वर्णित हुई है। परंतु संस्कृत के नायिकाभेद की परंपरा और विशेषरूप से गौड़ संप्रदाय के भक्तिभाव से ओत-प्रोत उज्ज्वल शृंगार के वर्णन का अवलंबन लेकर उनकी लौकिक भूमिका की परिधि और आयाम के बाहर जाते हुए रीतिकाल के कवि इधर उधर भटकते बहुत कम दिखाई देते हैं।

इस कथन का प्रयोजन इतना है कि रीतिपरंपरा के नायिकाचित्रों में परकीयाभाव की महत्तावृद्धि में कृष्णभक्ति के आध्यात्मिक और अलौकिक दृष्टि का दार्शनिक और गूढ़ स्वरूप स्थूलवासना के रग में डूब गया और विलासवासना से ओतप्रोत होकर सामने आया। उस युग के कवियों ने बड़ी आसक्ति और अनुरक्ति के साथ परकीयाप्रेम को रस का, आनंद का और सुखभोग का अथाह सरोवर समझ लिया। 'मतिराम' ने भी इसी प्रवृत्ति और रूढ़िमोह के कारण सामान्या और परकीया का स्थान स्थान पर भावमय और साग्रह वर्णन किया। उनके रूपसौंदर्य, हावभाव, हेलाचित्र और अनुभाव मूर्तियों के निर्माण में उन्होंने अद्भुत सफलता भी प्राप्त की है। सारांश यह कि रीतिकाल के अनुरूप शृंगारी वातावरण और काव्य-रूढ़ियों के विचार से वे पूर्णतः 'रीतियुग' की लीक पर चलते रहे।

परंतु उनकी शृंगारी तृषा को जो संतोष स्वीया और गृहवधुओं के विलास और कामकेलि के विवरण देने पर उपलब्ध होता था, वह परकीया प्रसंग में नहीं—यह अनेक बार कहा जा चुका है। स्वीया के बीच भी नवविवाहिता मुग्धा की

रसमयी मूर्ति में तो उन्हें पीयूष की अजस्र धारा बहती दिखाई पड़ती थी। भावसौंदर्य के जिस छलकते रस का स्वाद स्वीया मुग्धा के चित्रों में उन्हें प्राप्त होता था, वह अन्यत्र नहीं लक्षित होता है। स्वीया मध्या और स्वीया प्रौढ़ा में भी उनका मन रमता था।

पूर्वोक्ति तथ्य को प्रमाणों द्वारा सिद्ध करना कदाचित् कठिन है। परंतु सहृदय पाठक यदि 'रसराज'के नायिकाभेद में वर्णित विविध अवस्था की मुग्धा और मध्या का वर्णचित्र ध्यान से पढ़ें तो उपर्युक्त कथन की यथार्थता प्रत्यक्ष हो जाती है।[1] अज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना, नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा संबंधी केवल चार छंदों से ही उपर्युक्त कथन का अनुमान लगाया जा सकता है। इनमें से अज्ञातयौवना और विश्रब्ध नवोढ़ा के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

खेलन चोर-मिहीचनि आजु गई हुती पाछिले द्यौस की नाईं।
आली कहा कहौं एक भई 'मतिराम' नई यह बात तहाँई।
एकहि भौन दुरे इकसंग ही अंग सों अंग छुवायो कन्हाई;
कंप छुट्यो, घनस्वेद बढ्यो, तनु रोम उठ्यो, अँखियाँ भरि आई ॥१६॥

केलि कै राति अघाने नहीं, दिन ही मैं लला पुनि घात लगाई,
प्यास लगी कोउ पानी दै जाइयौ, भीतर बैठिकै बात सुनाई।
जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि हरे 'मतिराम' बुलाई;
कान्ह के बोल मैं कान न दीनों, सो गेह की देहरी पै धरि आई ॥२२॥

प्रथम उदाहरण में मुग्धा का जो सहज भोलापन दिखाई देता है, वह रसिकों की शृंगारतृष्णा की सजीव मूर्त्ति उपस्थित करता है। इतना ही नहीं, यौवन के मादक और सर्वांगीण प्रभावकारिता को भी प्रगट करता है। कृष्ण के अंगस्पर्श मात्र से रति के प्रकाशक सात्विक भाव उपस्थित हो गये हैं। ऐसा जान पड़ता है कि जैसे सेनापति का संकेत पाते ही सैनिक झट आ खड़े होते हैं उसी प्रकार मदनसेनापति के स्पर्शरूपी संकेतमात्र से शरीर में कंप,

---

१. इस कथन की परीक्षा के लिये 'रसराज' के निम्ननिर्दिष्ट संख्यावाले छंद देखे जा सकते हैं—१५, १६, २०, २१, २५, २६, २८, २६, ५६, ५७, ११२, ११३, १२३, १२४, १३४, १३५, १४५, १४६, १५७, १६८, १६६, १७६-१८०, १६१, १६२, २००, २०७, २१७, २१८, २४५, २४६ आदि। मुग्धा स्वीया के अतिरिक्त मध्या और प्रौढ़ा-स्वीया-भेदो के उदाहरण इनसे कम नहीं है।

स्वेद, रोमांच और अश्रुप्रवाह सामने आ गये हैं। दूसरे उदाहरण में भी केलिरात्रि के अतृप्त नायक का चित्र है। केलिलालसा से अति उत्कंठित होने के कारण वह अपनी नवल वधू की संगति चाहता है। पर घर में मर्यादा-वश नववधू को बुलाना उचित न लगने से वह अन्य उपाय रचता है। नायक का आशय जानकर उसकी भावज अपनी देवरानी (नयी दुलहन) को प्रियतम के पास पानी लेकर भेजती है। पर नवेली, नायक की चातुरी समझ जाती है और लज्जावश वह नायक के कक्ष में भी जाकर देहरी पर ही जलपात्र रखकर लौट आती है। इस वासना के चित्र में भी गृहजीवन का कैसा स्वाभाविक रूप उभरा है! नवविवाहित दम्पतियों की लालसा, नागर नायक की चातुरी, अभिप्रायज्ञ भावज और सखियों की सहकारिता तथा नवलवधू की लज्जाशीलता का अतीव सहज और जीवंत रूप सामने आता है। वासना के वातावरण की सृष्टि के बीच भी कवि नें स्वस्थ गृहजीवन के अनुरूप लज्जा की चेतना से नववधू को शिष्ट और सहज बना दिया है।

उक्त उदाहरण यह भी सूचित करते हैं कि 'मतिराम' शृंगारी होकर भी एक प्रकार के मर्यादावादी ही थे। हिंदू परिवार के सामान्य जीवन में जिस लुभावनी मर्यादा के कारण कुलबधू नायक के मन की मदनलालसा बढ़ाती थी, उसमें अपना एक अकृत्रिम सौष्ठव है। 'मतिराम' इस ओर जागरूक थे। बहुपत्नियों की चर्चा या वर्णन अवश्य वहाँ मिलता है। सौतों मे ईर्ष्या, डाह आदि का वर्णन करते हुए 'मतिराम' ने परोक्ष रूप से उस विलासिता की प्रथा का समर्थन किया है, जिसके अनुसार अनेक पत्नीवाला समाज मर्यादा का विरोधी नहीं समझा जाता था। उस युग मे हिंदू मुसलमान, दोनो में बहुविवाह की रीति पूर्णतः मान्य और स्वीकृत थी। अतः सपत्नियो आदि के वर्णन से मर्यादा के प्रति 'मतिराम' के झुकाव मे बाधा नहीं पड़ती। इसी कारण मुग्धा, मध्या आदि के वर्णन में सौतो की अंतर्ज्वाला का वर्णन बहुत मिलता है।

इससे सूचित होता है कि 'मतिराम' की व्यक्तिगतचेतना और काव्यदृष्टि—दोनों पर शृंगारी विलासिता और वासनात्मक अनुरक्ति का प्रभाव पर्याप्त था। पर शृंगार के विविध पक्षों के प्रसारण और प्रकाशन में गृहस्थ जीवन के क्षेत्र में उन्हें रम्यता दिखाई पड़ती थी। स्वस्थता और शिष्टता के कारण ही शृंगारी संयोग और वियोग के स्थितिचित्रों का वर्णन करने में भी उन्होंने संभवतः

स्वकीया को ही उदाहरित किया है। इस दृष्टि का आग्रह २४८ छंद के विपरीतरति वर्णन में भी दिखाई देता है। वहाँ उन्होंने प्राणप्रिया और प्रिय शब्द से उक्त संबंध को ध्वनित किया है। यह प्रसंग आगे चलकर हावलक्षण के संदर्भ में और भी स्पष्टतर हो गया है। 'मतिराम' के मत में दंपति के संयोग में जो भाव प्रकट होते हैं, उन्हीं सबको कविजन हाव कहते हैं—

दंपति के सयोग मैं होत प्रगट जे भाव।
ते संयोग सिंगार मैं बरनत सब कवि हाव ॥२४७॥

इस लक्षण में दंपति शब्द स्वकीया संदर्भ का असंदिग्ध साक्षी है। इस कारण हाववर्णन से संबद्ध उदाहरण छंदों में जिन सरस अनुभाव के भावसूचक और रतिउद्दीपक व्यापारचित्रों का अंकन हुआ है, उनको भी परोक्ष रूप से मुख्यतः स्वीयासंबद्ध कहा जा सकता है। दो चित्र नीचे दिये जा रहे हैं—

प्रान प्रिया प्रिय आनंद सों बिपरीति रची रति रंग रह्यो भ्वै;
कामकलोलनि मै 'मतिराम' रही धुनि त्यों कटिकिंकिनी की ह्वै।
आनन की उजियारो परी श्रमबूँद समेत उरोज लखै द्वै;
चंद की चाँदिनो के परसें मनौं चंदप्रवान पहार चले च्वै॥२४८॥

लालन बाल के द्वै ही दिना तें परी मन आनि सनेह की फाँसी;
काम कलोलनि मैं 'मतिराम' लगैं मनौं बाँटन मोद की आँसी।
पीतम के उर बीच चुभ्यो दुलही के बिलास मनोज की गाँसी;
स्वेद बढ्यो तन, कंप उरोजनि, आँखिन आँसू, कपोलनि हाँसि ॥२६३॥

निष्कर्ष—(१) मतिराम की प्रधान काव्यभूमि मुख्यतः शृंगारक्षेत्र है। इसके प्रत्येक प्रमुख क्षेत्रों में उनकी प्रतिभा का सहज विकास दिखाई देता है। (२) उनका शृंगार और उसके विविध अवयवों का सोदाहरण निरूपण और तत्संबद्ध विभिन्न आयोगों के उसके चित्रों का अंकन रीतिकालीन रूढ़िमुक्त परंपरा का आश्रय लेकर चलती है। पर भावबोध की प्रत्यग्रता और नव्यता ने उनके शृंगारचित्रों को अधिक मोहक बना दिया है। (३) शृंगारी परिधि के उनके वर्ण्यरूपों में प्रस्तुत और अप्रस्तुत काव्यरूढ़ियों का अनुगमन है। पर विशुद्ध कल्पना और कविप्रौढ़ोक्ति के काव्यविधान की अपेक्षा सहज स्वाभाविकता के अनुभव और प्रसंगबोध का

विकास विस्तृत और व्यापक है। (४) शृंगार में सामान्या को उन्होंने अधिक महत्व नहीं दिया। परकीया और तत्संबद्ध परिवेशों के बीच अनुभूति-बोध और भावचेतना का वर्णन—तन्मयकारी आसंजन के साथ हुआ है। परंतु स्वकीयासंबद्ध शृंगारवर्णन में कवि की सर्वाधिक गाढ़ अनुरक्ति और विशेष आग्रह लक्षित है। (५) स्वीया और परकीया—दोनो के ही शृंगार-वर्णन में 'मतिराम' का अनुभूतिबोध, भावचेतना और रसचर्वणा में, वैलसिकता और वासनाजुष्ट आसंग प्रकट है। परतु तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर स्वीयाविलास को वे अधिक महत्व और अधिकतर आस्था के साथ ग्रहण करते हैं। स्वीयापरिवेश मे यथास्थान और यथास्थिति—गृहस्थ जीवन की सामान्य रीतियों और आदर्शों के प्रति वे असंदिग्ध रूप से आकृष्ट हैं। सब मिलाकर 'मतिराम' की सर्वाधिक आसक्ति, अनुरक्ति और आस्था—स्वीया-शृंगार के विविध आयामों मे रमती जान पडती है। इस पक्ष के एक कक्ष में तो 'मतिराम' नग्न और मर्यादाभुक्त प्रणयकेलि के चित्रकार दिखाई पड़ते हैं और दूसरे कक्ष मे पारिवारिक जीवन की मर्यादा के रक्षण मे प्रयत्न-शील भी लगते हैं। उनकी काव्यसृष्टि मे प्रथम उद्धृत पद्य विवाहित दंपति का रात्रिकालीन निभृत और एकांत केलिकक्ष है। वहाँ अश्लीलता और नग्नता का विचार नही रहता तथा दूसरा पक्ष दिन में गृहस्थ का आँगन है जहाँ कौटुंबिक मर्यादा और लज्जा से घिरी होकर भी वधू अपने झीने घूँघट की ओट से मुखछवि और बाँकी चितवन का रस छलकाती रहती है।

'मतिराम' : भावचेतना के अन्य अंचल

हिंदी के उत्तरमध्ययुगीन रीतिपरंपरा के कवियों मे 'मतिराम' का विशिष्ट स्थान है। मूलतः वे रीतिपरंपरा के कवि है। अतः उनकी अधिकांश कवितायें लक्षण-लक्ष्य-ग्रंथ-रचना की पद्धति पर चलती हैं। फूलमंजरी और सतसई दोनों कृतियाँ उक्त परंपरामुक्त होकर भी रीतिरूढ़ियों से सम्यक् प्रभावित हैं। इस प्रकार की उनकी कविता मे एक ओर तो रूढ़िमार्गीय उक्ति-वैचित्र्य, अलंकारवक्रता, अतिशय शृंगारासक्ति और फारसी से प्रभावित ऊहात्मक काव्योक्तियाँ है दूसरी ओर उनके मुक्तक और स्फुट काव्यों मे कवि की सहज एवं अकृत्रिम अनुभूतिओं का भावोच्छ्वास मुखरित है।

सहज रूप में स्वाभाविक अनुभूतिबोध और रसात्मक तन्मयता का उनमें आधिक्य है। कल्पनामय भावचित्रों के अंकन में उनकी काव्यप्रतिभा का सहज उन्मेष अधिक दिखाई देता है। दरबारों और सामंती विलासभोग में घिरे रहकर भी 'मतिराम' की काव्यवाणी में कुटुंबमर्यादा और संस्कृत नरनारी के भावचित्र काफी अधिक हैं। ग्राम्यजीवन की अनुभूतियाँ, हर्ष, उल्लास प्रणयव्यापार और विषाद, व्यथा आदि के चित्रबिंबों का अनुराग के साथ उन्होंने अंकन किया है। व्यापक रूप से जीवन के चित्रों का लेखन न होने पर भी श्रृंगारप्रसंग में अंकित ग्रामीण नरनारियों के भावभंगियों, खेत, बाग बगीचों आदि के सहेटों, वातावरण में जिन सहज अनुभूतियों और व्यापारों का रूपांकन हुआ है वह कवि की वृत्ति का स्पष्ट परिचय देता है।

रीतिरूढ़ियों के प्रभाव से उन्होंने भाव और कला—दोनों पक्षों में युगचेतना और कलाशिल्प का अनुगमन किया है। राधा, कन्हाई और गोपियों को भी श्रृंगारी भूमिका देकर प्रणयमंच पर उपस्थित करने में 'मतिराम' को तनिक भी हिचक नहीं हुई है। फारसी शायरी शैली के आकर्षण से मुग्ध होकर उक्तिवक्रता के ऊहापरक शिल्पविधान को भी उन्होंने अपनी कविता में काफी स्थान दिया है। नयनों की बर्छी, भाला और कटारें भी नयनशर के समान उनके पद्यों में हृदय को बेधते, घायल करते दिखाई देते हैं। कभी कभी टेसु के फूल भी लोहू से लाल हाथी के अंकुश से दीख पड़ते हैं। स्फीयमान वक्षोजों और नितंबों के विरुद्धदेशीय खिंचाव के कारण कमर भी वहाँ लुप्त हो गई है। "बर्छी मनौ मनोज की तिरछी चारु चितौन।" (नैनशर) "बिन कंचुक छेदैं करै छाती छेद छटूक।" "विरह अगिनि की झार तँह जारि जात झोंकार" आदि के समान अभिव्यक्तियाँ—जो उस युग के हिंदी कवियों में सामान्यतः प्रचलित हो गई थी,—'मतिराम' में भी मिलती है—"टूटि परै जिन भार तें निपट पातरी लंक", "झुलसत ओज मनोज के परसि उरोज सरोज" "पड़ी दूबरी सेज में सखी निहारहि नीठि।" "परसत नहीं डरात सी धरिबे के डर डीठि", "लालबाल को उर कठिन उर जनि निपट कठोर। जाहिं छेद पीड़न गई तेरी ईच्छन कोर"—ऐसे ऊहात्मक और आलंकारिक चमत्कारवाले अभिव्यंजनों द्वारा 'मतिराम' भी वक्रोक्तिनैपुण्य की सृष्टि करते हैं। पर कुल मिलाकर प्रायः

उनकी उक्तियाँ लौकिक संभावना और स्वाभाविकता की सीमा का त्याग नहीं करती।

वीरभाव

शृंगार के अतिरिक्त ललितललाम में राजप्रशस्ति से सम्बद्ध वीरभाव की अच्छी अभिव्यक्ति 'मतिराम' ने की है। शौर्य और वीरता के संपर्क-वाले भावों और स्थितियों का भी उन्होंने स्वरूप प्रकट किया है। आरम्भिक नृपवंश के वर्णन में 'मतिराम' ने युद्धोत्साह और दानोत्साह आदि के माध्यम से ललित में वीररस की अच्छी व्यंजना की है। यद्यपि इन वर्णनों में अलंकृत काव्य का रचनाविधान अधिक आग्रहपूर्ण हुआ है तथापि इस संदर्भ में उत्साह, क्रोध और विस्मय भावों से रसों की अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है। इन लक्ष्यों में ओज और कांति गुण की दीप्ति बड़ी ही सुंदर हुई है। इसी प्रसंग में हाथियों का भी वर्णन उत्कृष्ट है और अनुकूल शब्द-योजना तथा अलंकृत एवं संश्लिष्ट अर्थविधान के कारण समर्थ है। ओजमयी भाषा से भी अभीष्ट अर्थ लक्षित है, परन्तु इनमें प्रशस्तिमूलक अति-वर्णन का रंग प्रायः अधिक चढ़ गया है। 'मतिराम' वीरसम्पृक्त आलंबन के ओजोमय अभिव्यक्ति का चित्रण सहज उत्साह के साथ करते जान पड़ते हैं।

मंदर-बिलंद मंद गति के चलैया, एक
पल मे दलैया, पर-दल बलखानि के;
मदजल झरत मुकत जरकस झूल,
झालरिनि झलकत झुंड मुकतानि के।
ऐसे गज बकसे दिवान दुहूँ दीननि कौं,
'मतिराम' गुन बरनै उदार पानि के;
फौज के सिंगार हाथी और महिपालन के
मौज के सिंगार भावसिंह महादानि के ॥१४०॥

सत्ता को सपूत भावसिंह भूमिपाल जाकी
किर्त्ति जौन्ह करत जगत चित्त चाव है;
कबिन को मतिराम कामतरु ऐसो कर,
अंगद को ऐसो रन में अडोल पाँव है

चंद-कैसी जोति, चंडकर-कैसो तेज पुर-
हूत-कैसो पुहमी में प्रगट प्रभाव हैं,
अरजुन पन, मुनि मन, धनपति धन,
जगपति तन, मृगपति रन राव हैं ॥४७॥

(ललितलाम के ४१, ५४ और ५५ संख्यक पद्य भी देखिए ।)

कहने का सारांश इतना ही है कि वीरभाव के वर्णन में भी कवि समर्थ प्रतीत होता है । 'भूषण' के भाई होने के कारण संभवतः इनकी भी सहज वृत्ति, वीरभावना की ओर उन्मुख थी; यद्यपि उसके प्रकाशन का पूरा अवकाश संयोगवश नहीं मिल पाया अथवा थोड़ा बहुत जो मिला भी वह राजप्रशस्ति के संदर्भ में । लक्षणलक्ष्यों के अंतर्गत अंकित भावनाओं के चित्र, वस्तुतः आश्रयदाता की प्रशस्तिप्रेरणा से ही उद्बोधित हैं । किंतु परिमित लक्ष्यों से ही कवि के तद्विषयक अनुभूतिबोध की सामर्थ्य का आभास अच्छी तरह मिल जाता ।

इस संबंध में यह स्मरणीय है कि 'मतिराम' के वीर-भाव-जुष्ट चित्रों में युद्धवीर की अपेक्षा दानवीर का वर्णन अधिक उमंग और तन्मयता के साथ अभिव्यक्त है । युद्धवीर के वर्णन मे उस उल्लास और उत्साह का वेग नहीं है जो दानवीर के कर्मों में अंकित है । अंगी वीररस की परिधि की रेखा के अंतर्गत अंगरूप से यत्र तत्र करुण भावों, रौद्र, भयानक, अद्भुत आदि रसों की कहीं कहीं जो व्यंजना हो गई है वह कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखती ।

प्रकृति

प्रकृतिवर्णन के प्रसंग मे 'मतिराम' की काव्यरुचि परंपराभुक्त रूढ़ि का ही अनुगमन करती है । वे वस्तुतः उद्दीपन के रूप में ही प्रकृति के मादक और तन्मयकारी सौंदर्य को देखते हैं । अपने चारों ओर फैले हुए जगत् की देश और कालसापेक्ष उपमा को वे अंतःकरण के राग का स्वतंत्र आलंबन मान सकने में युगप्रभाव से विमुख प्रतीत होते हैं । दूसरे शब्दों में शृंगारी सुख-दुःख-बोधों को बढ़ाने और तीव्र करनेवाले उद्दीपन विभाव के रूप में उन्होंने अधिकांश रीतिकवियों के समान प्रकृति का उपयोग किया । संयोगवियोगपरक शृंगारचित्रों के अंकन में पृष्ठभूमि सी जगती

और प्रकृति—'मतिराम' के परंपराग्रस्त वर्णनों मे—केवल चित्रपट तक ही रह गई। मानव अंतःकरण की रागवृत्तिओं के उद्भावन और विभावन में प्रकृति का आधार आलंबन बनकर अंकित होने का गौरव न पा सका। फिर भी प्रकृति के संक्षिप्त क्षेत्रीय सौंदर्यबोध के प्रति कवि की चेतना जागरूक और अनुरक्तिपूर्ण थी, जिसके कारण उद्दीपन और अप्रस्तुतविधान के रूप मे अथवा पृष्ठभूमि एवं चित्रपट के रूप मे 'मतिराम' ने अनेक स्थलों पर जो ऋतुचित्र और ललित दृश्यों का शब्दांकन किया है, वह कवि की प्रकृतिमुखी सहृदयता और रागात्मक आसंजन का स्पष्ट संकेत करते हैं। वर्षा, वसंत आदि जैसे मादक ऋतुवर्णन के अतिरिक्त ग्रीष्म, शरद्, और शिशिर आदि के भी अपूर्णपूर्ण चित्र 'मतिराम' मे उपलब्ध है। अवर्ण्य और अप्रस्तुत रूप मे वर्ण्यचित्रों के मूर्त, स्पष्ट और प्रत्यक्ष कल्पनाचित्रो के लिये भी प्रकृति का सफल उपयोग 'मतिराम' ने किया है।

भाषा, छंद और रचना कौशल

कवि की अथवा किसी भी साहित्यकार की अर्थाभिव्यक्ति का साधन, संकल्पनाओं (इमेजेज़), भावचित्रों और स्वरूप मूर्तियों के अभिव्यंजन का कार्य भाषा के द्वारा संपन्न होता है। भावो और विचारों की वाहक भाषा ही है। उसी के समुचित विनियोग और प्रयोग से भावबोध सवेदनीय और प्रेषणीय बनता है। अतः अभिप्रेत अर्थचित्र की गत्वर प्रेषणीयता से समन्वित रूपविधान—निश्चय ही—साहित्यकार और विशेषतः कवि के कलाकर्म में सर्वावश्यक उपकरण होता है।

समर्थ, अभीष्टसाधक और प्रभावक्षम, भाषाप्रयोग की दृष्टि से 'मतिराम' प्रायः अत्यत सफल हैं। आलंकारिक चमत्कार से वक्रीकृत उक्तिविधानवाले छदों मे 'मतिराम' ने अलंकरणकाव्य की धारा में अपना सफल नैपुण्य प्रकट किया है। उस युग में बहुत कुछ काव्यभाषा के लिये आवश्यक, सर्वजनग्राह्य यह शैली कदाचित् सर्वाधिक प्रचलित और स्वाभाविक बन गई थी। 'मतिराम' के लिये उक्त रीतिशैली का अनुसरण आवश्यक सा ही था। फिर भी उन्होंने अपने भावों और सकल्पनाओं की अभिव्यक्ति के लिये समर्थ भाषा का प्रयोग किया। उनकी भाषा अधिकतः अपने अकृत्रिम, पर साथ ही अलंकारमंडित रूप को लेकर चलती है। उसका स्वरूप और गति—दोनों ही कवि के भावनिष्ठ, कल्पनापरक और अर्थगत रूपचित्रों के सर्जन में समर्थ

हैं और सहज संवेदना के योग से उन्हें प्रेषणीय गतिका बना देते हैं। वे चित्र कवि के अंतस्तलीय चित्रपट में अंकित रेखाओं और रंगों के साथ अपने पूर्ण आकार को लेकर सामाजिक, पाठक और श्रोता के चेतनापट पर स्पष्टाकृति के साथ मुद्रित हो जाते हैं।

उनके इन वर्णनों में शास्त्रीय पटुता के साथ अर्थविधान का योजना-सौष्ठव और प्रसादगुण का सहज विलास अत्यंत मनोहारी रूप में प्रकट हुआ है। यहाँ प्रथम और पंचम विभावना एवं संभावन अलंकार के उदाहरण नीचे उपस्थित किए जा रहे हैं। इन छंदों में अलंकार के शास्त्रीय लक्षण का अनुसरण, भावों की मर्मस्पर्शी और मनोमुग्धकारी सुष्ठुता तथा प्रसादगुण से संपन्न और बोधसमर्थ भाषा का प्रयोग—अलंकरण शैली में भी निदर्शनीय हैं—

बातनि जाय लगाय लई रस ही रस मैं मन हाथ कै लीनौं;
लाल तिहारे बुलावन को 'मतिराम' मैं बोल कह्यो परवीनौं।
बेग चलौ न बिलंब करौ, लख्यौ बाल नवेलो को नेह नवीनौं;
लाज भरी अँखियाँ बिहँसी बलि, बोल कहे बिन उत्तर दीनौं ॥१६७॥

मोरपखा 'मतिराम' किरीट मैं कंठ बनी बनमाल सुहाई;
मोहन की मुसकानि मनोहर, कुंडल डोलनि मैं छबि छाई।
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई;
वा मुख की मधुराई कहा कहौं, मीठी लगै अँखियान लुनाई ॥२०६॥

चलत सुभाय पाय पैंजननि की झनक
उर उपजन लागे केलि के कलोल हैं;
फूलन के हार हियरे सौं हिरकन लागे,
छलकन रस नैन तामरस लोल हैं।
श्रौन के सरोज के परस 'मतिराम' लाल,
कंटकित होन लागे कोमल कपोल हैं;
तौ बनै बनाव मिलै जोबन में कहूँ नीके,
लोचन के जोबन के बासर अमोल हैं ॥२६७॥

इन तीनों ही उदाहरणों में भाव की सहजधारा से मिलकर अर्थाभि-व्यक्ति की स्पष्टता अधिक प्रभावशाली हो गई है। विभावना और संभावन अलंकारों की चमत्कारमूलक उक्तिवक्रता मानों भावचित्रण की सहायक

होकर ही आई है। तृतीय छंद में विशेष रूप से पदों की ध्वनिमधुरता और सुकुमारता-संभावना अलंकार की नीरस चमत्कृति को भी अपने भावविधान से सरस करने में सक्षम है।

उनकी भाषा में शब्दों के अर्थ, कृत्रिम और स्वाभाविक रूप से उक्ति को सहजता और माधुर्य देते चलते हैं। यदि कहना चाहें तो आचार्य शुक्ल के शब्दों में कह सकते हैं कि 'मतिराम' की भाषा में आनुप्रासिक शब्दचमत्कार और अर्थालंकारगत नीरस अर्थचमत्कृति के लिये अशक्त शब्दों की भरती प्रायः कहीं नहीं मिलती। उनके शब्द और भाव—अधिकतः भावव्यंजन के उपकरण उत्पादन के रूप में प्रयुक्त हैं। "रीतिग्रंथ वाले कवियों में इस प्रकार की स्वच्छंद, चलती और स्वाभाविक भाषा कम कवियों में मिलती है।""कहीं कहीं अवश्य अनुप्रास के चक्कर में वह पड़ गई है। पर सामान्यतः उनकी भाषा रस से स्निग्ध, भावों से मनोहर और प्रसादगुण से निर्मल दिखाई देती है"। आडंबरहीन, भाषा और भाव के प्रवाह से युक्त उनकी भाषा बनावटीपन से प्रायः दूर रहती हुई, काव्यसौष्ठक की उत्कृष्ट कला का स्वरूप अंकित करती है। यद्यपि कहीं कहीं (जैसा कि पं० कृष्ण बिहारी जी ने अपनी भूमिका में बताया है) कुछ दोष भी ढूँढ़ लेना बहुत कठिन नहीं है। एक आध स्थलों पर शब्दों का असमीचीन या बेढंगा प्रयोग और ऐसे ही छोटे मोटे दोष मिल जाते हैं। फिर भी सामान्यतः उनकी भाषा बहुत ही साफ सुथरी, समर्थ, भावपूर्ण, सरस, प्रवाहमय और अर्थबोधन में प्रसादसंपन्न है।

फारसी काव्यपरंपरा के प्रभाव से उनकी रचना में इलाज, बिरची खलक, दरिआव, गनीम, बिलम्ब, जहांन, गुमान मजलिश, मखतूल आदि के अनेक अरबी तथा फारसी के शब्द मिलते हैं। पर प्रचलित और सटीक होने से ये प्रयोग सामान्यतः भावबोध में सहायक हैं।

छंदयोजना की दृष्टि से 'मतिराम का विस्तार अत्यंत परिमित है। परंतु सामान्यतः छंद के विषय में उनकी कला शास्त्रीय निर्देश का अनुसरण करने में प्रयत्नशील दिखाई पड़ती है। छप्पय और सोरठा के अल्पप्रयोग को अलग रखकर उनके अधिकप्रयुक्त तीन ही छंद हैं—सवैया, कवित्त और दोहा। शृंगारपरिवेश में और वैसे भी सवैया संभवतः उनका सर्वाधिक प्रिय छंद है। उसमें भाषा का सहज प्रवाह, भावों की ललित झंकार, संकल्पनाशील

चित्रों की मोहक निखार और ध्वनिसौंदर्य का भी रम्य उन्मेष दिखाई देता है। कवित्त भी उनके काव्यभावों की समर्थ अभिव्यक्ति में कलापूर्ण रूप लेकर सामने आया है। यद्यपि छंदयोजना में भावानुसारी विभाजनरेखा नहीं खींची जा सकती, तथापि मधुर और कोमल, सुकुमार और पेशल भावों एवं चित्रों के अंकन में सवैया छंद प्रायः अपनी उत्कृष्ट मनोहारिता के साथ उपस्थित हुआ है और उग्र, दीप्त एवं ओजपूर्ण भावाभिव्यंजन में कवित्त सामने आता है। दोहों का उपयोग — लक्षणविधान के अतिरिक्त भी— प्रायः 'मतिराम' के काव्य की सभी दिशाओं में किया गया है। उत्कृष्ट, अर्थ-गंभीर, सरस, चमत्कारपूर्ण आदि सभी प्रकार के दोहे 'मतिराम' ने सर्जित किये। परंतु इनमें सबसे अधिक संख्या के उत्कृष्ट दोहे संभवतः शृंगार-परिधि के अंतर्गत आते हैं और संख्या की दृष्टि से दूसरा स्थान अलंकारोक्ति अथवा भणितिमूलक वचनभंगिमा से मंडित वक्रोक्तिवाले दोहों का है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि—'मतिराम' की काव्यप्रतिभा का विकास मुख्यतः सवैया, दोहा और कवित्त—इन तीन छंदों के माध्यम से प्रकट हुआ है। इनके प्रयोग के वे समर्थ और सफल शिल्पी माने जा सकते हैं।

उपसंहार

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं—'मतिराम' के काव्यवर्णनों में मुख्यतः दो प्रधान विषय हैं—शृंगार और राजप्रशस्ति। शृंगार के अंतर्गत उन्होंने सांगोपांग नायिकाभेद, नायकभेद, दर्शन के प्रकार, उद्दीपनविभाव, शिक्षा, उपहास, उपालंभ, दूतीवर्णन, अनुभाव और सात्विक भावों का परिचय, संयोग और वियोग तथा हाव और भावदशाओं का निरूपण किया है। संचारीभाव का निरूपण नहीं हुआ है। इनका विवेचन स्मरणीय ढंग के रीतिकालीन रूढ़ि का लक्षणग्रंथीय आश्रय लेकर रसराज में हुआ है। इसके अतिरिक्त भी लक्षणशृंगार और साहित्यकार में संभवतः इन्हीं विषयों का संक्षिप्त परिचय है। ललितललाम और अलंकार-पंचाशिका तथा छंदसारपिंगल में भी स्थान स्थान पर अलंकारों और छंदों के उदाहरण-प्रसंगों में, शृंगारक्षेत्र की कविताएँ में तत्तत् लक्षणों के उदाहरणों में निर्मित हुई हैं। सतसई और फूलमंजरी भी प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में मुख्यतः शृंगारसम्बन्धी लक्षणमुक्त मुक्तक रचनाओं के संकलन हैं।

संस्कृत सूक्तकों में अमरुशतक, गाथासप्तशती, आर्यासप्तशती के लक्ष्य सूक्तों के रूप में और शृंगारमंजरी, कुवलयानंद, और चंद्रालोक का

लक्षणग्रंथ के रूप में 'मतिराम' ने प्रभाव ग्रहण किया है (काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण के लक्षणों का भी थोड़ा बहुत सहारा लिया गया है।) हिंदी-कवियों में सूर और तुलसी एवं रहीम का भी काव्यमुक्तकों पर कहीं कहीं स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। केशव का भी थोडा प्रभाव ढूँढ़ निकाला जा सकता है। मतिराम सतसई पर निश्चय ही बिहारी सतसई का—भाव और वर्ण्य विषय—दोनो दृष्टियों से प्रभाव भी पडा है, प्रेरणा भी मिली है। ऐसे उदाहरण अनेक मिलते है, जिनमें ताज, लगाम, तुरंग, और मुँह-जोर आदि शब्द तक भी 'मतिराम' ने ग्रहण किए हैं केवल भाव ही नहीं। उक्तिविदग्धता, भावसौकुमार्य और रूपकनिर्वाह की दृष्टि से दोनों में कौन श्रेष्ठ है—इस विषय में यहाँ निर्णय देने की अपेक्षा रसिक काव्य, प्रेमिओं के सौंदर्यबोध पर ही इसे छोड देना अधिक अच्छा है। सतसई के अतिरिक्त रसराज और ललितललाम आदि के पद्यों मे भी कही कहीं बिहारी सतसई के प्रभाव की झलक मिल जाती है।

'मतिराम' ने जिस प्रकार अपने पूर्व कवियों या आचार्यों से प्रभाव या प्रेरणा ली है उसी प्रकार अपने बादवाले आचार्यों या कवियो को प्रभावित भी किया है और प्रेरणा भी दी है। लक्षणग्रंथ की दृष्टि से 'भूषण' के अलंकारलक्षण 'मतिराम' से सर्वाधिक प्रभावित है। अन्य रीतिकार आचार्यों में 'मतिराम' के लक्षण का प्रभाव अत्यंत स्वल्प या नगण्य सा है। उनके लक्ष्यों को भी 'मतिराम' ने थोड़ा बहुत अवश्य ही प्रभावित किया है यद्यपि उतना नहीं जितना लक्षणों को। 'आलम' और 'मतिराम' में भी भाव-सादृश्य के लक्ष्य—प्रस्तुत ग्रंथावली की भूमिका में उद्धृत हैं। 'देव', 'दास', 'तोष,' 'रघुनाथ' और यहाँ तक कि 'पद्माकर' एवं अंशतः 'बेणीप्रबीन' को भी 'मतिराम' से प्रेरणा मिली है। अतः कहा जा सकता है कि युगानुरूप रीति-निरूपण और शृंगारी काव्यरचना की दृष्टि से मध्यकालीन हिंदी साहित्य में 'मतिराम' का महत्व सिद्ध है। उन्होंने व्यापक अध्ययन के आधार पर संस्कृत मुक्तककारों, शास्त्रीय ग्रंथकारों का आश्रय प्रसंगानुसार और सुविधा की दृष्टि से लिया है। इसके अतिरिक्त सूर, तुलसी, केशव, रहीम आदि—हिंदी के विख्यात कवियों और आचार्यों से भी प्रेरणा स्वीकार की है। अपनी सुबोध और परंपरानुसारी लक्षण रीति-ग्रंथों का—रीतियुग के रूढ़िगामी मार्ग पर निर्माण किया। समान्यतः उनके लक्षण सुबोध स्पष्ट और लक्षणीय तत्व

का सामान्य परिचय देने में समर्थ हैं। एकआध त्रुटियों अथवा कुछ स्थलों पर अस्पष्ट और भ्रामक होने पर भी सामान्यतः उनमें परिचेयार्थ की स्पष्टता और लक्षणबोधकत्व काफी अच्छा और साफ है। छंदःशास्त्रीय विवेचन और लक्ष्यसहित लक्षणनिरूपण, युगपरंपरा के अनुसार अप्रौढ़ नहीं कहा जा सकता। निष्कर्ष यह कि रीतिकाल के शास्त्रीय विषय-निरूपण-संबंधी नैपुण्यमर्यादा की दृष्टि से कुछ अत्यंत प्रौढ रीतिग्रंथकारों के अतिरिक्त 'मतिराम' का स्थान पर्याप्त महत्वपूर्ण है। शास्त्रीयप्रौढ़ि के कारण चाहे उन्हें आचार्य का उत्कृष्टतम पद भले ही न मिले पर भाववैभव और काव्यमाधुरी के कारण रीतिकालीन कवियों मे 'मतिराम' का नाम सदैव प्रेम और संमान के साथ लिया जायगा।

गोपाष्टमी, संवत् २०२१
वाराणसी।

करुणापति त्रिपाठी

भूमिका

प्राक्कथन

वह वाक्य, जिसकी शब्दावली या अर्थ अथवा शब्द और अर्थ, दोनो ही साथ-साथ मिलकर रमणीय पाए जायँ, काव्य कहा जायगा। रमणीय वह है जिसमें चित्त रमण करे—जो चित्त को अपने में लगा ले। रमणीयता आनंद की उत्पत्ति करती है। कविता की रमणीयता से जो आनद उत्पन्न होता है, वह लोकोत्तर है। उसमें स्वार्थ की प्रधानता नहीं है। उसका उपभोग सहृदय रसिक जन ही कर सकते हैं। अलकार, शब्द-चित्र एवम् रस रमणीयता के परिपोषक हैं। रसात्मक वाक्य में बड़ी ही सुंदर कविता का प्रादुर्भाव होता है। नीरस एवम् अलंकार-प्रधान कविता में बहुत थोड़ी रमणीयता पाई जाती है। शब्द-चित्र से पूर्ण वाक्य तो केवल कहने-भर को कविता के अंतर्गत मान लिया गया है।

वास्तव में रसात्मक काव्य ही सत्काव्य है। सत्काव्य अभिधा, लक्षणा और व्यंजना-मूलक तीन प्रकार का होता है। पहले अभिधामूलक काव्य का ही आदर था, पर अब जिस काव्य में व्यग्य का प्राधान्य हो, वही सबसे अच्छा माना जाता हे। इसके बाद लक्षणामूलक काव्य का नंबर है, और तब अभिधामूलक काव्य का स्थान।

रसात्मक काव्य वह है, जिसमें रस का परिपाक पूर्ण रीति से हुआ हो। रसों की सख्या नव है। रसों में सबसे अधिक वर्णन शृंगाररस का पाया जाता है। संसार के साहित्य में शृंगारमयी कविता का प्राधान्य है। शृगाररस का स्थायी भाव प्रेम है। प्रेम विधेयात्मक, सहानुभूतिमय और सत्य है। यह सबसे अधिक व्यापक, स्थायी और उपयोगी है। इसमें स्वार्थ का अभाव, संपूर्ण आत्मत्याग और तन्मयता की पराकाष्ठा है। इन्हीं कारणों से शृगाररस को रसों का राजा माना गया है। शृगाररस के अंतर्गत प्रेमभक्ति की कविता आ जाती है। इस प्रकार की कविता का संबंध वैष्णवधर्म से बहुत अधिक है। प्रेम और भक्ति के नायक श्रीकृष्णचंद्र हैं। वह परमात्मा हैं, पर प्रेम-भक्ति में इनका पद दूल्हा का है। प्रत्येक आत्मा इनकी दुलहिन है। भक्तों

के मत से दूल्हा-दुलहिन का यह संबंध सदा के लिए है। गोपियाँ और विशेषकर राधा और कृष्ण का प्रेम इसी प्रकार का है। श्रीकृष्णचंद्र में सौंदर्य, प्रेम, ज्ञान, दया और सेवा का अच्छा विकास हुआ था। उनके सौंदर्य और प्रेम के दर्शन वृंदावन में, ज्ञान के मथुरा और कुरुक्षेत्र में तथा सेवा और दया के द्वारका में होते हैं। यही श्रीकृष्ण शृंगाररस के देवता हैं। प्रेमी और कृष्णभक्त लोगों का मत है कि वृंदावन के कृष्ण में ही मधुरता का सबसे अधिक समावेश है। शृंगाररस की कविता में श्रीकृष्णचंद्र के नायक और श्रीराधिकाजी के नायिका होने का यही रहस्य है।

ऊपर जिस प्रकार की शृंगाररस की कविता का उल्लेख हुआ है, वैसी कविता ब्रजभाषा में निबद्ध काव्यग्रंथों में, प्रचुर परिमाण में, पाई जाती है। इसमें तन्मयता और कला-नैपुण्य का पर्याप्त प्रदर्शन है। कुछ कवि प्रेमभक्ति के यथार्थ महत्त्व को न समझ सकने के कारण उसके महान् अभिप्राय को प्रकट करने में असमर्थ रहे हैं। इतना नहीं, नीचे दर्जे के विषय-प्रेम की छाप देकर उन्होंने बहुत-सी शृंगार-कविता का सुंदर रूप छिपा दिया है, पर फिर भी उन कवियों की निंदा इस कारण होनी चाहिए कि उन्होंने शृंगाररस के उस सुंदर रूप को क्यों नहीं दिखलाया, न कि इस कारण कि जो रूप उन्होंने दिखाया है, वह उन्हें दिखलाना ही न चाहिए था। विषय-रस में शराबोर कविता में भी रमणीयता है, इसलिए चाहे वह उपयोगिनी न हो, और चाहे उसके द्वारा समाज में किसी प्रकार की कुरुचि के भावों को आश्रय मिला हो, परंतु वह कविता अवश्य है। कविता-क्षेत्र से उसका बहिष्कार नहीं किया जा सकता। इन्हीं कवियों ने यदि प्रेमभक्ति का दिव्य चित्र भी खींचा होता, तो क्या बात थी! वे ऐसा न कर सके, इसका खेद है, पर उन्होंने जो कुछ किया, उसके लिए उनको शाप देने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने प्रतिकूल समय में कविता के दीपक को बुझने से तो बचाया। क्या हुआ, जो बुरे तेल के कारण दीपक से कुछ मलिन धुआँ भी निकला। यदि विषय-प्रेम पर कविता लिखनेवाले कवियों का भी अभाव हो गया होता, तो संसार से काव्यालोक का सदा के लिए विच्छेद हो गया होता। समाज की पतितावस्था में भी उसमें आनंदानुभव की थोड़ी सी शक्ति रह गई थी। इस शक्ति की रक्षा का श्रेय प्रेम-कविता को ही है। इसी प्रेम-कविता ने समय पाकर नारी-समाज के प्रति पुरुष-समाज के भावों पर बड़ा प्रभाव डाला। कहने का तात्पर्य यह कि समय के देखते विषय-प्रेमवाली कविता ने कम से कम कविताजन्य आनंद के भाव को संपूर्ण नष्ट होने से बचा लिया।

शृंगाररस के अंतर्गत जिस वैवाहिक प्रेम का वर्णन है, उस विवाह के संबंध में एक अँगरेज लेखक के कुछ विचार यहाँ दिए जाते हैं—

* 'नर-नारी जिस शक्ति के वश आनंदमय विवाह-बंधन में आबद्ध होते हैं, वही उन मधुर प्रभावों की सत्ता और उद्गम का कारण है, जिनसे पवित्र से पवित्र, उच्च से उच्च और निःस्वार्थ से निःस्वार्थ भावनाओं तथा कर्मों को बल और स्थिति प्राप्त होती है। इन मधुर प्रभावों द्वारा संपूर्णतया आदर्श प्रकृतियों में सुधार तथा उच्चता संपादित होती है। जिस मनुष्यता का वास्ता प्रत्येक उच्च और पवित्र प्रेरणा से है, वह मनुष्यता इन्हीं मधुर प्रभावों की दृढ़ से दृढ गाँठों द्वारा जकडी रहती है।

सृजन संबंधिनी प्रेरणाओं से जाग्रत् होकर ही मैदान अपनी सब्जी दिखलाते हैं, फूल अपने सौंदर्य और सुगंध को प्रकट करते हैं, पक्षीगण अपने चमकीले से चमकीले पर धारण करते हैं तथा मधुर से मधुर गीत गाते हैं। झिल्ली की झंकार, कोयल की कूक अपने जोडे के आह्वान के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मैदान और वनों की निःस्तब्धता को भंग करनेवाले जो ये नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव सुन पडते हैं, ये सब प्रेम के ही असंख्य गीत हैं। मनुष्य की वर्णप्रियता, उसका कला और संगीत के सौंदर्य और मधुरता पर प्रेम, कविता में लालित्य के प्रति अनुराग, उसी प्रकार नयनाभिराम चित्रों का भला लगना, यह सब ईश्वरदत्त उस विश्वप्रेम के कारण है। इसके कारण केवल सुंदरता के प्रति प्रीति ही नहीं उत्पन्न होती, वरन् समग्र सुंदर और आनंददायी वस्तुओं का ज्ञान और स्वीकार भी इसी से होता है।

---

* दि प्योरेस्ट, नोब्लेस्ट एँड मोस्ट अनसेलिफश ऐस्पिरेशंस एँड पर्पजेज डिराइव देयर स्ट्रेंग्थ एँड बीइंग फ्राम दि स्वीट इन्फ्लूएंसेज ह्विच हैव देयर बिगिनिंग एँड कांटिन्यूएंस इन दिस पावर ह्विच ड्राज मेन एँड वीमेन टुगेदर इन हैप्पी एँड होली वेडलाक। बाइ दिस स्वीट इंफ्लूएंस दि मोस्ट पर्फेक्ट नेचर्स आर मोल्डेड एँड एन्नोबुल्ड। बाइ देम आर फार्म्ड दि स्ट्रांगेस्ट टाइज दैट होल्ड ह्यूमैनिटी टु दि एकांप्लिशमेंट आव् एव्री हाइ एँड होली एंडेवर।

इट इज अंडर दि अवेकनिंग आव् रीप्रोडक्टिव लाइफ दैट दि फील्ड्स पुट आन देयर वर्ड्योर, दि फ्लावर्स अन्फोल्ड देयर ब्यूटी एँड फ्रैग्रेंस, दि बर्ड्स पुट आन देयर ब्राइटेस्ट प्लूमेज एँड सिंग देयर स्वीटेस्ट सांग ह्वाइल दि चर्प आव् दि क्रिकेट, दि नोट आव् दि कैटीडिड, इज बट दि काल टु इट्स

विवाह के बाद पुरुष की जीवनयात्रा केवल अपने लिए नहीं है, वरन् अपनी स्त्री और बच्चों के लिए अथवा व्यापक अर्थ में यों कहिए कि जातिहित की दृष्टि से अपने उत्तराधिकारियों के लिए है। अपनी आत्मीयता को वह दूसरों को इस प्रकार से सौंपता है कि मर जाने पर भी वह जीवित ही रहता है। उसके प्रत्येक काम में उसकी पत्नी तथा बच्चों का हित लिपटा रहता है। स्वार्थपरता पर प्रेम की विजय होती है। पति को अहंभाव के ऊपर उठना पडता है। उसकी सत्ता का प्रयोजन अब से दूसरों की वर्तमान भलाई और भविष्य आनद में ही है।

बडा ही गभीर उत्तरदायित्व है, परंतु इस पार्थिव संसार में मनुष्यों को ईश्वर द्वारा प्राप्त जितनी उच्च और आनददायिनी अवस्थाएँ हैं, उन सबमें जिसके द्वारा दो अनुरक्त आत्माएँ एक हो जाती हैं, वह वैवाहिक अवस्था ही सबसे बढकर है। हमारी सत्ता की सपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति विवाह द्वारा ही होती है। यदि समझ-बूझकर और विश्वासपूर्वक विवाहबंधन से लाभ उठाया जाय, तो इस ससार में मरणशील मनुष्यों को अधिक से अधिक जितना आनद मिल सकता है, वह इसी से प्राप्त हो सकता है। पति-पत्नी, माता-पिता,

---

डे आव् वन्स बर्थ इज श्योर्ली वेरी इंपार्टेंट इवेंट बट दि डे आव् हिज मैरेज, ऐंड दि डे आव् हिज डेथ सील हिज डेस्टिनी ऐज नो अदर ईवेंट्स कुड पासिब्ली डू। मैरेज नाट ओनूली इन्वाल्व्स दि हैपीनेस आव् दोज हू एंटर अपान दिस सेक्रेड कंट्रैक्ट बट, ऐट लीस्ट टु सम एक्स्टेंट इट अफेक्ट्स दि हैपीनेस ऐंड कंफर्ट आव् ए लार्ज सर्किल आव् रिलेटिव्ज ऐंड इन्वाल्व्स दि हैपीनेस ऐंड डेस्टिनी, आव् ए जनरेशन येट अन्बार्न।

ही इज नो लांगर टु लिव फार हिमसेल्फ, बट फार हिज वाइफ ऐंड चिल्ड्रेन ऐंड इन ए लार्जर सेंस फार हिज डिसेंडेंट्स फार दि गुड आव् दि रेस। ही इज टु कांटिन्यू बाइ ट्रांसमिटिंग हिम्सेल्फ, देट लाइफ मे रिमेन व्हेन ही इज गान। व्हाट ही डज इन्वाल्व्ज दि इंटरेस्ट आव् हिज वाइफ ऐंड आव् दोज हू आर टु कम आफ्टर हिम। लव इज टु कांकर सेल्फिशनेस। ही इज टु राइज एबव हिम्सेल्फ ऐंड दि प्रेजेंट गुड ऐंड फ्यूचर हैपीनेस आव् अदर्स आर टु कांस्टीट्यूट हिज वेल बीइंग।

बच्चे, गृह और देश, यही सब तो उस दशा के केंद्र हैं, जो जीवन को अनुरागमय बनाते हैं'।

कविता का प्रयोजन

कविता कई प्रयोजनों से की जाती है। एक प्रयोजन आनंद भी माना गया है। यह आनद लोकोत्तर होता है। कविता को छोड़ अन्यत्र इस आनद की प्राप्ति नहीं होती। यों तो भूत-मात्र की उत्पत्ति आनंद से है, जीवन की स्थिति भी आनंद से ही है तथा उसकी प्रगति और निलय भी आनंद में ही है, फिर भी कविता का आनद निराला है। आत्मा के आनद का प्रकाश कला द्वारा ही होता है।

बाह्य रूप से तो कला द्वारा मनुष्य और प्रकृति-संसार का अनुकरण किया जाता है। जो कुछ मनुष्य और प्रकृति में पाया जाता है, उसी का प्रतिबिंब कला में दिखलाया जाता है, परंतु कला का आतरिक भाव कुछ और ही है। कला की आत्मा प्रेम, शाति, सौदर्य और आनंद से बनी है। आनद की कोई सीमा नहीं। वह कभी नाश नहीं हो सकता। कवितानंद को क्षणिक समझना भूल है। एक बार जब हम पूरे तौर से सच्चे सौंदर्य और आनद का आस्वादन कर लेते हैं, तो वह हमारे हृदयाकाश में सदा के लिए एक उज्ज्वल तारे के समान झलका करता है।

कविता का आनंद निरुपयोगी नहीं है। वह लाभदायक है। भला जिस आनद की बदौलत कल्पनाशक्ति का विस्तार होता है, मनोभावनाएँ पवित्र बन जाती हैं तथा विवेक में स्फूर्ति का संचार होता है, उसे निरुपयोगी कैसे कहा जा सकता है?

दि रेस्पांसिबिलिटीज आर ग्रेव बट दि स्टेट आव् टू कंजीनियल सोल्स मेड वन् इन हैपी मैरेज इज दि ग्राडेस्ट ऐंड मोस्ट ब्लेसेड अर्थली कंडीशन कन्फर्ड अपान मैन बाइ गाड हिम्सेल्फ। इट मीट्स दि रिक्वायरमेंट्स आव् आवर बीइंग, ऐंड, ह्वेन प्रापर्ली अंडरस्टुड ऐंड फेथफुली कन्फर्म्ड टू, ब्रिंग्स दि लार्जेस्ट हैपीनेस दैट मार्टल्स आर केपेबुल आव् अपान अर्थ। हस्बैंड ऐंड वाइफ, पेरेंट्स ऐंड चाइल्ड, होम ऐंड कंट्री, फ्राम दि सेंटर आव् आल दैट मेक्स लाइफ डियर।

—सिल्वेनस स्टाल्स कृत ह्वाट ए यंग मैन आट टु नो तथा ह्वाट ए यंग हस्बैंड आट टु नो, पृष्ठ क्रमशः १७६ और २५-२६।

कविता में सौदर्य की उपासना है। सौदर्य से आनंद की प्राप्ति है। कविता के लिए रमणीयता परमावश्यक है। आनद के अभाव में रमणीयता का प्रादुर्भाव बहुत कठिन है। सो कविता के सभी प्रयोजनों में आनद का ही बोलबाला है।

अँगरेजी-साहित्य-संसार के दिग्गज विद्वानों ने कविता के मुख्य उद्देश्यों में आनद का स्पष्ट उल्लेख किया है। सस्कृत के आचार्यों का मत भी यही है। हिंदीकाव्य के प्रतिष्ठित कवि-कोविदों ने भी इसी मत का समर्थन किया है। इस पुस्तक में इतना स्थान नहीं कि सभी विद्वानों की इस विषय से सबंध रखनेवाली समतियों पर विचार किया जाय, इसलिए दो-चार संमतियाँ उद्धृत करके ही हम सतोष करते हैं।

पहले एक हिंदीकविता के आचार्य की ही समति लीजिए। सुकवि बिहारीलाल के भाजे आचार्यवर कुलपति मिश्र की राय है कि कविता लोकोत्तर आनद को आश्रय देनेवाली है। उन्होंने कविता के प्रयोजनों का उल्लेख करते हुए 'आनद' की भी उनके अंतर्गत गणना की है।

कुलपति मिश्र की संमति के बाद हम क्रम से मम्मटाचार्य, कविवर रवींद्र-नाथ टैगोर एवम् वर्ड्सवर्थ तथा कोलरिज की संमतियाँ भी उद्धृत करते हैं—

*'कवि की वाणी जिस सृष्टि का सृजन करती है, उसमें भाग्य के नियमों का बंधन नहीं होता है। इस भारती का सपूर्ण सारभूत पदार्थ एकमात्र आनद है। यह परतत्र नहीं है। नवरसमयी होने के कारण यह परम रुचिरा है'।

† 'लोकोत्तर वर्णन में निपुण कवि का कर्म काव्य है। कविता समझते ही रसास्वादन समुद्भूत जो आनद तत्काल ही उत्पन्न होता है, यही कविता-संबंधी सब प्रयोजनों में सर्वश्रेष्ठ है'।

---

* जग ते अदभुत सुखसदन सब्द रु अर्थ कबित्त।
यह लच्छन मैंने कियो समुझि ग्रंथ बहु चित्त॥
जस संपति आनंद अति दुरितन डारै खोय।
होत कबित में चतुरई जगत रामबस होय॥
—रसरहस्य

† नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतंत्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारतीकवे (जयति)॥
... ...सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनंतरमेव रसास्वादनसमुद्भूतं विगलितवेद्यांतरमानद......यत्काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म......
—मम्मट

* 'जिस आनद की मूर्ति नहीं बनी है, उसका अवश्य ही सृजन होना चाहिए। वह स्वरूप आकृति में परिणत किया जाना चाहिए। गायक के आनद का दर्शन हमें गीतरूप में होता है और कवि के आनद का कविता-रूप में। सृजन का कार्य करते हुए मनुष्य नाना प्रकार की आकृतियाँ निर्माण किया करता है। इन सबका प्रादुर्भाव निस्सीम आनद से होता है।

कोई वस्तु पूर्णतया हमारी हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि वह हमारे आनद की वस्तु हो'।

† 'विज्ञानवेत्ता लोग अपने अनुभव लिखते हैं और कवि भी लिखता है, परंतु कवि को एक बात का सदा ध्यान रखना पडता है। एक मनुष्य के लेख से जो आशा की जा सकती है, वही उससे की जाती है। उसके लिए यह आवश्यक है कि अपनी रचना से पाठक को तत्काल आनंद प्राप्त करा दे।

कविता का उद्देश्य यह है कि विस्मय और आनदातिशय का प्रादुर्भाव साथ-ही-साथ हो।

विज्ञान के विपरीत जो रचना-कौशल है, वही कविता है, उसका उद्देश्य या ध्येय बुद्धि-सबधी आनद है'।

---

* दि ज्वाय, ह्विच इज विदाउट फार्म, मस्ट क्रिएट, मस्ट ट्रांस्लेट इट्-सेल्फ इन्टु फार्म्स। दि ज्वाय आव् दि सिंगर इज एक्सप्रेस्ड इन दि फार्म आव् ए सांग दैट आव् दि पोएट इन दि फार्म आव् ए पोएम। मैन इन हिज रोल आव् ए क्रिएटर इज एवर क्रिएटिंग फार्म्स, ऍड दे कम आउट आव् हिज एबाउंडिंग ज्वाय।

ए थिंग इज कंप्लीटली आवर ओन ह्वेन इट इज ए थिंग आव् ज्वाय टु अस।

—रवींद्रनाथ

† दि पोएट राइट्स अंडर वन रेस्ट्रिक्शन ओन्ली, नेम्ली, दि नेसेसिटी आव् गिविंग इमीडिएट प्लेजर टु ए ह्यूमन बीइंग पजेस्ड आव् दैट इन्फार्मेशन ह्विच मे बी एक्सपेक्टेड फ्राम हिम, नाट ऐज ए लाइयर, ए फिज़ीशियन, ए मैरिनर, ऐन ऐस्ट्रोनामर, आर ए नैचुरल फिलासफर, बट ऐज ए मैन।

*'कविता-विशेष के जो भिन्न-भिन्न अग हैं, उनमें प्रत्येक से अधिकाधिक आनद प्राप्त हो सके, और वह सपूर्ण कविता से समुद्भूत पराकाष्ठा को पहुँचे हुए आनद से सामंजस्य भी रख सके, तो जिस कविता में ऐसा आनंद पाया जाय, उसे पूर्णता-प्राप्त कविता मानना होगा'।

राधा-कृष्ण का प्रेम

व्रजभाषा की शृंगाररस की कविता में अधिकतर राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का वर्णन है। उसी बात को बार-बार आगे होनेवाले कवि दोहराते गए हैं। उनके वर्णन के विषय इने-गिने हैं। उनकी कविता की क्रीडास्थली नितात संकुचित है। बात यह है कि कविता में घटना-विशेष का ही वर्णन किया जाता है, इस घटना का संबंध मनुष्यजाति से होना चाहिए। इतना ही पर्याप्त नहीं है। कोई घटना कविता में निभ सकेगी, इसके लिए उसमें उत्तमता की मात्रा इतनी अधिक होनी चाहिए कि वह रमणीयता उत्पन्न कराने में सहायक हो। सभी घटनाएँ कविता के उपयुक्त नहीं हो सकतीं। कृष्णचद्र वृंदावन से मथुरा चले गए हैं। उनके विरह में वृंदावन की गोपियाँ विकल हो रही हैं। कृष्णचद्र के भेजे उद्धवजी वृंदावन में आकर गोपियों को योग-धारणा का उपदेश देते हैं। गोपी-उद्धव-सवाद की अमर घटना घटती है। क्या इस ससार में विरह-विधुरा नारी को और किसी ने उपदेश नहीं दिया है? एक ने नहीं, लाखों ने ऐसा किया है, पर गोपी-उद्धव सवाद की बात ही निराली है। इस प्रकार की और अन्य घटनाएँ इस घटना का सामना नहीं कर सकतीं। गोपी-उद्धव-सवाद कभी पुराना नहीं हो सकता। अन्य ऐसी घटनाएँ उसके स्थायित्व को पा नहीं सकतीं। कहने का तात्पर्य यह कि कविता को सुसज्जित करनेवाली विशिष्ट घटनाएँ ससार में

दि एड आव् पोएट्री इज टु प्रोड्यूस एक्साइटमेंट इन को-एक्जिस्टेंस विद् ऐन ओवर-बैलेंस आव् प्लेजर।

—वर्ड्सवर्थ

* ए पोएम इज ए स्पीशीज आव् कांपोजीशन अपोज्ड टु सायंस ऐज हैविंग इंटलेक्चुअल प्लेजर फार इट्स आब्जेक्ट आर एंड ऐंड इट्स पर्फेक्शन इज टु कम्यूनिकेट दि ग्रेटेस्ट इमीडिएट प्लेजर फ्राम दि पार्ट्स, कंपैटेबुल विद् दि लार्जेस्ट सम आव् प्लेजर आन दि होल।

—कोलरिज

थोड़ी ही मिलती हैं। यदि ध्यान देकर देखा जाय, तो मालूम पड़ेगा कि ब्रजभाषा के कवियों ने जिन विशेष घटनाओं को बार-बार दोहराया है, उनमें रमणीयता उत्पन्न करानेवाली सामग्री अत्यधिक भरी हुई है। ऐसी घटनाएँ कभी पुरानी नहीं हो सकती हैं। उनका संबंध किसी समय-विशेष से नहीं है। वे सभी समय में जीती-जागती नेत्रों के सामने नृत्य करती हुई मौजूद हैं। माना कि ऐसी घटनाएँ थोड़ी हैं, पर कविता के लिए तो भरपूर उपयुक्त हैं। ब्रजभाषा-कविता में थोड़े विषयों पर बार-बार उन्हीं का वर्णन पाए जाने का यही रहस्य है। राधा-कृष्ण की लीलाओं के ही अधिक वर्णन पाए जाने का एक कारण तो प्रेम-भक्ति की रमणीयता है, तथा दूसरा यह कि वृंदावन के कृष्ण का जीवन गोप-जीवन की मनोरम झलक भी दिखलाता है। विद्वानों का मत है कि यह जीवन नितांत सरल, निर्दोष और कुटिलताशून्य है। ऐसे जीवन का वर्णन कविता के लिए उत्कृष्ट विषय है। बस, ब्रजभाषा-काव्य में इसीलिए राधा-कृष्ण के बार-बार दर्शन मिलते हैं।

भाषा

कविता की भाषा में लचकीलापन, सामंजस्यपूर्ण भाषाप्रवाह एवम् अलंकार-प्रस्फुटन की पात्रता होनी चाहिए। झटपट मतलब की बात तक पाठक को पहुँचा देना, वह भी सुंदरता के साथ तथा थोड़े शब्दों में, यह भी भाषा का एक विशेष गुण है। पर सबसे बड़ा गुण तो यह है कि भाषा ऐसी संपूर्ण होनी चाहिए कि कवि के भावों को पूरे प्रकार से प्रकट करने में समर्थ हो सके। कविता की भाषा में हृदय को द्रवीभूत करने की योग्यता भी होनी चाहिए। उसमें प्रसाद, ओज और माधुर्य के दर्शन होने चाहिए, तथा सरलता और सुष्ठु योजना का पूरा चमत्कार रहना चाहिए। शब्दों की तोड़-मरोड़ किसी हद तक क्षम्य है, पर उसकी अधिकता न होनी चाहिए। कविता के उपयुक्त जैसी भाषा का ऊपर उल्लेख किया गया है, ब्रजभाषा उसी कोटि की भाषा है।

स्फुट रचना

ब्रजभाषा-कविता का एक बहुत बड़ा अंश फुटकर कवितामय है। फुटकर कविता से यह अभिप्राय है कि प्रत्येक छंद अपने में ही किसी भाव-विशेष को अभिव्यक्त करता है। ऊपर-नीचे के अन्य छंदों के सिलसिले के साथ भाव प्रकट करने की आवश्यकता फुटकर कविता के लिए नहीं है। संस्कृत-साहित्य

मेँ ऐसे फुटकर छंदोँ को मुक्तक कहते हैँ। आर्यासप्तशती मेँ मुक्तकोँ का अच्छा संग्रह है। हिंदी-साहित्य मेँ कविवर बिहारीलाल की सतसई भी ऐसा ही ग्रंथ है। व्रजभाषा के कवियोँ ने अपने मुक्तकोँ को प्रकाशित करने का एक और ढंग खोज रखा है। वह यह है। काव्यशास्त्र मेँ अलंकार अथवा नायिकाभेद के विविध रूपोँ के सूचक लक्षण हैँ। व्रजभाषा के कवि लोग इन लक्षणोँ को सामने रखकर उन्हीँ के अनुरूप अपने मुक्तक उदाहरण मेँ दे दिया करते थे। इससे काव्यशास्त्र के लक्षणलक्ष्य-ग्रंथोँ का भी निर्माण हो जाता था, और उसी मेँ मुक्तक भी अच्छे ढग से सगृहीत हो जाते थे। इस प्रकार अलकार और नायिकाभेद से सबध रखनेवाले ग्रंथ व्रजभाषा-काव्य मेँ बहुत अधिक बन गए। इस रीति से जिन मुक्तकोँ का निर्माण हुआ है, उनमेँ कलानैपुण्य और सूक्ष्मदर्शिता का अच्छा परिचय है। फिर भी लक्षणोँ से बँधे रहने के कारण कहीँ-कहीँ उदाहरणोँ मेँ कविप्रतिभा के पूर्ण प्रकाश मेँ रुकावट भी पडी है। ऐसे ग्रंथोँ मेँ लक्षण तो अधिकतर दोहा-छंद मेँ दिए गए हैँ, और उदाहरण कबित्त, सवैया, दोहा एवम् छप्पय-छदोँ मेँ। अन्य छदोँ का भी प्रयोग हुआ है, परंतु बहुत कम।

सदृश भाव

कवियोँ मेँ परपरा से यह चाल पाई जाती है कि परवर्ती कवि अपने पूर्ववर्ती के भावोँ से लाभ उठा लिया करता है। जो लोग भाव को सुदरता और कुशलता के साथ अपनाते हैँ, उनकी, भाव पुराना होने पर भी, निदा नहीँ होती, पर जो लोग पूर्ववर्ती के भाव को लेकर उसे भद्दे ढग से प्रकट करते हैँ, और इस प्रकार उसकी रमणीयता नष्ट कर देते हैँ, उनकी निदा होती है। साहित्यससार मेँ उनकी ख्याति चोर के नाम से होती है। यदि किसी मेँ भाव अपनाने की योग्यता हो, तो वह अपने पूर्ववर्ती के भाव को अपनाकर भी यशस्वी होता है। एक विद्वान् समालोचक की राय है कि अपने से पहले हो चुकनेवाले कवियोँ के भावोँ से कुछ भी वास्ता न रखने की प्रतिज्ञा करके जो कवि लिखने बैठेगा, उसकी रचना मेँ कविता का नहीँ वरन् विचित्रता का प्राधान्य पाया जायगा। ससार का कोई भी कवि सपूर्ण मौलिकता का अभिमान नहीँ कर सकता है।

भी एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। 'हिंदीनवरत्न' में पूज्यपाद मिश्रबंधुओं ने इनकी कविता की आलोचना की है, फिर भी हिंदीससार में बहुत से लोग अभी मतिराम के महत्त्व को भली भाँति समझ नहीं सके हैं। हमारी राय में अभी इस बात की आवश्यकता है कि हिंदीसाहित्य-संसार से उनका भली भाँति परिचय कराने को कोई बड़ा आलोचनात्मक ग्रंथ लिखा जाय। साहित्य-ससार के किसी योग्य विद्वान् को यह काम अपने हाथ में लेना चाहिए। तब तक हम ही मतिराम पर यह क्षुद्र आलोचना लिखकर पाठकों की भेंट कर रहे हैं।

शृंगाररस

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव तथा व्यभिचारी भावों की सहायता से स्थायी भाव के रूप में जो प्रबलतर आनंदोद्भूति होती है, उसी को रस कहते हैं। आनदोद्भूति को साहित्यशास्त्र में 'स्वाद' के नाम से पुकारते हैं। अपने स्पष्ट ज्ञान के द्वारा जो स्थायी भाव को परिपुष्ट करता है, उसे विभाव कहते हैं। विभाव के दो भेद माने गए हैं। जिस पर रस प्रधानतया अवलंबित है, उसे आलबन विभाव और जिससे रस की उद्दीप्ति होती है, उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। कर्मेंद्रियों के सहारे जब भीतरी भाव बाह्य रूप से प्रकट होते हैं, तब उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभावों से ही मिलते-जुलते सात्त्विक भाव हैं। पराई दुःख-हर्षादि भावनाओं में अपने अंतःकरण की अत्यंत अनुकूलता को 'सत्त्व' कहते हैं। इस अनुकूलता के वश खेद, हर्ष, रोमाच और अश्रु आदि का प्रादुर्भाव होता है। यही सात्त्विक भावों का रूप है। कायिक विकार, अनुभाव और सात्त्विक, दोनो में ही समान हैं। जिन अनेक भावों का किसी रसविशेष से संबंध नहीं है, तथा जो स्थायी भाव रूप-सागर में तरंगों के समान उठते और नष्ट होते रहते हैं, उन्हें व्यभिचारी भाव कहते हैं।

भाव की व्युत्पत्ति 'भावन' या 'वासन' से है। इसका अर्थ सुगंधि है। सुख-दुःखादि भावों की सुगंधि से जो परिपूर्ण हो, वही भाव है। विरुद्ध-अविरुद्ध, सभी प्रकार के भाव जिस भावविशेष पर कोई प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पाते हैं, उस भावविशेष को स्थायी भाव कहते हैं। जैसे लवण-समुद्र में गिरकर सभी वस्तुओं का स्वाद लवण हो जाता है—स्वयम् लवण-समुद्र के स्वाद में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है, उसी प्रकार से अनेक प्रकार

के भाव स्थायी भाव को किसी प्रकार से विकारग्रस्त नहीं कर पाते हैं। उसमें अस्थायित्व नहीं आता है। वह ज्यों का त्यों स्थायी बना रहता है।

सात्त्विक भाव आठ हैं। स्थायी भाव भी आठ हैं। व्यभिचारी भाव तेंतीस हैं। इस प्रकार भावों की संख्या ४६ है।

आठ सात्त्विक भावों के नाम ये हैं—

स्तभ, प्रलय, रोमाच, स्वेद, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु और स्वरभंग। लज्जा, हर्ष आदि के कारण शरीर की सचलनक्रिया का बद हो जाना स्तंभ है। प्रलय में ज्ञानक्रिया की भी निराकृति हो जाती है। वेपथु कंप को कहते हैं। वर्ण का अपना पूर्वरूप छोड देना वैवर्ण्य है।

आठ स्थायी भावों के नाम ये हैं—

रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय। कुछ आचार्य 'शम' नामक नवें स्थायी भाव को भी मानते हैं। प्रेमरस से चित्त का आर्द्र होना 'रति' है। उपर्युक्त स्थायी भावों द्वारा जब आनदोद्भूति होती है, तब क्रम से निम्नलिखित रस उपलब्ध होते हैं, अर्थात्—

शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्‌भुत। शम स्थायी से 'शातरस' माना गया है।

तेंतीस व्यभिचारी भाव निम्नलिखित हैं—

निर्वेद, ग्लानि, शंका, श्रम, धृति, जडता, हर्ष, दैन्य, उग्रता, चिंता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विबोध, व्रीड़ा, अपस्मार, मोह, सुमति, अलसता, आवेग, तर्क, अवहित्थ, व्याधि, उन्माद, विषाद, उत्सुकता और चपलता।

सासारिक आनंदों से उदासीनता निर्वेद है। प्रबल विरोध अमर्ष है। ज्ञान-शक्तियों की जाग्रति विबोध है। मानसिक विकार के छिपाने की चेष्टा अवहित्थ है।

करुणरस में—निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद और चिंता, ये ११ संचारी भाव पाए जाते हैं।

रौद्ररस में—उग्रता, आवेग, रोमाच, स्वेद, वेपथु, मद, मोह और अमर्ष नामक ८ व्यभिचारी पाए जाते हैं।

वीररस में—धृति, सुमति, गर्व, स्मृति, तर्क और रोमाच व्यभिचारी हैं।

भयानकरस में—जुगुप्सा, आवेग, मोह, त्रास, ग्लानि, दैन्य, शंका, अपस्मार, उन्माद और मरण नामक १० व्यभिचारी होते हैं।

बीभत्सरस में—मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि और मरण नामक व्यभिचारी होते हैं।

अद्भुतरस में—तर्क, आवेग, उन्माद, हर्ष व्यभिचारी हैं।

हास्यरस में—निद्रा, आलस्य और अवहित्थ, ये तीन व्यभिचारी भाव माने गए हैं।

शृंगाररस में—उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा नामक चार व्यभिचारी भावों को छोडकर शेष २६ पाए जाते हैं। जो आचार्य शातरस को मानते हैं, वे उसमें निर्वेद, हर्ष, स्मरण और मति को सचारी समझते हैं।

करुण, बीभत्स, रौद्र, वीर और भयानक रस शृगार के विरोधी हैं, तथैव हास्यरस शृंगार का मित्र है।

सब रसों के अनुभाव भी अलग-अलग हैं। पर शृंगाररस में 'हाव' और 'सात्त्विक भाव' इन नामों को छोड़कर अनुभावों के कोई अलग-अलग नाम नहीं रखे गए हैं। संस्कृत और हिंदी में काव्यशास्त्र-संबंधी जो ग्रंथ उपलब्ध हैं, उनसे यही प्रमाणित होता है कि अनुभावों का संख्याधिक्य भी शृंगाररस में ही पाया जायगा।

एक उदाहरण द्वारा इस रसोत्पत्ति का क्रम समझाया जाता है। पूर्ण चंद्रमा सोलहों कला से प्रकाशमान है। जातीपुष्प वन में खूब फूला है, कुमुदिनी के फूलों पर भ्रमरगण गुंजार कर रहे हैं। ऐसे समय में श्रीकृष्ण ने बाँसुरी बजाई। गोपियाँ व्याकुल हो उठीं। गोपों की परवा न करके, वे सब उठ-उठकर उसी ओर चल पड़ीं, जिधर से बाँसुरीध्वनि आ रही थी—

पूरन चंद उदोत कियो घन फूलि रही बनजाति सुहाई।
भौंरन की अवली कल कैरव-कुंजन पुंजन मैं मृदु गाई।
बाँसुरीताननि काम के बाननि लै *मतिराम* सबै अकुलाई।
गोपिन गोप कछू न गने अपने अपने घर तैं उठि धाई॥

गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति जो अपूर्व प्रेम है, वही इस कविता का 'स्थायी भाव' है। स्थायी भाव स्वाद देने योग्य हो, वह 'रस' के गौरव को प्राप्त कर सके, इसके लिए विभाव और अनुभावों की आवश्यकता है। यहाँ पर गोपियों के प्रेम का एकमात्र अवलंब किस पर है? उत्तर मिलता है, श्रीकृष्ण पर, अतएव श्रीकृष्ण आलबन विभाव हुए। उधर चद्रमा का पूर्ण प्रकाश, वनजाति और कुमुदिनी का फूलना, उन पर भ्रमरों की गुंजार—रात्रि का समय, ऐसे में बाँसुरी का बजना—ये सब स्थायी भाव के उद्दीपक हैं। इन्हीं को उद्दीपन विभाव कहते हैं। सो श्रीकृष्णरूप में आलबन और प्रकृतिसौदर्य-रूप उद्दीपन विभाव स्थायी भाव को पूर्णरूप से परिपुष्ट कर रहे हैं। इसका प्रभाव यह पड़ा कि गोपियाँ उठकर दौड़ीं। वे अपने को रोक न सकीं। यह अनुभाव है। गोपियों की कृष्ण से मिलने की उत्सुकता और अभीष्ट-साधन के लिए स्वयम् धावित होना आदि अनेक ऐसी बातें हैं, जो उत्सुकता और चपलता आदि सचारी भावों की सूचना दिलाती हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त करता है। रति स्थायी भाव होने के कारण छद में शृंगाररस स्थापित होता है। अन्य रसों में भी इसी प्रकार से विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों की सहायता अपेक्षित होती है।

ऊपर रसों के नाम दिए जा चुके हैं। संस्कृत और हिंदी के अनेक विद्वानों का यह मत रहा है कि सब रसों में शृंगाररस ही सर्वश्रेष्ठ है। इन विद्वानों की संमतियाँ तो हम आवश्यकतानुसार बाद को उद्धृत करेंगे, परतु यहाँ हमें केवल इतना ही विचार करना है कि उक्त विद्वानों के कथन पर अंधविश्वास न करते हुए हम इस बात का निर्णय कैसे करें कि सर्वश्रेष्ठ रस कौन है? संस्कृत और हिंदी-कविता के आचार्यों ने रसोत्पत्ति के संबध में जो मत निर्धारित किया है, उसका अत्यंत स्थूल दिग्दर्शन ऊपर दिया हुआ है। उस दिग्दर्शन का सार हमें तो यही समझ पड़ता है कि रस के लिए व्यभिचारी भाव, आलंबन और उद्दीपन विभाव, अनुभाव तथा स्थायी भाव की परमावश्यकता है। जब रस की उत्पत्ति इन्हीं पर निर्भर है, तो इनकी उत्तमता या खराबी भी रस की उत्तमता और खराबी पर अपना प्रभाव अवश्य ही डालती होगी, अर्थात् जिस रस के भाव, विभाव और अनुभाव उत्तम होते होंगे, वह रस भी उत्तम होता होगा, तथा जिसके खराब होंगे, वह रस भी खराब होगा। ऐसी

दशा में यदि सभी रसों के स्थायी, संचारी, अनुभाव और विभावों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय, तो कदाचित् सब रसों में से एक के सर्वश्रेष्ठ निर्णीत किए जाने में सफलता प्राप्त हो सके।

पहले व्यभिचारी या संचारी भावों को ही लीजिए। इनकी संख्या तैंतीस है। प्रत्येक रस में कौन-कौन संचारी पाए जाते हैं, यह ऊपर बतलाया जा चुका है, इसलिए यहाँ उसके पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं है। संख्या की दृष्टि से रसों में व्यभिचारियों का क्रम यों ठहरता है—

× हास्य में	३
अद्भुत में	४
× बीभत्स में	५
वीर में	६
× रौद्र में	८
× भयानक में	१०
करुण में	११
शृंगार में	२६

शृंगार में जो चार व्यभिचारी नहीं पाए जाते हैं, उनके नाम ये हैं—१ उग्रता, २ मरण, ३ आलस्य और ४ जुगुप्सा।

उग्रता रौद्र में, जुगुप्सा भयानक में, आलस्य हास्य में तथा मरण भयानक और बीभत्स दोनों में ही पाया जाता है।

सो करुण, अद्भुत और वीर में पाए जानेवाले ऐसे कोई व्यभिचारी नहीं हैं, जो शृंगार में न पाए जाते हों। हाँ, शृंगार में २५ व्यभिचारी ऐसे हैं, जो अद्भुत में, २३ ऐसे जो वीर में तथा १८ ऐसे जो करुण में नहीं पाए जाते हैं। सो केवल व्यभिचारियों के विचार से शृंगाररस वीर, करुण और अद्भुत से बड़ा ठहरता है। रौद्र की उग्रता शृंगार में अवश्य ही नहीं है, परंतु उसके और शृंगार के अन्य सात संचारी एक ही हैं। यही क्यों, शृंगार में २२ संचारी और ऐसे हैं, जो रौद्र में नहीं पाए जाते हैं। सो जहाँ एक संचारी में रौद्र शृंगार से बढा है, वहीं शृंगार रौद्र से २२ सचारियों में बढ़ा है। इसी प्रकार जहाँ हास्यरस आलस्य संचारी में शृंगार से बढा है, वहाँ शृंगार अन्य २७ संचारियों में हास्य से बढा है। बीभत्स मरण संचारी अधिक रखता है, पर शृंगार के पास अन्य २५ ऐसे सचारी हैं, जो बीभत्स के पास नहीं हैं।

भयानक में जुगुप्सा और मरण दो संचारी ऐसे हैं, जो शृंगार में नहीं हैं, परतु उधर शृंगार में भी २१ सचारी ऐसे हैं, जो भयानक को अप्राप्त हैं। ऐसी दशा में हास्य, बीभत्स, रौद्र और भयानक से भी संचारियों की दृष्टि से शृंगार श्रेष्ठ है। एक बात और है, शृंगाररस के संचारी विशेषतया मृदुल भाववाले हैं। संचारियों की आपस में तुलना करते समय पाठकों को कदाचित् प्रसिद्ध अँगरेज समालोचक जान हेनरी निउमैन के निम्नलिखित कथन से कुछ सहायता मिले।

*'यह और कहा जा सकता है कि धार्मिक गुण विशेष कवितामय होते हैं—ध्यान और तन्मयता उत्पन्न करनेवाले गुणों की तो बात ही क्या—दीनता, सरलता, दया, सतोष और लज्जा में भी कविता की प्रचुर सामग्री है। इसके विपरीत साधारण और विशेषतया अक्खड़ वृत्तियों में आलंकारिकता तो विशेष दिखलाई जा सकती है, पर कविता का वैसा अवसर नहीं है, जैसे क्रोध, रोष, ईर्ष्या, उद्दंडता, स्वतंत्रता आदि में'।

आठ या नव स्थायी भावों में सबसे अच्छा स्थायी कौन है, इस पर भी पाठकों को विचार करना चाहिए। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय तथा शम नामक स्थायी भावों में सबसे ऊँचा स्थान किसका है, इस विषय में मतभेद होना परम स्वाभाविक है। फिर भी हास, भय तथा जुगुप्सा नामक स्थायियों में किसी एक को प्रथम स्थान देने का आग्रह करते हुए प्राचीन एवम् अर्वाचीन बहुत कम विद्वान् देखे गए हैं। महत्त्वपूर्ण होते हुए भी इनको यह गौरव नहीं प्राप्त है कि स्थायियों में अपनी सर्वश्रेष्ठता प्रमाणित कर सकें। शेष पाँच स्थायियों में महामति धर्मदत्तजी की राय है कि अद्भुत स्थायी ही सर्वश्रेष्ठ है। वे कहते हैं—

रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः॥

रस में सार वस्तु चमत्कार है। विस्मयरूप चित्त का विस्तार चमत्कार है। विस्मय से ही चमत्कार उत्पन्न होता है। इस कारण अद्भुतरस ही

* इट मे बी ऐडेड दैट दि वर्चूज पिक्यूलियर्ली क्रिश्चियन आर इस्पेशली पोएटिकल; मीकनेस, जेंटिलनेस, कंपैशन, कंटेंटमेंट, मौडेस्टी, नाट टु मेन्शन डिवोशनल वर्चूज: ह्वेयरऐज दि रूडर ऐंड मोर आर्डिनरी फीलिंग्स आर दि इंस्ट्रूमेंट्स आव् र्हेटौरिक मोर जस्टली दैन आव् पोएट्री—एंगर, इंडिग्नेशन, एम्यूलेशन, मार्शल स्पिरिट ऐंड लव आव् इंडिपेंडेंस।

सर्वश्रेष्ठ है। धर्मदत्तजी की उपर्युक्त समति का अन्य आचार्यों ने वैसा आदर नहीं किया है। हमारी राय में रस में चमत्कार उत्पन्न कराने के लिए विस्मय परमावश्यक नहीं है। चमत्कार-उत्पादक कारणों में विस्मय भी हो सकता है, पर वही एकमात्र कारण नहीं है। कम-से-कम अद्‌भुतरस का स्थायी भाव विस्मय उस विस्मय से बिलकुल भिन्न है, जो अन्य रसों में चमत्कार का कारण है। रसचमत्कार का कारण विस्मय हो भी, तो वह शृंगारादि रसों में रत्यादि स्थायी भावों के सामने इतना दब जाता है कि उसका पृथक् अस्तित्व ही प्रकट नहीं होता। ऐसी दशा में विस्मय को सर्वश्रेष्ठ स्थायी नहीं कह सकते हैं। सो अद्‌भुतरस को रसों में सर्वोच्च आसन नहीं दिलाया जा सकता है।

कुछ विद्वानों की राय में शांतरस ही सर्वश्रेष्ठ है। मुनींद्रजी का शांतरस-संबंधी निम्नलिखित वर्णन बहुत प्रसिद्ध है—

न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शमः प्रधानः।

पर शांतरस के सर्वश्रेष्ठ माने जाने के प्रबल विरोधी भी कई आचार्य हैं। यहाँ तक कि संस्कृतसाहित्य के अधिकांश आचार्य तो दृश्यकाव्य में शांतरस का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार करते। कुछ-एक तो श्रव्यकाव्य में भी शांत का आदर करने को नहीं तैयार हैं। शम में एक प्रकार से समस्त क्रिया की शून्यता का प्रादुर्भाव होता है। नाटक में इस भाव का अभिनीत होना असंभव नहीं, तो कष्टसाध्य अवश्य है। ऐसी दशा में शांतरस-प्रधान नाटकों की रमणीयता और चमत्कार को भारी धक्का पहुँचता है। दृश्यकाव्य में इस प्रकार से शांतरस का पद कुछ भी नहीं के समान रह जाता है।

उधर मुनींद्र के ऊपर दिए वर्णन से जाना जाता है कि शांत में सुख का भी अभाव माना गया है। पर रस आनंदमय है। उधर इच्छाशून्यता और अहंकार आदि के न होने से शांत में व्यभिचारी भावों की भी बहुत कम संभावना समझ पड़ती है। इसके अतिरिक्त शांतरस का स्थायी 'निर्वेद' है या 'शम', इस विषय में भी आचार्यों में मतभेद है। इस प्रकार जब 'शांत-रस' के रस माने जाने में ही ऐकमत्य नहीं, तब वह रसों में प्रथम आसन ग्रहण कर सकेगा, इसकी कोई संभावना नहीं है। शांत भी रसों में सर्वश्रेष्ठ नहीं ठहरा।

करुणरस का स्थायी भाव शोक है। कहते हैं, एक क्रौंचमिथुन विहार कर रहा था। एक व्याधे ने उसमें से एक को मार डाला। दूसरा शोकमग्न हो गया। वाल्मीकिजी ने इस दृश्य को देखा। सहसा उनके मुँह से एक छंद निकल पड़ा। रामायण की रचना उसी छंद में हुई। कम-से-कम भारतवर्ष में करुणरस को इस प्रकार का ऐतिहासिक महत्त्व दिया जाता है। करुणरस-संबंधी इस ऐतिहासिक महत्त्व को यों ही मान लेने पर भी इससे रस की प्रधानता नहीं सिद्ध होती। करुणरस और विप्रलंभ-शृंगार बहुत मिलते-जुलते हैं। दोनो में ही रुदन, खेद आदि पाए जाते हैं। दोनो में मनोव्यथा की समता है।

पर करुणरस का स्थायी भाव शोक है और विप्रलंभ का रति। इसके अतिरिक्त करुण निराशामय और विप्रलंभ आशापूर्ण है। करुणरस के उपरि-दर्शित ऐतिहासिक महत्त्व के सबंध मे भी इतना निवेदन करना है कि कदाचित् वाल्मीकिजी यदि एकाकी क्रौच का वध देखते, तो उन्हें इतनी करुणा न उत्पन्न होती। सुंदरवन में क्रौच पक्षी के जोड़े का मनोमोहक दृश्य उनके नेत्र-पटल के सामने था। इस आनंदमय भाव का भग होना ऋषिवर को असह्य हो गया, उनको मर्मातक वेदना पहुँची, उसी के आवेश में उनके मुख से अनुष्टुप्-छद का प्रादुर्भाव हुआ। सो इस दृश्य-विशेष से एकमात्र करुणरस की ही महत्ता नहीं प्रतिपादित होती है।

विप्रलंभ-शृंगार और शातरस की उपस्थिति में करुणरस में ऐसी कोई बात नहीं रह जाती, जिससे रसों में उसे सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त हो सके।

वीररस तीन प्रकार का माना गया है, अर्थात् १ युद्धवीर, २ दयावीर और ३ दानवीर। इस रस का स्थायी उत्साह है। जान-बूझकर विना कारण पाशविक बल के प्रदर्शनस्वरूप भी युद्ध हो सकता है तथा दीनों की रक्षा, सत्सिद्धातों के समर्थन एवम् सभ्यता-संवर्द्धन के लिए भी युद्ध हो सकता है। पहले ढंग का युद्ध निंद्य, पर दूसरे ढंग का प्रशसनीय है।

यद्यपि युद्धवीर का स्थायी भाव उत्साह है, फिर भी इस उत्साह का परिणाम विघातक है, सयोजक नहीं। दान और दयावीर का उत्साह युद्धवीर के उत्साह की अपेक्षा मनुष्य में देवप्रकृति का विशेष परिचायक है। परतु समग्र वीररस के अतर्गत केवल तीन ही प्रकार के (युद्ध, दान और दया-संबंधी उत्साह) उत्साह मानने से यह रस एक प्रकार से अपूर्ण-सा रह गया है। कुछ आचार्यों का यह कहना बिलकुल ठीक है कि जब उत्साह से ही

वीररस की उत्पत्ति है, तो धर्मवीर, कर्मवीर, विद्यावीर आदि और नाना प्रकार के वीर भी वीररस के अंतर्गत क्यों न माने जायँ। यहाँ हम यह बात स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि अन्य सभी प्रकार के वीररसों का समावेश युद्ध, दान और दया के अंतर्गत नहीं किया जा सकता है। उत्साह एक बड़ा ही अमूल्य स्थायी भाव है, परंतु उसमें उत्तेजक तथा प्रेरणा करानेवाली प्रवृत्ति ही विशेष है। सग्राहकत्व का सागोपाग भाव उसमें पर्याप्त परिमाण में नहीं है।

उसके आवेश में बडे-बड़े काम हो सकते हैं, परंतु विकासमान सुश्रृंखलित रूप में सृष्टि का संघटनकार्य उसके द्वारा कहाँ तक संभव है, यह कोई भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। ऐसी दशा में वीररस को (जैसा कि वह साहित्यग्रंथों में सुलभ है) उत्साह स्थायी के आश्रित होने से सब रसों में श्रेष्ठता नहीं प्राप्त हो सकती है।

श्रृंगाररस का स्थायी भाव रति या प्रेम है। प्रेम का महत्त्व सर्वमान्य है। इंद्रियपरितृप्ति के लिए विषयवासना के भावों से पूर्ण कामप्रवृत्ति और प्रेम एक ही वस्तु नहीं हैं। प्रेम एक दैवी विभूति है। यह सग्राहक है और संयोजक भी। मनुष्य के हृदय में जो मृदुल-से-मृदुल भाव उठ सकते हैं, प्रेम उन सबसे बढकर है। उच्च-से-उच्च भाव प्रेम के पीछे-पीछे अनुधावन करते हुए पाए जाते हैं। सृष्टि की रक्षा का श्रेय प्रेम को है। धर्म का बधन भी इसी के द्वारा परिपुष्ट है। चाहे उत्साह के विना ससार का काम चल जाय, चाहे यह संभव हो कि संसार का कोई भी प्राणी शोक से संतप्त न हो, परतु प्रेम के विना संसारचक्र एक क्षण को भी नहीं घूम सकता है। प्रणयसूत्र में बँधकर स्त्री-पुरुष की संसारयात्रा सृष्टि की विजय है। स्त्री-पुरुष की प्रीति में उच्छृंखलता हो सकती है। प्रीति बिगड़कर कामवासना-परितृप्ति के रूप में एक पापाचरण हो सकता है, इसलिए समाज में उसका नियत्रण किया गया है। विवाह इस नियंत्रण का फल है। श्रृंगाररस का स्थायी भाव प्रेम इसी वैवाहिक प्रेम का पोषक है। अन्य प्रकार के नरनारी-प्रेम को वह रसाभास कहकर दूषित ठहराता है। साराश, ऊपर दिखलाए सभी स्थायी भावों में प्रेम की महत्ता सर्वमान्य है। एक बार सब स्थायी भावों के सबंध में फिर से विचार कीजिए। क्या हास्य, क्रोध, भय, जुगुप्सा और विस्मय की बराबरी प्रेम से की जा सकती है? कदापि नहीं। प्रेम इन सबसे कहीं बढ़कर है। शोक और प्रेम का भी क्या मुकाबला? आशा-निराशा, संयोग और नाश में जो भेद है, वही प्रेम और शोक में है। शोक में मृदुल करुणा का जहाँ तक समावेश है,

वह सब प्रेम के विरहरूप में मौजूद है। शांति, निर्वेद अथवा प्रेम में कौन श्रेष्ठ है, यह बतलाना भी कठिन नहीं है। एक ओर संसार से विराग है, दूसरी ओर उससे अनुराग है। एक ओर सुख का अभाव है, दूसरी ओर आनंद का अगाध सागर है। एक ओर संपूर्ण क्रियाशून्यता है, दूसरी ओर मृदुल मानुषी जीवन है। कम-से-कम इस मृत्युलोक में तो प्रेम की ही विजय है, और हमारा विचार है कि परलोक में भी मनोकामना पूरी कराने में इससे बड़ा और कोई सहायक नहीं मिल सकता है। उत्साह में उत्तेजना और प्रेरणा की अधिकता है, पर संग्राहकत्व और संयोजना में वह प्रेम के पीछे है। उत्साह के कई रूपांतर प्रेम के आश्रित हैं। सो सब स्थायी भावों में प्रेम की बराबरी करनेवाला और कोई स्थायी भाव नहीं है।

आलंबन विभाव

प्रेम जैसा सर्वश्रेष्ठ स्थायी भाव नायक-नायिका के आलंबन को लेकर परिपाक अवस्था को प्राप्त होता है, अतएव शृंगाररस के आलंबन विभाव नायक-नायिका हैं। आलंबन विभावों में नायक-नायिका के श्रेष्ठ होने का एक कारण तो यही है कि प्रेम जैसा सर्वोच्च स्थायी भाव इन्हीं पर आलंबित है। दूसरी विशेषता यह कि नायक-नायिका का प्रेम पारस्परिक होता है। यदि नायक नायिका पर अनुरक्त होता है, तो नायिका भी नायक पर सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार रहती है। दोनो ओर से समान आकर्षण रहता है। तीसरी विशेषता यह कि नायक-नायिका में परस्पर सहानुभूति-मात्र का भाव नहीं रहता वरन् प्रेम के प्रभाव से नायक-नायिका का द्विधाभाव ही नहीं रह जाता है। इन्हीं आलंबन विभावों में तन्मयता पराकाष्ठा को पहुँच पाती है। अहंभाव के मेटने का सर्वोच्च साधन यहीं पाया जाता है। अन्य स्थायी भावों के आलंबन विभावों में यह बात आवश्यक नहीं है। अष्टावक्र को देखकर हमें तो हँसी छूटती है, पर हमारी हँसी से अष्टावक्र को क्रोध ही होता है। गुरु के बाग में अकालियों के जत्थे को आगे बढ़ते देखकर पुलिस के जवानों में आक्रमण करने का उत्साह उत्पन्न होता है। वे अकालियों को पीटते हैं, पर अकालियों के भाव क्या रहते हैं। इसी प्रकार से अन्य आलंबन विभावों के संबंध में समझना चाहिए। उधर शृंगार के आलंबन विभावों की यह दशा है कि

सपनेहूँ मनभावतो करत नहीं अपराध।
मेरे मन ही में रही सखी मान की साध॥

साराश कि अन्य रसों के आलंबन विभावों की अपेक्षा श्रृंगाररस के आलंबन विभाव विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें कई विशेषताएँ ऐसी हैं, जो औरों में नहीं पाई जातीं।

उद्दीपन विभाव

जिस प्रकार से श्रृंगाररस के आलंबन विभाव महत्त्वपूर्ण हैं, वैसे ही उसके उद्दीपन विभाव भी औरों के उद्दीपन विभाव से कहीं अधिक रमणीय और मनोरजक हैं। ऋतुओं की रमणीयता, वनविहार, सुंदर उपवन, भाँति-भाँति के फूल, विमल चंद्रिका, गीतावाद्य-विनोद, मधुरालाप और निर्जर स्थान आदि का वर्णन श्रृंगाररस के उद्दीपन के अंतर्गत आ जाता है। एक आचार्य की तो यह राय है कि ससार के सभी उत्तम और मेध्य पदार्थ श्रृंगार के उद्दी-पक हैं। यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि श्रृगाररस के उद्दीपकों में प्रकृति की रमणीयता तथा संसार की अन्य सभी मानसोल्लासकारिणी मेध्य सामग्री समिलित है। ऐसी दशा में इसका उद्दीपन सहज ही अन्य रसों के उद्दीपन से हृदय पर विशेष प्रभाव उत्पन्न करनेवाला सिद्ध हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह कि श्रृगाररस का उद्दीपन अन्य रसों के उद्दीपन से कहीं बढकर है।

अनुभाव और सात्त्विक भाव

रसों के अनुभावों का निश्चय नहीं किया गया है, परंतु ध्यान से देखने पर अनुभाव भी श्रृंगाररस में ही परिपुष्ट दिखलाई पड़ते हैं। सात्त्विक भावों का संपूर्ण सामंजस्य तो श्रृंगार के बाँटे ही पड़ा है। हाव नामक कुछ अन्य दशाएँ भी श्रृंगार की ही एकमात्र संपत्ति हैं।

निदान विभाव, अनुभाव, स्थायी भाव और संचारी भाव आदि सभी के विचार से श्रृंगाररस की श्रेष्ठता प्रतिपादित होती है। उपरिकथित इन सभी बातों में श्रृंगार को ही अधिक शक्तिशाली देखकर प्राचीन आचार्यों ने श्रृंगाररस को 'रसराज' का पद प्रदान किया था। संस्कृत और हिंदी के बड़े-बड़े आचार्यों का यही मत रहा है। प्राचीन कवियों में देवजी ने तथा आधुनिक कवियों में सरदारजी ने इस विषय पर कुछ विशेष विवेचना की है। उसका साराश इस प्रकार है—

देवजी का मत

काव्यशास्त्र में वर्णित नौ रसों में शृंगार, वीर और शात मुख्य हैं। शृंगार और हास्य परस्पर मित्र रस हैं। इनका वर्णन साथ-साथ होने से रससौंदर्य में वृद्धि होती है। भयानक और शृंगार परस्पर विरोधी रस हैं। इनका वर्णन एक साथ न होना चाहिए, परंतु यदि आलंबन विभाव भिन्न-भिन्न हों, तो ऐसा वर्णन किया जा सकता है। साहित्यदर्पण के सप्तम परिच्छेद में यह विषय भली भाँति प्रतिपादित हुआ है। भयानक और शृगार का इस दशा में जो वर्णन होगा, वह क्षम्य है। इस प्रकार से शृंगार, हास्य और भयानक इन तीन रसों का वर्णन साथ-साथ हो सकता है। वीररस के साथ करुण और रौद्र-रस के व्यवहार में काव्यशास्त्र किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं करता। इसलिए वीर, रौद्र और करुण-रस का भी वर्णन साथ-साथ हो सकता है। इसी प्रकार शात, अद्भुत और बीभत्स-रस का भी साथ-साथ वर्णन हो सकता है। साराश यह कि मुख्य शृंगाररस के साथ हास्य और भयानक का तथा वीर के साथ रौद्र और करुण का एवम् शात के साथ अद्भुत और बीभत्स का वर्णन हो सकता है। अब देखना यह कि क्या शृंगार के साथ वीर और शात का वर्णन हो सकता है। देवजी की राय है कि विशेष-विशेष अवस्थाओं में ऐसा वर्णन हो सकता है। साहित्यदर्पणकार कविराज विश्वनाथ ने भी इस मत का समर्थन किया है। वीर और शृगार का यदि एक ही आलंबन हो, तो वे अवश्य विरोधी हैं और उनका साथ-साथ वर्णन नहीं हो सकता। परंतु यदि आलंबन दूसरे-दूसरे हों, तो इन दोनो रसों का साथ-साथ वर्णन हो सकता है। एक उदाहरण लीजिए। सीताजी के साथ रामचंद्रजी दंड-कारण्य में बैठे हैं। शूर्पणखा की नाक काट चुके हैं। एकाएक बदला लेने के लिए खरदूषण की सेना उन पर चढ दौड़ी। इस दृश्य को देखकर सीता के रोमाचित कपोलवाले मुखकमल को देखते हुए और बार-बार राक्षसों की सेना के कलकल शब्द को सुनते हुए श्रीरामचद्रजी अपने जटाजूट की ग्रथि को सँभालकर बाँध रहे हैं। यहाँ सीता को आलबन करके वीररस एक ही श्रीराम में समाविष्ट है। परतु यह दोष नहीं, क्योंकि शृगार का आलंबन सीता हैं और वीर का राक्षस लोग। अतएव यह स्पष्ट है कि भिन्न आलबन होने से शृगार और वीर का साथ-साथ वर्णन हो सकता है। देवजी की राय में शृंगार और शात का भी साथ-साथ वर्णन हो सकता है। इस मत का समर्थन भी साहित्यदर्पण से होता है। शृगार और शात का वर्णन यदि

बिलकुल पास-ही-पास हो, ठीक एक के बाद दूसरा वर्णन आ जाता हो, तो वह दूषित है। परंतु यदि यह निरतरता भंग हो गई हो, बीच में किसी और रस का भी निवेश कर दिया गया हो, तो ऐसा वर्णन सदोष नहीं। नागानद-नाटक में जीमूतवाहन शातरस के पात्र हैं। परतु उनका मलयवती में अनुराग वर्णित हुआ है। इस शात और शृंगार-वर्णन के बीच में 'अहो गीतम्, अहो वादित्रम्' आदि अद्भुत रससंस्थापक पदों का प्रयोग हो जाने से ऐसा शृंगार और शात का वर्णन साथ-साथ किया जा सकता है। सो शृंगाररस के साथ शात का भी वर्णन हो सकना प्रमाणित हो गया। जब कि शृंगार के साथ शात और वीर तक का वर्णन अवसर-विशेष पर सभव है, तो यह मानने में कुछ भी आपत्ति नहीं रह जाती कि करुण-रौद्र को अपने आश्रय में रखते हुए भी विशेष अवसर पर वीररस शृंगार के साथ-साथ बैठने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है। तथैव शात भी अद्भुत और बीभत्स को अपना पिछलगू बनाए हुए शृंगार के साथ मजे में विचरण कर सकता है। उधर स्वयम् शृंगार महाराज हास्य और भयानक का अंगीकार कर सकते हैं, यह ऊपर दिखलाया ही जा चुका है। ऐसी दशा में शृंगाररस की छत्रछाया में सभी रस एकत्र दिखलाई पड़ सकते हैं, यह सर्वथा संभव प्रतीत होता है। इस प्रकार जब शृंगाररस में ऐसी सामर्थ्य है, तो उसे सब रसों का राजा या रसराज मानने में आपत्ति ही क्या रह जाती है? स्वयम् देवजी के शब्दों में उनका मत इस प्रकार है—

तीनि मुख्य नौहू रसनि द्वै द्वै प्रथमनि लीन।
प्रथम मुख्य तिनि तिहूँ मे दोऊ तिहि आधीन॥
हास्य 'रु भय सिंगार सँग रुद्र करुन सँग बीर।
अद्भुत अरु बीभत्स सँग बरनत सांत सुधीर॥
ते दोऊ तिन दुहू जुत बीर सांत मे आय।
संग होत शृंगार के ताते सो रसराय॥
निर्मल सुद्ध सिंगार रसु देव अकास अनंत।
उड़ि उड़ि खग ज्यों और रस बिबस न पावत अंत॥
भूलि कहत नव रस सुकबि सकल मूल सिंगार।
जो संपति दंपतिनु की जाको जग बिस्तार॥

देवजी ने अपने कथन की पुष्टि में उदाहरण भी दिए हैं, पर उन सबको यहाँ उद्धृत करने से ग्रंथ का कलेवर बहुत बढ जायगा। यदि पाठकगण कृपा करके शब्दरसायन का पाठ करेंगे, तो उन्हें दिखलाई पडेगा कि श्रृंगार-रस के साथ-साथ अन्य रसों का वर्णन एक प्रतिभावान् कवि कितनी सफलता के साथ कर सकता है। कविवर केशवदास ने भी अपनी रसिकप्रिया में अन्य सभी रसों का वर्णन श्रृंगाररस के ही साथ किया है। प्रकारातर से उन्होंने भी श्रृंगार को ही रसों में प्रधान पद दिया है। आधुनिक कवियों में कविवर सरदार ने काव्यशास्त्र की विवेचना बडे अच्छे ढंग से की है। श्रृंगाररस के संबंध में उनके मत का भी साराश दिया जाता है।

सरदार कवि का मत

सरदार कवि ने अपने साहित्य-सुधानिधि ग्रथ के आरंभ में, प्रश्नोत्तररूप में, इस बात पर, विवाद किया है कि रसराज कौन है? आपकी दलील का साराश इस प्रकार है। श्रृंगाररस के देवता कृष्ण माने गए हैं। कृष्ण और विष्णु एक ही हैं, मगर संसार की सृष्टि के सर्वस्व कामदेव के साथ विष्णु की अपेक्षा कृष्ण का अधिक संपर्क है। विष्णु से कृष्ण में इतनी अधिकता है। विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र ये सभी समान प्रभाववाले हैं। फिर भी राजा वही बनाया जाता है, जिसका काम पालन हो। यह काम विष्णु और कृष्ण बराबर कर सकते हैं, परंतु कृष्ण में विष्णु से कुछ विशेषता है। इसलिए वही रसराज के देवता माने गए। श्रृगार के देवता कृष्ण बनाए गए, इसका अभिप्राय यह है कि श्रृंगार का प्रभाव सृष्टिस्थिति बनाए रखनेवाला माना गया है। यह एक बहुत बड़ी विशेषता है। इसी के कारण श्रृगार रसराज मान लिया गया। सरदारजी की राय है कि श्रृगार में सब सचारी पाए जाते हैं। इस कारण भी वह सबसे बडा है। सारा ससार प्रकृति और पुरुष की क्रीडा का रगस्थल है। इसी के प्रतिबिंब के समान श्रृंगाररस में नर-नारी की उचित प्रीति का वर्णन है, इसलिए भी वह रसराज है। उद्दीपन दो प्रकार के होते हैं—दैवी और मानुषी। ऋतुरमणीयता आदि दैवी उद्दीपन हैं। और रसों के उद्दीपन अधिकतर मानुषी हैं, पर श्रृंगार के मानुषी और दैवी दोनो हैं। श्रृंगार के उद्दीपन सर्वत्र और बारहो मास सुलभ हैं। इसी से श्रृंगार रसराज है। श्रृंगार के विरोधी रसों का भी उक्त रस के साथ मित्रवत् वर्णन किया जा सकता है। अन्य रस उसके अंगी बनाए जा सकते हैं। इससे भी श्रृंगार की प्रमुखता प्रमाणित होती है।

संस्कृत के कवियों का मत

संस्कृत के प्रायः सभी आचार्यों ने रसों का वर्णन करते समय श्रृंगार को ही प्रमुखता का स्थान दिया है। सबसे अधिक वर्णन (भेद-भेदांतर आदि) भी इसी रस का किया गया है। बहुतों ने इस संबंध में अपना स्पष्ट मत प्रकट किया है कि श्रृंगार रसराज है; परंतु बहुतों ने अपना मत गोल रखा है। चौदहवीं शताब्दी के कवि विद्याधर ने एकावली नामक एक साहित्यग्रंथ लिखा है। इसके रसप्रकरण में उन्होंने भोजदेव नामक एक पूर्ववर्ती कवि के "श्रृंगारप्रकाश' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ की रचना श्रृंगार की सर्वश्रेष्ठता को प्रमाणित करने के लिए की गई थी। पं० पद्मसिंह शर्मा ने अपने सजीवनभाष्य के ५वें पृष्ठ पर इन बातों की चर्चा की है। श्रृंगारप्रकाश में कवि ने श्रृंगार की महत्ता निम्नलिखित श्लोकों द्वारा प्रतिपादित की है—

वीराद्भुतादिषु च ये इह रसप्रसिद्धिः
सिद्धाः कुतोऽपि वटयक्षवदाविभाति।
लोके गतानुगतिकत्ववशादुपेता-
मेतां निवर्तयितुमेष परिश्रमो नः॥
श्रृंगारवीरकरुणाद्भुतहास्यरौद्र-
बीभत्सवत्सलभयानकशांतनाम्नः।
आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वयन्तु
श्रृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः॥

सारांश

संसार प्रकृति-पुरुष की केलिलीला की रंगस्थली है। नारी-पुरुष की प्रीति प्रकृति-पुरुष की बड़ी प्रीति का प्रतिबिंब-मात्र है। श्रृंगाररस का स्थायी भाव प्रीति है। अन्य आठ रसों का कोई भी स्थायी भाव प्रेम की बराबरी नहीं कर सकता। श्रृंगाररस के आलंबन विभाव में ये विशेषताएँ हैं कि नायक-नायिका में समान आकर्षण एवम् समता का भाव रहता है। परस्पर एक दूसरे पर न्योछावर हो जाते हैं। तन्मयता पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। द्वैतभाव का लोप हो जाता है। इस रस का उद्दीपन विभाव और भी विशिष्ट है। दैवी और मानुषी दोनो ही प्रकर के उद्दीपनों से श्रृंगार का कलेवर भूषित है। इसके उद्दीपन सर्वत्र और सब काल में पाए जाते हैं। वे मेध्य हैं और सुंदरता में सर्वोपरि हैं। इस रस में संचारी भाव भी अन्य सभी रसों से

बहुत अधिक संख्या में पाए जाते हैं। सात्त्विक भाव और हाव का यदि विचार भी न करें, तो भी अनुभावों का आधिक्य भी इसी रस के भाव में पड़ता है। अन्य सब रस किसी-न-किसी अवस्था में शृंगार के साथ वर्णित हो सकते हैं। इन्हीं सब बातों पर विचार करके पहले के आचार्यों ने शृंगार को 'रसराज' की पदवी से विभूषित किया है। शेष आठ रसों में से अन्य किसी में भी यह योग्यता नहीं कि शृंगार में पाई जानेवाली विशेषताओं का अर्द्धांश भी अपने में प्रदर्शित कर सके। असल बात तो यह है कि शृंगार का स्थायी भाव 'प्रेम' इतना महान् है कि अन्य रसों के स्थायी भाव उसके निकट भी नहीं पहुँच सकते। तन्मयता, मृदुलता, स्वार्थनिलय, द्वैतभावशून्यता, संग्राहकत्व, विधेयात्मिकता तथा ससारसृष्टि-रक्षा के जो दिव्यतम भाव प्रेम में मौजूद हैं, वे अन्यत्र कहाँ पाए जा सकते हैं। हमारी राय में तो अकेले प्रेम का स्थायी भाव होना ही शृंगाररस को निर्विवाद रसराज-पद पर अभिषिक्त करने को समर्थ है। फिर यहाँ तो और बातें भी दिखलाई गई हैं। यह वही प्रेम है, जिसका लक्षण भवभूति ने यह दिया है—

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं प्रेमसु मानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥

नायिकाभेद

नायिका का उपयुक्त पात्र नायक त्यागी, कृती, कुलीन, समृद्धिमान्, रूपयौवनोत्साही, दक्ष, लोकरजक, तेजस्वी, विदग्ध और सुशील होना चाहिए। उसके अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ नामक चार भेद माने गए हैं। अनुकूल नायक की प्रीति सदा अपनी विवाहिता पत्नी से रहती है। वह परनारी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। उसके विषय में पत्नी को विवश होकर कहना पड़ता है—

सपनेहूँ मनभावतो करत नहीं अपराध।
मेरे मन ही में रही सखी मान की साध॥

नायिका मान करना चाहती है, पर अनुकूल नायक ऐसा अवसर ही नहीं आने देता कि मान कर सके। संयोगावस्था में तो यह दशा रहती है, पर जब कार्यवश नायक को परदेश जाना पड़ता है, तो वहाँ भी वह अपनी पतिव्रता

स्वकीया पत्नी के ध्यान ही में मग्न रहता है। वह उस अवसर की बाट ही जोहा करता है, जब प्रियतमा के दर्शन हों। अनुकूल प्रोषित नायक का वर्णन भी मतिरामजी ने अपूर्व ही किया है—

प्यार पगे बचन-पियूष पान करि-करि
उमँगि-उमँगि उर आनँद बिसेखिहौं।
कबि *मतिराम* **तन-तपनि बुझाय जैहै**
तब निज जनम सफल करि लेखिहौं।
हीतल को सीतल करन चारु चाँदनी सी
मंद मृदु मुसकानि अनमिख पेखिहौं।
ह्वैहै तब निसा मेरे लोचन-चकोरनि को
जब वाको आनन अमल इंदु देखिहौं॥

दक्षिण नायक अपनी अनेक प्रियतमाओं पर समान प्रीति रखता है। कवि उसके विषय में कहता है—

दच्छिन नायक एक तुम मनमोहन ब्रजचंद।
फुलए ब्रज-बनितान के दृगइंदीबर बृंद॥

धृष्ट नायक निःशक भाव से अपनी प्रियतमा के मान की परवा न करके मनमाना अपराध किया करता है। शठ नायक भी ऐसा ही है; पर वह ऊपर से तो मीठी-मीठी बातें करता है और अंतर में अपनी शठता से नहीं चूकता। परकीयाओं में अनुराग करनेवाले नायक को उपपति तथा वेश्यानुरक्त नायक को वैशिक कहते हैं। अनेक नायक प्रियतमा से मान भी करते हैं, वे 'मानी' कहलाते हैं। क्रियाचतुर और वचनचतुर नामक नायक के दो और भी भेद माने गए हैं।

यथासंभव नायक के समान गुणवाली रमणी नायिका कहलाती है। ऊपर दिए नायक के अन्य सभी गुणों में समान होते हुए भी उसमें उत्साह, दक्षता तथा तेज आदि कई गुणों के मानने में आचार्यों को झिझक है, इसी कारण से उसके लक्षण में 'यथासंभव' शब्द को स्थान मिला है।

श्रृंगाररस नायिका-नायक पर ही अवलंबित है। यही उसके आलंबन विभाव हैं। इसी कारण से मतिराम ने रसराज में नायिकाभेद का वर्णन किया है।

रसराज में वर्णित श्रृंगाररसातर्गत नायिकाभेद का—विशेष करके स्वकीया मुग्धा * का—साराश आगे लिखा जाता है। मध्या और प्रौढ़ा, स्वकीया तथा परकीया और गणिका के भी दो-एक चमत्कारपूर्ण उदाहरण यथास्थल दे दिए गए हैं।

नायिकासंज्ञा को प्राप्त कर सकनेवाली रमणी-विशेष को—

ज्यौं-ज्यौं निहारिये नेरे ह्वै नैनन त्यौं-त्यौं खरी निकरै-सी निकाई।

जितना ही संनिकट से उसकी परीक्षा की जाती है, उतनी ही उसमें अच्छी-अच्छी बातें दृष्टिगत पड़ती हैं। जो रमणी रात-दिन अपने पतिदेवता के अनुराग में पगी रहती है, जिसकी सहज लज्जा और शील-गुण को देखकर पति अपने को बड़भागी मानता है, उस नारीरत्न को स्वकीया नायिका कहते हैं। वह—

जानति सौति अनीति है जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानति लाज है प्रीतम जानति प्रीति॥

अभिनव यौवन के आगमन से मदनविकारयुक्त, परतु रति में वामा, मृदुल, मानवाली, सहज लजीली नायिका को मुग्धा कहते हैं। इसके—

अभिनव यौवन-जोति सौं जगमग होत बिलास।
तिय के तन पानिप बढ़ै पिय के नैननि प्यास॥

जब इसको अपने यौवनागम का हाल विदित नहीं रहता है, तब इसे अज्ञातयौवना कहते हैं। प्रियतम खेल में इसके नेत्र अपने हाथ से बंद करता है। इससे सात्त्विक स्वेद का प्रादुर्भाव होता है। उस दशा में इसे ऐसा जान पड़ता है, मानो नायक ने मेरी आँखों में कपूर लगा दिया हो, तभी तो वह कहती है—

लाल तिहारे संग मैं खेलै खेल बलाय।
मूँदत मेरे नयन हौ करन कपूर लगाय॥

उसे यौवनोचित सात्त्विक भाववश आनेवाले स्वेद का ज्ञान नहीं है। परंतु जब उसे ऐसा ज्ञान हो जाता है, तब वह ज्ञातयौवना कहलाती है। उस दशा में वह अपने पति की ओर—

दीठि बचाय सखीन की छनकु निहारत छाँह।

---

* स्वकीया मुग्धा के प्रेम को देवजी ने बहुत अधिक महत्त्व दिया है।

मुग्धा रति में वामा तो होती ही है। सो जब भय और लाज के कारण वह पति के संग में रति नहीं चाहती, तो उसे नवोढा कहते हैं। उस दशा में—

ज्यौं-ज्यौं परसत लाल तन त्यौं-त्यौं राखै गोय।
नवल बधू डर-लाज ते इंद्रबधू-सी होय॥

इसी नवोढा में जब प्रियतम के प्रति प्रतीति का कछु भाव बढ जाता है, तो वह विश्रब्ध नवोढ़ा के नाम से प्रसिद्धि पाती है। वैसी दशा में उसका कथन है—

प्रीतम तुम्हरी सेज पै हौं आऊँ नँदलाल।
दया गहो बात न कहो दुख न दीजिये लाल॥

दस अवस्थाभेद से मतिरामजी ने भी दस प्रकार की नायिकाएँ मानी हैं। हम तो यहाँ केवल मुग्धा के ऐसे दस भेद दिखलाएँगे।

प्रियतम के आने का निश्चय जानकर शृंगार करके जो मुग्धा सुंदरी अपना मनोरथ सफल करने के लिए तैयार रहती है, उसे 'वासकसज्जा' कहते हैं। हम देखते हैं कि केलिभवम में जाकर वह—

पौढ़ि रही छिन सेज तिय अति आनँद अधिकाय।

शय्या पर पड़ी तो है, परतु पिय के तब तक न आने के कारण चिंतित होती हुई उसकी यह दशा होती है कि

चंद बढ़्यो उदयाचल पै मुखचंद पै आनि चढ़ी पियराई।

प्रिय-आगमन की उत्कंठा के कारण ही वद उत्कंठिता नायिका कहलाती है।

उत्कठिता की उत्कंठा यौं ही छोड़िए। देखिए, अब तो यह स्वयम् अपने पतिदेवता से अन्यत्र मिलने जा रही है। उसके इस अभिसार-कौतूहल को देखकर ही उसे अभिसारिका की संज्ञा मिली है। जा तो रही है, पर मुग्धतत्व के वश इस अभिसार में उसकी जैसी दशा है, वह देखते ही बनती है—

चली अली नवलाहि लै पिय पै साजि सिँगार।
ज्यौं मतंग अँडदार को लिये जात गँडदार॥

संकेतस्थल में जाकर भी जब प्रियतम के दर्शन न हुए, तो उसने दीनता से चंद्रमा की ओर देखा। आह! अब तो—

नवल बाल को कमल-सो गयो बदन कुँभिलाय।

इस दशा में वह पूरी विप्रलब्धा नायिका हो गई।

अपने प्रियतम के साथ अन्य स्त्री के मिलन-संबंधी चिह्नों को पाकर मुग्धा सुंदरी का दुःख बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। कैसी सौम्य खंडिता है!

बाल नबेली न रूसनो जानति भीतर भौन मसूसनि रोवै।

पर मुग्धा सुंदरी शीघ्र ही रूसने की क्रिया में भी दक्ष हो गई। पहले तो वह प्रियतम के मानमोचन-सबधी अनुनय-विनय की उपेक्षा करती है, पर अंत में उसी को पछताना पड़ता है। कलह अतरित इस दशा के कारण वह कलहातरिता नायिका हो गई है। उसके प्रति सखियों का यह उपालंभ कितना ठीक है—

आई गौने कालि ही सीखी कहा सयान।
अबहीं तैं रूसन लगी अबहीं तैं पछितान॥

पर यह रूसना और पछताना व्यर्थ नहीं गया। उसने धीरे-धीरे पति पर अपना पूरा प्रभाव जमा लिया। वह उसके बिलकुल वश हो गया। मुग्धा सुंदरी ने स्वाधीनपतिका की पदवी प्राप्त कर ली। पति उसके इतना अधीन हा रहा है कि वह स्वयम् लज्जित है। इस विषय में सखी के प्रति उसके हृदयोद्गार कितने भले हैं—

हौं सखि लाजनि जात मरी *मतिराम* सुभाव कहा कहौं पी के।
लोग मिलैं घर घैरु करैं अबहीं ते ये चेरे भए दुलही के।

कहाँ यह दशा, कहाँ प्रियतम के विदेशगमन की तैयारी! जिस दिन से प्रियतम के विदेशगमन की चर्चा सुनी है, शरीर पीला पड़ गया है—शारीरिक शृंगार से उदासीनता हो गई है। सखियों से हँसी करके भी चित्त नहीं बहला पाती है। प्रवत्स्यत्प्रेयसी की कैसी करुण दशा है—

सोवत न रैन-दिन रोवत रहति बाल
बूझे तैं कहति मायके की सुधि आई है।

पति विदेश चला गया। नायिका प्रोषितभर्तृका हो गई। अब तो उसके नेत्रों की यह दशा है कि

पियबियोग तियदृग-जलधि जलतरंग अधिकाय।
बरुनि-मूल-बेला परसि बहुरयो जात बिलाय॥

पति विदेश से लौट आया है। मुग्धा सुंदरी आगतपतिका हो रही है। आनंद की सीमा नहीं है—

पिय आयो नवबाल-तन बाढ़्यो हरष बिलास।
प्रथम बारि बूँदन उठै ज्यौं बसुमती-सुबास॥

स्वकीयातर्गत मुग्धा के अतिरिक्त मध्या और प्रौढा नामक दो और भेद हैं। मध्या में लज्जा और काम बराबर-बराबर होते हैं। प्रौढा तो अखिल कामकलाचतुर होती है। इन दोनो प्रकार की नायिकाओं में भी ऊपर-दर्शित दसो भेद पाए जाते हैं। इतना ही नहीं, धीरा, धीराधीरा और अधीरा आदि कई भेद मध्या और प्रौढा में अधिक होते हैं। परकीया में भी ऊपरवाली दसो प्रकार की नायिकाएँ मानी गई हैं। इसके अतिरिक्त ऊढ़ा, अनूढ़ा, गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, मुदिता और अनुशयाना नामक कई प्रकार की नायिकाओं का सूक्ष्म वर्णन पाया जाता है। ऊपरवाला दस प्रकार की नायिकाओं का क्रम गणिका में भी बाँधा गया है। इसके अतिरिक्त अन्यसंभोगदु:खिता, प्रेम तथा रूपगर्विता नामक नायिकाओं का उल्लेख भी रसराज में है। एक ही पुरुष की दो ब्याही स्त्रियों में जिस पर प्रीति विशेष हो, वह ज्येष्ठा और दूसरी कनिष्ठा कहलाती है। यह भेदक्रम स्वकीया के अंतर्गत है। स्वकीया भी उत्तम, मध्यम और अधम प्रकार की मानी गई है। उत्तमा पतिकृत हित या अहित की परवा न करके सदा पति का हित ही करती है। मध्यमा पति के हित का बदला तो हित में देती है; परतु अहित का जवाब उसके पास मान में है। अधमा विना कारण ही मान करती है। मान करनेवाली नायिका का नाम 'मानवती' भी है। श्रवण, स्वप्न, चित्र और प्रत्यक्ष नामक चार दर्शनों को रसराजकार ने आलंबन के अंतर्गत वर्णन किया है। शृंगाररस में नायक और नायिका आलबन विभाव हैं। उद्दीपन का लक्षण मतिरामजी ने यह दिया है—

चंद्र कमल चंदन अगरु ऋतु बन बाग बिहार।
उद्दीपन शृंगार के ये उज्ज्वल शृंगार॥

सखी के काम मंडन, शिक्षा, उपालंभ और परिहास हैं। दूतियाँ उत्तमा, मध्यमा और अधमा होती हैं। आलंबन और उद्दीपन विभाव से परिपुष्ट स्थायी भाव को अनुभावों की सहायता अपेक्षित होती है। अनेक अनुभावों के अंतर्गत ही मतिरामजी ने सात्त्विक भाव भी मान लिए हैं। स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु एवम् प्रलय नामक आठ सात्त्विक भावों

का वर्णन भी रसराज में दिया है। 'जृंभा' नामक एक नवें सात्त्विक का वर्णन भी कुछ कवि करते हैं। इस कारण मतिराम ने उसका भी उल्लेख किया है। अनुभावों की सहायता के पश्चात् स्थायी भाव में एक अपूर्व आनंदोद्भूति होती है। इसी को रस कहते हैं। रस दो प्रकार का होता है। जिसमें नायक-नायिका का समिलन हो, वह संयोग-श्रृंगार कहलाता है, तथा जिसमें मिलाप नहीं हो पाता, उसे वियोग-श्रृंगार कहते हैं। दंपति की संयोगावस्था में जो भाव उत्पन्न होते हैं, उनकी 'हाव' नाम से विशेष संज्ञा है। इन हावों के नाम लीला, विलास, विच्छित्ति, विव्वोक, किलकिंचित्, मोट्टायित, विभ्रम, विहृत तथा ललित हैं। वियोग-श्रृंगार के तीन भेद हैं अर्थात् १ पूर्वानुराग, २ मान तथा ३ प्रवास। मान लघु, मध्यम और गुरु तीन प्रकार का होता है। वियोगदशा में नायिका अनेक प्रकार से कष्ट पाती है। प्रत्येक अवसर के कष्ट का लक्ष्य करके नायिका की नौ दशाएँ नियत की गई हैं। इनके नाम अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि और जड़ता हैं। तेतीस व्यभिचारी भावों का वर्णन रसराज में नहीं है।

(१) वचनों की रचना से अपने विवाहित पति के प्रति कोप प्रकट करनेवाली मध्यमा और प्रौढा स्वकीया नायिका धीरा के नाम से विख्यात हैं। जब वचनों की रचना कठोरता लिए होती है, तो नायिका की संज्ञा अधीरा मानी गई है। जिसमें धीरा और अधीरा दोनो के गुण मौजूद हों, उसे धीराधीरा कहते हैं। मध्याधीरा पति की आँखों में अन्यत्र रात्रि-जागरण के कारण उत्पन्न लाली देखकर उससे कहती है—

भनहु की जानी प्रानप्यारे *मतिराम* **यहै**
नैननिहूँ माहिँ पाइयतु अनुराग है।

वही मध्या अधीरावस्था में स्वामी की रसीली छेड़छाड़ से बिगड़कर कहती है—

सोवन दीजै न दीजै हमैँ दुख यों ही कहा रसबाद बढ़ायो।
मान रह्योई नहीं मनमोहन मानिनी होय सो मानै मनायो।

नायक नायिका से पूछता है कि आज मान क्यों किया है? धीराधीरा इसका उत्तर यों देती है—

तुमसौं कीजै मान क्यौं बहु नायक मनरंज।
बात कहत यौं बाल के भरि आए दृगकंज॥

प्रौढ़ा धीरा तो अपने पति को केवल—

ढीली बाँहन सौं मिली बोली कछू न बोल।
सुंदरि मान जनाय यौं लियो प्रानपति मोल॥

(२) मध्या विप्रलब्धा को जब पति सकेतस्थल में नहीं मिला, तो उसकी आँखों में आँसू भर आए, पर वे भूमि में नहीं निपतित हुए। इस व्यापार पर कवि की कल्पना यह है कि अश्रुरूप मोती तीक्ष्ण कटाक्षों में भिदकर जहाँ-के-तहाँ ही रह गए—

भूलि हुलास बिलास गए दुख तैं भरिकैं अँसुवा उमहे हैं।
ईछनिछोरनि तैं न गिरे मनौ तीछन छोरन छेदि रहे हैं।

प्रौढा विप्रलब्धा जब सकेतस्थल को जा रही थी, तो उसका मुखचंद्र ऐसा विहसित था कि बेचारा चद्रमा लज्जित सा हो रहा था, परंतु जब निर्दिष्ट स्थान में स्वामी से भेंट नहीं हुई, तो उसके मुख पर ऐसी विवर्णता छा गई कि मुखचंद्र की सारी शोभा फीकी पड गई। अब चंद्रमा की पारी थी। मानो इस विपत्ति के अवसर पर वह नायिका को हँस रहा था। कैसी मनोहर उक्ति है—

चंद को हँसत तब आयो मुखचंद अब
चंद लाग्यो हँसन तिया के मुखचंद कौं।

(३) नवविवाहिता वधू को ले जाने के लिए पितृगृह से लोग आए हैं। पति से वियोग होगा, इस कष्ट को न सह सकनेवाली मध्या प्रवत्स्यत्प्रेयसी ने रात जागकर बड़े सोच-विचार में बिताई है। उसकी ऐसी दशा देखकर कोई कहता है—

तूँ न बहू को पठाय अली यह देख दुहून की प्रीति सुहाई।
रोए-से लोचन मोए-से रोचन सोए न सोचन रैन बिताई।

अंतिम पद कितना चमत्कारपूर्ण है!

प्रौढा प्रवत्स्यत्प्रेयसी की सिफारिश भी सखी अच्छे ढंग से करती है—

कोपनि तैं किसलैं जबै होय कलिन तैं कौल।
तबहीं चलियो चलन की चरचा नायक नौल॥

उद्दीपन की इस सामग्री की ओर यदि नायक का ध्यान न जाय, तो वह अज्ञ ही है।

(४) एक स्थल पर मध्यमा नायिका का मानमोचन ऐसे अच्छे ढंग से हुआ है कि

रिस ही के आँसू रस आँसू भए आँखिन मैं
रोस की ललाई सो ललाई अनुराग की।

अनुराग का रंग लाल माना गया है।

(५) सात्त्विक भावों में 'प्रलय' भाव का वर्णन मतिराम ने बहुत अपूर्व किया है। प्रियतम से प्रत्यक्ष होने के बाद से उनकी मधुर मुस्कान नायिका के मन में ऐसी बस गई है कि वह सदा उसी का ध्यान किया करती है। उसको यह भान होता है कि प्रियतम सामने मुस्किराता हुआ खड़ा है। बस, उसके नेत्र भी निर्निमेष होकर रह जाते हैं। उसके शरीर की संचलनशक्ति बद हो गई है। ज्ञान भी जाता रहा है। बिलकुल स्थिर बैठी है, मानो कोई दीपक निर्वात स्थान में जल रहा हो—

जा दिन तें छबि सौं मुलक्यात कहूँ निरखे नँदलाल बिलासी।
ता दिन तें मन-ही-मन मैं *मतिराम* **पियै मुलक्यानि सुधा-सी।**
नैंक निमेष न लागत नैन चकी चितवै तिय देवतिया-सी।
चंद्रमुखी न हलै न चलै निरबात निवास मैं दीपसिखा-सी॥

कहते हैं, देवताओं के नेत्रों में पलक नहीं गिरती है। 'निरबात निवास मैं दीपसिखा-सी' इस पद में कैसी अच्छी उपमा है!

(६) (क) जहाँ थोडे ही भूषण-वसन के धारण करने से नायिका की अपूर्व शोभा प्रकट होती है, वहाँ 'विच्छित्ति' हाव माना गया है।

नायिकाविशेष ने केवल श्वेत साड़ी धारण की थी, परंतु उसकी उस श्वेत साड़ी के सयोग से ही ऐसी शोभा उमड पड़ी कि सब सौतों के मुँह काले पड़ गए। उधर प्रियतम जी उसी साडी के रग में ऐसे रँगे कि श्याम से अनुरागवश लाल हो गए। कैसी चतुरता से भरी उक्ति है—

सेत सारी ही सौं सब सौतैं रँगी स्याम रँग
सेत सारी ही सौं रँगे स्याम लाल रंग मैं।

(ख) पति द्वारा अंगविशेष के स्पर्श होने से संभ्रमित होना तथा हाथ आदि का संचालन करना नायिका में कुट्टमित हाव प्रकट करता है। इस हाव का उदाहरण भी मतिराम ने परम मनोहर दिया है—

प्रीतम को मनभावती मिलति बाँह दै कंठ।
बाहीं छुटै न कंठ ते नाहीं छुटै न कंठ॥

(७) पति के मुख से जब नायिका अन्य स्त्री का नाम सुनती है, जिससे नायक का उस दूसरी पर अनुरक्त होना समझ पड़ता है, तो वह मान करती है। इस प्रकार के मान को मध्यम मान कहते हैं।

एक दिन आषाढ की संध्या को दंपति आनंद से बैठे थे। बातों-ही-बातों पति के मुख से अन्य स्त्री का नाम निकल गया। बस, सारा आनद किरकिरा हो गया। नायिका मान के वश हो बैठी। उसकी भौंहें तन गईं। आँखों से आँसू की बूँदें गिरने लगीं। हास्य का कहीं पता ही न रहा—

दोऊ अनंद सों आँगन माँझ बिराजैं असाढ़ की साँझ सुहाई।
प्यारी कौं बूझत और तिया को अचानक नाउँ लियो रसिकाई।
आई उनै मुँह मैं हँसी कोपि प्रिया सुरचाप-सी भौंह चढ़ाई।
आँखिन तें गिरे आँसू के बूँद सुहास गयो उड़ि हंस की नाई॥

उपर्युक्त छंद में जिस घटना का वर्णन है, वह प्रावृट्काल की है। मतिरामजी ने भी मानप्रकाशक, भ्रूसकोच-अश्रुपात तथा हास्याभाव की उपमा ऐसी ही चीजों से दी है, जिनके वर्षा के साथ वर्णन में ही विशेषता है। वर्षाकाल का अपूर्व इद्रधनुष भौंहों के चढ़ने में देख पड़ा। आँसू क्या गिरे, मेह झरने लगा और पावस के आते-न-आते जैसे हस भाग जाते हैं, वैसे ही हास्य की भी बिदाई कर दी गई। हास्य और हस का श्वेत रग कितना अनुरूप है। कविराजा मुरारिदान ने अपने बृहत् जसवतजसोभूषण ग्रंथ में उपर्युक्त छंद को परंपरित उपमा के उदाहरण में उद्धृत किया है।

(क) मतिराम ने नायिका की कई दशाओं का चित्र भी अनोखा खींचा है।

विरहावस्था में नायिका जब अपने प्रियतम के रूप की सराहना आदि करती है, तो उसे गुणकथन कहते हैं। इस गुणकथन का जीता-जागता चित्र निम्नलिखित छंद में वर्तमान है—

मोरपखा *मतिराम* **किरीट मैं कंठ बनी बनमाल सुहाई।**
मोहन की मुसकानि मनोहर कुंडल डोलनि मैं छबि छाई।
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई।
वा मुख की मधुराई कहा कहौं मीठी लगै अँखियान लुनाई॥

नेत्रों के अश्रु खारी होते हैं उनमें लुनाई रहती है—पर नायिका को यह 'लुनाई' मीठी लगती है। प्रेमाधिक्य से प्रियतम की बुरी चीज भी अच्छी

लगती है। सो लुनाई भी मिठाई हो रही है। जब लुनाई में ही मिठाई मिल रही है तब मुख की मिठाई का क्या कहना। उसमें तो मिठाई पहले से ही थी।

(ख) विरह की व्याकुलता में जब नायिका को कुछ भी अच्छा नहीं लगता, तब उस अवस्था को उद्वेगदशा कहते हैं।

संयोगावस्था में उद्दीपन विभाव रूपसुधाकर दंपति के लिए पीयूषवर्षी था, परंतु आज इस विरहविधुरा नायिका को उसी के मयूख बिच्छू के डंक के समान डँस रहे हैं। मतिरामजी की कैसी सुष्ठु योजना है!

जे अंगनि पियसंग में बरसत हुते पियूख।
ते बीछू के डंक-से भए मयंकमयूख॥

विरहवश इष्ट-अनिष्ट के विषय में कर्तव्यविमूढता तथा चित्त और अंगों का अचल हो जाना नायिका की जड़तादशा का प्रदर्शक है। इस दशा का वर्णन मतिरामजी यों करते हैं—

सूँघै न सुबास रहै रागरंग तें उदास
भूलि गई सुरति सकल खानपान की।
कबि *मतिराम* इकटक अनमिष नैन
बूझे न कहति बैन समुझै न आन की।
थोरी-सी हँसी में है ठगोरी ऐसी डारी तुम
बौरी करी भोरी तैं किसोरी वृषभान की।
तब तैं बिहारी वह भई है पखान-कैसी
जब तैं निहारी रुचि मोर के पखान की॥

कितनी अच्छी योजना है! कैसा विकलकारी दृश्य है! थोड़ी-सी हँसी में ऐसी ठगोरी का डालना वास्तव में बड़ी ही आश्चर्य की बात है। भोली नायिका ने अब बोलना भी बंद कर दिया है। भोरी से अब वह बौरी भी हो गई। अब वह 'पखान' के सदृश नहीं है, तो और क्या है? 'पखान-कैसी' के 'पखान' और 'मोर के पखान' वाले 'पखान' के दो भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। एक 'पखान' ब्रजभाषा में संस्कृत के 'पाषाण' शब्द का रूपांतर है तथा दूसरा पक्ष (पर) का बहुवचन है। 'पखान' का यमक भी विचित्र ही है।

अलंकारचमत्कार

कवितागत शब्दार्थ में जो चमत्कार है, शोभा है, वह रसादिकों के कारण है, पर इस चमत्कार के अतिरिक्त भी एक प्रकार का चमत्कार कविता में

सुलभ है। जिस प्रकार आभूषण धारण करने से शरीर की शोभा बढ जाती है, उसी प्रकार उपर्युक्त चमत्कार के होने से रसादि-सयुक्त कविता भी विशेष शोभावाली हो जाती है। इस चमत्कार को काव्यशास्त्र में 'अलकार' नाम से पुकारते हैं। मतिरामजी ने 'ललितललाम' में अलंकार का यह लक्षण दिया है—

रस अर्थन तैं भिन्न जो सब्द अर्थ के माहिं।
चमत्कार भूषन सरिस भूषन मानत ताहिं।

अलंकार दो प्रकार के होते हैं, अर्थात् शब्दालंकार और अर्थालंकार। अर्थालकारों की सख्या साधारणतया १०१ है, पर भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भेदातरों के मतभेद से इस सख्या में घटी-बढी भी कर दी है। अलंकारों (अर्थ) में उपमा और स्वभावोक्ति मुख्य हैं। बहुत-से अलंकार तो इन दोनो के रूपातर कहे जा सकते हैं। शब्दालकारों की अपेक्षा अर्थालंकार ही विशेष आदरणीय है, परतु शब्दालंकार उपेक्षणीय नहीं है। ललितललाम में शब्दालकारों का वर्णन नहीं हुआ। उसमें केवल अर्थालंकारों के लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं। रसवदादि कई ऐसे अलकार हैं, जिनकी गणना रसों के अंतर्गत भी की जा सकती है। मतिरामजी ने इन अलकारों का भी वर्णन नहीं किया। मतिरामजी के निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण और उदाहरण बड़े ही अच्छे बन पडे हैं—

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दीपक, दृष्टात, व्यतिरेक, अपह्नुति, अतिशयोक्ति और आक्षेप।

ये सब मुख्य अलंकार हैं। इनमें प्रत्येक अलंकार के कई भेद भी हैं। अमुख्य अलंकारों के भी लक्षण और उदाहरण मतिरामजी ने परम मनोहर दिए हैं। इनमें से कुछ के नाम ये हैं—

विषम, विकल्प, यथासंख्य और निरुक्ति।

कविराजा मुरारिदान ने अपने बृहत् जसवंतजसोभूषण ग्रंथ में कुछ नए अलकारों की कल्पना की है। इस प्रकार के नवीन कल्पित अलंकारों के उदाहरण आपने अधिकतर कविवर मतिरामजी की कविता से दिए हैं। मुरारिदानजी का परिणाम अलकार नामलक्षण के अनुरूप बतलाया गया है। परंपरित रूपक के अनुरूप उन्होंने परपरित उपमा की कल्पना की है। अन्योन्य, विषाद और संकोच आदि कई अलंकारों की आपने पृथक् सत्ता

स्वीकार की है। अन्य अलकारों के समान इनके लक्षणों का समावेश भी आप नाम ही में मानते हैं। इनमें के कई अलंकारों को संस्कृत के आचार्यों ने पहले से ही मान रखा है। हिंदी के भी कई आचार्यों ने इनमें के कई अलंकारों का उल्लेख किया है।

एक विद्वान् समालोचक की राय है—'साधारण कविजन अलंकारों के लाने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं, तो भी उनकी कविता में एक-आध अलंकार कठिनता से आता है। उधर उत्कृष्ट कविजन साधारण वर्णन करते चले जाते हैं, परंतु वे ऐसे शब्द और भाव लाते हैं कि उनमें आप-से-आप अलंकारादि-संबंधी उत्तमताएँ बहुतायत से आ जाती हैं।

उपर्युक्त समालोचना मतिरामजी के छदों के विषय में बहुत ठीक समझ पड़ती है। इस पुस्तक में जहाँ-तहाँ मतिरामजी की जो कविता उद्धृत है, उससे पाठकगण उपर्युक्त कथन की सत्यता का अंदाजा स्वयम् कर सकते हैं।

ऊपर 'ललितललाम' के जिन उदाहरणों के अच्छे होने का उल्लेख किया गया है, उनके कुछ नमूने मनोरजन के लिए पाठकों की भेंट किए जाते हैं।

पहले अमुख्य अलकारों को ही लीजिए—

यथासंख्य—कहे हुए पदार्थों का उसी प्रकार फिर उसी क्रम से जब कथन किया जाता है, तो उसे यथासख्य अलंकार कहते हैं।

मतिरामजी ने इस अलकार के उदाहरण में अपने नायक के आतंक का वर्णन किया है। कवि की राय में भावसिहजी के तेजपुज में मारुत और मार्तंडमंडल के सभी गुण आ गए हैं। इसलिए जिस प्रकार से मारुत और मार्तंड लोगों को अपने प्रभाव से नाना प्रकार के कष्ट पहुँचा सकते हैं, उसी प्रकार से राव भावसिहजी अपने शत्रुओं को भी ठीक उन्हीं कष्टों से पीडित कर सकते हैं। वायु जिसको चाहती, उडा सकती, झुका सकती, तोड़ सकती और फोड़ सकती है। उसके ये चरित्र भिन्न-भिन्न वस्तुओं के प्रति स्पष्ट देखने में आते हैं। हल्की रुई को वह कैसे मजे में उडा देती, उन्नत तृण (घास-फूस) उसके झोंके खाकर कैसा झुक जाता है, विशालकाय वृक्ष को वह कैसे सहज में तोड डालती है तथा उसके प्रबल प्रवाह के सामने घनघोर मेघमंडल भी क्षण-भर में कैसा छिन्न-भिन्न हो जाता है! भावसिंहजी का तेजपुज भी शत्रुमडल का पराभव वैसे ही करता है, जैसे रुई, तृण, वृक्ष और बादल का वायु करती है। जिस क्रम से उड़ना, नवना, टूटना और फूटना क्रियाएँ दी हुई हैं, उसी क्रम से आगे तूल, तिनका, तरुवर और तोयद दिया हुआ है। तेजपुंज में

पहले मारुत के गुण आरोपित किए गए हैं। इससे पहले मारुत के प्रभाव का उल्लेख है। इसके बाद 'मार्तंड' के गुण देखिए। सूर्योदय होते ही रात में पाई जानेवाली अनेक वस्तुएँ मिट जाती हैं। भुवनभास्कर का प्रभाव ही ऐसा है! अनेक वस्तुएँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, अनेक पदार्थ घोर विकल हो पड़ते हैं, तथा बहुत सी वस्तुओं के सूखने की नौबत आ जाती है। उदाहरण के लिए देखिए कि तारामंडली का लोप, अंधकार का छिन्न-भिन्न होना और चंद्रदेव की विकलता तथा जल का शोषण प्रचंड मार्तंड के उदित होने पर ही तो होता है। अब देखिए, जिस क्रम से मिटना, फटना, विकल होना और सूखना क्रियाओं का प्रयोग हुआ है, ठीक उसी क्रम से तारा, तिमिर, तमीपति और तोय का न्यास है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भावसिंह का तेजपुंज शत्रुरूप उपर्युक्त पदार्थों पर समान प्रभाव प्रदर्शित करता है। मारुत और मार्तंड के प्रभावप्रदशन के लिए आठ क्रियाओं का प्रयोग हुआ है। जिन-जिन वस्तुओं पर उनका प्रभाव हुआ, उनका आगे उल्लेख है। जिस क्रम से क्रियाएँ हैं, ठीक उसी क्रम से उन वस्तुओं का स्थान है, पहली चार क्रियाएँ मारुत की प्रभावसूचना देती हैं, तो पहली चार चीजें भी वही वर्णित हैं, जिन पर मारुत का प्रभाव पड़ा है। दूसरी चार क्रियाएँ सूर्य का प्रभाव दिखलाती हैं, तो पाँच से लगाकर आठ तक वर्णित चीजें भी वही हैं, जिन पर सूर्य का प्रभाव पड़ा है। तेजपुंज में मारुत और मार्तंड दोनो के प्रभाव समिलित हो गए हैं, इसलिए तीसरे और चौथे पद पूरे-पूरे तेजपुज के अधीन हैं। कितना विस्तृत और मनोमोहक यथासख्य है! अतिम पद की अनुप्रासरमणीयता की कहाँ तक प्रशसा की जाय! कवि को इस छंद में केवल यथासख्य दिखलाना था, पर और भी कई अलंकार स्वभावतः कवि-प्रतिभा से आकृष्ट छद में अपने दिव्य दर्शन दे रहे हैं। विभावना, प्रतीप, समुच्चय और उपमा की मनोहर झलक मन को मुग्ध करती है। ओजगुण और शब्दचमत्कार का ठाठ ही निराला है। सत्कवि के कर्तब ऐसे ही होते हैं। हिंदीसाहित्य में इस जोड़ का दूसरा यथासख्य ढूँढ़ने से मिलेगा। तोषनिधि ने मतिराम के यथासंख्य की नकल उतारी है, पर उसमें यथासंख्य का न तो वैसा निर्वाह ही हुआ और न वह चमत्कार ही आया है।

महाबीर सत्रुसालनंद राव भावसिंह
तेरी धाक अरिपुर जात भय भोय-से।
कहै *मतिराम* तेरे तेजपुंज लिये गुन

मारुत और मारतंड-मंडल बिलोय-से।
उड़त नवत टूटि फूटि मिटि फाटि जात
बिकल सुखात बैरी दुखनि समोय से।
तूल-से तिनूका-से तरोवर-से तोयद्-से
तारा-से तिमिर-से तमीपति-से तोय-से॥

विकल्प—जिसमें समान बलवाली वस्तुओं का विरोध चतुरतापूर्वक दिखलाया गया हो उसे विकल्प अलकार कहते हैं। मतिरामजी का लक्षण इस प्रकार है—

सम बलजुत द्वै बात को बरनत जहाँ बिरोध।
कबि-कोबिद् सब कहत हैं तहँ बिकल्प अतिसोध॥

उदाहरण में भावसिंहजी के आतक का वर्णन है। शत्रुओं की भयभीत स्त्रियाँ अपने पतियों से कहती हैं—देखो, पहले तो हमारा कहना नहीं माना, परंतु अब दो में से केवल एक ही बात करनी होगी, या तो दाँतों में तिनका दबाओ या हाथ में तलवार धारण करो। दाँतों में तिनका दबाना संपूर्ण पराजय और अधीनता का लक्षण है। इससे संधि की इच्छा प्रकट होती है। उधर कृपाण धारण करने में युद्ध की सूचना का भाव भरा हुआ है, पर संधि और विग्रह, दोनो एक ही समय में हो नहीं सकते। अतः दोनो में स्पष्ट विरोध है। एक के पर्यवसान में ही दूसरे का आश्रय लिया जा सकता है। तात्पर्य यह कि अब या तो चुपचाप संधि कर लो या जमकर युद्ध करो। मतिरामजी के संपूर्ण छंद में इस प्रकार की समान बलवाली वस्तुओं का विरोध चार बार हुआ है। इन चारो में से एक भी विरोध शिथिलतापूर्ण नहीं है। मतिरामजी का विकल्प का उदाहरण बहुत उत्तम बन पड़ा है। संपूर्ण छंद इस प्रकार है—

बिपिन-सरन कै चरन तको राव ही के
चढ़ो गिरि पर कै तुरंग परवर में।
राखो परिवार कौं कि आपनीयै हठ राज
संपति दै मिलौ कै नगारे दै समर में।
कहै *मतिराम* रिपुरानी निज नाहन सों
बोलैं यों डरानी भावसिंहजू के डर में।
बैर तो बढ़ायो कह्यो काहू को न मान्यो अब
दाँतनि तिनूका कै कृपान गहो कर में॥

से सुधा ढरका दी है। यह गंगा नहीं हैं, वही ब्रह्मा के चंद्रकमंडलु से गिरी सुधाधारा है, जिसे समुद्र पान कर रहा है। कैसी अनोखी अपह्नुति है—

पारावार पीतम को प्यारी ह्वै मिली है गंग
बरनत कोऊ कबि-कोबिद निहारिकै।
सो तो मतो *मतिराम* **के न मन मानै निज**
मति सौं कहत यह बचन बिचारिकै।
जरत बरत बड़वानल सौं बारिनिधि
बीचिनि के सोर सौं जनावत पुकारिकै।
ज्यावत बिरंचि ताहि प्यावत पियूष निज
कलानिधि-मंडल-कमंडल तैं ढारिकै॥

अब छलापह्नुति को भी देखिए—

ब्रह्मा ने खूब कौशल से श्रीराधिकाजी का मुखमंडल बनाया। चंद्रदेव को अब तक अपने सौंदर्य का घमंड था, पर अब उनके यशोह्रास का अवसर आया। उन्होंने अपनी पूर्व मर्यादा बनाए रखने के लिए चोरी का महापातक अपने सिर पर ओढ़ा। रात को चुपके चुपके अपने कर (किरण और हाथ) इसलिए फैलाए कि राधिकाजी का सौंदर्य चुरा लें, परंतु बेचारे पकड़े गए। ब्रह्मा के दरबार में इनका मुकद्दमा हुआ। इन पर निशिचर चोर होने का अभियोग प्रमाणित हो गया। कमलासन ने क्रोध करके इनके लिए अपमान-जनक दंड की व्यवस्था कर दी। तब से यह बेचारे अपने मुख में कलंकरूपी कालिमा लगाए दिन-रात अमरालय के चारो ओर पहरा दिया करते हैं—

सुंदरबदन राधे सोभा को सदन तेरो
बदन बनायो चारिबदन बनायकै।
ताकी रुचि लैन को उदित भयो रैनपति
मूढ़मति राख्यो निज कर बगरायकै।
मतिराम **कहै निसिचर चोर जानि याहि**
दीनी है सजाय कमलासन रिसायकै।
रातैं-दिन फेरै अमरालय के आस-पास
मुख मैं कलंक मिस कारिख लगायकै॥

प्रकृति का प्रतिषेध करके अन्य का स्थापन अपह्नुति है। शुद्धापह्नुति में सच्चा धर्म छिपाया जाता है, और छलापह्नुति में छल, कितव तथा मिस

आदि पदों के सहारे सच्ची बात छिपाई जाती है। उपर्युक्त छंद में चंद्रमा की जैसी विडंबना की गई है, उससे भी बढकर विडंबना एक दूसरे छंद में है। मतिराम का वह छंद भी हम यहाँ देते हैं—

एरे मतिमंद चंद धिक है अनंद तेरो
जो पै बिरहिनि जरि जात तेरे ताप ते।
तूँ तो दोषाकर दूजे धरे है कलंक उर
तीसरे कपालि संग देखो सिरछाप ते।
कहै *मतिराम* हाल जाहिर जहान तेरो
बारुनी के बासी भासी रबि के प्रताप ते।
बाँध्यो गयो मथ्यो गयो पियो गयो खारो भयो
बापुरो समुद्र तो कुपूत ही के पाप ते॥

शब्दार्थावृत्ति दीपक—जहाँ वर्ण्य (प्रस्तुत) और अवर्ण्य (अप्रस्तुत) का धर्म एक होता है, उसे दीपक अलंकार कहते हैं। इसी प्रकार जहाँ अनेक क्रियाओं का कारक वही हो, वहाँ भी दीपक अलंकार माना गया है। दीपक में शब्द की, अर्थ की तथा शब्दार्थ की, इस प्रकार तीन प्रकार की आवृत्ति मानी गई हे।

शब्दार्थावृत्ति दीपक का उदाहरण लीजिए—

सकल सहेलिन के पीछे पीछे डोलति है
मंद-मंद गौन आज आपु ही करति है।
सनमुख होत सुख होत *मतिराम* जब
पौन लागे घूँघट के पट उघरत है।
जमुना के तट बंसीबट के निकट
नंदलाल पै सँकोचन ते चाह्यो ना परत है।
तन तो तिया को बर भाँवरैं भरत मन
साँवरे बदन पर भाँवरैं भरत है॥

उपर्युक्त छंद के अंतिम पद पर ध्यान दीजिए। नायिका का शरीर तो वटवृक्ष की भाँवरें कर रहा है, परंतु मन श्यामसुंदर के वदनारविंद पर मँडरा रहा है। 'भाँवर भरना' शब्दों की आवृत्ति हुई है, परंतु एक स्थान पर तो भाँवरों का अर्थ वास्तव में चक्कर लगाना है, पर दूसरे स्थान पर उसका अर्थ श्यामसुंदर में तन्मय होना है। सो शब्द की आवृत्ति भी हो गई और अर्थ

की आवृत्ति भी। यह छंद रसराज में 'विहृत हाव' के उदाहरण में दिया गया है। दलपतराय वंशीधर ने अपने 'अलंकाररत्नाकर' ग्रंथ में इस छंद को बड़े गौरव के साथ स्थान दिया है।

अर्थांतरन्यास—यह आठ प्रकार का होता है। मतिराम ने केवल दो प्रकार का अर्थांतरन्यास माना है, अर्थात् जहाँ विशेष से सामान्य का और सामान्य से विशेष का समर्थन हो। इन दो में से पहले प्रकार का जो उदाहरण मतिरामजी ने 'ललितललाम' में दिया है, वह बड़ा ही मनोहर बन पड़ा है। परकीया खंडिता नायिका की उक्ति है। नायिका की कैसी मृदुल फटकार है—

'आपके स्नेह के कारण मैंने लज्जा का त्याग किया। घर के सब कामकाज भूल बैठी। गुरुजनों का भय भुला डाला। गाँव में अपने विषय में चवाव होने दिया। मेरा नाम बदनाम हुआ। मैंने ये सब हित की बातें कीं भी, तो क्या हुआ? आपने तो सभी कुछ भुला डाला। सच है, कोई लाख-लाख तदबीरें क्यों न करे, पराया प्रियतम कभी अपना भी हुआ है'!

रावरे नेह को लाज तजी अरु गेह के काज सबै बिसराए।
डारि दियो गुरु लोगन को डरु गाम चबाय मैं नाम धराए।
हेत कियो हम जो तो कहा तुम तो *मतिराम* **सबै बहराए।**
कोऊ कितेक उपाय करो कहूँ होत हैं आपने पीउ पराए॥

इसमें अंतिम पद में जिस सामान्य का कथन किया गया है, उसका समर्थन पहले तीन पदों में कही गई बातों से किया गया है। इसलिए अर्थांतरन्यास स्पष्ट है। अंतिम पद में जो झिड़की है, वह बड़ी सुकुमार, मृदुल और रसीली है। नायिका ने नायक के लिए जिन दोषों का आश्रय लिया—उसमें जो दोष या गुण प्रादुर्भूत हुए—उनका असर नायक पर बिलकुल नहीं पड़ा, इस दृष्टि से देखने पर इसमें 'अवज्ञा' अलंकार की भी स्थिति मानी गई है।

जसवंतजसोभूषण में जिन कतिपय अलंकारों पर कविराजा मुरारिदानजी ने जोर दिया है, उनमें से कई का वर्णन 'ललितललाम' में अलंकारों के उदाहरण में नहीं है। फिर भी इनमें से कई एक के उदाहरण जसवंतजसोभूषणकार ने इन्हीं की कविता से खोज निकाले हैं। मतिरामजी की कविता के लिए यह कम गौरव की बात नहीं है। मुरारिदानजी प्रत्येक अलंकार का

लक्षण उसी के नाम में मानते हैं। उनकी राय में लक्षण का बोध नाम ही करा देता है। उसके अलग कहने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसे अलंकारों के भी कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) **संकोच**-नाम ही लक्षण है।

ज्यौं-ज्यौं परसे लाल तन त्यौं-त्यौं राखे गोय।
नवल बधू डर लाज तैं इंद्रबधू-सी होय॥

रसराज में उपर्युक्त दोहा 'नवोढ़ा' के उदाहरण में दिया हुआ है। अर्थ स्पष्ट है।

(२) **विषाद**-नाम ही लक्षण है।

रसराज के नष्टसंकेत अनुशयाना नायिका के उदाहरण में यह छंद दिया हुआ है। मुरारिदानजी इसमें विषाद अलंकार मानते हैं और वह स्पष्ट दिखलाई भी पड़ता है।

आई ऋतु पावस अकास आठौ दिसनि मैं
सोहत स्वरूप जलधरन की भीर को।
मतिराम **सुकबि कदंबन की बासजुत**
सरस बढ़ावैं रस परस समीर को।
भौन ते निकसि बृषभानु की कुमारि देख्यो
ता समै सहेट को निकुंज गिरयो तीर को।
नागरि के नैननि तैं नीर को प्रवाह बढ़यो
निरखि प्रवाह बढ़यो जमुना के नीर को॥

(३) **अन्योन्य**-नाम ही लक्षण है।

रसराज के प्रौढा विप्रलब्धा में मुरारिदानजी यह अलंकार स्थापित करते हैं—

साँझ ही सिंगार साजि संग लै सहेलिन कौं
सुंदरि मिलन चली आनँद के कंद कौं।
कबि *मतिराम* **मग करति मनोरथनि**
पेख्यो परजंक पै न प्यारे नँदनंद कौं।

नेह ते लगी है देह दाहन दहत गेह
बाग को बिलोकि द्रुम-बेलिन के बृंद कौं
चंद को हँसत तब आयो मुखचंद अब
चंद लाग्यो हँसन तिया के मुखचंद कौं ॥

(४) **परिणाम**-नाम ही लक्षण है।

प्राणपति अन्यत्र रात्रि बिताकर प्रातःकाल आया है, नायिका ने मान ।या। छली पति पैरों पर गिर पड़ा। नेत्रों में जो क्रोध के आँसू आ गए , वे रस के आँसू हो गए, तथा जो क्रोधमयी लालिमा नेत्रों में मौजूद थी, ़ अनुराग की लालिमा हो गई। मान के चिह्नों का परिणाम यह हुआ—

रिस ही के आँसू रस आँसू भए आँखिन मैं
रिस की ललाई सो ललाई अनुराग की।

(५) **परंपरित उपमा**-नाम ही लक्षण है परंपरित रूपक के समान। प्यारी और प्यारे आषाढ की संध्या को बैठे थे। प्यारे के मुँह से और ो का नाम निकल गया। नायिका पावसऋतु का रूप ही बन गई। भौंहें द्रधनुष के समान चढ़ीं। आँसू बूँदियों के समान गिरे और हास्य हंस के मान उड़ गया।

दोऊ अनंद सौं आँगन माँझ बिराजैं असाढ़ की साँझ सुहाई।
प्यारी को बूझत और तिया को अचानक नाउँ लियो रसिकाई।
आई उनै मुँह मैं हँसी कोपि प्रिया सुरचाप-सी भौंहैं चढ़ाई।
आँखिन तैं गिरे आँसू के बूँद सुहासु गयो उड़ि हंस की नाई ॥

ाषासौंदर्य

भाषा का सबसे प्रधान गुण यह है कि उसके द्वारा लेखक या कवि ापने जो भाव प्रकट करना चाहता हो, उनको प्रकाशित करने में ह पूर्णतया समर्थ हो। भाव प्रकट कर सकने की पूर्ण सामर्थ्य अच्छी भाषा लिए परमावश्यक है। जिस भाषा में इस गुण का अभाव है, वह अपूर्ण । भाषा के लिए दूसरा आवश्यक गुण यह है कि वह पाठक को लेखक या ।वि के अभिप्राय तक झटपट पहुँचा दे। यह न हो कि पाठक बेचारा समर्थ ाषा में अभिव्यक्त भाव तक पहुँचने के लिए भटकता फिरे। भाषा का तीसरा धान प्रशंसनीय गुण यह है कि वह ठीक मतलब की बात बहुत थोड़े से

शब्दों में प्रकट कर दे। इस प्रकार से, भाव प्रकट करने की पूर्ण सामर्थ्य, पाठक को भाव तक तत्काल पहुँचा सकना और वह भी सुंदरता के साथ, थोड़े शब्दों में, ये तीन गुण भाषा के लिए परमावश्यक हैं।

भाषा के और भी अनेक गुण हैं। उसमें सरलता होनी चाहिए। भाषा में जितना ही कृत्रिमता का अभाव होगा, वह जितना ही स्वाभाविक ढंग से बिना उद्योग के प्रवाहित होगी, उतनी ही उसकी प्रशंसा होगी। वसंतऋतु के आते ही पुराने वृक्ष भी नए से जान पड़ते हैं। वे पूर्णतया हरे-भरे दिखलाई पड़ते हैं। वृक्षों की यह तरोताजगी, यह नव भाव बड़ा ही रमणीय है। भाषा में भी इस तरोताजगी और नव भाव की आवश्यकता है। भाषा के स्वाभाविक प्रवाह के साथ जब सुकुमारता का संमिलन हो जाता है, तो सोने में सुगंध की कहावत चरितार्थ होती है।

भाषा में आवश्यकता और परिस्थिति के अनुकूल झुक जाने की भी सामर्थ्य होनी चाहिए। ऐसा न हो कि एक भाव या वर्णन से दूसरे भाव या वर्णन की ओर ले जाते समय वह उखड़ जाय। साराश * यह कि भाषा में लचकीलापन भी चाहिए। सामंजस्यपूर्ण स्वाभाविक प्रवाह को अपनाने की रुचि भी भाषा को अपेक्षित है। कवियों की भाषा में आप-ही-आप अलंकारों का प्रादुर्भाव होता जाता है। अलंकार- प्रस्फुटन के इस गुण पर जो भाषा कृपालु है, उसे अच्छी भाषा कहलाने का सौभाग्य प्राप्त है। पर इस अलकारप्रस्फुटन का यह अर्थ कदापि नहीं कि भाषा द्वारा अभिव्यक्त होनेवाला भाव अलंकारों के बोझ से इतना दबा दिया जाय कि कुचल ही जाय। अलकार भाव की रमणीयता बढाने के लिए हैं, न कि भाव को सामने से पीछे ढकेलने के लिए।

कविता की भाषा में कुछ विशेषताएँ हैं। 'कविस्वातंत्र्य' से लाभान्वित होकर कवि लोग अपनी भाषा में साधारण गद्य की भाषा से कुछ अलगाव कर लेते हैं। जिन भाषाओं का व्याकरण अधिक जटिल है, उनमें यह अलगाव कम होता है, पर जिन भाषाओं में व्याकरण भाषा का अनुगमन

*वी टेस्ट ए लांग्वेज बाइ इट्स इलेस्टिसिटी इट्स रिस्पांस टु रिद्म बाइ दि काइंडनेस विद ह्विच इट लुक्स अपान दि फिगरेटिव डिजायर्स आव् ए चाइल्ड एंड दि पोएट।

—अर्नेस्ट रिस

करता है, उनमें यह अलगाव अधिक दिखलाई पड़ता है। अनेक अप्रचलित शब्दों का प्रयोग करते रहना, प्रचलित शब्दों को तोड़मरोड़ लेना, व्याकरण की उतनी परवा न करना आदि अनेक ऐसी बातें हैं, जो कवियों की भाषा में पाई जाती हैं। हिंदी की ब्रजभाषाकविता में एवम् अँगरेजी के कवियों की भाषा में यह अलगाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। कविवर शेक्सपियर के विषय में एक विद्वान् समालोचक की राय है कि व्याकरण-सबंधिनी प्रत्येक प्रकार की निरंकुशताओं का प्रयोग उनकी कविता में प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। हिंदी भाषा के सूर, तुलसी, देव और बिहारी आदि सभी कवियों ने शब्दों की तोड़मरोड़ की है। इन दो एक विशेषताओं के होते हुए भी भाषा के ऊपर दिखलाए गुणों का संपूर्ण समावेश सत्काव्य में अवश्य पाया जाता है। यही क्यों, एक विद्वान् की तो राय है कि जहाँ पर सर्वोत्तम शब्द सर्वोत्तम क्रम से स्थापित हों, वही कविता है*। महाकवि टेनिसन की राय है कि कभी कभी कविता के एक ही शब्द में सारी कलाओं का सौंदर्य उमड़ पड़ता है†। कहने का तात्पर्य यह कि कविता की भाषा में शब्दों का प्रयोग और भी विदग्धतापूर्ण होता है। संस्कृत एवम् हिंदी-साहित्य के आचार्यों ने काव्य-शास्त्र के ग्रंथों में ओज, प्रसाद और माधुर्य-गुणों का उल्लेख किया है। सुष्ठु योजना की प्रशंसा की गई है। भाषा के जिन गुणों का ऊपर वर्णन किया गया है, उनमें ये सब गुण भी सहज ही में पाए जा सकते हैं।

भाषा की उत्तमता जाँचने की जो कसौटी हमने ऊपर स्थिर की है, उसको भाषातत्त्वविद् धुरंधर आचार्यों ने माना है। ब्रजभाषाकविता में उपर्युक्त सभी गुण बहुतायत से पाए जाते हैं। इस भाषा के कवियों में जहाँ तक भाषासौंदर्य का संबंध है, वहाँ तक कविवर मतिरामजी से बढ़कर अच्छी भाषा लिखने में कोई भी कवि समर्थ नहीं हुआ है। इसके कहने में हमें कुछ भी संकोच नहीं कि सूर, तुलसी, देव, बिहारी और पद्माकर आदि कोई भी कवि भाषासौंदर्य में मतिराम को पीछे नहीं छोड़ पाते हैं। हाँ, यह मानने को हम तैयार हैं कि इनमें से भी कई कवियों की भाषा ऐसी है कि जिससे मतिराम की भाषा अच्छी नहीं कही जा सकती। भाषासौंदर्य में उनके बराबर कई कवि अवश्य हैं, पर उनसे बढ़कर कोई भी नहीं है।

---

* पोएट्री इज दि बेस्ट वर्ड्स इन देयर बेस्ट आर्डर।

† आल दि चार्म आव् आल दि म्यूजेज आफेन फ्लोइंग इन ए लन्ली वर्ड।

—टेनिसन

मतिरामजी का भाषासौंदर्य पाठकगण निम्नलिखित अवतरणों में साव-धानी के साथ देखें—

(१) कवि नायिका के सौंदर्य का वर्णन करना चाहता है। वह चाहता है कि सौंदर्य का परिचय ऐसे कौशल से दिया जाय कि पूरे सौंदर्य का वर्णन भी न करना पड़े और मतलब भी पूरा बन जाय। बस, वह अंगदीप्ति पर निगाह डालकर चटपट आकर्षक नेत्रों के सामने पहुँचता है और वहाँ से अपना पीछा छुड़ाकर मुस्कान पर मुग्ध होता है। फिर तो वह जिस अंग पर निगाह डालता है, उसमें उसे सौंदर्य-ही-सौंदर्य देख पड़ता है। मतिरामजी ने अपने इस भाव को जिस भाषा द्वारा प्रकट किया है, वह इसे पूर्ण रूप से प्रकाशित करने में समर्थ हुई है।

(१) कुंदन को रँगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारु गुराई।
आँखिन मैं अलसानि चितौनि मैं मंजु बिलासनि की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं *मतिराम* **लहै मुसकानि मिठाई।**
ज्यौं-ज्यौं निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यौं-त्यौं खरी निकरै-सी निकाई॥

सो मतिरामजी की भाषा में भाव प्रकट करने की पूरी सामर्थ्य है। इस भाव तक पहुँचने में पाठक को भटकना नहीं पड़ता। भाषा आप-ही-आप उसे इस तक पहुँचा देती है। इसमें भाषा का दूसरा गुण अर्थात् तत्काल प्रधान भाव तक पहुँचाना भी मौजूद है। मतलब की बात जितने थोड़े शब्दों में प्रकट की जा सकती थी, की गई है। भिन्न-भिन्न अंगों का सौंदर्यवर्णन करने के लिए बहुत-सा स्थान चाहिए था, पर 'ज्यौं-ज्यौं निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यौं त्यौं खरी निकरै-सी निकाई' इस पद ने इतने थोड़े शब्दों में सबका सौदर्य वर्णन कर डाला। इसी में सब कुछ आ गया। सुदरतापूर्वक थोडे शब्दों में सब कुछ कह डाला गया। काव्यशास्त्र का सुप्रबध, सुष्ठु योजना और प्रसाद-गुण सभी एक साथ उपस्थित हो गए।

उपर्युक्त छंद की भाषा सरल है, इसमें दो मत नहीं हो सकते हैं। भाषा जिस स्वाभाविक प्रवाह के साथ बहती है, वह भी देखने ही योग्य है। उसमें तरोताजगी भी स्पष्ट झलक रही है। स्वाभाविक प्रवाह के साथ-साथ भाषा की सुकुमारता और भी मनोमोहिनी है।

अब भाषा के लचकीलेपन पर भी विचार कीजिए। छद में कवि ने नायिका की अंगदीप्ति का वर्णन किया, फिर आँखों की सरसता का बखान किया, फिर मुस्कान की मधुरता पर बिका, अंत में निकट से सभी अंगों को

ध्यान से देखा और सभी में बराबर सौदर्य का उत्कर्ष ही पाया। चारो ही वर्णन भिन्न-भिन्न हैं और होने भी चाहिए, पर मतिराम की रसीली और लचकीली भाषा ने इन चारो वर्णनों को एक ही पदार्थ में इस प्रकार गूँथ दिया है कि एक वर्णन से दूसरे वर्णन में प्रवेश करते समय भाषा के निरतर प्रवाह में रुकावट नहीं पडती। भाषा की मधुर धारा एक ही रूप में चारो वर्णनों का सिचन करती है। अलंकारप्रस्फुटन पर भी निगाह डालिए। 'कुंदन को रँगु फीको लगै' में प्रतीप, सपूर्ण छंद में स्वभावोक्ति, 'को बिन मोल बिकात नहीं' में 'काकु' और लोकोक्ति तथा निहारिये, नेरे, नैननि, निकरै और निकाई में अनुप्रासचमत्कार मौजूद है। छंद में ये अलंकार कवि के प्रयास से नहीं आए, वरन् सहज ही समर्थ रचना की सेवा करने को साथ हो लिए हैं। उपर्युक्त पद्य में संभवतः 'सरसाई' का व्यवहार 'सरसता' के लिए किया गया है। वह प्रयोग काव्येतर भाषा में चिंत्य है, परंतु यहाँ तो साधारण कविस्वातंत्र्य के अतर्गत आ जाता है। इस छद के विषय में यहाँ जो कुछ लिखा गया है, प्रायः वे ही सब बातें आगे के उदाहरणों के विषय में भी कही जा सकती हैं। इस कारण वे वहाँ पर दोहराई नहीं गई हैं। हमारी मंद बुद्धि के अनुसार आगे के चार छदों के अतिम पदों में उत्तम शब्दों को उत्तम क्रम से स्थान मिला है। कदाचित् टेनिसन की कविता की परिभाषा ऐसे ही शब्दसमूह के लिए है।

(२) गुच्छनि के अवतंस लसैं सिर पच्छन अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर पल्लव सों *मतिराम* सुहायो।
गुंजनि के उर मंजुल हार सुकुंजनि तैं कढ़ि बाहर आयो।
आजु को रूप लखै नँदलाल को आजुहि नैनन को फल पायो॥

(३) मोरपखा *मतिराम* किरीट मैं कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुसकानि मनोहर कुंडल डोलनि मैं छबि छाई।
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई।
वा मुख की मधुराई कहा कहौं मीठी लगै अँखियान लुनाई॥

(४) हौं मिलि मोहन सों *मतिराम* सुकेलि करी अति आनँदवारी।
तेई लता द्रुम देखत दुःख चलै अँसुवा अँखियान तैं भारी।
आवति हौं जमुना तट कों नहिं जानि परै बिछुरे गिरिधारी।
जानति हौं सखि आवन चाहत कुंजन तैं कढ़ि कुंजबिहारी॥

(५) कोऊ नहीं बरजैं *मतिराम* रहो तितही जितही मन भायो।
काहे को सौंहैं हजार करो तुम तो कबहूँ अपराध न ठायो।
सोवन दीजै न दीजै हमैं दुख यों ही कहा रसबाद बढ़ायो।
मान रह्योई नहीं मनमोहन मानिनी होय सो मानै मनायो॥

उपर्युक्त छंदों में जो साहित्यचमत्कार भरा हुआ है, वह सर्वत्र सहज सुलभ नहीं है। इन सबके अंतिम पद तो इतने मनोहर हैं कि बस, मतिराम की लेखनी चूम लेने की इच्छा होती है। कुछ पद अथवा पद्यांश और लीजिए—

(६) तैं बरनै निज बैनन सों सखि! मैं निज नैनन सों जनु देखे।
(७) सौतुक-सो सपनो भयो सपनो सौतुक रूप।
(८) और भटू न भई कछु बात गई इतने ही मैं नींद निगोड़ी।
(९) कौन तिन्हैं दुख है जिनके तुम-से मनभावन छैल छबीले।
(१०) कोऊ कितेक उपाय करो कहूँ होत हैं आपने पीउ पराए।

इन पद्यांशों में जो सरसता भरी हुई है, उसके साखी सहृदयों के हृदय ही हैं।

(११) दारिद-दैत्य बिदारिबे को भई भाऊ दिवान की रीझ <u>भवानी</u>।
(१२) सत्ता के सपूत <u>राजऋषि</u> भावसिंह कीन्हो
आपुने चरित्रनि प्रगट रूप राम को।
(१३) कहा चतुराई ठानियत प्रानप्यारी तेरो
मान जानियत <u>रूखी</u> मुख-मुसकानि सों।
(१४) सकल जगत पानिप रह्यो <u>बूँदी</u> मैं ठहराय।

इन पद्यांशों में रेखाकित शब्दों में कला का सौंदर्य लबालब भरा हुआ है। मतिरामजी के भाषासौंदर्य का केवल एक उदाहरण और दिया जाता है—

(१५) बेलिन सों लपटाय रही है तमालन की अवली अति कारी।
कोकिल केकी कपोतन के कुल केलि करैं अति आनँद भारी।
सोच करै जिन होहु सुखी *मतिराम* प्रबीन सबै नर-नारी।
मंजुल बंजुलकुंजन मैं घनपुंज सखी ससुरारि तिहारी॥

गजवर्णन

कविवर मतिराम ने 'ललितललाम' में बहुत-से छंद राव भाऊसिंहजी के हाथियों की प्रशंसा के भी दिए हैं। इस प्रकार के वर्णनों में भी कवि की प्रतिभा का अच्छा चमत्कार दिखलाई पड़ता है। भाषा के कवि हाथियों की प्रशंसा करते समय सूँड़ की चचलता, उनकी ऊँचाई और गंड-स्थल में मद के छलकने आदि का वर्णन अवश्य करते हैं। ब्रिटिश राज्य के पहले भारतीय रणसैन्य का एक अंग हाथियों से भी सुसज्जित रहता था। इस कारण उस समय हाथियों का बड़ा महत्त्व था। अँगरेज सरकार ने फौज से हाथियों का बहिष्कार-सा कर दिया। इस कारण अब उनका उपयोग केवल शोभा और प्रदर्शन (नुमायश) के लिए रह गया है। सवारी और खासकर शेर के शिकार में हाथी अब भी उपयोगी हैं। संस्कृतसाहित्य में भी हाथियों के परम मनोहर वर्णन हैं। समुद्रमथन से जो चतुर्दश रत्न प्राप्त हुए थे, उनमें इंद्र का ऐरावत भी प्रसिद्ध है। उधर पृथ्वी का भार धारण करने-वाले आठ दिग्गजों का कथन तो कवियों ने बहुत ही अधिक किया है। धर्मशास्त्र के अनुसार गजदान की बड़ी महिमा है; इस प्रकार के दान से दाता को बड़ा पुण्य होता है। कविलोग गजदान पाना बड़े सौभाग्य की बात समझते हैं। हिंदी के कवियों ने हाथियों का बड़ा ही अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। उनकी ऊँचाई पहाड़ों से भी अधिक बतलाई गई है, उनके मदजल से समुद्र बन गए हैं, इत्यादि। मतिरामजी के वर्णन भी ऐसी अतिशयोक्तियों से खाली नहीं हैं। तो भी उन्होंने जो वर्णन उठाया है, उसका अंत तक मार्मिकता के साथ निर्वाह किया है। हम पाठकों के मनोरंजन के लिए यहाँ 'ललितललाम' से कुछ छंद उद्धृत करते हैं—

(१) अधिकअभिन्नरूपक उदाहरण में मतिरामजी हाथियों को सजीव पर्वत बतलाते हैं। पहले तीन पदों में पर्वत और गजों की अभिन्नता का निर्वाह करके अंतिम पद में सजीवतारूप अधिकता का बड़ा ही सुंदर उल्लेख हुआ है। पर्वत पत्थर आदि कठोर वस्तुओं के बने होते हैं, तो गज भी संग्राम में अपने शरीर की कठोरता का पूरा परिचय देते हैं। यदि पर्वतों पर अनेकानेक झरने बहते दिखलाई पड़ते हैं, तो हाथियों के गंडस्थल से भी मदधारा का प्रवाह जारी रहता है। यदि पर्वतों पर विविध प्रकार के वृक्षों के फूल फूलते हैं, तो हाथियों की रंग-बिरंगी झूलें भी वैसी ही शोभा दिखलाती हैं। यहाँ तक कि यदि पर्वतों में गेरू की लाल लाल चोटियाँ देख पड़ती हैं,

तो हाथियों के मस्तक भी सुंदर सिंदूरमंडित रहते हैं। फिर पर्वतों और इन हाथियों में अंतर ही क्या रह जाता है ? और तो कुछ नहीं, केवल इतना ही अतर दिखलाई पड़ता है कि पर्वत तो एक स्थान पर स्थिर हैं, पर ये हाथी, जिधर देखो, उधर ही चलते-फिरते नजर आते हैं। उदार भावसिंहजी ने ऐसे ही 'सजीव पहार' (अभिन्नरूपक में अधिकतासूचक शब्द) याचकों को बखशिश में दिए हैं। पूरा छंद इस प्रकार है—

जंग में अंग कठोर महा मदनीर झरैं झरना सरसे हैं।
फूलनि रंग घने *मतिराम* महीरुह-फूल प्रभा निकसे हैं।
सुंदर सिंदुरमंडित कुंभनि गैरिक शृंग उतंग लसे हैं।
भाउ दिवान उदार अपार सजीव पहार-करी बकसे हैं॥

(२) पावसऋतु में विरहपीडिता वियोगिनियों को बहलाते समय सखियाँ बड़ी चतुराई से कहती हैं कि तुम सामने जिनको मेघ (उद्दीपन विभाव) समझकर और भी विकल हो रही हो, वे वास्तव में मेघ नहीं, बल्कि रावराजा भाऊसिंहजी के दिए हुए हाथियों का समूह है। वियोगिनियाँ पूछ सकती हैं—'फिर यह इंद्रधनुष कैसा ? बकपक्ति कैसी ? और वर्षाकाल में ही सुलभ यह गंभीर गर्जन कैसा' ? सखियाँ इन प्रश्नों का भी सामाधान बड़ी खूबी से करती हैं। वे कहती हैं—'जिन बहुमूल्य जवाहरात से गजों के शरीर सजाए गए हैं, उन्हीं की विविध वर्ण-ज्योति से इंद्रधनुष का भ्रम होता है। वैसे ही लंबे लबे और श्वेत गजदंतों की अवलियाँ 'बकपंक्ति' का भाव उत्पन्न करती हैं। दुंदुभी का शब्द ही घोर घनगर्जन के अनुरूप समझ पड़ता है'। स्वयम् कवि के शब्दों में सुनिए—

पावस भीति बियोगिनी बालनि यों समुझाय सखी सुख साजैं।
जोति जवाहिर की *मतिराम* नहीं सुरचाप छिनौं छबि छाजैं।
दंत लसैं बकपाँति नहीं धुनि दुंदुभी की न घने घन गाजैं।
रीझिकै भाऊ नरिंद दिये कबिराजनि के गजराज बिराजैं॥

उल्लिखित छद में वास्तविक पावसऋतु को छिपाकर हाथियों का वर्णन होने से छेकापह्नुति अलंकार स्पष्ट है।

(३) बूँदीनरेश रावराजा भाऊसिंह उदार पुरुष थे, यह बूँदी के इतिहास द्वारा बिलकुल स्पष्ट है। समय समय पर उन्होंने जी खोलकर दान दिए, यह भी इतिहासप्रेमियों को विदित ही है। गजदान का महत्त्व

भारतीय नरेशों को ही विदित है। शायद बूँदी के राजघराने के समान गज-दान करने का सौभाग्य तत्कालीन दिल्लीश्वर को छोड़कर और किसी भी राजघराने को उस समय नहीं प्राप्त हो सका था। भाऊसिंहजी के पूर्वज छत्रसालजी ने अपने विवाह में जो कि उदयपुर में हुआ था, इतना दान किया था कि लोग आश्चर्यचकित रह गए थे। बूँदी के इतिहास से पता चलता है कि दान में दिए जानेवाले अकेले हाथियों की संख्या ही सात सौ थी। भाऊसिंहजी अपने पूर्वजों के ऐसे गौरव को भुलानेवाले पुरुषों में न थे। गजदान करने में उन्होंने भी अपने हृदय को कभी कुंठित नहीं किया। ऐसे ही दानों के स्मारकस्वरूप मतिरामजी के छंद और कतिपय छंदांश ध्यान देने योग्य हैं—

हाथिन बिदारिबे कौं हाथ हैं हथ्यार तेरे
दारिद बिदारिबे कौं हाथिये हथ्यार हैं।

अर्थात् किसी दरिद्र का दारिद्र्य नष्ट करने का विचार उठते ही 'गज-दान' से छोटा दान करना आप जानते ही नहीं।

दुज्जनि के दल कबि लोगनि के दारिदनि
नीकै करि गजनि की फौजनि सौं मारे हैं।
सत्ता को सपूत राव भावसिंह रीझि देत
छहूँ ऋतु छके मदजल छलकत हैं।
मंगन की कहा है मतंगन के माँगिबे को
मनसबदारन के मन ललकत हैं॥

ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम और सुप्रतीक नाम के आठ दिग्गज प्रसिद्ध हैं। रत्नावली अलंकार में संपुटित करके मतिराम ने इन दिग्गजों से भाऊसिंहजी के हाथियों की तुलना की है और फिर यह दिखलाया है कि भाऊसिंहजी ऐसे ही हाथियों का दान किया करते थे—

जीतय जे रावत ऐरावत सौं जंग अंग
पुंडरीक के गनत पुंडरीक-छंद हैं।
बामन बामन मृदु कुमुद कुमुद गनै
अंजन के जैतवार अंजन-से कंद हैं।

पुष्पदंतहू के दंत तोरयो ज्यों पुहुपसार
छीनि लेत सार्वभौमहू के सदा मद हैं।
प्रबल प्रतीक सुप्रतीक के जितैया रैया
राव भावसिंह तेरे दान के दुरद हैं॥

कविराजा सूर्यमल्ल का 'वंशभास्कर' नामक ग्रंथ पढने से जाना जाता हैं कि कविवर मतिरामजी ने बूँदीनरेश के हाथियों की जिस प्रकार प्रशंसा की है, उससे भी यह कथन सत्य जान पड़ता है।

(४) गज और ग्राह की पुराणप्रसिद्ध घटना का वर्णन भी मार्मिक कवि मतिराम ने बडे ही अनूठे ढंग से किया है। 'ललितललाम' में उनके इस संबंध के दो छद बडे ही मर्मस्पर्शी हैं। उनमें का एक छद यहाॅ उद्धृत किया जाता है—

जूथपति पैठ्यो पानी पोषत प्रबल मद
कलभ करेनुकनि लीने संग सुख ते।
ग्राह गह्यो गाढ़े बैर पीछले के बाढ़े
भयो बलहीन बिकल करन दीह दुख ते।
कहै *मतिराम* सुमिरत ही समीप लखे
ऐसी करतूति भई साहिब सुरुख ते।
दोऊ बातैं छूटीं गजराज की बराबरि ही
पाँव ग्राहमुख ते पुकार निज मुख ते॥

(५) हिंदी भाषा के कवियों में जैसा गजवर्णन मतिरामजी ने किया है, वैसा वर्णन करने में अन्य कवि समर्थ नहीं हो सके। यदि कोई कवि ऐसे वर्णनों में इनकी समता करता है, तो वह इनके भाई कविवर भूषणजी ही हैं। लेकिन, हमारी राय में, यह उनके आगे ही रहते हैं। तुलना के लिए उभय कविवरों के कुछ छंद यहाॅ उद्धृत करना अनुचित न होगा।

भूषणजी के शिवराज कविराजों को ऐसे ऐसे हाथी दान में देते हैं कि उनकी फिक्र मिट जाती है। जरबाफ की बनी झूलें उन हाथियों पर पड़ी झिलमिलाती हैं। पैर जजीरों से जकडे रहते हैं। भ्रमर भन-भन करते हैं। घंटे घनघनाते हैं। उनकी गरज को सुनकर दिग्गज शरमा जाते हैं और मद इतना बहता है कि उसमें पर्वत डूब जाते हैं। भूषणजी का इस आशय का छंद नीचे लिखा जाता है—

साहितनै सिवराज ऐसे देत गजराज
जिन्है पाय होत कबिराज बेफिकिरि हैं।
भूलत झलमलात झूलैं जरबाफन की
जकरे जँजीर जोर करत किरिरि हैं।
भूषन भँवर भननात घननात घंट
पग झननात मनो घन रहे घिरि हैं।
जिनकी गरज सुने दिग्गज बेआब होत
मद ही के आब गड़काब होत गिरि हैं॥

भूषणजी का यह वर्णन उत्तम होने पर भी कुछ असंबद्ध-सा है। कविराजजी गजराज पाने से ऐसे कुछ बेफिक्र हो गए हैं कि उनको उस पर बारीक निगाह डालने का मौका ही नहीं मिल रहा है। झूल पर निगाह पड़ी, फिर पैरों पर जा ठहरी, भ्रमरशब्द सुना, फिर घटा घनघनाने लगा। जब कहीं गरज सुनी, तब मदजल पर निगाह गई। कहने का तात्पर्य यह कि भूषणजी की निगाह पीठ से पैरों पर, फिर वहाँ से गंडस्थल पर (पहली बार गंडस्थल पर पहुँचकर भी कविजी को मदजल नहीं देख पडता), फिर पैरों पर, फिर सूँड पर (गरज सुनकर), तब फिर गडस्थल पर बिछली-बिछली फिरती है। इस बेफिक्री में हाथी की ऊँचाई, उसका सुडौलपन, उसका युद्ध के उपयुक्त होना आदि सब कुछ भूषणजी भूल जाते हैं, लेकिन मतिरामजी ऐसे 'बेफिकिरि' कवि नहीं हैं। उनकी निगाह जहाँ गड़ती है, वहाँ की थाह लिए बिना नहीं हटती। सबसे पहले वह हाथी की ऊँचाई देखते हैं, पर बडे डील-डौल से ही क्या होता है? सो उनके हाथी 'जैतवार' (जीतनेवाले) ठहरते हैं। पर बहुत से हाथी जैतवार होते हुए भी आतंक जमानेवाले नहीं होते। इस कारण मतिरामजी के हाथियों की 'चिक्कार-धुनि' सुनकर दिग्गज काँपते (हलत) हुए पाए जाते हैं। उपर्युक्त गुणों से युक्त होने पर भी हाथियों की बनावट कुढंगी हो सकती है। वे अकेले काम के होने पर भी और हाथियों के साथ, सेना में, काम न दे सकनेवाले हो सकते हैं, पर मतिरामजी के हाथी तो 'सैन सोभा के ललाम' हैं। पर क्या वे कृत्रिम साज से हीन हैं? नहीं, वे 'अभिराम जरकस-झूल झाँपे झलकत हैं'। यह सब होने पर भी सभव है कि वे समय विशेष पर ही काम देनेवाले हों, अन्य समय उनमें युद्ध के उपयुक्त मस्ती न रहती हो। सो यह बात भी नहीं है। वे 'छहूँ ऋतु छके मदजल छलकत हैं'। भाऊसिंहजी के ऐसे हाथियों के पाने के लिए कवि,,

चारण, ब्राह्मण (मंगन) आदि ही उत्सुक नहीं रहते, बल्कि सैकड़ों हाथियों के अधिपति बड़े-बड़े मनसबदारों के मन भी उनकी प्राप्ति के लिए ललकते रहते हैं। छंद इस प्रकार है—

अंगनि उतंग जंग जैतवार जोर जिन्हैं
चिक्करत दिक्करि हलत कलकत हैं।
कहै *मतिराम* सैन सोभा के ललाम अभि-
राम जरकस झूल झाँपे झलकत हैं।
सत्ता को सपूत राव भावसिंह रीझि देत
छहूँ ऋतु छके मद्जल छलकत हैं।
मंगन की कहा है मतंगन के माँगिबे को
मनसबदारन के मन ललकत हैं॥

मतिरामजी का शब्दसमूह बहुत ही सुदृढ और हर ओर से भाव को पुष्ट करनेवाला है। उसमें गभीरता के साथ 'अर्थव्यक्ति' का भी समावेश है।

उलदत मद अनुमद ज्यौं जलधि जल
बलहद भीम कद काहू के न आह के।
प्रबल प्रचंड गंडमंडित मधुपवृंद
बिंध्य-से बलद सिंधु सातहू के थाह के।
भूषन भनत झूल झंपति झपान झुकि
झूमत झुलत झहरात रथ डाह के।
मेघ से घमंडित मजेजदार तेजपुंज
गुंजरत कुंजर कुमाऊँ-नरनाह के॥

सजल जलद जिमि झलकत मद्जल
छितितल हलत चलत मंद गति मैं।
कहै *मतिराम* बल-बिक्रम बिहद सुनि
गरजनि परैं दिगवारन बिपति मैं।
सत्ता के सपूत भाऊ तेरे दिये हलकनि
बरनी उँचाई कबिराजन की मति मैं।
मधुकरकुल करिनीनि के कपोलनि तैं
उड़ि-उड़ि पियत अमिय उड़ुपति मैं॥

उभय कविवरों के दोनो ही छद परम प्रसिद्ध हैं। रसिकों का हृदय ही इस बात का साक्षी है कि दोनो छदों में आगे कौन निकल रहा है। हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि

प्रबल प्रचंड गंडमंडित मधुपबृंद
बिंध्य-से बलंद सिंधु सातहू के थाह के।

इस पद द्वारा कुमाऊँ-नरनाह के हाथियों की उँचाई का जो वर्णन भूषणजी ने किया है, वह अत्यत उदात्त होने पर भी मतिरामजी के तादृश अनुपम वर्णन को नहीं पाता—

मधुकरकुल करिनीनि के कपोलनि तें
उड़ि-उड़ि पियत अमिय उड़ुपति में।

इस पद में उदात्त के साथ जिस सौंदर्य का सामजस्य हुआ है, वह अनुपम है, इसमें कोई भी सदेह नहीं।

विस्तारभय से गजवर्णन-सबधी अन्य छदों को यहाँ उद्धृत करना ठीक न होगा। जो पाठक इस विषय में कविवर के रचनाकौशल का पूर्ण रूप से अध्ययन करना चाहें, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे एक बार 'ललितललाम' को मन लगाकर पढ जायँ। मतिरामजी का गजवर्णन अपूर्व है।

मृदुहास्य

साहित्यदर्पणकार ने हास्य को छ प्रकार का माना है। मुस्किराहट, इतनी मुस्किराहट कि दाँत भी दिखलाई पड़ जायँ, मधुर मुस्किराहट, भली भाँति हँसना, हँसते-हँसते नेत्रों में पानी का आ जाना तथा हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाना, ये ही हास्य के छ भेद हैं इनमें से प्रथम तीन का कुछ विशेष आदर है। मतिरामजी के काव्य में 'मृदु हास्य' का ठौर-ठौर पर वर्णन है। उनके वर्णनों से जान पडता है कि मृदु हास्य से उनका प्रयोजन ऊपर-दर्शित हास्य के प्रथम तीन भेदों से है। मृदु हास्य के अतिरिक्त भी उन्होंने हास्य का वर्णन किया है, परंतु वह बहुत कम। ललितललाम और रसराज के मृदु हास्य-संबधी कुछ पद्याश यहाँ गद्यलेख-रूप में दर्शित किए जाते हैं—

चंद्रानन उदित हुआ है, जिसमें मृदु मंजु हँसी की ज्योत्स्ना छिटक रही है। इस मृदु मुस्कान का उद्योत तो ऐसा ही है, मानो गगाजी के उज्ज्वल

निर्मल जल में चंद्रमा की दीप्ति झलक रही हो। क्या कभी आपने चंपकवल्ली से चमेली के फूल झड़ते देखे हैं? यदि नहीं, तो उस चंपक-वर्णवाली नायिका के मृदु हास्य को जाकर देखिए। श्रीकृष्णजी के श्यामल कोमलाग के साथ एक सफेद फूलों की माला झूल रही है। बेचारी का रंग बदरग हो गया है। उस पर श्यामता छा गई है। पर यह देखिए कि राधिकाजी ने जरा-सा मुस्किरा दिया। हार की सारी श्यामता न जाने कहाँ गई। वह फिर सफेद का सफेद दिखलाई पड़ रहा है। मृदु मुस्कान का कैसा रमणीय प्रभाव है! इस मृदु मुस्कान का पान श्रीकृष्ण भगवान् के नेत्र दिन-रात किया करते हैं, फिर भी बेचारों की पिपासा-शाति नहीं होती है। यह मंद मुस्किराहट कदर्प के अजेय दर्प का प्रकट रूप है। शरच्चंद्र की चाँदनी इसका सामना कैसे कर सकती है? प्रभातकाल के विकसित अरविंद इसको देखकर लज्जित हो जाते हैं। इसके थोड़े-से प्रभाव से मोहिनी-सी पड़ जाती है। प्रेमिकाएँ अपने प्रेमी को बहुमूल्य हीरों की भेंट देने के वादे का स्मरण कराने के लिए थोड़ा-सा मुस्किरा दिया करती हैं। मुस्किराहट और हीरे के समान उज्ज्वल आभा का स्मरण करके तुरत प्रेमी को अपने वादे याद आ जाते हैं। कलहरूप वर्षाकाल में जब अश्रुबुंदों की झड़ी लग जाती है, तो यह मृदु हास्य भी हस के समान न जाने कहाँ चला जाता है। कैसा अपूर्व मृदु हास्य है! क्या सरस्वती देवी का श्वेत उत्तरीय हिल रहा है? क्या यह कामदेव का धवलित यशःपुंज है? सुवासित सुमनों का पराग तो नहीं बिखर गया है? श्रीराधिकाजी की नथ में पडे हुए गजमुक्ताओं की आभा का विस्तार तो नहीं है? मूर्तिमान् हो करके हृदयोल्लास तो नहीं निकल रहा है? श्रीकृष्णचंद्र के नेत्रों को शीतल करने के लिए यह कर्पूरचूर्ण तो नहीं फेका गया है? अनोखे मृदु हास्य, तूने कैसे-कैसे सदेह उत्पन्न कर दिए हैं?

बानी को बसन कैधौं बात के बिलास डोलै
कैधौं मुखचंद चारु चंद्रिकाप्रकास है।
कबि *मतिराम* कैधौं काम को सुजस कै
परागपुंज प्रफुलित सुमनसुबास है।
नाक नथुनी के गजमोतिन की आभा कैधौं
देहवंत प्रकटित हिये को हुलास है
सीरे करिबे को पियनैन घनसार कैधौं
बाल के बदन बिलसत मृदु हास है॥

ललित लोचन

दृग सामंत के समान कुवलय को भी जीत लेते हैं। जलधि की समता भी नेत्रों से बड़ी ही अच्छी है। पर जलधि का खारापन अच्छा नहीं लगता है। इधर आँखों की लुनाई अच्छी लगती है। ललित लोचनों को सजल जलद भी कह सकते हैं। इनकी विविध अवस्थाओं को देखकर ही कवि ने कह डाला है—

एक ओर मीन मनो एक ओर कंजपुंज
एक ओर खंजन चकोर एक ओर हैं।

इसका प्रभाव ऐसा है कि

खोलिकै नैनन देखै जो नैक तो स्याम सरोज पराजय साजै।

पर ये भयकारी नहीं हैं। दूर से इनको देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है, तभी तो किसी ने अपने प्यारे के स्वागत में—

दृगकमलन के द्वार में बाँधे बंदनवार।

इनकी किस-किस बात की प्रशंसा की जाय। कभी-कभी तो इनमें सहज श्यामता ऐसी पाई जाती है कि

कजरारी अँखियान में भूल्यो काजर एक।

पूर्ण प्रफुल्ल नेत्रों की तो बात ही क्या, यहाँ तो यह दशा है कि

अधमूँदी अँखियन दई मूँदी प्रीति उधार।

पर इस प्रीति को समझनेवाले ही समझ पाते हैं। सबके पहुँच की यह बात नहीं है।

वेई नैन रूखे-से लगत और लोगन को
वेई नैन लागत सनेहभरे नाह को।

परंतु जब रुखाई छोड़कर ये बिहँस उठती हैं, तो किसी को शब्द के बिना ही उत्तर मिल जाता है—

लाजभरी अँखियाँ बिहँसीं चली बोल कहे बिन ऊतरु दीनो।

परंतु कभी-कभी आँखों की इस हँसी का परिणाम इस हद तक भी पहुँच जाता है कि कवि को चेतावनी देनी पड़ती है—

बढ़ि जैहै इन दृगन के हाँसन ते उपहास।

देवागनाओं की आँखों में यह विशेषता होती है कि उन्हें पलक नहीं मारनी पड़ती। नायिका की चकितावस्था में उसकी आँखें भी निर्निमेष हो जाती हैं—

नैक निमेष न लागत नैन चकी चितवै तिय देवतिया-सी।

एक ओर नेत्रों के स्थिर भाव का यह दृश्य है, तो दूसरी ओर मुँहजोर दृगतुरंग किसी की मानते ही नहीं हैं—

मानत लाज-लगाम नहिं नैक न गहत मरोर।
होत लाल लखि बाल के दृगतुरंग मुँहजोर॥

खैर, जहाँ इच्छा होती है, वहाँ जाते तो हैं ही, पर वे सूर भी ऐसे हैं कि समरभूमि (रणस्थल—समर-भूमि—कामस्थान) से फिर विचलित भी किसी प्रकार नहीं होते। इन नेत्र सूरमाओं को कमान भौंहें और तीर कटाक्ष हैं—

भौंह कमान कटाक्ष सर समरभूमि बिचलै न।
लाज तजेहूँ दुहूँन के सजल सुभट-से नैन॥

कवि क्या ही ठीक पूछता है—

तिरछी चितौनि मैन बरछी-सी कौन की ?

बरछी तो बरछी, पर ये तीक्ष्ण शर भी कैसे बेढब हैं! हृदय में कितने गहरे गड़े हैं! मतिरामजी का कितना अच्छा नेत्रवर्णन है—

आलसबलित कोरे काजरकलित
_मतिराम_ वे ललित अति पानिप धरत हैं।
सारस सरस सोहैं सजल सहास सग-
रब सबिलास है मृगानि निदरत हैं।
बरुनी सघन बंक तीछन कटाक्ष
बड़े लोचन रसाल उर पीर ही करत हैं।
गाढ़े है गड़े हैं न निसारे निसरत मैन
बान-से बिसारे न बिसारे बिसरत हैं॥

नेत्रबाणों का दृश्य पाठकों ने देखा, अब इनके और भी कर्तब देखने चाहिए। ये बाजीगर भी पूरे हैं। देखते-न-देखते श्याम रसाल को कंटकित कदंब में परिवर्तित कर देना भी इनके बाएँ हाथ का खेल है। देखिए—

नैसुक निहारे ते नवेली नैनकोरन सौं
ऐसी अद्‌भुत की कलानि आचरति है।
ललित ललाम स्याम रसिक रसाल को
कदंब मुकुलित के कुलनि सौं करति है॥

आइए इन नेत्रों की और भी बुराई आपको सुनाई जाय। देखिए, इन्होंने कैसी अनीति मचा रखी है! सबके देखते-न-देखते चित्त की चोरी कर ही डालते हैं। चोरी यों ही महापातक है। बड़ा भारी अपराध है, पर ये अस्त्र चलाकर घायल भी कर डालते हैं। इनके कटाक्ष जब छाती में गड़ते हैं, तभी समझ पड़ता है कि ये कामशरों से भी तीक्ष्णतर हैं। चोरी और दूर से फेककर अस्त्रों द्वारा घायल करने की बात निंद्य होने पर भी डाके की अपेक्षा कम घृणित है। परतु ये दुष्ट नेत्र तो कमल और खजन तथा मछलियों की छवि को जबरदस्ती छीन बैठे हैं। मृगों के नेत्रों की शोभा भी बलात् लूट ली गई है। यह कितने दुःख की बात है। फिर भी आश्चर्य तो इस वात का है कि इतनी अनीति करके भी इन नेत्रों की प्रशंसा क्यों होती है? देखिए—

देखत ही सबके चुरावती है चित्तनि कौं
फेरिकै न देती यों अनीति उमड़ाई है।
कबि *मतिराम* काम तीरहू तैं तीछन
कटाछनि की कोरैं छेदि छाती मैं गड़ाई है।
खंजरीट कंज मीन मृगनि के नैननि की
छीनि-छीनि लेती छबि ऐसी तैं लड़ाई है।
तेरी अँखियान में बिलोकी यह बड़ी बात
इते पर बड़ी-बड़ी पावती बड़ाई है॥

मन और हृदय

यदि इस हृदय में स्नेह का अंकुर नहीं उगता है, तो निस्संदेह यह ऊसर-क्षेत्र के समान है। उर भी कितना कठोर होगा, इसका पता तो इसी बात से मिलता है कि उरोज कितने कठोर होते हैं। प्रेमी की शिकायत है कि उसका स्मरण नहीं किया जाता, परतु जो कठिनता है, उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता। स्मृतिमूर्ति का निवासस्थान हृदयमंदिर है, परंतु दुर्भाग्यवश वह हृदय ही खो गया है। अब कहिए, स्मृति कैसे की जाय? हृदय की बातें ही

निराली हैं। आग लगती है कहीं और ज्वालमालाएँ उठती हैं हृदय में। हृदय का साथी मन भी वैसा ही रँगीला है। उसके कर्तब और भी निराले हैं। कभी तो वह विराट्काय ईश्वर तक को अपने मदिर में फाँस लेता है और फिर छुटकारा देने का नाम भी नहीं लेता। कभी वह स्वयम् श्रीकृष्णचंद्र की वनमाला में बैठकर वन-वन में मारा-मारा घूमता है। बवंडर में पड़े हुए पत्ते की दशा तो पाठकों ने देखी ही होगी। बस, कभी-कभी यह मन भी उसी के समान किसी प्रेमी के ऊपर ही मँडराया करता है। उस समय इसकी सामर्थ्य न जाने कहाँ हवा खाने चली जाती है। पर यह रसिक भी परम प्रवीण है। सुधासरोवर में मीन के समान कलोलें भी खूब करता है। धूर्तता भी इसमें कम नहीं है। देखो न, शिवजी को धतूर के फूल-मात्र देकर ऐसा राजी किया कि तीनो लोक की साहिबी अपने हाथ में कर ली। इसके हलकेपन की बातें तो आपने जानीं; परतु यह गरुआ भी बहुत है। इसका नाम क्या सूचित करता है? सो अत्यत सूक्ष्म कटिवाली नायिकाएँ इससे सदा सशंकित रहती हैं। यद्यपि यह उनके अनुरूप रहता है, फिर भी उन्हें इसके भार से अपनी पतली कमर के टूट जाने का भय बना ही रहता है। शिवजी को इसने जिस प्रकार से अपने वश में किया है, वह तो आप जानते ही हैं। बस हमारी तो मन से यही प्रार्थना कि जैसे अब तक नाना प्रकार के कष्ट उठा-उठाकर भी हमने उसका कहना माना है, उसी प्रकार उसे भी अब हमारा कहना मान करके थोडे में सिद्धि देनेवाले श्रीशकर के चरणों का आश्रय लेना चाहिए। इससे संपूर्ण संताप दूर हो जायगा। शीतलता छा जायगी। इससे सरल और दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। त्रिलोकीनाथ महादेव को छोड़कर धतूर और मदार के फूलों से और कौन संतुष्ट होते देखा गया है।

तेरो कह्यो सिगरो मैं कियो निसि-द्योस तप्यो तिहुँ तापन पाई।
मेरो कह्यो अब तूँ करि जो सब दाह मिटै परिहै सियराई।
संकर पायनि मैं लगि रे मन थोरे ही बातनि सिद्धि सुहाई।
आक धतूरे के फूल चढ़ाए तैं रीझत हैं तिहुँ लोक के साँई॥

फिर वन में डाकुओं के समान रहकर जो-जो घोर कर्म इसने किए हैं, उनका प्रायश्चित्त विना अपने आपको शंकर के अर्पण किए कैसे होगा। अरे मन, क्या तुझे याद नहीं कि तूने—

भौंह कमान कै लोचन बान कै लाजनि मारि रहै बिसवासी।
गोल कपोलनि केलि करै भयो कुंडल लोल हिंडोल बिलासी।

कोट किरीट किये *मतिराम* करै चढ़ि मोरपखानि मवासी।
क्यों मन हाथ करौं सजनी बनमाल में बैठि भयो बनवासी॥

आँसू

आँखें किसी पर रीझ गई हैं। इसलिए उन पर रीझ का भार है। सुकुमार नेत्रों के लिए यह कितना अधिक बोझ है! आखिर श्रमभार से जलबिंदु झलक ही तो आए। यही श्रमबिंदु आँसू हैं। आइए, इन आँसुओं का पहले वह सौंदर्य देखें, जो इनके नेत्रों से पृथक् न होने पर है—जिस समय ये बरुनियों का मूल छूकर फिर लौट जाते हैं। वाह, यह दृश्य तो समुद्र में ज्वार-भाटा आने के समान है। समुद्र भी तो वेला के आगे नहीं बढता है। फिर ज्यों का त्यों लौट जाता है। नेत्रजल की भी यही दशा हुई है। अहो, मोती के समान आँसू नेत्र के किनारों पर कैसे अटके हुए हैं! जान पड़ता है, कटाक्षों से छिदकर वे अपने स्थान से आगे नहीं बढ़ पाते हैं—

ईछन छोरन तें न गिरे मनौ तीछन छोरन छेदि रहे हैं।

यह कल्पना भी हो गई। अब देखिए, आँसू टपाटप गिर रहे हैं। मानो आकाश से तारे टूट-टूटकर गिर रहे हों। यह दृश्य भय उत्पन्न कराता है। तारों का टूटना भावी अमंगल का सूचक है। अच्छा तो तारोंवाले रूपक को भूल जाइए। मंगलमय चित्र देखिए—

आँखिन तें आँनद के आँसू उमगाय प्यारी
प्यारे को दिखावति सुरति मुकतान की।

अब यह तो भली भाँति प्रकट हो गया कि आँसू सुख के भी होते हैं और दुःख के भी; पर यह बंद कैसे किए जायँ—

बिन देखें दुख के चलैं देखे सुख के जाहिं।
कहो लाल इन दृगन के अँसुवा क्यों ठहराहिं॥

बंद होना तो दूर की बात है; यहाँ तो यह अवस्था हो रही है कि

नागरि के नैनन तें नीर को प्रवाह बढ़्यो
निरखि प्रवाह बढ़्यो जमुना के नीर को।

कितना जबरदस्त अश्रुप्रवाह है ! पर आश्चर्य तो यह कि इतना प्रबल होते हुए भी वह वियोगाग्नि को बुझाने में सर्वथा असमर्थ पाया जाता है। इसकी दशा तो ठीक समुद्र के समान है। अगाध सागर के लिए यह कितनी हीनता की बात है कि उसका बडवानल बुझाए न बुझे। आँसू भी वैसे ही वियोगाग्नि नहीं बुझा पाते हैं।

बाल बिलोचन बारि के बारिध बढ़ै अपार।
जारै जो न बियोग की बड़वानल की झार॥

प्रेम और मान

पतंग का दीपक पर कैसा सहज निष्कपट प्रेम है। उसकी एक झलक देखते ही वह उस पर शरीर और प्राण दोनो ही न्योछावर कर देता है। कैसा सच्चा आत्मनिलय है। सुख में प्रेम की क्या दशा रहेगी, इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं, पर वह देखो, प्रणयियुग्म की देह जैसे-जैसे सूखती जाती है, वैसे-वैसे प्रेम का पानिप और भी सरस होता है। दुःख में भी जो बढता रहे, वही सच्चा प्रेम है। प्रेम अपने और प्रेमपात्र में कोई भेद नहीं रखता। उसके लिए उसका प्रेमपात्र ही मूर्तिमान् प्रेम है। उसे यही जान पड़ता है कि संसार के सारे प्रेम की उत्पत्ति मेरे प्रेमपात्र से ही हुई है। सौंदर्य प्रेम का सहायक है, पर प्रेम से सौंदर्य की उत्पत्ति है। सौंदर्य से प्रेम की उत्पत्ति नहीं है। चंद्रमा का आविर्भाव सिंधु से हुआ है, यह विचार ठीक नहीं है। असल तो यह है कि किसी के मुखचंद्र से ही यह प्रेमपयोधि उमड़ पड़ा है। यह यौवनकाल मस्त हाथी के समान है। इसके पैरों में लज्जारूपी शृंखला पड़ी हुई है और इसका संचालक महावत प्रेम है। वह जिधर इसे ले जाता है, उधर ही यह मद गति से चलता रहता है। प्रेमियों में प्रेम-संबंधी मान भी अनूठी वस्तु है। यद्यपि यह एक प्रेम का खिलवाड़ है, फिर भी गर्मी पाकर जैसे कभी-कभी पारा उड़ जाता है, वैसे ही इससे भी कभी-कभी प्रेम की हानि होती है। मान की ज्योति दीपक की ज्योति के समान है। दोनो ही स्नेह को जला दिया करती हैं। मान की शोभा अधिकतर स्त्रियों में ही है, यद्यपि मानी पुरुषों का भी अभाव नहीं कहा जा सकता है। मान तीन प्रकार का होता है—लघु, मध्यम और गुरु। मानलीला बड़ी ही बिचित्र और रसीली है। श्रीकृष्णचंद्र मानिनी राधा को मना रहे हैं, पर वह कैसे स्वाभाविक मानसूचक शब्दों में कहती है—'मान

रह्योई नहीं मनमोहन मानिनी होय सो मानै मनायो'। पर चतुर कृष्ण कब चूकनेवाले हैं। उनका विनीत उत्तर कितना क्षमायाचना के भावों से भरा हुआ है। वह कहते हैं—'कहा चतुराई ठानियत प्रानप्यारी तेरो मान जानियत रूखी मुख मुसकानि सौं'। मानलीला का यह वार्तालापप्रकरण कितना मधुर है! पर परस्पर आलिंगन होते हुए भी मान की सूचना देने की तरकीब भी प्रियतमा जानती है। उसने प्रियतम का आलिगन तो किया, पर ढीली बाँहों से, और बातचीत बिलकुल न की। बस, मान की सूचना हो गई। ये सब मान के सौम्य रूप हैं। विकट रूप में मामला कुछ नाजुक हो जाता है। हठ पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। पैरों पड़ने की नौबत आती है। फिर भी प्रियतम को झिड़की सुनने को मिलती है। कभी-कभी तो इस प्रकार के वचन भी सुनने को मिलते हैं—

ताके पग लागो निस जागि जाके उर लागे
मेरे पग लागि उर आगि न लगाइये।

क्रोध से प्रियतमा के नेत्र लाल हो जाते हैं। अश्रुधारा बहने लगती है। मान की विकट अवस्था उपस्थित होती है, परंतु प्रियतम अंत में मनाकर छोड़ता है। क्षण-मात्र में अपूर्व परिवर्तन उपस्थित होता है—

रिस ही के आँसू रस आँसू भए आँखिन में
रिस की ललाई सो ललाई अनुराग की।

परंतु मानमृदुता का दृश्य तो उस नवेली की लीला में है, जो—

बाल सखिन की सीख तें मान न जानति ठानि।
बिन पिय-आगम भौन में बैठी भौंहें तानि॥

नहीं जानते, प्रियतम के घर में आने पर यह भौंहों की तनेनी बनी रह सकेगी या नहीं। मान का यह निर्बोध, सरल और कलहशून्य दृश्य है। एक और ऐसा ही मनोहर दृश्य है, पर उसमें कुछ हृदय पर चोट पहुँचानेवाला मसाला है। देखिए—

बाल नवेली न रूसनो जानति भीतर भौन मसूसनि रोवै।

पर इससे भी मृदुलतर दृश्य तो तब देखने को मिलता है, जब नायिका मान करने के अवसर की खोज में रहती है, अपने नायक में दोष ढूंढ़ती है।

पर उसे हताश होना पडता है। उसका प्रियतम निर्दोष पाया जाता है। मान की साध अपूर्ण रहती है ।

मतिराम की जानकारी

कवियों का ज्ञान बहुत ही विस्तृत होता है। वे संसार की सभी बातों पर ध्यान रखते हैं और समय पड़ने पर अपनी इस प्रकार की जानकारी से पूरा लाभ उठाते हैं। हिंदी भाषा के कवियों का ज्ञान परिमित नहीं कहा जा सकता। महात्मा तुलसीदास से मानवप्रकृति की कौन-सी बात छिपी थी? महात्मा सूरदास का ज्ञान कितना गहरा और बहुव्यापी था। शृंगारी कवियों में कविवर देव और बिहारीलाल की जानकारी कम न थी। यह दूसरी बात है कि उन्होंने अपनी यह समग्र जानकारी विशेषतया नायक-नायिकाओं के वर्णन-सबंध में प्रकाशित की हो। देव और बिहारी शृंगारी कवि थे। उनकी कविता शृंगारमयी है। सो उनके विस्तृत ज्ञान का दर्शन भी हमें उनकी ऐसी ही कविता में होता है। कविवर मतिरामजी भी शृंगारी कवि थे। उनका ज्ञान भी खूब विस्तृत था, पर इस ज्ञान की थाह लेने के लिए हमें विवश होकर उनके शृंगारसरोवर में डुबकी लगानी पडती है और कोई दूसरा उपाय नहीं है। मतिरामजी के बहुव्यापी ज्ञान के कुछ उदाहरण लीजिए—

प्रकृतिविज्ञान—(१) बहुमूल्य धातु सोना गलाया जा सकता है। इसके गलाने में सोहागा विशेष उपयोगी है। सोने का एक नाम 'सुवर्ण' भी है। इसी 'सुवर्ण' का विकृत रूप 'सुबरन' है। 'सोहागा' को 'सोहाग' भी कहते हैं। 'सुवर्ण' और 'सोहाग' का दूसरा अर्थ क्रम से अच्छा रंग और सौभाग्य भी हो सकता है। सधवत्वसूचक सौभाग्य का विकृत रूप 'सोहाग' प्रसिद्ध ही है। सुवर्ण और सोहाग शब्द शृंगारकविता में अपने पिछले अर्थों के कारण बड़ी ही सरलता से व्यवहृत हो सकते हैं। मतिरामजी ने इन दोनो शब्दों के दोहरे अर्थों को देखा। उन्होंने देखा कि 'सोहाग' में 'सुवर्ण' को द्रवीभूत करने की कैसी मनोमोहिनी शक्ति है। इस अन्वेषण के उपलक्ष्य में प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी कविताकामिनी को 'श्लेष' अलंकार पिन्हा दिया। वह कहते हैं—

ऐसो पति पायो बड़े भागनि सौं प्यारी सदा
सुबरन ही कौं पघिलावत सुहाग सौं।

सुंदर नायक को सौभाग्यवती के अतिरिक्त कौन द्रवीभूत करेगा ? सोने को पिघलाने के लिए सोहागा अवश्य ही चाहिए। मतिरामजी मानवप्रकृति और 'स्वर्णकारी' के इस तत्त्व को भली भाँति समझते थे।

(२) आतशी शीशे पर सूर्य की किरणें पड़ने से आग पैदा होना 'प्रकृतिविज्ञान' में एक साधारण घटना है। मतिरामजी प्रकृतिविज्ञान के इस तत्त्व से परिचित थे। संभवतः उन्होंने शीशे में इस प्रकार से अग्नि प्रदीप्त होते देखा था। किसी विरहिणी नायिका को चद्रकिरणों के स्पर्श से छटपटाते देखकर उन्हें उस शीशे की याद आ गई, जिस पर सूर्यरश्मियों के पड़ने से अग्नि का आविर्भाव हुआ था। उन्होंने अपने इस पूर्व अनुभव को एक सुकुमार विचार अभिव्यक्त करने में लगाया। वह कहते हैं—

चंद्किरन लगि बालतन उठत आँच यों जागि।
दुपहर-दिनकर-कर परसि ज्यों दरपन में आगि॥

(३) पारा गर्मी पाकर उड़ जाता है। एक मानवती नायिका अपने प्रियतम से रूठकर बैठी है। मिजाज में गर्मी ज्यादा चढ़ गई है। मतिरामजी ने देखा कि कहीं ऐसा न हो कि नायक में भी ऐसी ही गर्मी आ जाय। क्योंकि यह स्पष्ट है कि यदि दोनो ओर से 'गर्मागर्मी' हुई, तो प्रेमदेवता को भागते देर न लगेगी। प्रेम का गर्मी (तेज) से भागने का विचार उत्पन्न होते ही मतिरामजी को 'पारा और गर्मी' का अनुभव स्मरण हुआ। इस अनुभव से तत्काल लाभ उठाकर कविवर कहते हैं—

कहा लियो गुरु मान को अति ताती ह्वै नेम।
पारद-सो उड़ि जायगो अलि चंचल यह प्रेम॥

(४) समुद्र में ज्वार-भाटा आता है, परंतु वह एक अपनी निर्दिष्ट सीमा से आगे नहीं जाता। वहाँ पहुँचकर पानी धीरे-धीरे पीछे को लौट जाता है। सीमा के बाहर होकर वह नहीं बहता है। जहाँ से आता, वहीं को लौट जाता है। उस सीमाप्रात को जिसके आगे ज्वार-भाटा का भय नहीं रहता है, 'वेला' कहते हैं। ज्वार-भाटे के रूप में प्रकृति के इस खिलवाड़ से मतिरामजी परिचित थे। लज्जा से विवश मुग्धा सुदरी का विरह बड़ा ही मर्मस्पर्शी दृश्य है। आँसू उमडे पड़ते हैं, परंतु लज्जा के कारण सुंदरी नेत्रों के आँसू नेत्रों ही में किसी प्रकार से विलीन कर डालती है। बरुनियों तक आकर आँसू फिर गायब हो जाते हैं। निर्दिष्ट सीमा के आगे आँसुओं का आना बंद है। ज्वार-

भाटा और मुग्धा सुंदरी के अश्रुप्रवाह में यह अद्‌भुत साम्य है। मर्मज्ञ मतिराम इन दोनो भावों का सहयोग निम्नलिखित दोहे में कैसे अनोखे ढंग से करते हैं—

पिय-बियोग तियदृग-जलधि जलतरंग अधिकाय।
बरुनि-मूल-बेला परसि बहुरयो जात बिलाय॥

लोकप्रसिद्ध ज्ञान—कवि को जिस प्रकार विविध शास्त्रों में पारंगत होना चाहिए, वैसे ही उसको लोकप्रसिद्ध ज्ञान से पूर्ण परिचय रखना चाहिए। सर्वसाधारण किन बातों को किस दृष्टि से देखते हैं, इस बात को विना समझे कवि उन लोगों के हृद्गत भावों का परिस्फुटन कदापि नहीं कर सकता है। मतिरामजी लोकप्रसिद्ध ज्ञान से भी पूर्ण परिचित थे।

(१) तारों का टूटना अमांगलिक समझा जाता है। वृद्ध जन अब भी तारे का टूटना देखकर 'शिव-शिव' कहने लगते हैं। उल्कापात (तारों का टूटना) भावी उत्पात का सूचक माना गया है। नायक को नायिका की विरहा-वस्था जताने के अवसर पर उन्होंने अपने इस ज्ञान का अच्छा चमत्कार दिखलाया है। नायिका के नेत्रों से आँसू क्या गिर रहे हैं, मानो तारे टूट-टूटकर गिर रहे हैं, जो भावी अनिष्ट के सूचक हैं। कवि के शब्दों में—

हौं न कहत तुम जानिहौ लाल बाल की बात।
अँसुवा उड़गन परत हैं होन चहत उतपात॥

इस कथन का अभिप्राय यह है कि जैसे भावी अमंगल की शांति के लिए उपाय किए जाते हैं, वैसे ही नायक को 'मिलन'-उपाय द्वारा इस होनेवाले 'उत्पात' का निवारण करना चाहिए।

(२) यात्रा के समय खाली घड़े का देखना अशुभ है। उससे यात्रा के निर्विघ्न समाप्त होने में संदेह उपस्थित होता है। अशकुन में विश्वास करनेवाला यात्री मार्ग में खाली घड़े देखने पर अपनी यात्रा स्थगित कर देता है। नायिका-विशेष को अपने पति की विदेशयात्रा निवारण करने का जब और कोई उपाय न सूझा, तो वह मार्ग में खाली घड़े लेकर खड़ी हो गई। यथा—

नागरी नवेली रूप आगरी अकेली रीती
गागरी लै ठाढ़ी भई बाट ही के घाट मैं।

जिस प्रकार 'रीती गागरी' का मिलना अशुभ है, वैसे ही सजल पूर्ण कुंभों का मिलना शुभ है। ऐसा शकुन मिलने पर यात्री दूने उत्साह से यात्रा करता है। मतिरामजी ने ऐसा अवसर उपस्थित कराकर रसिकता-विशेष का परिचय देते हुए यात्रा निवृत्त कराई है। कैसा कविकौशल है !

प्यो राख्यो परदेस तैं अति अद्भुत दरसाय।
कनक-कलस पानिप भरे सगुन उरोज दिखाय॥

(३) केवडाफूल फूलबाग मैं लगाना मना है। कहा जाता है कि वह 'मनहूस' फूल है। बहुत लोग इस कथन पर विश्वास करते हैं। परतु अनेक लोग केवडे के अनुपम आमोद पर मुग्ध होकर उसे सादर 'गेह आराम' मैं स्थान देते हैं। एक ऐसे ही 'गेह आराम' से लौटी हुई नायिका अपने सुरत-गोपन का कार्य किस चतुरता से करती है—

भलो नहीं यह केवरो सजनी गेह अराम।
बसन फटै कंटक लगै निसि-दिन आठो जाम॥

(४) हारिल पक्षी के विषय मैं यह प्रसिद्ध है कि वह जिस लकड़ी को अपने पंजों मैं दबा लेता है, उसको छोडना ही नहीं जानता। मतिराम ने मानिनी के हठ की 'हारिल की लकरी' से अच्छी समता की है—

हा हा कै निहारेहू न हेरति हरिननैनी
काहे को करत हठ हारिल की लकरी।

विविध विषय का ज्ञान—(१) मेरे दृग-बारिद बृथा बरखत बारिप्रवाह।
उठत न अंकुर नेह को तो उर ऊसर माह॥

उपर्युक्त पद्य से स्पष्ट है कि कवि ने साधारण-सी किसानी की बात को अपनी युक्ति मैं कैसे अच्छे ढंग से बिठला दिया !

(२) गुन-औगुन कौं तनकऊ प्रभु नहिं करत बिचार।
केतक कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार॥

केतकी का फूल महादेवजी पर नहीं चढाया जाता, इसके विषय में एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। मतिरामजी ने पौराणिक कथा का समावेश सुंदरता से किया है।

(३) कहा दवागनि के पिये कहा धरे गिरि धीर।
बिरहानल में जरत ब्रज बूड़त लोचन-नीर॥

कृष्ण का दावानल-पान और गिरि गोवर्धन धारण करना—एक बार अग्नि से और दूसरी बार जल से व्रज का बचाना मतिराम को मालूम है। इतिहासज्ञ मतिराम मीठी चुटकी लेते हुए कृष्णचंद्र से कहते हैं कि पहले दो बार के विपत्तिनिवारण का ध्यान करके विरहिणी के अश्रुप्रवाह की बहिया में डूबनेवाले एवम् विरहानल में जलनेवाले व्रज की फिर रक्षा करो नहीं तो पहले दोनो कामों का कोई महत्त्व न रह जायगा।

(४) लाल तिहारे संग में खेलै खेल बलाय।
मूँदत मेरे नयन हौ करन कपूर लगाय॥

सात्त्विक के कारण नायिका को नायक के हाथ शीतल और सुगंधित जान पड़ते हैं। सो कर्पूर का अनोखा धोखा हो जाता है।

(५) जैसे मिहीं पट में चटकीलो चढ़ै रंग तीसरी बार के बोरैं।

किसी रँगरेज से पूछिए कि महीन कपडे में चटकीला रंग चढ़ाने का क्या उपाय है?

(६) इंद्रजाल कंदर्प को कहै कहा *मतिराम*।
आगि लपट बरषा करै ताप धरै घनस्याम॥

इंद्रजाल के खेल ऐसे ही होते हैं। जादूगर क्या नहीं कर सकते। काम-जादूगर की भी यही दशा है। मतिरामजी ने इंद्रजाल के खेल देखे थे, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

(७) मछली का शिकार करनेवाले जलाशय के किनारे बैठकर बंसी (काँटा) के द्वारा जिस प्रकार शिकार करते हैं, वह मतिराम ने अवश्य देखा होगा। वारविलासिनी मछली (विशेष शुद्ध वारिविलासिनी) का विशेषण हो सकता है और वह वेश्या का भी नाम है। लोचन जलाशय है, जहाँ कुटिल अलकरूप बंसी बार-बार गिरती है—

लोचन-पानिप ढिग सजी लट-बंसी परबीन।
मो मन बारबिलासिनी फाँसि लियो मनु मीन॥

(८) जो चोरी करता है, उसकी निंदा होती है। मालूम होने पर चोरी का माल वापस न देने से और भी निंदा होती है। ऊपर कहे हुए अभीष्ट-साधन के लिए किसी को घायल करना—चोट पहुँचाना—नीचता का काम है। खुल्लमखुल्ला लड़कर किसी का माल उठा लेना डाका डालना है। ये सब बातें नीति विरुद्ध हैं। इनका करनेवाला समाज में बदनाम रहता है। उसकी बड़ाई कोई भी नहीं करता। सभी उसकी निंदा करते हैं। नीतिज्ञ मतिरामजी इन सब बातों को जानते हुए जब किसी के 'नेत्रों' को इसी प्रकार का उपद्रव करते हुए पाते हैं, तब उन्हें हार्दिक खेद होता है। पर जब वह ऐसे नीच नेत्रों की समाज में 'बडाई' सुनते हैं, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रह जाता। ऐसी अनीति का ऐसा सुंदर पुरस्कार देखकर किसका धीरज न छूट जायगा। ऐसे कामों के करनेवाले को 'बड़ाई' मिलना क्या 'बड़ी बात' नहीं है ? देखिए, मतिरामजी क्या कहते हैं—

देखत ही सबके चुरावती है चित्तनि कौं
फेरिकै न देती यौं अनीति उमड़ाई है।
कबि *मतिराम* **काम तीरहू तैं तीछन**
कटाछनि की कोरैं छेदि छाती मैं गड़ाई है।
खंजरीट कंज मीन मृगनि के नैननि की
छीनि-छीनि लेती छबि ऐसी तैं लड़ाई है।
तेरी अँखियानि मैं बिलोकी यह बड़ी बात
इते पर बड़ी-बड़ी पावती बड़ाई है॥

(९) प्राचीन काल में चोरी करनेवाले को बहुत ही कठोर दंड दिया जाता था। चोर के मुख में स्याही पोतकर नगर के आस-पास घुमाना भी एक प्रकार का दंड था। नायिका की छबि (रुचि) चुरा लेने को चद्रमा ने अपने कर (हाथ—किरण) फैलाए थे—चोरी करने का इरादा किया था। इसी कारण ब्रह्मा ने उसके मुख में कारिख (कलंक) लगा दी और अमरालय के आस-पास घूमने का हुक्म दे दिया—कैसा अच्छा इसाफ किया ! चोर को यही दंड मिलना चाहिए था। मतिरामजी कहते हैं—

सुंदरबदनि राधे सोभा को सदन तेरो
बदन बनायो चारिबदन बनायकै।
ताकी रुचि लैन को उदित भयो रैनपति
मूढ़मति राख्यो निज कर बगरायकै।
मतिराम **कहै निसिचर चोर जानि याहि**
दीनी है सजाय कमलासन रिसायकै।
रातैं-दिन फेरै अमरालय के आस-पास
मुख मैं कलंक मिस कारिख लगायकै॥

मतिरामजी के ग्रंथों में उनके विस्तृत ज्ञान का पद-पद पर प्रमाण मिलता है। ऊपर केवल दिग्दर्शनस्वरूप कुछ उदाहरण दिए गए हैं।

मतिरामसतसई के कुछ दोहे

नीचे हम मतिरामसतसई के कुछ अच्छे दोहे पाठकों की भेंट करते हैं।

विरहवर्णन—सतसई में विरह का वर्णन बहुत उत्कृष्ट हुआ है। कविवर देव तथा बिहारीलालजी का विरहवर्णन तो अच्छा है ही, पर मतिरामजी ने भी एतादृश वर्णन में अपनी प्रतिभा का खासा चमत्कार दिखलाया है। मतिरामसतसई की प्राप्त प्रति में से कुछ दोहों का यहाँ सकलन किया जाता है।

(१) विरहाधिक्य की यह दशा है कि सखियाँ नित्यप्रति जो कुछ उद्योग करती हैं, उससे विरहशाति तो होती नहीं, हाँ, विपत्ति बढ़ती जाती है। विरहताप इतना अधिक हो गया है कि शीतलता पहुँचाने के लिए उरोजों में यदि कमलपुष्पों का स्पर्श करा दिया जाता है, तो वे झुलस जाते हैं—

सखिन करति उपचार अति परति बिपति उत रोज।
झुरसत ओज मनोज के परसि उरोज सरोज॥

उपर्युक्त दोहे में अनुप्रास का जैसा कुछ चमत्कार मतिरामजी ने उपस्थित कर दिया है, वह सर्वथा दर्शनीय है।

(२) विरहिणी के अंगताप का निवारण करने को सखियों ने एक उपाय सोचा। उन्होंने कमल के पत्तों में खूब गाढ़ा-गाढा चंदन लगाया और फिर उनको नायिका के अंगों पर चिपका दिया। आशा थी कि इससे विरह-

संताप बहुत कुछ दूर होगा, पर घटना और ही प्रकार से घटी। 'पुरैन' के इन चंदनपंकिल पत्तों का नायिका के अगों से स्पर्श होते न होते वे सब ऐसे झुलस गए, मानो आग में पापड़ भूने गए हों। कैसी अनूठी उक्ति है ? कैसी सुंदर सूझ है !

जागत ओज मनोज के परसि प्रिया के गात।
पापर होत पुरैनि के चंदनपंकिल पात॥

(३) विरहविधुरा नायिका रुदन कर रही है। बड़े-बड़े आँसू नेत्रों से झर-झरकर नीचे गिर रहे हैं। आप समझते होंगे कि इस प्रकार के अश्रुपात से विरहणी के दोनो उन्नत उरोज भीग रहे होंगे, पर बात ऐसी नहीं है। विरह के कारण वे इतने संतप्त हैं, उनमें इतनी अधिक गर्मी है कि उन तक आँसू पहुँचने ही नहीं पाते। बीच ही में सूखकर रह जाते हैं। बस, ऐसा जान पड़ता है, मानो आसमान से तारे टूट-टूटकर गिर रहे हैं और पृथ्वी पर पहुँचने के पहले ही संपूर्ण नष्ट हो जाते हैं।

बिरहतचे तियकुचनि लौं अँसुवा सकत न आइ।
गिरि उड़गन ज्यौं गगन तैं बीचहि जात बिलाइ॥

(४) विरहिणी नायिका के निकट आने में भी नींद को डर लगता है। वह देखती है कि विरहिणी के नेत्रों से ऐसा अविरल अश्रुप्रवाह जारी है कि उसे पार किए बिना नेत्रों तक पहुँच नहीं। नींद को साहस नहीं कि वह इस गंभीर प्रवाह को पार कर लेगी। उसका विश्वास है कि वह इसमें पड़ी नहीं कि डूबी नहीं, फिर कहीं की भी न रह जायगी। ऐसी दशा में 'आत्मानं सततं रक्षेत्' जैसे नीतिवचन का अनुसरण करती हुई वह यदि नायिका के नेत्रों के निकट नहीं फटकती, तो क्या आश्चर्य है ? विरहिणी को नींद न आने का कैसा मनोरम कारण मतिरामजी ने ढूँढ लिया—

अँसुअन के परवाह मैं अति बूड़िबे डराति।
कहा करै नैनानि कौं नींद नहीं नियराति॥

(५) आँच पाकर स्नेह (स्निग्ध पदार्थ=तैल, घी आदि) में उफान आ जाता है। फिर भला विरहानल के आधिक्य में नायिका के शरीर में स्नेह (प्रेम) की उद्दीपन अवस्था क्यों न दिखाई पड़े।

ज्यौं-ज्यौं बिषम बियोग की अनलज्वाल अधिकाइ।
त्यौं-त्यौं तिय के देह मैं नेह उठत उफिनाइ॥

(६) कामदेव 'अनंग' है। उसके शरीर नहीं है। अपने इस अतनुभाव को वह विरहिणी नायिका में भी स्थापित किया चाहता है। अपने में और प्रोषितपतिका में वह कोई भेद नहीं रहने देना चाहता। मानो नायिका को उसकी बदौलत सायुज्य मुक्ति मिलने जा रही है। विरह के कारण नित्यप्रति नायिका के अंग-प्रत्यंग क्षीण पड़ते जा रहे हैं। इससे कवि कल्पना करता है, मानो कामदेव उसे अपने ही समान विना शरीरवाली बना लेगा—सायुज्यता प्रदान कर देगा—

लाल तिहारे बिरह नित छीन बाल के अंग।
जानति हौं चाहति दियो निज सायुज्य अनंग॥

(७) वर्षा क्या आई, मानो कामदेव ने विरहिणी को जलाने के लिए दावाग्नि जला दी है। ये घटाएँ बिलकुल धुएँ के अनुरूप हैं तथा चंचला की चमक दावानल की ज्वालमालाओं की समता करती है। पावस के 'प्रथम पयोद' को लक्ष्य करके महाकवि बिहारीलाल ने यह भाव अपने एक दोहे में दिखलाया है—

ज्वाल-जाल बिज्जुलि छटा घटा धूम अनुहारि।
बिरहिनि जारनि को मनो लाई मदन दँवारि॥

(८) व्रजबाल की दशा ग्रीष्म-सरिता के समान हो रही है। निदाघकाल में सरिता का जीवन (जल) सूखने लगता है। विरहिणी का भी जीवन क्षीण हो रहा है। वर्षा आने पर घनश्याम (काली-काली मेघमालाएँ) रस (जल) बरसाकर सरिता को फिर परिपूर्ण कर देते हैं। उसी प्रकार घनश्याम (श्रीकृष्णचंद्र) रसवृष्टि करके मृतप्राय विरहिणी को फिर जिला सकते हैं। इस सुंदर उपमा के सहारे सखी ने कैसा सुंदर हृदयस्पर्शी विरह-निवेदन किया है—

बाल अलप जीवन भई ग्रीषम-सरित-सरूप।
अब रस परिपूरन करौ तुम घनस्याम अनूप॥

कविवर रघुनाथजी ने मतिरामजी के इस भाव को अपने एक छंद में ज्यौं का त्यौं अपना लिया है।

खंडिता नायिका—व्रजभाषा के कवियों ने खडिता नायिका के बडे ही मनोहर वर्णन किए हैं। कविवर बिहारी, देव तथा सूरदास की खंडिताओं के चित्र जैसे कुछ बन पडे हैं, वह अनुभव करने ही की बात है, कहने की नहीं। महाकवि मतिराम ने भी खडिता नायिका को लेकर कई ऐसे भावचित्र खींचे हैं, जो अनुपम हैं। उपलब्ध सतसई की प्रति से हम यहाँ चार उदाहरण देते हैं—

(१) नायक ने नायिका के नेत्रों का चुंबन किया। ऐसा करने से उसके ओष्ठ में आँख का काजल लग गया है। उसे यह विदित नहीं। ओठ में वैसे ही काजल लगाए प्रातःकाल वह अपनी स्त्री के सामने उपस्थित हुआ। उसने नायक महोदय के अन्यत्र रमण की बात जान ली। नायक के अपराध को वह बड़ी ही मार्मिकता के साथ प्रकट करती है। कहती है—'देखिए देखिए प्राणनाथ, आननकमल के अरुण अधरदल पर एक भौंरा आ बैठा है। इसे जल्दी से उड़ा दीजिए, नहीं तो यह काट ही खायगा'। पर वहाँ भौंरा कहाँ? इशारा तो काजल के दाग की ओर है, नायिका अपनी अबोधता का बहाना करती हुई मानो यह दिखलाती है कि उसे कज्जल-दाग में भ्रमर का भ्रम हुआ है। इस प्रकार वह प्रकट रूप में नायक को लज्जित भी नहीं करना चाहती, साथ ही उसको उसकी करतूत भी सुझा देना चाहती है। कैसी रसीली चुटकी है!

बैठ्यो आनन-कमल के अरुन अधरदल आइ।
काटन चाहत भावते दीजै भौंर उड़ाइ॥

(२) ऊपर के भाव को और भी अधिक स्पष्ट रीति से मतिरामजी ने दूसरे दोहे में भी प्रकट किया है, पर 'भ्रांति' का आश्रय लेकर पहले दोहे में जो चमत्कार उत्पन्न किया गया है, वह उपमा के सहारे दोहे में नहीं आ सका। यहाँ बात बहुत खोलकर कह दी गई है।

अजौं उड़ावत हो नहीं पीर न होत सभाग।
ठौर-ठौर या भौंर के दसैं अधरदल दाग॥

(३) खंडिता की और भी स्पष्टोक्ति देखिए। वह अपराधी नायक से कहती है—भावतेजी, आपके उरस्थल पर भावती ने जो यह वेणी की छाप लगा दी है अर्थात् आपके हृदयस्थल पर जो यह अन्य नायिका के साथ

आलिंगन होने के कारण उसकी वेणी का चिह्न बन गया है, वह कामदेव की सीढ़ी के समान होने से मुझे बड़ा ही भला लगता है।' कहने का कैसा निराला ढंग है !

भली लगै मनभावते करी आभरन आप।
काम-निसेनी-सी बनी यह बेनी की छाप॥

(४) प्राणनाथ ने आज नवीन चंद्रहार धारण किया है, पर इसकी छवि तो नक्षत्रों के समान है। बारीक कपड़े से ढके रहते भी किसी प्रकार दृष्टिपथ से विलग नहीं हैं, ऐसा कथन करके नायिका ने अपराधी नायक को पानी-पानी कर दिया—

झीने झगा बिलोकियत नखछत-छबिधर नाह।
भले बिराजत ये नए चंद्रहार हिय माह॥

कविवर बिहारीलाल के भी एक दोहे में कुछ ऐसा ही भाव प्रकट हुआ है।

भिन्न प्रकार के छंदों में समान भाव—मतिराम ने अपने उन अनेक भावों को, जिन्हें वह एक बार कबित्त और सवैया-जैसे लंबे छंदों में प्रकट कर चुके हैं, फिर से दोहा-छंदों में भी वर्णन किया है। दोहा-जैसे छोटे छंद में स्थलसंकोच होते हुए भी उन्होंने मुख्य भाव की सफलतापूर्वक रक्षा की है। यहीं क्यों, कहीं-कहीं तो दोहे में और भी चमत्कार की वृद्धि हो गई है। सतसई में हमें ऐसे अनेक दोहे मिले हैं, जिनमें प्रकट होनेवाले भाव 'रसराज' के कबित्त और सवैया-छंदों में वर्तमान हैं। ऐसे भावों को साथ-साथ देखने से कवि के कौशल का दर्शन तो होता ही है, पर प्रायः यह बात भी निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि 'सतसई' और 'रसराज' दोनो का रचयिता एक ही कवि है। इस प्रकार के केवल दो उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

बाल लाल मुख सौति को सुन्यो नाम परकास।
बरखै बादर सेन पर उड्यो हंस सम हास॥

दोऊ अनंद सों आँगन माँझ बिराजैं असाढ़ की साँझ सुहाई।
प्यारी कौं बूझत और तिया को अचानक नाउँ लियो रसिकाई।
आइ उनै मुँह मैं हँसी कोपि प्रिया सुरचाप-सी भौंह चढ़ाई।
आँखिन तैं गिरे आँसू के बूँद सुहास गयो उड़ि हंस की नाई॥

सवैए की व्याख्या अन्यत्र मौजूद है। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि एक ही भाव दो भिन्न छंदों में होने पर भी वह अपने मुख्य चमत्कार को स्थिर रखने में पूर्ण रीति से समर्थ हुआ है—

अनमिष नैन कहै न कछु समुझै सुनै न कान।
निरखै मोरपखान के भई पखान समान॥

सूँघै न सुबास रहै रागरंग तैं उदास
भूलि गई सुरति सकल खानपान की।
कबि *मतिराम* **इकटक अनमिष नैन**
बूझै न कहति बैन समुझै न आन की।
थोरी-सी हँसी मैं है ठगोरी ऐसी डारी तुम
बौरी करी भोरी तैं किसोरी बृषभान की।
तब तैं बिहारी वह भई है पखान-कैसी
जब तैं निहारी रुचि मोर के पखान की॥

दोहे को देखकर बिहारी का और कबित्त को देखकर देव का स्मरण होता है। धन्य मतिराम! तुममैं बिहारी और देव, दोनो के ही वर्णनशैली-सबंधी गुण वर्तमान हैं।

स्फुट सूक्तियाँ—सतसई की प्राप्त प्रति मैं सुंदर सूक्तियों की अधिकता है। एक से बढकर एक भाव मौजूद हैं। कोई भी दोहा शिथिल नहीं दिखलाई पडता। ऐसी दशा मैं सकलनकार्य बड़ा कठिन है। फिर भी कुछ सूक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

(१) श्रीकृष्ण की मुरली बज रही है। उसका मधुर रव गोपियों के कानों में गूँज रहा है। इस सरस नाद का स्वाद उन्हें आनदमय अनुभव हो रहा है। उनका तो कहना है कि श्यामसुंदर के अधरों की माधुरी ही इस नादरूप मैं निकलकर चारो ओर व्याप्त हो रही है। कैसा ऊँचा विचार है! कितनी दूर की सूझ है!

सुनि-सुनि गुन सब गोपिकनि समुझ्यो सरस सवाद।
कढ़ी अधर की माधुरी मुरली ह्वै करि नाद॥

(२) नंदलालजी, देखिए तो छत पर यह कैसा सौंदर्य है? यह स्थिर दामिनी कैसी? क्या चंचला ने चपलता त्याग दी? यह निष्कलंक चद्रमा

बुला रही है, बड़ा ही व्यापक भाव है। अनेक प्रसंगों पर इसका उपयोग हो सकता है। उक्तिसूक्ष्मता ध्यान देने योग्य है—

फूलति कली गुलाब की सखि यह रूप लखै न।
मनो बुलावति मधुप को दै चुटकी की सैन॥

(७) केलिभवन में रात्रि के समय सुंदर दीपक जल रहे हैं। एकाएक उनकी आभा क्षीण हो गई। जैसे दिन में जलता दीपक निष्प्रभ-सा लगता है, वैसा ही हाल उन दीपकों का हुआ। बात क्या थी, सो कवि से सुनिए—

बसन हर्‌यो पिय सुरत में तियतन जोति समीप।
केलिभौन में रातिहू भए द्यौस के दीप॥

अंगदीप्ति का और क्या परिचय दिया जाय ?

(८) अकेले ब्राह्मण की अपेक्षा यदि ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनो साथ-साथ खिलाए जायँ, तो क्या बात है ? फिर सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण और ब्राह्मणी के न्योते की बात तो और भी पुण्यमयी है। ऐसे मेहमानों के लिए 'सुधाभोजन' से घटकर पदार्थ भी न होना चाहिए। सखी नायिका को वही सलाह देती है कि वह ऐसा ही न्योता कर डाले। भोजन तो सहज सुलभ है, क्योंकि उसके अधरों में ही सुधाभोग मौजूद है। रहा 'दुजराज' और 'दुजराजिनि', सो वह कृष्णचंद्र के मुँह में मौजूद है। बस, अधरामृत पान करा दो, ब्राह्मण-भोजन से भी बढ़कर पुण्य होगा। 'दुज' (द्विज) दाँत को भी कहते हैं। सारे दाँत मुख के आश्रित हैं। इसलिए 'मुख' दुजराज हुआ। 'दुजराजी' (द्विजराजी) दाँतों की पंक्ति को कहेंगे, इसलिए 'द्विजराजिनि' दाँतों की पंक्तियाँ हुईं। यों दुजराज और दुजराजिनि का अभिप्राय दंतसंयुक्त मुख हुआ। ऐसे मुख का न्योता उसी अधरामृतपान का होगा। कैसा चमत्कारपूर्ण दोहा है—

अली तिहारे अधर में सुधाभोग को साज।
दुजराजिनिजुत न्योतिये लालबदन दुजराज॥

(९) नायक-नायिका दोनो के मुख चंद्रमा के समान प्रकाश फैला रहे हैं। बेचारी लज्जारूप अँधियारी को कहीं टिकने का अवसर ही नहीं मिलता—

दुहूँ ओर मुख दुहुँन के बिधु लौं करत प्रकास।
लाज-अँध्यारी दुहुँनि की कहूँ न पावति बास॥

(१०) नायिका के नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है। आँखों में काजल रहने से आँसू भी काजल के वर्णवाले हो रहे हैं, उधर नेत्रों की छवि मीन के समान है, सो कज्जलकलित अश्रुप्रवाह तो नील दंत के समान शोभा पा रहा है और उस पर नेत्र मछली के समान स्थित हैं, बस, कामदेव की पताका की अनुरूपता हो रही है—

अंजनजुत अँसुवा ढरत लोचन मीन समान।
लसत नीलमनि दंडजुत मनो मनोज-निसान॥

(११) आप चाहे जितना अपराध करें, पर वह रुष्ट नहीं होने की। ऐसे कौन से दोष हैं जो प्रियतम के स्नेहसागर में नहीं डूब जाते। वास्तविक स्नेह होने से फिर सभी दोष मिट जाते हैं—

करौ कोटि अपराध तुम वाके हिये न रोष।
नाह-सनेह-समुद्र में बूड़ि जात सब दोष॥

(१२) विप्रलब्धा की रात्रि और वामन महाराज के शरीर की समता पर भी ध्यान दीजिए। कैसी अनूठी सूझ है—

प्रथम अरध छोटी लगी पुनि अति लगी बिसाल।
बामन कैसी देह निसि भई बाल की लाल॥

परकीया और वेश्या

संस्कृत और व्रजभाषा काव्य में शृंगाररस के अंतर्गत नायिकाभेद का वर्णन बड़ी ही सुंदरता और बारीकी से किया गया है। अनेक सज्जन शृंगाररस में स्वकीया नायिका के भेद और भेदांतरों तक तो 'नायिकाभेद' की उपयोगिता स्वीकार करते हैं, पर इसके आगे परकीया और गणिकाओं के संबंध में होनेवाले वर्णनों को वे केवल कुरुचिप्रवर्तक मानते हैं। लेखक भी परकीया और गणिका-वर्णन को आदर की दृष्टि से नहीं देखता, पर इस विषय में प्राचीन कवियों के जो वर्णन हैं, उनमें कहीं-कहीं भावचमत्कार बड़े ही अनूठे हैं। इन वर्णनों को पढ़कर यदि अपरिपक्व समझ और अवस्थावाले युवकों में कुरुचि का संचार होता हो, तो आश्चर्य नहीं। पर, तो भी, कवितासौंदर्य

इनमें अवश्य है। एक बात और है। हिंदीकविता में परकीया और गणिका नायिकाओं का वर्णन बुरा प्रभाव उत्पन्न करनेवाला होने पर भी इतना गया बीता नहीं है, जितना बायरन आदि कई अँगरेज कवियों के अश्लील वर्णन। बायरन के ऐसे ही घृणित काव्य को लक्ष्य करके समालोचक न्यूमैन कहते हैं—

'इसके विपरीत कभी-कभी ऐसा काव्य भी मिलता है, जिसके सौंदर्य के विषय में तो इनकार नहीं किया जा सकता, परंतु वह सौदर्य जिस अयोग्य वस्तु में समाविष्ट होता है, उसे देख क्रोध उत्पन्न होता है'।

अस्तु, समालोचक महोदय रुष्ट होकर भी कवि बायरन के महा घृणित काव्य में सौंदर्य का अभाव कहने का साहस नहीं कर सके हैं। इसी प्रकार कवि रोचेस्टर की कविता में अश्लील वर्णन पाए जाते हैं, पर हैजलिट जैसे समालोचक ने उसके काव्यसौदर्य से इनकार नहीं किया है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि ऐसे वर्णनों में जो काव्यसौदर्य है, वह सराहनीय ही है, फिर उसका प्रभाव चाहे जैसा हो। मतिराम कवि के काव्य में भी परकीया और गणिका के अनेक वर्णनों में खासा सौदर्य समाविष्ट है। पाठकगण से प्रार्थना है कि वे मतिराम के ऐसे वर्णनों को पढते समय उन्हें नैतिक उपदेशक की दृष्टि से न देखें, वरन् एक ऐसे कवि की दृष्टि से देखें, जिसका काम सभी स्थलों से सौदर्यसंकलन करना है।

(१)

नायिका गुप्त रीति से अपने प्रियतम से मिल आई है। प्रियतम ने उसका श्रृंगार किया है। प्रियतम-कृत श्रृगार साधारणतः सखी-कृत श्रृंगार के समान नहीं है। कई कारणों से उसके किए हुए श्रृगार में कुछ विशेषता है।

सखी की बारीक निगाह इस विशेषता को समझ लेती है। नायिका का प्रियतम से मिलन सखी को लक्षित हो जाता है। नायिका से वह इस बात को साफ-साफ बतला देती है। ऐसी एक लक्षिता नायिका का चित्र मतिरामजी ने यों खींचा है—

आई हौ पाँय दिवाय महावर कंजन तैं करिकै सुखसैनी।
साँवरे आजु सँवारयो है अंजन नैनन को लखि लाजति ऐनी।
बात के बूझत ही *मतिराम* कहा करिये यह भौंह तनैनी।
मूँदी न राखत प्रीति भटू यह गूँदी गुपाल के हाथ की बैनी॥

उपर्युक्त छंद में प्रियतम-कृत शृंगार का होना पैरों के महावर, आँखों के अंजन और सिर की वेणी में ही संभव है। तो क्या महावर लगाने में नायक ने कोई भूल की ? क्या वह ठीक तौर से काजल न लगा सका ? क्या वेणी बाँधना भी उसे न आता था ? क्या वह इतना अज्ञ था ? यदि उसने कोई भूल नहीं की, तो सखी ने भेद कैसे पा लिया ? क्या सखी का यह कहना कि 'गुपाल'—गोपाल (गाय पालनेवाला अहीर—गँवार—अज्ञ) की गुही बेनी प्रीति को प्रकट कर रही है—इसी अभिप्राय से है कि नायक गँवार है ? उत्तर में निवेदन है कि बात ऐसी नहीं है। सखी के द्वारा 'गुपाल' के प्रयोग में हास्य की पुट होना संभव है; पर नायक अज्ञ न था। उसने महावर और अंजन लगाने तथा वेणी बाँधने में भूल नहीं की, पर उसके सतर्क रहते भी इन तीनों ही कामों में विकार हो गया है।

सात्त्विक भाव से पैर में स्वेद का प्रादुर्भाव हुआ है, इसलिए नायक का लगाया महावर फैल गया है। नेत्रों में कज्जल की भी यही दशा हुई है, यहाँ तक कि नायिका के नेत्र श्यामता में हरिणी के नेत्रों से भी बढ़ गए हैं। उधर वेणी बाँधने में दूसरी ही बात हुई है। सखी या नाइन तो कसकर वेणी बाँधती—उसका लक्ष्य तो वेणी ठीक बँध जाय, इसी पर रहता; पर नायक महोदय प्रेमाधिक्य के कारण कसकर बाँधने से घबरा गए। उन्हें भय हुआ कि कहीं नायिका को पीड़ा न पहुँचे। बस, इसी विचार से उनकी बाँधी वेणी ढीली रह गई। सखी इन सब बातों को समझ गई, इसलिए नायिका के भौंह चढाने की परवा न करके उसने सब कुछ कह डाला।

मतिराम के इस छंद में सूक्ष्म दृष्टि और स्वाभाविकता का अपूर्व संमिलन हुआ है। बुद्धि पर जरा-सा जोर देने से मतिराम की अनोखी काव्यकला का परिचय होता है। माधुर्य तो छंद में लबालब भरा हुआ है। 'बात के बूझत ही मतिराम कहा करिये यह भौंह तनैनी' में स्वाभाविकता कूट-कूटकर भरी गई है। मनुष्यप्रकृति के पारखी होने का सच्चा प्रमाण दिया गया है। 'दासजी' ने अपने 'रससाराश' में मतिराम के इस भाव का अपहरण किया है, पर दोहे में मतिराम के हाथ की वह सफाई कहाँ—

प्रगट कहै ढीली कसनि चुवत स्वेदकन-जाल।
पेनिनैनि पैनी भई बेनी गुही गुपाल॥

छंद के काव्यांगों की आलोचना करने के लिए कम-से-कम इतना ही स्थान और चाहिए, इसलिए उस पर यहाँ विचार न करेंगे।

(२)

संकेतस्थल में प्रियतम के मिलने को जाकर, वहाँ उनके आगमन की प्रतीक्षा में चिंतित होनेवाली नायिका को उत्कंठिता कहते हैं। मतिराम के रसराज से एक ऐसी ही उत्कठिता का चित्र नीचे दिया जाता है। इस छद का अतिम पद अनमोल है। नेत्रों की विविध अवस्थाओं का लक्ष्य करके उनकी क्रम से मीन, कज, खंजन और चकोर से उपमा दी गई है। मछली से नेत्रों की समता उनकी चचलता और दीर्घता दर्शित करती है। नेत्र किसी की खोज में हैं। वे उससे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं। फिर उनको आशा होती है। वे अपनी सहज सुघराई के साथ प्रफुल्लित हो उठते हैं। अब उनमें अस्थिरता के स्थान में स्थिरता आ जाती है। वे विकसित अरविंद का रूप धारण करते हैं। पर जिस आशा ने उन्हें 'मीन', 'कज' किया था, उसी के फलीभूत न होने से उनमें निराशाप्रेरित अस्थिरता का पुनः प्रादुर्भाव होता है, या विशेष आशान्वित होकर प्रियमिलन को अत्यत समीप जानकर वे खंजन के समान थिरकने लगते हैं। काजल दुःख या सुख के अश्रुओं में गलित होकर नेत्रों को ऐसा सित-श्याम कर देता है कि बस शरद् के खंजन भुलाए ही नहीं भूलते। निराशा का पुनःप्रस्थान हो, या आशा का प्रबलतम प्रादुर्भाव हो—अब की नेत्रों की स्थिरता देखते ही बनती है। 'सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी' की उपमा पूरी उतरती है। आशा और निराशा-वायु से विकंपित या आशा-वायु के प्रबल, प्रबलतर और प्रबलतम झोंकों से आक्रात नेत्रों की परिवर्तनशील शोभा का चित्रण छंद में मार्के का हुआ है—

जमुना के तीर बहै सीतल समीर जहाँ
मधुकर करत मधुर मंद सोर हैं।
कबि *मतिराम* **तहाँ छबि-सों छबीली बैठी**
अंगन तें फैलत सुगंध के झकोर हैं।
पीतम बिहारी के निहारिबे की बाट ऐसी
चहूँ ओर दीरघ दृगन करी दौर हैं।
एक ओर मीन मनो एक ओर कंजपुंज
एक ओर खंजन चकोर एक ओर हैं॥

यमुना का जल मीन और कज की सहज ही याद दिलाता है। सामने ही विकसित अरविंद और सुख से तैरती हुई मछलियाँ मौजूद हैं। केवल

शीतल समीर बहता है। इससे जान पड़ता है कि घटना शरत्काल की है। शरद् में खंजन होते ही हैं। चकोर की शरच्चंद्र-प्रीति परम प्रसिद्ध है। अस्तु मतिरामजी ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता के बल से एक उत्तम समता का ही निर्वाह नहीं किया, वरन् घटनाकाल के अनुकूल ऐसे उपमेय-उपमान जुटाए कि उनकी अनोखी मर्मज्ञता पर बलात् बधाई देनी पड़ती है। समग्र छंद में स्वभावोक्ति का मनोरम चमत्कार है। माधुर्य पाठक के मुँह को बाँधे देता है। पहला पद एक अनिर्वचनीय आनंद उत्पन्न करता है। 'चहूँ ओर दीरघ दृगन करी दौर है' बड़ी ही मार्मिकता से भरा हुआ है। दीर्घ नेत्रों की दौड़ चारो ओर हुई है। तभी तो एक ओर मछली पड़ी तड़प रही है, दूसरी ओर कमल फूला है, तीसरी ओर खंजन थिरक रहा है और चौथी ओर स्थिर चकोर निर्निमेष नेत्रों से सुधाकर का पीयूष पान कर रहा है। धन्य मतिराम! धन्य तुम्हारा अपूर्व काव्यकौशल!!

(३)

अनुरागिणी वेश्या कहाँ? उसकी प्रीति तो बहाना-मात्र है। इंद्रिय-सुखभोग के लिए नायक उस पर भले ही जान दे दे, पर पवित्र प्रेम की परछाईं वहाँ कहाँ? विषयाकृष्ट नायक जब तक धन द्वारा वेश्या का समान कर सकता है, तभी तक वह उसकी है। उसका शृंगार, हाव-भाव, सभी कुछ धन वसूल करने के लिए है। नायक का संमान वह इसलिए नहीं करती कि हृदयमंदिर में बैठकर पवित्र प्रेमदेव उससे ऐसा करने का आग्रह करते हैं, वरन् इसलिए करती है कि अपने रूपजाल में फाँसकर उससे मनमाना धन ऐंठे। वेश्याओं की ऐसी ही प्रवृत्ति के कारण उनकी प्रीति में 'रसाभास' माना गया है। मतिरामजी ने एक गणिका आगतपतिका नायिका का वर्णन बड़े ही कौशल से किया है। नायक के आगमन से गणिका प्रसन्न अवश्य हुई है, पर यह प्रसन्नता नायक से धन वसूल होने की संभावना के कारण है, इस बात को कविवर ने बड़ी ही चतुरता से दिखलाया है। नायिका और नायक की बातें हुई हैं। नायिका ने बातचीत में सुबरन (अच्छे पद और स्वर्ण) का प्रयोग किया है। क्या ये अच्छे-अच्छे पद अर्थात् मीठी बातचीत वास्तविक प्रेम के परिचायक हैं? नहीं; सुबरन (स्वर्ण) नायक को इस बात की याद दिलाने को हैं कि स्वर्ण देने का वादा किया था, वह अब मिलना चाहिए। हँसी भी हुई है, पर यह हँसी भी प्रेम की कली खिलाने-वाली रात की पुरवाई नहीं है, वरन् इस बात की याददिहानी है कि हास्य

के समान उज्ज्वल हीरे कब मिलेंगे। आनंदाश्रुप्रवाह भी हुआ है, पर ये आँसू उन मोतियों की याद में गिरे हैं, जिनका वसूल करना नायक से परमावश्यक है। सुबरन से सोने, हास्य से हीरे और अश्रु से मोतियों की माँग हो गई चतुर नायक सब बात समझ गया। पहले दिन के मिलाप में भी धन ही की प्राप्ति का खयाल रहा। प्रेम का प्रभाव कहाँ है? फिर भी मूढ़ नायक गणिका का साथ नहीं छोड़ता? ऐसे विषयजन्य प्रेमाभास को धिक्कार तथा ऐसे नायकों की कुमति पर बार-बार फटकार है—

नागर बिदेस मैं बिताय बहु द्यौस आयो
नागरि के हिय मैं हुलासन की खान की।
कबि *मतिराम* **अंक भरत मयंकमुखी**
नेह सरसाय मोही मति सुखदान की।
सुबरन बोलिकै बतावति है सुबरन
हीरन जतावति है छबि मुसकान की।
आँखिन तैं आनँद के आँसू उमगाय प्यारी
प्यारे को दिखावति सुरति मुकतान की॥

कविराजा मुरारिदान ने अपने जसवंतजसोभूषण में इस छंद को पर्यायोक्ति अलंकार के उदाहरण में उद्धृत किया है।

दोष या गुण

कविवर मतिराम के काव्य में अनेक स्थल ऐसे हैं, जिनके विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों की राय से मतिराम वहाँ अपने भावपूर्ण रीति से निबाहने में समर्थ नहीं हो सके—उनकी कविता सदोष हो गई है। पर कुछ विद्वानों का कहना है कि मतिराम ने वहाँ अपना पांडित्य दिखलाया है, उनसे भूल नहीं हुई, उन्होंने जान-बूझकर सहृदय और विद्वान् पाठकों के खोलने के लिए कुछ मनोरंजन और सरस ग्रंथियाँ लगा दी हैं। इन ग्रंथियों का मोचन होते ही पाठकों को कवि की मर्मज्ञता और रसज्ञता प्रकट हो जाती है। यहाँ हम तीन-चार ऐसी कविताएँ उद्धृत करते हैं। सहृदय पाठक स्वयम् निर्णय कर लें कि ये सदोष हैं अथवा गुणमयी।

(१) क्यों इन आँखिन सों निरसंक ह्वै मोहन को तन-पानिप पीजै।
नैक निहारे कलंक लगै इहि गाँव बसे कहौ कैसे के जीजै।

होत रहै मन यों *मतिराम* कहूँ बन जाइ बड़ो तप कीजै।
ह्वै बनमाल हिये लगिये अरु ह्वै मुरली अधरारस लीजै॥

रसराज में यह छंद परकीया के भेदांतर ऊढा के उदाहरण में दिया गया है। ऊढा उसे कहते हैं, जो ब्याही और पुरुष को हो और रसलीन हो दूसरे पुरुष से। जो समालोचक उपर्युक्त छंद को सदोष बतलाते हैं, उनका आक्षेप यह है कि छंद की शब्दावली में ऊढत्व की सूचना देने में कवि असमर्थ रहा है। संभव है छंद में जिस सुकुमारी की कातरोक्ति है, उसका विवाह ही न हुआ हो। सामाजिक नियमों से जकड़ी हुई—गुरुजन की लज्जा से किंकर्तव्य-विमूढ़—यौवन में प्रवेश करनेवाली किसी कन्या का भी तो यह कथन हो सकता है। क्या प्रेम की चोट खाई हुई कोई अविवाहिता कन्या इस प्रकार की उक्ति नहीं कह सकती ? फिर इसे ऊढा क्यों मानें ? इसके उत्तर में दूसरे पक्ष का कथन यह है कि कवि ने छंद में ऊढत्व पूर्ण रीति से स्थापित कर दिया है, उसे समझने के लिए सूक्ष्मदर्शिता अपेक्षित है। छंद के तीसरे और चौथे पद पर बारीक निगाह डालने से कवि की मर्मज्ञता पर मुग्ध होना पड़ता है। सुकुमारी का कथन है कि प्यारे की प्राप्ति के लिए वन में जाकर तप करने की आवश्यकता है। प्यारा इस रूप में इस नारीशरीर द्वारा तो प्राप्त होने का नहीं, इसलिए उद्योग यह होना चाहिए कि जन्मांतर में वनमाला अथवा मुरली का शरीर प्राप्त हो, तब प्यारे के संनिकट रहने की पूर्ण संभावना रहेगी। सुकुमारी का यह कथन विशेष विचारणीय है। यदि सुकुमारी ऊढ़ा नहीं है, तो पार्वती के समान इसी शरीर से प्यारे को प्राप्त करने के लिए तपस्या क्यों नहीं करती ? पर वास्तव में वह ऊढ़ा है। वह समाज के नियम जानती है। वह जानती है कि हिंदूललना का दूसरा विवाह नहीं होने का, इसलिए तप द्वारा यदि प्यारा मिलेगा, तो दूसरे जन्म में, इस जन्म में नहीं। बस, इतना कथन ऊढत्व प्रतिपादित करने के लिए पर्याप्त है।

(२) बिछुरत रोवत दुहुँन को सखि यह रूप लखै न।
दुख-अँसुवा पिय-नैन हैं सुख-अँसुवा तिय-नैन॥

यह मुदिता का उदाहरण है। पति-पत्नी का वियोग होता है। पति वियोग से दुखी हो आँसू बहा रहा है, पर नायिका के आँसू सुख के हैं। प्रियतम के विदेश चले जाने पर उसके लिए अपने अन्य प्रेमी के साथ रमण करने में रुकावट न रहेगी, इस विचार से उसके आनंदाश्रु बह रहे हैं। यही

उपर्युक्त दोहे का भाव है। दोहे में 'सखि यह रूप लखै न' इसी पद पर विवाद है। कहा जाता है, एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि ऐसा दृश्य और कब देखने को मिला है 'सखि यह रूप लखै न' का यही मतलब लगाया गया है। अब आक्षेप यह है कि सखी यह कैसे जान सकती है कि प्रिय के नेत्रों के आँसू दुःख के हैं और तिय के सुख के? इस पर उत्तर यह दिया जाता है कि अंतरंगा सखी ऐसा जान सकती है। पहले कुछ सखियाँ आँसू पोंछने के काम पर भी रहती थीं, इधर आँसू बहे नहीं और उधर उन्होंने पोंछे नहीं। अतएव अश्रुजल को छूने का उन्हें सदा अवसर रहता था। यह भी कहा जाता है कि ठंडे और गर्म दो प्रकार के आँसू बहते हैं। इनमें से एक प्रकार के आँसू सुख के तथा दूसरे प्रकार के दुःख के परिचायक हैं। सखी बराबर आँसू पोंछती रही है। इसलिए किसके आँसू गर्म हैं तथा किसके ठंडे, यह बात वह जान सकती है। अतः उसका कहना कि अमुक के आँसू सुख के और अमुक के दुःख के हैं अनुचित नहीं कहा जा सकता। एक तो यह गंभीर भाव है। पर इसके अतिरिक्त 'सखि यह रूप लखै न' का अर्थ यह भी तो हो सकता है कि सखी इस रूप को लख नहीं पाती। वह नहीं जान पाती कि वास्तव में दुःख से कौन रो रहा है, तथा सुख से कौन। इस अर्थ को मानते समय दोहे को कविउक्ति मानना होगा। हमने दोनो पक्षों का कथन पाठकों के सामने रख दिया।

(३) मोहिं पठाई कुंज मैं सठ आयो नहिं आपु।
आली औरो मीत को मेरो मिट्यो मिलापु॥

यह गणिका विप्रलब्धा का उदाहरण है। आक्षेप यह है कि इसमें गणिकात्व किस बात से पाया जाता है? कोई कुलटा भी तो एक यार के न मिलने पर दूसरे यार से मिलाप न हो सकने का खेद इसी प्रकार प्रकट कर सकती है। फिर इसे गणिका विप्रलब्धा क्यों मानें? दूसरे पक्ष का कथन है कि यदि कुलटा होती, तो तुरंत आली (सखी) से अन्य पुरुष से मिलन कराने को कहती। पर उसने ऐसा नहीं किया। उसे अपने और मित्र के न मिलने का ही दुःख अधिक हुआ है। यह दूसरा मित्र और कोई नहीं, केवल 'धन' है। बस, मित्र से धन का अभिप्राय होने से गणिकात्व सूचित हो जाता है। दोनो पक्षों के मत सामने हैं। निर्णय स्वयम् पाठकगण कर लें।

(४) साँझ ही सिंगार साजि प्रानप्यारे-पास जाति
बनिता बनिक बनी बेलि-सी अनंद की।

कबि *मतिराम* कलकिंकिनी की धुनि बाजै
मंद - मंद चलनि बिराजति गयंद की।
केसरि रँग्यो दुकूल हाँसी मैं झरत फूल
केसनि मैं छाई छबि फूलनि के बृंद की।
पीछे पीछे आवति अँधेरी - सी भँवर - भीर
आगे आगे फैलति उजारी मुखचंद की॥

यह गणिका अभिसारिका का उदाहरण है। आक्षेप यह है कि यह कैसे माना जाय कि यह गणिका अभिसारिका है? गणिकात्व की सूचना तो धन के लालच से होती है। वह कहीं छंद में पाया नहीं जाता। दूसरी चिंत्य बात यह है कि संध्या (निशाप्रारंभ) में भ्रमरों का वर्णन कैसा? समर्थनकारी पक्ष का कथन है कि साहित्यदर्पण में वेश्याभिसारिका का जो लक्षण है, वह मतिराम के उपर्युक्त छंद पर पूरा उतरता है। नायिका विचित्र और उज्ज्वल वेष में खुल्लमखुल्ला बेधड़क कंकणों को झनकाती आनंद से मुसकाती चली जा रही है, इसीलिए वह वेश्या अभिसारिका है, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं। छंद में धन के लालच की सूचना भी उनकी राय में है। उनका कहना है कि 'बनिता बनिक बनी बेलि-सी अनद की' का यह अर्थ है कि वह काम-वणिक् की स्त्री बनी हुई है। वणिक् क्रयविक्रय इसीलिए करता है कि अर्थ-लाभ हो। अनंगवणिक् की वनिता में भी यह भाव आ गया। इससे धन के लालच का भाव भी आ गया। कहीं-कहीं बनिए की स्त्री को भी 'बनी' कहते हैं। उस अवस्था में यह अर्थ करना होगा कि अभिसारिका की बनक बनी के समान है। क्रय-विक्रय और धनलोभ का भाव इससे भी सूचित हो गया। यों वेश्याभिसारिका का स्पष्ट है। रात्रि में भ्रमरों का वर्णन कवि लोग करते हैं। संस्कृतकविता के प्रसिद्ध ग्रंथ कादंबरी में ऐसा वर्णन है। मतिराम के परवर्ती देव ने भी रात्रि में भ्रमरों का वर्णन किया है। मतिराम के छंद में तो घटना का अवसर संध्या ही है। अभी तो दिन का अवसान-मात्र हुआ है। सरोवरों के कमल मुद्रित हो गए होंगे। उनकी सुवास भी बंद होगी। ऐसे में किसी पद्मिनी की गंध पाकर भ्रमरों का आकृष्ट होना परम स्वाभाविक है। इस प्रकार का भ्रमरवर्णन चिंत्य नहीं। सब बातें पाठक स्वयम् विचार लें।

दोष—पाठकों ने इस भूमिका में कविवर मतिराम की कविता में पाए जानेवाले गुणों का ठौर-ठौर पर उल्लेख पाया होगा; दोषों के देखने का उन्हें बहुत ही

कम अवसर मिला होगा। पर इसका यह अर्थ नहीं कि मतिराम की कविता में किसी प्रकार की दोषोद्भावनाएँ की ही नहीं जा सकती हैं। बात यह है कि यद्यपि हिंदीसंसार में प्राचीन काल से रसराज और ललितललाम का बड़ा आदर है, फिर भी बहुत से विद्वानों की दृष्टि में मतिराम का पद उतना ऊँचा नहीं है, जितना उसे हम समझते हैं। कुछ विद्वान् तो मतिराम को दास, पद्माकर तथा तोष से भी घटकर मानते हैं, पर हमारी राय में मतिराम का स्थान इन सबके ऊपर है। जिन कारणों से हम मतिराम का इतना आदर करते हैं, उनको हिंदीसंसार के सामने रखना हमारा कर्तव्य है। इससे दो लाभ होंगे। यदि मतिभ्रम से हमारे हृदय में मतिराम को ऊँचा स्थान मिल गया होगा, तो विद्वान् समालोचक हमारी भूलें दिखलाकर हमारा भ्रम दूर कर देंगे और हम भी उन्हीं के समान मतिराम को दास और पद्माकर आदि से हीन कवि मानने लगेंगे, पर यदि हमारे दर्शित गुणों में कुछ सार हुआ और विद्वानों ने उन गुणों को माना, तो संभव है कि हिंदीसाहित्य-ससार में मतिराम का अब की अपेक्षा कुछ अधिक आदर होने लगे। बस, इसी विचार से अभी इस पुस्तक में मतिराम के गुणों की चर्चा ही अधिकतर की गई है। भविष्य में योग्य विद्वानों के हाथ में पड़कर मतिराम की कविता के दोष भी हिंदीसाहित्य-संसार में अवश्य प्रकट होंगे। अभी हमने मतिराम की कविता में दोष ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न बहुत कम किया है। संभव है, समय पाकर हमीं मतिराम की कविता में अनेकानेक दोष दिखला सकें। पाठकों को हम यह विश्वास दिला देना चाहते हैं कि हम मतिराम के दोष छिपाना नहीं चाहते। उनकी कविता में जो दोष हमें मालूम हैं, वे हम अवश्य प्रकट करेंगे। हमारी राय में किसी अच्छे कवि की कृति में कुछ दोष दिखलाई पड़ने से उस कवि के गौरव को तब तक कुछ क्षति नहीं पहुँचती है, जब तक दोषों का पलड़ा गुणों के पलड़े से भारी न ठहर जाय। अत्यधिक शब्दों की तोड़-मरोड़ को हम बुरा समझते हैं, परंतु साधारण शब्दों के रूप में परिवर्तन कर देना व्रजभाषा के कवियों की स्वीकृत एक रीति-मात्र है। सूर, तुलसी, देव और बिहारी आदि बड़े-बड़े कवियों की कविता में हजारों तोड़े-मरोड़े शब्द मौजूद हैं। मतिराम की कविता में तो तोड़े-मरोड़े शब्द बहुत कम हैं। अपने पूर्ववर्ती कवियों के भावों से लाभान्वित होना भी व्रजभाषा के कवियों ने दोष नहीं माना है। हम भावापहरण तीन प्रकार का मानते हैं अर्थात् भावसुधार, भावरक्षा और भावदलन। भावसुधार से हमारा मतलब पूर्ववर्ती के भाव से अपने भाव को बढ़ा देना है। भावरक्षा से यह अभिप्राय है कि जो अच्छा

भाव विस्मृत हुआ जाता था, उसे नए परिच्छेद में नई परिस्थिति के अनुकूल फिर से प्रचलित करना। भावदलन से यह अर्थ है कि दूसरे के भाव में जो सौंदर्य था, उसे कुरूपता में परिवर्तित कर डालना। इसी को हम साहित्य में चोरी के नाम से पुकारते हैं। इस साहित्यिक चोरी को हम बहुत बुरा समझते हैं। मतिरामजी की कविता में पूर्ववर्ती कवियों के भाव जहाँ लड़ गए, उनका एक छोटा-सा संग्रह पाठकों को तुलनात्मक समालोचनावाले शीर्षक में मिलेगा। पाठकगण वहाँ सहज ही में यह निर्णय कर सकते हैं कि किस पद्य पर चोरी का इलजाम सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है। जो ऐसे पद्य उस शीर्षक में होंगे, उनका यहाँ फिर से लिखना बिलकुल व्यर्थ है।

अब हम पाठकों के सामने मतिराम के प्राप्त ग्रंथों में जो त्रुटियाँ पाई जाती हैं, उनका अत्यत स्थूल वर्णन करेंगे। यह हम ऊपर कह ही आए हैं कि मतिराम की कविता में दोष निकालने का प्रयत्न हमने बहुत कम किया है, इसलिए अधिक दोष दिखलाने में हम अभी असमर्थ हैं।

(१) मतिराम के दो ग्रंथ—रसराज और ललितललाम—प्राप्त हैं, वे दोनो ही अपूर्ण हैं। रसराज नाम यह सूचित करता है कि इसमें शृंगार-रस का संपूर्ण वर्णन होगा, परंतु ग्रंथ में यह बात नहीं पाई जाती। शृगाररस का केवल नाम आ गया है, परतु रस का स्वरूप नहीं वर्णन किया गया। संचारी भावों का वर्णन ग्रथ में बिलकुल नहीं हुआ। रसराज जैसे उत्तम ग्रंथ में यह कमी बेतरह खटकती है। ललितललाम में शब्दालंकारों का वर्णन छोड़ दिया गया है। यद्यपि मतिराम ने अपने अलंकार के लक्षण में उनकी पृथक् सत्ता स्वयम् स्वीकार की है। इस कमी के कारण ललितललाम में अपूर्णता का दोष लग गया है। और भी कई अलंकारों और उनके भेदांतरों का वर्णन ललितललाम में नहीं पाया जाता।

(२) मतिराम के अधिकाश छंदों में कला का नैपुण्य तो बहुत अधिक पाया जाता है, पर तन्मयता की उचित मात्रा उनके थोडे ही छंदों में पाई जाती है। यदि मतिराम सूर और तुलसी की श्रेणी के कवि होते, तो उनके काव्य में तन्मयता की कमी उतनी न खटकती, क्योंकि कथाप्रसंग के साथ थोडे-बहुत तन्मयताहीन वर्णन भी खप सकते हैं, परंतु मतिराम उस श्रेणी के कवि हैं, जिनके प्रत्येक छंद का दूसरे छंद से कोई संबंध नहीं है। उनका काव्य तो मुक्तकों से परिपूरित कहना चाहिए। ऐसी दशा में प्रत्येक छंद का सर्वांग सुंदर होना परमावश्यक है।

(३) रसराज में परकीया और गणिका का वर्णन परम मनोहर हुआ है। यद्यपि मतिराम ने स्वकीया का वर्णन भी अच्छा किया है, पर सब बातों पर विचार करने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि उनका गणिका और परकीया का वर्णन ही अधिक अच्छा है। कलानैपुण्य की सर्वत्र प्रशंसा होनी चाहिए, परतु कुरुचिप्रवर्तक काव्य का कर्ता अपनी कृति के लिए समाज के प्रति उत्तरदायी अवश्य है। ऐसी कृति से कवि के चरित्र-संबंध में यदि प्रतिकूल अनुमान किया जाय, तो उसे निष्कारण नहीं मानना होगा। इनके बहुत से शृंगारवर्णनों में अश्लीलता की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती है।

(४) इनके कोई-कोई छंद नितांत साधारण हैं। न तो उनमें तन्मयता का पता है और न कलानैपुण्य का समावेश। यदि किसी को मतिराम के केवल ऐसे ही दो-चार छद याद हों, तो वह इनको अवश्य ही बहुत साधारण कवि समझेगा।

(५) हिंदीकविता के आचार्यों ने अलंकारों के जो लक्षण दिए हैं, उनमें प्रायः भ्रामक लक्षण अधिक पाए जाते हैं। शिवराजभूषण में हमको ऐसे लक्षण बहुत से मिले हैं। ललितललाम के भी अनेक लक्षण ऐसे ही दोष से दूषित हैं।

(६) काव्यशास्त्र में यतिभंग, पुनरुक्ति, अधिक-न्यून-पदत्व आदि जिन दोषों का वर्णन पाया जाता है, उनके भी उदाहरण इनकी कविता में मिल सकते हैं, यद्यपि इनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

(७) मतिराम की कविता में कहीं-कहीं शब्दों का प्रयोग बेढंगा हुआ है। अन्य भाषा के कई शब्दों का भी यह ठीक व्यवहार नहीं कर सके। पर ऐसे उदाहरण बहुत ही थोडे पाए जाते हैं।

(८) मतिराम की कविता में प्राकृतिक वर्णन बहुत ही कम पाए जाते हैं।

ऊपर जिन दूषणों का उल्लेख हुआ है, उनके कुछ फुटकर उदाहरण भी दिए जाते हैं—

(१) बारबिलासिनि कोटि हुलास बढ़ाइकै अंग सिँगार बनायो।
प्रीतमगेह गई चलिकै *मतिराम* **तहाँ न मिल्यो मनभायो।**
संग सहेली सौं रोस कियो नहिँ आपुन को यह दोस लगायो।
हाय मैं कीनो मतो यह कौन जु आपने भौन न बोलि पठायो॥

उपर्युक्त शब्द में कला का नैपुण्य और तन्मयता, दोनो का ही अभाव है।

(२) परम प्रबीन धीर धरमधुरीन दीन-
बंधु सदा जाको परमेसुर मैं गति है।
दुज्जन बिहाल करि जाचक निहाल करि
जगत मैं कीरति जगाई जोति अति है।
राव सत्रुसाल को सपूत पूत भावसिंह
मतिराम **कहै जाहि साहिबी फबति है।**
जानपति दानपति हाड़ा हिंदुवानपति
दिल्लीपति - दलपति बलाबंधपति है॥

उपर्युक्त छंद में कोरा कलानैपुण्य है। सो भी बहुत ही साधारण ढंग का। तन्मयता की तो छंद में कोई बात ही नहीं। प्रथम पद में 'दीनबंधु' के दो टुकड़े होकर एक एक यति में तथा दूसरा दूसरी यति में जाकर पड़ता है। यह यतिभंग का स्पष्ट उदाहरण है। तीसरे पद में 'पूत' व्यर्थ समझ पड़ता है। 'जानपति' का अर्थ सुजानपति लगाया गया है। इस दृष्टि से 'जानपति' प्रयोग असमर्थ है। भावसिंहजी को 'हिंदुवानपति' तथा दिल्लीपति-दलपति कह करके फिर 'बलाबधपति' कहने में कोई बड़ा गौरव नहीं है। द्वितीय पद में भावसिंह को जाचक निहाल करनेवाला कहा है, फिर चतुर्थ पद में उन्हीं को दानपति कहा है। चाहे यह पुनरुक्ति न हो, पर ऐसे प्रयोग अभिनंदनीय भी नहीं कहे जा सकते।

(३) मनो भजी अरितियन को पकरन को दृढ़ दाप।
भावसिंह को दिसनि में फैलत प्रबल प्रताप॥

इस पर बाबू रामकृष्ण वर्मा की निम्नलिखित टिप्पणी का हम भी समर्थन करते हैं—'हम लोगों की समझ में अबला स्त्रियों के पकड़ने के लिए महाराज के प्रबल प्रताप का फैलना ठीक नहीं जान पड़ता है'।

(४) केलि कै राति अघाने नहीं दिनहू मैं लला पुनि घात लगाई।
इत्यादि।

उपर्युक्त पद्य में चाहे साहित्यदर्पण की शास्त्रीय आलोचना के बल पर अश्लील दूषण न भी लगे, परंतु ऐसे वर्णन समीचीन नहीं कहे जा सकते हैं।

(५) बारि के बिहार बर बारन के बोरिबे को
बारिचर बिरची इलाज जयकाज की।

उपर्युक्त पद्यांश में 'बिरची इलाज' का प्रयोग बेढंगा है और ठीक भी नहीं है।

काव्यकौशल के नमूने

(१) बारि के बिहार बर बारन के बोरिबे को
बारिचर बिरची इलाज जयकाज की।
कहै *मतिराम* बलवंत जलजंतु जानि
दूरि भई हिम्मत दुरद सिरताज की।
असरन-सरन के चरन-सरन तके
त्योंही दीनबंधु निज नाम की सुलाज की।
धाए रतिमान अति आतुर गुपाल मिली
बीच ब्रजराज को गरज गजराज की॥

पिंगल—घनाक्षरी या मनहरण छंद। यति नियमानुसार १६ व १५ वर्णों पर।

अर्थ—एक बड़ा हाथी जल में बिहार कर रहा था। वहीं एक बड़ा ग्राह रहता था। इसने हाथी को डुबाने का उद्योग किया। हाथी डूबने लगा। उसकी हिम्मत छूट गई। जब उसे और कोई उपाय न सूझा, तो उसने अशरणशरण भगवान् के चरणों का ध्यान किया। भगवान् ने भी अपने दीनबंधु नाम की रक्षा की। अभी हाथी की विपत्तिपुकार उन तक पहुँची भी न थी कि वे उसकी रक्षा के लिए दौड़ पडे। ब्रजराज को गजराज का विपत्ति-गर्जन आधे मार्ग में ही सुन पड़ा। यही उपर्युक्त छंद का संक्षिप्त भावार्थ है। इस पद्य में हाथी के लिए बारन, दुरद और गजराज, इन तीन शब्दों का प्रयोग हुआ है। बारन शब्द से हाथी की शक्तिमत्ता और अभिमान का भाव टपकता है। जिस समय हाथी जलकेलि के लिए पानी में घुसा था, उस समय उसमें ये ही भाव प्रधान थे। परंतु जब ग्राह ने उसे पकड़कर खींचा और उद्योग करने पर भी वह अपने को छुड़ा न सका, उस समय उसकी दशा दीन हो गई। वह किसी के आगे दाँत निकालकर दया का प्रार्थी हुआ। इस समय उसका सारा अंग डूब गया था। ऊपर सूँड़ और दाँत ही

दिखलाई पड़ रहे थे। ऐसी अवस्था में मतिरामजी ने हाथी के लिए दुरद शब्द का प्रयोग करके अपनी पैनी निगाह का पूर्ण परिचय दिया है। हाथी का मद चूर्ण-चूर्ण हो गया। उसने सच्चा अनुताप किया। उसकी सच्ची भक्ति से भगवान् द्रवीभूत हो गए। इसलिए अब वह साधारण हाथी न रहा। क्या व्रजराज साधारण हाथी के लिए इस प्रकार दौड़ सकते थे? इसीलिए मतिराम ने अब 'गजराज' शब्द का प्रयोग किया है। पाठकगण स्वयम् देखें कि बारन, दुरद और गजराज का प्रयोग कितना विदग्धतापूर्ण है। भगवान् के लिए भी इसी छंद में अशरणशरण, दीनबंधु, गोपाल और व्रजराज शब्दों का प्रयोग किया गया है। ये शब्द भी अपने अपने स्थान में उपयुक्त ही हैं। गजराज को जब अपनी रक्षा के लिए और किसी का सहारा न रहा, तो अंत में वह भी उन्हीं की शरण में गया, जो 'अशरणशरण' हैं। कितना उपयुक्त प्रयोग है! भगवान् ने दीन हाथी की उसी प्रकार मदद की, जिस प्रकार विपत्ति के समय भाई काम आता है। इसलिए 'दीनबधु' का प्रयोग भी मार्के का रहा। गो शब्द का अर्थ पृथ्वी और जल दोनो है। गोपाल समान भाव से जल और पृथ्वी के पालक हैं। इसलिए पृथ्वी और जल के दो जीवों के बीच का मामला निपटाने की संपूर्ण पात्रता उनमें ही है। इसीलिए हम गोपाल को गज-ग्राह का मामला निपटाने के लिए दौड़ते पाते हैं। परंतु पालक में शासक के गुणों का अभाव हो सकता है। इसलिए आगे भगवान् 'व्रजराज' के रूप में प्रस्तुत हैं। राजा होने से वे शासन करने में समर्थ हैं। जिस प्रेम के प्रभाव से वे इस प्रकार दौड़े हैं, उसका मनोरम प्रस्फुटन 'व्रज' में ही हुआ था। इस कारण 'व्रजराज' में राजा के क्रूर भावों का निराकरण हो करके 'प्रेमपूर्ण शासन' की सुव्यवस्था का पता चलता है। कोई यह आक्षेप कर सकता था कि यह कैसे व्रजराज हैं, जो साधारण जीव के लिए इस प्रकार दौड़-धूप कर रहे हैं, सो इसका भी निवारण मतिराम ने चतुरतापूर्वक कर दिया है। राजा के काम को राजा जाता ही है। फिर गजराज के काम को व्रजराज गए, तो क्या अनुचित हुआ? अशरण की शरण में जा करके भी क्या गज साधारण जीव ही बना रहा?

इस छंद में 'दूरि भई हिम्मत दुरद सिरताज की', 'असरन-सरन के चरन-सरन तके', 'दीनबंधु निज नाम की सुलाज की' तथा 'मिली बीच व्रजराज को गरज गजराज की' वाक्य महावरेदार और मतिराम के भाषासौष्ठव के परिचायक हैं। 'व्रजराज को गजराज की गरज मिली' इस वाक्य में 'गरज'

का सनिवेश बड़ा ही सुंदर है। गरज को चाहे गर्जनरूप में लीजिए, चाहे गरज के रूप में, दोनो ही प्रकार से प्रयोग बिलकुल ठीक बैठता है। मतिरामजी के छंद में जो भाव वर्णित है, उसको इनके कई पूर्ववर्ती कवियों ने भी कहा है, पर मतिराम ने उसे खूब सरस कर दिया है। इनके परवर्ती कवियों ने भी इस भाव को अपनाया है, पर मतिराम की सफाई तक पहुँचने में वे समर्थ नहीं हो सके हैं। कविवर रघुनाथ का एक छद नीचे दिया जाता है—

धसत तरंगिनी मैं तीर ही तरल आय
ग्रस्यो ग्राह पाय खैंचि पानी बीच तरज्यो।
करनी-कलभ करैं कलपना कूल ठाढ़े
कहा भयो कहा करना कै संग लरज्यो।
कठिन समय बिचारि साहब सो गयो हारि
हठि पग ध्यान *रघुनाथ* ज्यौंही सरज्यो।
असरन-सरन बिरद की परज देखो
पहिले गरज भई पीछे गज गरज्यो॥

इसके बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त छंदों में पुराण-प्रसिद्ध 'गजग्राहउद्धार'-घटना का मनोरंजक वर्णन है।

अलंकार (१) 'बारि के बिहार बर बारन के बोरिबे को बारिचर बिरची' इतने अंश में कई बार अनुप्रास का प्रयोग है। 'इलाज जयकाज' में भी यही दशा है। 'असरन-सरन चरन-सरन' तथा 'ब्रजराज गरज गजराज' में भी अनूठा अनुप्रासचमत्कार है।

(२) दूसरे पद में द्विरद सिरताज की हिम्मत इस हेतु से दूर हुई है कि जलजंतु बड़ा ही बलवंत है। इसलिए यह हेतु अलंकार हुआ।

(३) 'असरन-सरन के चरन-सरन तके' में विरोधाभास है तथा ` नरुक्ति भी।

(४) 'दीनबधु नाम की लाज की' पद द्वारा नाम के योग्य से अर्थ-कल्पना की गई है। इसलिए निरुक्ति है।

(५) ललितललाम में मतिरामजी ने इस छंद को चंचलातिशयोक्ति के उदाहरण में रखा है। कारण का प्रसंगवर्णन करते-न-करते यहाँ कार्य की उत्पत्ति हुई है। यही चंचलातिशयोक्ति का रूप है।

कुल छंद में मुख्य अलंकार चंचलातिशयोक्ति ही है। जिस प्रकार सत्कवि के काव्य में विना उद्योग के भी और बहुत से अलंकार आ जाते हैं, वही बात मतिराम के इस छद में भी हुई है।

गुण—प्रसाद गुण मुख्य है। परंतु कहीं कहीं जैसे द्वितीय पद में ओज गुण के सूचक भी कई पद हैं।

वृत्ति—उपर्युक्त पद्य में मधुरा और परुषा वृत्ति का मिश्रण है, इस कारण यह प्रौढ़ा वृत्ति है। इसी का नाम सात्वती वृत्ति भी है।

रस—इस छंद में पराए दुःख को दूर करने का जो उत्साह है, वही स्थायी भाव है। इसका आलंबन विभाव दुःखार्त गजराज है। गजराज की दीनता से भरी पुकार (गरज) उद्दीपन विभाव है। इस गरज को सुनकर दुःख दूर करने के लिए व्रजराज का दौड़ पड़ना अनुभाव है। गजराज की रक्षा के लिए धैर्य और मति आदि कई भावों का जो संचार हुआ है, वे सन्चारी भाव हैं। इस प्रकार आलंबन विभाव उद्दीपन विभाव से उद्दीपित होकर और सन्चारी भावों से परिपुष्ट हो करके स्थायी भाव को रसत्वसज्ञा प्राप्त कराने के योग्य बनाता है। स्थायी भाव उत्साह है। इसलिए कविता में वीररस स्थापित हुआ। यह वीररस पराए दुःख को दूर करने के लिए है। इसकी प्रेरणा दया के द्वारा हुई है। इसलिए यह वीररस का दयावीर नामक रूपातर है।

काव्य—गजराज ने 'अशरण के शरण की चरण-शरण ली' इसका मतलब यह है कि उसने भगवान् का आश्रय लिया। इसी प्रकार यह कथन कि 'भगवान् को गजराज की गरज बीच मार्ग में मिली' यह अर्थ प्रकट करता है कि भगवान् ने गज की पुकार बहुत शीघ्र सुनी। ऐसे वर्णन अभिधामूलक नहीं कहे जा सकते हैं। परंतु छद के प्रथम दो पदों में अभिधाशक्ति का संपूर्ण परिचय है। कुल छंद में वाक्य के तट से जो अर्थ लिया गया है, वहीं प्रधान होने से यह लक्षणामूलक मध्यम काव्य है।

चिंत्य प्रयोग—हमारी राय में 'इलाज बिरच्ची' प्रयोग चिंत्य है। 'इलाज' शब्द अरबी भाषा का है। हिंदीशब्द-सागर में यह पुंलिंग माना गया है। यद्यपि इसका अर्थ तदबीर भी है, परंतु मुख्य अर्थ दवा है।

'दीनबंधु निज नाम की सुलाज की' प्रयोग में 'सु' अक्षर व्यर्थ है। प्रथम पद में वारिचर के भयकाज के लिए इलाज के विरचने की सूचना दी

गई, वह छंद में प्रत्यक्ष कहीं भी नहीं है। छंद में वर्णित भाव की संपूर्णता के लिए यह आवश्यक था कि ग्राह के द्वारा गजग्रास की बात स्पष्ट-स्पष्ट वर्णित कर दी जाती।

सारांश—शब्दयोजना-संबंधी दो एक खटकने योग्य बातें होते हुए भी उपर्युक्त छंद सत्काव्य का एक अच्छा उदाहरण है। इसमें दयावीररस का संपूर्ण निर्वाह हुआ है। चंचलातिशयोक्ति अलंकार का प्रकाश भी बड़ा ही सुंदर है। भगवान् और हाथी के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग बड़ी चतुरता के साथ किया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर छंद की प्रभा और चमत्कारपूर्ण दिखलाई पड़ती है। इससे यह भी पता चलता है कि मतिराम शृंगारातिरिक्त अन्य रसों की कविता भी कुशलतापूर्वक कर सकते थे। प्रयोजन यह कि छंद सब प्रकार से सराहनीय बन पड़ा है।

(२) प्रानपियारो मिल्यो सपने मैं परी जब नेसुक नींद निहोरैं।
कंत को आगम त्योंही जगाय कह्यो सखी बैनपियूष निचोरैं।
यों *मतिराम* बढ़यो हिय मैं सुख बाल के बालम सों दृग जोरैं।
जैसे मिहीं पट मैं चटकीलो चढ़ै रँग तीसरी बार के बोरैं॥

पिंगल—सात भगण और अंत में दो गुरु होने के कारण यह मालती नामक सवैया-छंद है। मात्रागणना में कहीं-कहीं गुरु का लघु और लघु का गुरु पढ़ना पड़ा है, जो एक प्रकार का दोष है, परंतु इस दोष को बहुत-से कवियों ने नहीं माना है।

रस—आलंबन विभाव नायक एवम् नायिका हैं। नायिका आगतपतिका है, क्योंकि उसका पति परदेश से आया है। वह प्रौढा भी है, क्योंकि बालम से दृग मिलाती है। बालम के वियोग से वह दुखित रहती थी और अब प्राणप्यारे के आने से उसके हृदय में सुख बढ़ रहा है, इससे वह स्वकीया सिद्ध होती है। सखी का प्रियागमन का संदेश एवम् स्वयम् नायिका की आखों से मिलना उद्दीपन विभाव हैं। जरा-सी नींद पड़ने पर प्राणप्यारे के मिलन का ज्ञान स्वप्न संचारी है। मिलन के बाद हृदय में सुख का बढ़ना मानसिक अनुभाव है। स्थायी भाव रति है।

प्रिय की आगमकथा सुनते ही जो उसके प्रति प्रेमभाव उठा है, वह मोट्टाइत हाव का रूप है। इस प्रकार आलंबन विभाव उद्दीपन और संचारी

से पुष्ट होकर एवम् अनुभाव द्वारा अपनी सफलता दिखलाकर रति स्थायी को दृढ करता है और पूर्ण संयोग शृंगार का रूप पाता है। इसके सिवा स्वप्न, श्रवण और साक्षात् दर्शन तो छंद में स्पष्ट ही हैं।

गुण—सूखे ईंधन में आग लगाते ही जैसे अग्नि तत्काल काष्ठ में व्याप्त हो जाती है, वैसे ही उपर्युक्त छंद पढते-न-पढते उसका भाव पाठक की समझ में आ जाता है, इस कारण छंद में प्रसाद गुण अपने पूर्ण रूप में विराजमान है।

वृत्ति और रीति—यद्यपि **पट** और **चटकीलो**-सदृश दो शब्दों में टवर्ग आ गया है; परंतु अन्यत्र मधुर पदावली है, इससे छंद में कैशिकी वृत्ति है। समस्त पदों का अभाव होने से इसमें वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ है।

पात्र—शुद्धस्वभावा स्वकीया आधार होने से एवम् वाच्यार्थ मुख्य होने से छंद में वाचक पात्र ही प्रधान है।

काव्य—निदान सब बातों पर विचार करके निष्कर्ष यह निकलता है कि उपर्युक्त कविता की गणना मध्यम श्रेणी में की जायगी, यदि व्यंजक पात्र होता, तो उत्तम श्रेणी में गणना की जाती।

पूर्ण रसपरिपाक दिखला चुकने के बाद अब हम उपर्युक्त छंद में निर्वाह हो सकनेवाले अलंकारों का भी उल्लेख करते हैं, क्योंकि 'अलंकारः एव काव्यं प्रधानमिति प्राच्याना मतम्'।

१. सम—नायिका उपमेय पट उपमान की समान छवि के उल्लसित होने से इसमें उपमालंकार होता है।

२. सार—पहले नायिका ने नायक के स्वप्न में दर्शन किए, परंतु ये दर्शन सत्य न थे, फिर भी इससे नायिका को आनंद हुआ। इसके बाद सखी ने नायिका को जगाकर नायक के आगमन का सच्चा समाचार सुनाया, इससे हर्ष में उत्कर्ष हुआ। तदुपरात नायिका का नायक के साथ साक्षात्कार भी हो गया और हर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। हर्ष का उत्तरोत्तर उत्कर्ष होने से सार अलंकार स्पष्ट हो जाता है।

३. प्रहर्षण—'यहाँ निरंतरता से स्वप्न, श्रवण और प्रत्यक्ष दर्शन होने से नायिका को अकस्मात् परमानंद हुआ है, इसलिए प्रहर्षण अलंकार है'।

—जसवंतजसोभूषण, पृष्ठ ४५४

४. लोकोक्ति—तीन बार डुबोने से रंग अच्छा चढ़ता है। यह लोकोक्ति का रूप है।

५. रूपक—'बैनपियूष निचोरैं' में बैनपियूष पद रूपक का द्योतक है।

६. हेतु—बाल और बालम के दृग जुड़ने से हृदय में आनंद हुआ, सो यहाँ 'हेतु' और 'हेतुमान' दोना उपस्थित रहने से हेतु अलंकार हुआ।

७. असंगति—दृगों के जुड़ने से दृगों को आनंद होना चाहिए था, परंतु आनंद हुआ हृदय को, अर्थात् कारण अन्यत्र और कार्य अन्यत्र घटित हुआ, यह असंगति का रूप है।

८. वृत्त्यानुप्रास—प्रानपियारो, नेसुक नींद निहोरैं और चटकीलो चढ़ै में वृत्त्यानुप्रास है।

९. संसृष्टि—उपमा और प्रहर्षण तथा वृत्त्यानुप्रास की संसृष्टि है। ये तिलतंडुलवत् अलग किए जा सकते हैं।

१०. संकर—सार और प्रहर्षण तथा रूपक, एवम् उपमा और लोकोक्ति, अथच हेतु और असंगति में संकर है। नीर-क्षीर के समान वे ऐसे मिले हुए हैं कि एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते।

मतिरामजी के उपर्युक्त छंद की सुष्ठु योजना पर हम पाठकों का ध्यान विशेष रीति से आकर्षित करते हैं, क्योंकि जहाँ तक हमारे ध्यान में आया है, छंद में एक शब्द भी व्यर्थ का नहीं है—व्यर्थ का होना तो दूसरी बात है, ऐसा शब्द भी ढूँढना कठिन है, जिसको हटाकर दूसरा शब्द रखा जा सके, और फिर चमत्कार में कमी न पड़ जाय। सत्कवियों की रचना में यही विशेषता होती है कि उनका प्रत्येक पद किसी चमत्कार-विशेष का समुत्पादक होता है। मतिरामजी की प्रायः सभी रचनाओं में ऐसा ही चमत्कार है।

(३) केलि कै राति अघाने नहीं दिन हो मैं लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोउ पानी दै जाइयो भीतर बैठिकै बात सुनाई।

जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि हरे *मतिराम* **बुलाई।**
कान्ह के बोल मैं कान न दीनो सुगेह की देहरी पै धरि आई ॥

पिंगल—पिंगलशास्त्र में गुरु को लघु पढ़ लेने का नियम है, तदनुसार उपर्युक्त सवैया में भी कई स्थानों पर इस नियम का पालन किया गया है। सात भगण और अंतिम दो गुरु होने से सवैया का नाम **मालती** है।

रस—नायिका (दुलही) आलंबन विभाव है। वह स्वकीया एवम् विश्रब्ध नवोढा है। उसका पति उसके वश हो रहा है, इससे नायिका का स्वाधीनपतिकत्व और नायक का अनुकूलत्व भी झलकता है। निर्जन स्थान एवम् द्वार तक पानी देने के लिए नायिका का जाना उद्दीपन विभाव की पूर्ति करते हैं। जेठी के आग्रह पर नायिका का जाना उसकी लज्जा दर्शाता है, जिससे लज्जा संचारी का भी प्रस्फुटन हो जाता है। नायिका को देखकर हँसना और उसको अपने पास बुलाना कायिक अनुभाव हैं। लज्जावश नायिका नायक की मनस्तुष्टि नहीं कर सकी है, इससे विहृत हाव भी हो जाता है। नायक की रति-इच्छा ही स्थायी भाव है। इस प्रकार आलंबन-उद्दीपन विभावों द्वारा उत्थित एवम् परिपुष्ट तथा संचारी भाव की सहायता प्राप्त अनुभाव द्वारा पूर्णता को पहुँचता हुआ रतिस्थायी संयोग शृंगार का समुचित रसपरिपाक करता है।

गुण—कविवर मतिराम की कविता का पेटेंट गुण प्रसाद है। वही गुण इस छंद में भी मौजूद है।

वृत्ति-रीति—वृत्ति कैशिकी और रीति वैदर्भी है।

पात्र—शुद्धस्वभावा स्वकीया आधार और वाच्यार्थ मुख्य होने से वाचक पात्र है। कई जगह लक्ष्यार्थ एवम् व्यंग्य का इशारा अवश्य है, पर प्रधानता वाच्यार्थ की समझ पड़ती है।

काव्य—मध्यम काव्य है।

अश्लीलतादोष—साहित्यदर्पण की कारिकासंख्या ६०० के अनुसार—

सुरतारम्भगोष्ठ्यादावश्लीलत्वं तथा पुनः (गुणो भवेत्)।

उपर्युक्त छंद में इस दोष का आरोपण नहीं हो सकता। बृहस्पति-स्मृति में मैथुन के आठ अंग माने गए हैं, जिनमें से एक केलि भी है। केलि अश्लीलता का प्रतिपादक नहीं है। हिंदीशब्द-सागर के पृष्ठ ६२८ पर केलि

का प्रथम अर्थ खेल और क्रीड़ा दिया हुआ है। मतिराम ने 'केलि' शब्द का व्यवहार संभवतः इसी अर्थ में किया है, क्योंकि आगे 'घात' शब्द का प्रयोग हुआ है। घात और खेल का साथ-साथ प्रयोग सूरदास तक ने किया है। यथा—

आप अपनी घात निरखत खेल बन्यो जमाय।

सो घात के साथ **केलि** का प्रयोग करते हुए मतिराम ने केलि का अर्थ खेल ही लिया है, ऐसा समझ पड़ता है। बृहस्पति-स्मृति का श्लोक यों है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टांङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।

फिर यदि केलि का अर्थ दूषित ही मान लिया जाय, तो भी साहित्यदर्पण की कारिका दोष के स्थान में ऐसे वर्णन को गुण ही प्रतिपादित करती है। उधर नायिका का दिन में प्रियतम के पास न जाना उसके धर्मभीरु और दूरदर्शिनी एवम् पूर्ण पतिव्रता होने की सूचना देता है। रतिशास्त्र के निम्न-लिखित श्लोक इस बात के प्रमाण हैं—

दिवाभागे महाभाग यो गच्छेत् रमणीं नरः।
स्वल्पायुः स भवेदाशु सत्यं सत्यं न संशयः।
दिवाभागे व्रजेत् कोऽपि रमणीं यदि कामतः।
तज्जाततनयो ब्रह्मन् महापापी भविष्यति॥

विश्रब्ध नवोढत्व के साथ-साथ यदि इन भावों का उदय स्वकीया सुंदरी के चित्त में हुआ हो, तो क्या आश्चर्य है। फिर भी छंद में अश्लीलतादोष चाहे न भी हो, पर ऐसे वर्णन अनुचित हैं।

अलंकार—१. स्वभावोक्ति—कुल छंद में स्वभावोक्ति का चमत्कार है। विश्रब्ध नवोढा नायिका की स्वाभाविक चेष्टा का मार्मिक वर्णन है।

२. पर्यायोक्ति—नायक नायिका को अपने पास बुलाना चाहता था, सो उसने प्यास लगी कोउ पानी दै जाइयो। आदि द्वारा पूर्ण करना चाहा। अर्थात् व्याज से इष्टसाधन की चेष्टा की, अतः पर्यायोक्ति हुई।

३. विषम—नायिका के संमिलनरूप इष्ट के उद्यम करने पर भी अनिष्ट की ही अवाप्ति हुई, अर्थात् नायिका नहीं मिली। इससे विषम हुआ।

४. विशेषोक्ति—पुष्कल कारण रहते भी—नायिका के घर की देहरी पर (जहाँ नायक अकेला नायिका की प्रतीक्षा कर रहा था) पहुँचते हुए भी इच्छा की पूर्ति हो सकने से विशेषोक्ति अलंकार हुआ।

५. अनुप्रास—'हँसि हेरि हरे' में वृत्यानुप्रास स्पष्ट ही है।

६. संसृष्टि—स्वभावोक्ति, पर्यायोक्ति एवम् अनुप्रास की संसृष्टि तिल-तंडुलन्याय से की जा सकती है।

७. संकर—विशेषोक्ति और विषम एक दूसरे से भिन्न नहीं किए जा सकते हैं। उनमें नीर-क्षीर का संमिलन है, इससे संकर हुआ।

(४) जानति सौति अनीति है जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानति लाज है प्रीतम जानति प्रीति॥

१. नायिका अपनी सपत्नी को अनीति, सखी को सुनीति, गुरुजन (बड़े बूढ़ों) को लज्जा और प्राणप्यारे को प्रीति समझती है।

२. नायिका-विशेष को सपत्नी अनीति, सखी सुनीति, गुरुजन लज्जा और प्राणप्यारा प्रीति मानता है।

३. नायिका अनीति (दोष-विशेष) को ही अपनी सपत्नी समझती है। (उसी प्रकार) सुनीति (गुण-विशेष) को अपनी सहेली, लज्जा को अपना गुरुजन और प्रीति (प्रणय) को अपना प्रियतम जानती है।

४. (संसार में जो) अनीति है, वह (इस नायिका-विशेष में अपने से अभिन्न दोषों को न पाकर—इससे अप्रसन्न होकर) इस नायिका को अपनी सपत्नी समझती है। (वैसे ही) सुनीति (अपने समान गुण नायिका में भी पाकर) उसको अपनी सखी जानती है। लज्जा (उसको पहले से ही लजीली पाकर) उसको अपने से बड़ा मानती है। तथैव प्रीति (उसके स्नेहमय होने के कारण) उसको अपनी सबसे प्यारी वस्तु गिनती है।

५. नायिका सपत्नी (और उसके साथ के भाव अर्थात्) अनीति को समझती है। सखी और सुनीति, गुरुजन और लज्जा तथा प्रियतम और प्रीति आदि के साथ जो अभिन्नता का भाव है, उसको वह सम्यक् जानती है। उपर्युक्त छंद-विशेष 'दोहा' के नाम से भाषाकाव्य में प्रसिद्ध है। यह वर्णन स्वकीया नायिका का है। नायक और नायिका के आलबन से इसमें शृंगार-

रस है। सखी की सुनीति से रस की उद्दीप्ति होती है। गुरुजन की लाज से लज्जा सचारी का काम पूरा पड़ता है। प्रियतम की प्रीति से अनुभाव की ओर अंगुलिनिर्देश है। नायिका नागर है, यह बात स्पष्ट ही है। प्रसाद गुण, मधुरा वृत्ति एवम् वैदर्भी रीति से दोहा विलसित होता है। शुद्धस्वभावा स्वकीया जिसकी सखी सुनीति जाननेवाली है, वाचक पात्र की आधार है। उपर्युक्त छंद में व्यंग्यार्थ मुख्य नहीं है। लक्ष्यार्थ और विशेष करके वाच्यार्थ से ही काम चलता है, सो यह मध्यम काव्य है। अलंकारों की उपर्युक्त दोहे में अच्छी बहार है।

(१) दूसरे अर्थ को लक्ष्य में रखकर देखने से विदित है कि उसी नायिका को सौति, सखी, गुरुजन और प्रियतम आदि अनेक जन अनेक प्रकार से जानते हैं, इस कारण यह उल्लेख अलंकार का प्रथम भेद हुआ।

(२) प्रथम अर्थ पर लक्ष्य रखते हुए नायिका का सौति को अनीति जानना, सौति और अनीति के अनुरूप वर्णन हुआ। उसी प्रकार सखी सुनीति, गुरुजन लाज और प्रियतम प्रीति का भी अनुरूप वर्णन हुआ। यह 'सम' अलंकार का रूप है।

(३) नायिका सौति को अनीति (के समान) (दुखद) जानती है। यह उपमा का रूप है, जिसमें वाचक और धर्म का लोप है, सो यह वाचक-धर्मलुप्ता हुई। सखी सुनीति, गुरुजन लाज, प्रीतम प्रीति में भी यही अलकार हुआ।

(४) दोहे में कवि का प्रधान अभिप्राय यह है कि नायिका सौति को नहीं चाहती है, सखी को चाहती है, गुरुजन को लजाती है तथा प्रियतम से प्रीति करती है। इस विवक्षित अर्थ को कवि ने दूसरे ही प्रकार से अर्थात् सौति को अनीति जानती है आदि शब्दों द्वारा प्रकट किया है। सो यह पर्यायोक्ति अलंकार हुआ।

(५) नायिका ने सौति को अनीति जाना, फिर सखी को सुनीति जाना, फिर गुरुजन को लाज जाना, अंत में प्रियतम को प्रीति जाना। अनीति से सुनीति, सुनीति से उचित लज्जा और तदुपरि सर्वश्रेष्ठ प्रीति का परिस्फुटन हुआ। यह उत्कर्ष क्रम-क्रम से हुआ, इस कारण सारालंकार हुआ।

(६) तीसरे अर्थ को लक्ष्य में रखने से यह भाव निकलता है कि नायिका सपत्नीत्व का भाव और किसी में आरोपित न करके केवल अनीति

में करती है। यही बात शेष तीन चरणों में भी स्थापित की जा सकती है। यह परिसंख्या अलंकार का रूप है।

(७) जानति-जानति का चार बार प्रयोग हुआ है। यह वीप्सालंकार हुआ।

(८) सखी सुनीति, जन जानति और प्रीतम प्रीति में वृत्त्यानुप्रास है।

(९) शब्दालकारों और अर्थालंकारों की संसृष्टि है, तिलतंडुलन्याय से वे अलग किए जा सकते हैं।

(१०) कई अलकार नीरक्षीरवत् मिल गए हैं। इस कारण संकर भी है।

इस प्रकार उपर्युक्त दोहे में शुद्ध स्वकीया आधारवाचक पात्र है तथा पूर्ण शृंगाररस है। वैदर्भी रीति, मधुरा वृत्ति एवम् प्रसाद गुण है। कई अलंकारों में उल्लेख सम, परिसंख्या और वृत्त्यानुप्रास प्रधान हैं, फिर भी वाच्यार्थप्रधान होने से यह मध्यम काव्य है। मतिरामजी के व्यंग्यप्रधान उत्तम काव्य का उदाहरण अन्यत्र देखिए। इस दोहे की उत्तमता के कायल बड़े-बड़े कवि हैं। अनेक कवियों ने इसी की स्पर्द्धा में ऐसे ही दोहे बनाने का प्रयत्न किया, पर सफलमनोरथ न हो सके। कई एक ने खूब लंबे छंद में इस भाव को भरना चाहा, पर उसमें भी वह आनंद न आया। तुलना के लिए हम यहाँ दासजी का एक छंद उद्धृत करते हैं। कहना न होगा कि भावापहरण में दासजी को सदा अन्य कवियों से विशेष सफलता प्राप्त होती है। सो दोहे के भाव पर बनाया हुआ दासजी का यह छंद भी उत्कृष्ट बना है। छंद इस प्रकार है—

प्रीतम प्रीतिमई अनुमानै परोसिनि जानै सुनीतिहि सोहई।
लाजसनी है बड़ो निमनी बर नारिन मैं सिरताज गनी गई।
राधिका को ब्रज की जुवती कहैं याहि सोहागसमूह दई दई।
सौति हलाहल-सौति कहैं औ सखी कहैं सुंदरि सील-सुधामई॥

मतिरामजी ने अपने दोहे में भाव का विकास जैसे क्रम-क्रम से किया था, वह बात दासजी के छंद में बिलकुल नहीं है। परोसिनें और ब्रज-नारियाँ राधिकाजी का हाल सखियों और सौतों के पहले जान लेती हैं। यह स्वाभाविक नहीं है। मतिरामजी के दोहे का क्रमविकास ठीक है। सपत्नी और नायिका का पद बराबर होने से पहले उन्हीं दोनो का एक दूसरे के जानने

का विचार होगा। फिर सदा साथ में रहनेवाली सखी का नंबर आएगा, इसके बाद कभी-कभी सामना होने के कारण घर के गुरुजन का अनुभव होगा और अंत में साक्षात्कार होने के कारण प्रीतम की पारी आएगी। यह शंका की जा सकती है कि प्रीतम की जानकारी सबसे पहले होनी चाहिए। परंतु दोहे में मतिराम को नायिका के प्रति आदराधिक्य का क्रम से उत्कर्ष दिखलाना था, इसी कारण उन्होंने प्रीतम को सबसे अंत में रखा, जिसका आदर नायिका के प्रति सपत्नी, सखी और गुरुजन सबसे अधिक था। दासजी ने प्रियतम को पहले तो रख दिया, परंतु आगे निर्वाह न कर सके—परोसिनों ने उसे सुनीति जाना। वह वर नारियों में सिरताज गिनी गई, पर किसके द्वारा, यह स्पष्ट नहीं है। व्रज की युवतियों ने उसे सराहा। फिर सौतें उसको हलाहल समझने लगीं और सखियाँ शीलसुधामयी। इसमें कोई क्रम नहीं है। पतत्प्रकर्ष भले ही हो। इतने लंबे छंद का प्रयोग करके दासजी न भाव को उत्कृष्ट ही कर सके, न सजावट में ही कोई नूतनता आई। 'निमनी' का प्रयोग अवश्य हुआ, पर प्रश्न यह कि इसने सौंदर्य बढ़ाया या बिगाड़ा। हम तो यही कहेंगे कि मतिराम और दासजी की रचनाओं में महदंतर है।

(५) दूसरे की बात सुनि परत न ऐसी जहाँ
कोकिल कपोतन की धुनि सरसाति है।
*** छाई रहै जहाँ द्रुमबेलिन सों मिलि**
मतिराम **अलिकुलन अँध्यारी अधिकाति है।**
† नखत-से फूलि रहैं फूलन के पुंज घन
कुंजन में होति जहाँ दिन ही में राति है।
‡ ता बन की बाट कोऊ संग न सहेली साथ
कैसे तूँ अकेली दधि बेचन को जाति है॥

पाठांतर—

* छाई रहै द्रुम बहु बेलिन सों, *मतिराम*
अलिकुल कलित अँध्यारी अधिकाति है।

† नखत-से फूले हैं सुफूलनि के पुंज बन
कुंजनि में होति मनो दिनहूँ में राति है।

'नखत' के स्थान में कई प्रतियों में तखत से' पाठ भी है, पर हमें वह अशुद्ध समझ पड़ता है।

‡ 'संग न सहेली साथ' के स्थान पर 'संग न सहेली कहि' पाठ भी है।

अर्थ—जिस वन में कोकिल-कपोतों का इतना अधिक कलरव रहता है कि दूसरे की बात नहीं सुन पड़ती, जहाँ के वृक्षों पर बेलें और उन पर भ्रमरावली के संयोग से अँधियारी में अधिकता ही बनी रहती है, जहाँ ऐसे-ऐसे कुंज हैं, जिनमें दिन में भी रात-सी रहती है और तारे-से फूल फूले रहते हैं, उस वन के मार्ग का अनुसरण करती हुई बिना किसी सखी के साथ बिलकुल एकाकिनी गोपिका, तू कहाँ दही बेचने जा रही है।

उपर्युक्त वचन नायक का नायिका से है, परतु इसका जो सीधा-सादा अर्थ ऊपर दिया हुआ है, वह पर्याप्त नहीं। यह 'वचनचतुर' नायक की उक्ति है। गोपिका से जिस वन में एकात साक्षात् करना निश्चित हुआ है, उस वन का पूरा पता नायक ने नायिका को चतुराई से बतला दिया है। असल में गोपिका किसी वन के मार्ग का अनुसरण नहीं कर रही थी, पर नायक ने ऐसे ढंग से कहा, मानो वह वहाँ जा रही हो। इस प्रकार के कथन का अभिप्राय यह था कि यदि और कोई इस वचनविलास को सुन ले, तो वह यही समझे कि गोपिका जिस निरापद जंगल में होकर जा रही थी, उससे शुभचिंतक नायक उसे विरत कर रहा है, पर चतुरा नायिका समझ जाती है कि नायक मुझको फलाँ निर्जन वन में मिलने को बुला रहा है।

जहाँ प्रणयियुग्म चुपचाप छिपकर शकासमेत मिलते हैं, उस स्थान को 'सहेट' कहते हैं। उपर्युक्त छंद में वचनचतुर नायक ने नायिका को सहेट का पूरा पता दिया है।

पिंगल—वर्णिक दंडकातर्गत कुछ मुक्तक छंद हैं। इनमें गणों का विचार न होकर अक्षरों की संख्या का ही प्रमाण रहता है। ऐसे ही छंदों में 'घनाक्षरी' छंद की भी गणना है। इसका दूसरा नाम 'मनहर' या 'मनहरण' भी है, तथा यही 'कबित्त' के नाम से अत्यंत लोकप्रसिद्ध हो रहा है। इसमें ३१ अक्षर होते हैं और १६ तथा १५ अक्षरों के बाद क्रम से विश्राम होता है। इसी विश्राम को 'यति' कहते हैं। मतिरामजी का ऊपर दिया हुआ छंद ऐसी ही घनाक्षरी है।

रस—नायिका को देखकर नायक के चित्त में मनोविकार उत्पन्न हुआ है, इस कारण से 'नायिका' आलंबन विभाव है। नायिका के अंग-प्रत्यंग का दर्शन एवम् उससे बात कर सकने का अवसर एवम् स्थान उद्दीपन विभाव हैं। स्थायी भाव रति है। सहेट में मिलने को नायक का चतुरतापूर्ण कथन

कायिक अनुभाव है। इस प्रकार विभाव, भाव और अनुभाव के समुचित समावेश से छद में संयोग शृंगाररस का चमत्कार है। नायक रूप, यौवन, विद्यादि गुणसपन्न है। उसकी वचनचातुरी का तो छद फोटो ही है। इस प्रकार नायक वचनचतुर है। वह उपपति है, क्योंकि अपनी विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री को सहेट में बुलाकर उससे रमण करने की अभिलाषा रखता है। नायिका परकीया है, क्योंकि सहेट में उपपति से मिलने की इच्छा रखती है। वह प्रौढा है, क्योंकि प्रियतम से अकेले निर्जन स्थान में मिलने जाने में उसे हिचकिचाहट नहीं है। अभिसार करके वह उपपति को मिलेगी, इसलिए अभिसारिका भी है। यद्यपि स्वयम् उसने कुछ नहीं कहा है, फिर भी वचनचतुर नायक उसे इस योग्य समझता है कि वह उसके विदग्धतापूर्ण वचन समझ ले। इससे इस बात की बहुत कुछ सभावना है कि नायिका वचनविदग्धा और क्रियाविदग्धा भी हो।

ध्वनि—वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न व्यंग्यार्थ से ही छंद का यथार्थ अर्थ बैठता है। 'तू ऐसे निर्जन प्रदेश में दधि बेचने क्यों जाती है?' इस वाक्य के वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ में कोई चमत्कार नहीं है, पर व्यग्यार्थ मनोहर है। कहने का अभिप्राय यह है कि 'तू ऐसे ही निर्जन प्रदेश में दधि बेचने के बहाने से मुझे मिलना' सो व्यग्यार्थ इष्ट होने से इसमें ध्वनि हुई। इस ध्वनि को साहित्यवेत्ता और प्रवीण पुरुष ही समझ सकते हैं, इस कारण यह गूढ़ ध्वनि है। फिर भी इसमें वाच्यार्थ का सपूर्ण परित्याग नहीं हुआ, वरन् व्यंग्यार्थ द्वारा एक घटना-विशेष का बोध कराया गया है, सो यह विवक्षित वाच्यातर्गत वस्तु-ध्वनि का रूप है। उपपति और परकीया के अपराधभूत इस व्यंग्यमय वर्णन में व्यजक पात्र है।

अलंकार—(१) कोकिल और कपोतों के कलरव रूप हेतु और दूसरे की बात सुन पड़ना रूप हेतुमान के साथ-ही-साथ रहने से छद के प्रथम पद में 'हेतु' अलंकार है।

(२) भ्रमरावली और अंधकार की संगति से और भी अंधकार बढ़ गया है। सगति गुण का ऐसा प्रभाव अनुगुण अलंकार की सत्ता का बोध कराता है।

(३) भ्रमरों की श्यामता एवम् अंधकार की श्यामता का सम संयोग हुआ है, सो 'सम' अलंकार की किंचित् झलक दिखलाई पड़ती है।

(४) 'नखत-से फूले हैं सुफूलन के पुज घन' में नखत उपमान, 'फूल' उपमेय, 'से' वाचक और 'फूले हैं' समान धर्म की उपस्थिति के कारण पूर्णोपमा अलकार स्पष्ट है।

(५) 'कुंजनि में होति जहाँ दिनहूँ, में राति है' इस वाक्य का अभिप्राय यह है कि रात बीत जाने पर दिन में भी रात्रि का रात्रित्व गुण (अधकार) मौजूद रहता है। दिन के प्रकाश गुण का आलिगन नहीं होता। अन्य के गुण का दूसरे पर प्रभाव न पड़ना 'अतद्गुण' अलकार का रूप है। कुजों में रात्रि—दिन होने पर भी—दिन के गुण को नहीं ग्रहण करती है। वहाँ रात्रि ही रहती है। इस प्रकार अतद्गुण अलंकार सिद्ध हुआ।

(६) कोकिल[1] कपोत, मिलि[2] मतिराम, अँध्यारी[3] अधिकाति, बन की[4] बाट और सग न[5] सहेली साथ आदि में शब्दालंकारों में अनुमान का स्मरणीय चमत्कार है।

ऊपरदर्शित कई अलकारों के अतिरिक्त छंद में और भी कई अलंकारों की स्थापना की जा सकती है। विशेष करके अतिम पद में तो कई अलंकारों का सामजस्य है, फिर भी ध्वनि के चमत्कार के विचार से अलकारप्रमुखता एक प्रकार से नष्ट हो गई है, नहीं तो सपूर्ण छंद में पर्यायोक्ति का प्रभाव बुरा न था। ध्वनि से अनुप्राणित रहने के कारण ही संकर और ससृष्टि का भी विवेचन यहाँ व्यर्थ समझ पड़ता है। मतिरामजी ने अपने छद में व्यंग्यार्थ को ही प्रधानता दी है। अलंकारसनिवेश के लिए उनका प्रयास नहीं हुआ है। सो छंद भर में ध्वनि का ही प्राधान्य माननीय है।

दोष—छंद में जहाँ-जहाँ का तीन बार प्रयोग हुआ है, जो अच्छा नहीं मालूम होता। दूसरे पद में 'मतिराम' शब्द का 'मति' एक यति में और 'राम' दूसरी यति में पड़ता है, यह यतिभगदूषण कहलाता है। फूलों का वर्णन करने के पहले ही कवि ने भ्रमरों का आधिक्य दिखलाया है, जो उचित नहीं समझ पड़ता। फूलों की उपमा नक्षत्रों से दी गई है, परंतु सब फूल सफेद, पीले और लाल नहीं होते। नीले और काले फूलों का नक्षत्रों से साम्य ठीक न रहेगा। नक्षत्र पद असमर्थ है।

गुण—रस का उत्कर्ष कई कारणों से होता है। कविता में कई गुण ऐसे हैं, जो रसोत्कर्ष के प्रधान सहायक हैं। विचारों की सुकुमारता एवम् वर्णनशैली की मृदुलता तथा पदावली की मधुरता के यथोचित संनिवेश से

कोई-कोई रचना ऐसी लोकोत्तर, आनंददायिनी और रमणीय बन जाती है कि उसको पढते ही चित्त द्रवीभूत हो जाता है। इस प्रकार की रचना में विद्वानों ने माधुर्यगुण का होना माना है। मतिरामजी के उपर्युक्त छंद में भी यह माधुर्यगुण मौजूद है।

वृत्ति—माधुर्यगुण का व्यंजन करनेवाली जिस रचना में अनुस्वारों की प्रचुरता, ट ठ ड ढ का अभाव, द्वित्व लकार, य र ल व और ह्रस्व रेफादि विशेष रूप से पाए जाते हैं, उसको मधुरा या कैशिकी वृत्ति कहते हैं (रस-वाटिका)। मतिरामजी के छंद में केवल 'बाट' शब्द में एक बार टवर्ग आया है, जो क्षम्य है।

रीति—माधुर्यगुणयुक्त जिस पदरचना में समाससमेत पद बहुत ही कम हों, उसे वैदर्भी रीति कहते हैं। मतिरामजी के उपर्युक्त छंद में समासयुक्त पदों के न होने से वैदर्भी रीति स्पष्ट है।

काव्य—काव्य के उत्तम, मध्यम और अधम तीन भेद हैं। उत्तम काव्य वह है, जिसमें व्यंग्यार्थ मुख्य हो। व्यंजक पात्र के आधार शुद्ध परकीया उपपति आदि माने गए हैं। मतिरामजी के इस छंद में भी व्यंजक पात्र के आधार ऐसे ही हैं। यह ऊपर प्रतिपादित ही हो चुका है कि छंद में ध्वनि का सब प्रकार से प्राधान्य है, ऐसी दशा में यह रचना उत्तम काव्य का नमूना है।

तुलना—मतिरामजी के उपर्युक्त छंद के भाव को उनके परवर्ती कई कवियों ने अपनाया है, उदाहरण के लिए उदयनाथ (कविंद) और भिखारीदास (दास) के छद उद्धृत किए जाते हैं। कहना न होगा कि मतिराम के रचनाचमत्कार को दोनो ही कवि नहीं पहुँचते। जो पदों का सुष्ठु न्यास और अर्थगाभीर्य मतिराम में है, वह इन रचनाओं में कहाँ?

नदी नीर बारे जहाँ नारे खारे भारे जहाँ
राति कै अँध्यारे जहाँ कासो होत गौन है।
फिरे तूँ अकेली अलबेली तहाँ नेहबस
केली हेतु हेली जहाँ भूतन को भौन है।
भनत *कबिंद* **कोऊ सँग न सहेली भेली**
गुनन गहेली नाहीं संक धरि मौन है।

नीठिहू न हेतु जहाँ दीठि को निवेरो परी
नेरो तहाँ सुंदरि सहाय तेरो कौन है ॥
—कविंद

भौन अँध्यारोहू चाहि अँध्यारो चमेली के कुंज के पुंज बने हैं।
बोलत मोर करैं पिक सोर जहाँ तहाँ गुंजत भौंर घने हैं।
दास रच्यो अपने ही बिलास को मैन ज्यौं हाथन सौं अपने हैं।
कूल कलिंदजा के सुखमूल लतान के बृंद बितान तने हैं॥
—दास

मतिरामजी की ध्वनि का चमत्कार दोनो ही छंदों में बिगड़ गया है। फिर भी दास का छंद कविंद के छंद से अच्छा है। हिंदीकविता-प्रणाली के अनुसार मतिरामजी के छंद की समालोचना करने के बाद यदि अँगरेजी-समालोचना-पद्धति का अनुसरण करते हुए उक्त छंद के विषय में कुछ लिखा जाय, तो पूर्ण आशा है कि वह प्रेमी पाठकों को अरुचिकर न होगा। अस्तु। आइए देखिए, १९वीं शताब्दी के इंगलैंड के विश्वविख्यात समालोचक 'श्रीयुत जेम्स हेनरी ले हंट अपने 'कविता क्या है? इस प्रश्न का उत्तर'* शीर्षक गवेषणापूर्ण निबंध में सत्काव्य के लिए किन-किन बातों को परम आवश्यक मानते हैं। उनका कथन है—

† 'प्रत्येक कवि पद्यरचयिता है और प्रत्येक अच्छा कवि उत्कृष्ट पद्यरचयिता है। सर्वोत्तम कवि वही है, जिसके पद्यों में सामर्थ्य (पद्यसामंजस्य और अर्थ-व्यक्तगुण), माधुर्य अव्यर्थपदत्व (भरती के पदों का अभाव), रोचकता (अरुचि उत्पन्न करनेवाले चर्वितचर्वण का अभाव), सहज पद्यप्रवाह एवम् पद्य और भाव की सामंजस्यपूर्ण एकता हो'।

उपर्युक्त कथित काव्यगुणों पर दृष्टि रखते हुए मतिरामजी के छंद की परीक्षा करनी होगी, तभी उस पद्य की बारीकियाँ समझ में आएँगी। पहले

* ऐन अनसर टु दि क्वेश्चन ह्वाट इज पोएट्री।

† एव्री पोएट देन इज ए वर्सीफायर, एव्री फाइन पोएट ऐन एक्सेलेंट वन; ऐंड ही इज दि बेस्ट हू इज वर्स एक्जिबिट्स दि ग्रेटेस्ट एमाउंट आव् स्ट्रेंग्थ, स्वीट्नेस, अनसुपर-फ्यूसनेस वेरायटी एंड्रे फारवर्डनेस ऐंड वन्नेस।

—ले हंट।

सामर्थ्य को लीजिए। मतिराम की घनाक्षरी के दूसरे पद में यतिभंग अवश्य है, पर शेष पद्य न तो कहीं से विकलाग है और न अपेक्षित अक्षरों की कहीं पर अधिकता होने पाई है। पढ़ने में कहीं पर जिह्वा को कष्ट नहीं होता है। अर्थ के लिए व्यंग्य का आश्रय अवश्य लिया गया है, पर पद्य का अर्थव्यक्त गुण नष्ट नहीं हुआ है। सो पद्य में 'सामर्थ्य' गुण का संनिवेश पूर्ण रूप से है। व्रजभाषा की माधुरी यों ही प्रसिद्ध है, फिर सूर, देव और मतिराम की रचनाओं का पीयूष पान करके किसको संतोष न होगा! सुकुमार विचार, पद्यसंगठन-सरलता एवम् शब्दसंगीत सभी से अनुलिप्त माधुर्यगुण के दर्शन पद्य में सहज सुलभ हो रहे हैं। सहज पद्यप्रवाह के विषय में हमें यही कहना है कि मतिराम जैसे सुकवियों के काव्य में इस गुण का अभाव ढूँढ निकालना बड़ा ही कठिन काम है। फुटकर पद्यों में रोचकता नष्ट होने का भय कम रहता है। सहेटस्थान के निर्जनत्व का नग्न वर्णन वास्तव में अरोचक हो जाता, पर सुकवि मतिराम ने वहाँ कोकिल-कपोतों का कलरव, प्रकृतिप्रसन्नता-दर्शक भ्रमरावली से परिपूर्ण कुसुमित ललित लताओं से परिवेष्टित वृक्ष और सघन कुंजों का उल्लेख करके रोचकतागुण का प्रस्फुटन मार्मिकता के साथ किया है। अव्यर्थपदत्व एवम् पद्य और भाव की सामंजस्यपूर्ण एकता के संबंध में कुछ विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है, क्योंकि इन गुणों में मतिरामजी हिंदी के बडे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों से भी आगे बढ़े हुए हैं। मतिरामजी का वर्णनचातुर्य देखिए, प्रणयियुग्म के लिए छिपकर एकांत संमिलन का वही स्थान श्रेष्ठ है, जो निर्जन हो। जहाँ यदि एकाएक कोई आ जाय, तो प्रेमियों के छिपने का अवसर हो तथा संभाषण सुन लेने का भय भी न हो। यदि ऐसा स्थान प्रकृतिसौंदर्य से युक्त हो, तो संयोगियों के लिए उद्दीपनसामग्री का भी प्रबंध ठीक समझना चाहिए। मतिरामजी ने अपनी घनाक्षरी में ऐसे ही सहेट का चित्र खींचा है। पद-पद पर विचार कीजिए।

(१) दूसरे की बात सुनि परत न ऐसी जहाँ
कोकिल कपोतन की धुनि सरसाति है।

कोकिल और कपोत पक्षियों का कलरव इतना अधिक है कि दूसरे की बात नहीं सुनाई पड़ सकती। इस कथन के कई अभिप्राय हैं—

(अ) वह स्थान बिलकुल जनशून्य है। इस कारण निर्भय होकर पक्षिगण खूब कलरव करते हैं।

(आ) यदि किसी कारण से कोई आदमी भूला-भटका उधर से निकल भी जाय, तो प्रेमी और प्रणयिनी के प्रेमसंभाषण को कलरव-आधिक्य के कारण सुन न सकेगा।

(इ) कोकिल और कपोत-कूजन उद्दीपन की सामग्री है। चित्त में एक विशेष रस का संचार करती है। कपोतकूजन संयोगदशा का स्मरण दिलाता है। अन्य पक्षियों के कूजन में इस भाव का साहचर्य न होने से केवल कोकिल-कपोत-कूजन का उल्लेख हुआ है। यह कूजन प्रखर होने पर भी प्रणयियुग्म के आनंदवर्द्धन का हेतु है। उनको बुरा नहीं लगता। 'सरसाति' क्रिया इसी भाव को अभिव्यक्त करती है।

इस पद में एक शब्द भी व्यर्थ का नहीं है। यही क्यों, प्रयुक्त शब्दों का संगठन इतना सुंदर और सुदृढ है कि यदि इस पद का एक भी शब्द उठाकर उसके स्थान में दूसरा शब्द रखा जाय, तो पद की रमणीयता को अवश्य धक्का पहुँचेगा। अव्यर्थपदत्व गुण की यही खूबी है।

(२) छाई रहै जहाँ द्रुमबेलिन सों मिलि
मतिराम अलिकुलन अँध्यारी अधिकाति है।

किसी बीहड़ स्थान पर जहाँ दो-एक फुटकर वृक्ष उगे हों, वहाँ भी कोकिल-कपोत-ध्वनि की सभावना है। पर्वतों की दरारों, टूटे-फूटे खँडहरों एवम् और भी ऐसे ही सुनसान अरमणीय स्थानों में कबूतरों का निवास प्रायः देखा जाता है। मतिरामजी का सहेट ऐसा नहीं है। पहला पद पढ़कर कदाचित् कोई ऊपर लिखे 'भयंकर' सहेट का अनुमान करे, सो इस दूसरे पद द्वारा कवि ने स्पष्ट कर दिया कि सहेटस्थान में प्रकृतिसुंदरता का अभाव नहीं है। लतावेष्टित वृक्षों का उल्लेख सयोग और उद्दीपन का बोध कराता है। अलिकुल के आधिक्य से अँधियारी का बढ़ना प्रणयियुग्म के लिए हितकारी है एवम् (पराग-मकरद के आकर्षण से) भ्रमरों का सहेट में पाया जाना पुष्पप्रचुरता का पहले से ही अनुमान दृढ़ करता है। उद्दीपन के लिए यह भाव भी खूब उपकारी है। इस पद में भी कोई शब्द व्यर्थ में नहीं आया है। सब अपने-अपने स्थान पर स्थित भाव को जगमगा रहे हैं। मतिराम शब्द कवि का नाम होने से यदि अन्य प्रकार से भाव की सहायता न भी करता हो, तो भी क्षम्य है।

(३) नखत-से फूलि रहैं फूलन के पुंज घन
कुंजन में होति जहाँ दिन ही में राति है।

जिन फूलों का उल्लेख कवि ने द्वितीय पद में स्पष्ट रूप से नहीं किया था, वे ही इस पद में नक्षत्रों के समान छिटक रहे हैं। पर नक्षत्र तो रात्रि में दिखते हैं। रात्रि की सुरम्यता, निस्तब्धता एवम् आनंददायिनी शीतलता का भाव संयोगी नायक-नायिकाओं के लिए कैसा है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। दिन में इस चमत्कार का अभाव समझते हुए ही कुशल कवि ने सहेटस्थान की कुंजों में रात्रि का अधंकार दिखला दिया है और इस अंधकार के ईषत् भयप्रदायी भाव को प्रसूनपुंज के तारे छिटकाकर बिलकुल कम कर दिया है। सहेटस्थान की अँधेरी कुंजों में किसी के आ जाने पर भी अपने को छिपा लेने का प्रणयियुग्म को जैसा अवसर है, वैसे ही लज्जाभाव से प्रेरित अखिल कामकलाकेलि का उपयुक्त स्थान भी। उद्दीपन का इससे उत्कृष्ट और कौन-सा साधन है? इस पद में व्यवहृत कोई भी शब्द व्यर्थ का नहीं है।

(४) ता बन की बाट कोऊ सँग न सहेली साथ
कैसे तूँ अकेली दधि बेचन को जाति है।

उत्कृष्ट सहेट का पूरा पता देकर वचनचतुर नायक का यह इशारा बड़ा ही विदग्धतापूर्ण है कि किसी सखी को अपने साथ न लाना। दधि बेचने के बहाने से जाना कई भावों का द्योतन कराता है। माता-पिता, गुरुजन इत्यादि किसी को भी गोपिका को दधि बेचने के लिए जाने देने में आपत्ति न होगी। सशय का भी कोई अवसर नहीं है। फिर दधि का यात्रा के समय साथ रहना शुभ है। इससे कार्यसिद्धि के विषय में उत्साह रहता है। यदि आवश्यकता हो, तो दधि भोजन के लिए भी बड़ी ही उपयुक्त वस्तु सिद्ध होगी। इस पद में भी कोई शब्द व्यर्थ का नहीं है।

भाव की सामञ्जस्यपूर्ण एकता का निर्वाह छंद-भर में जिस कौशल से संगठित हुआ है, वह भी मनोरम है। 'सहेट में मिलन' प्रधान भाव है। सहेट के अपेक्षित सभी उत्तम गुणों का उल्लेख होना उपयुक्त ही है। किस प्रकार मिलें, इसका उत्तर भी कवि ने साफ दे दिया है कि अकेले मिलो। किस बहाने से मिलें, इसका भी उत्तर वैसा ही स्पष्ट है कि दही बेचने के बहाने से मिलो। छंद के चारो पदों में क्रम-क्रम से इस भाव ने विकास पाया है और अंतिम पद में तो वह सुंदरता की चरम सीमा पर पहुँच गया है।

सदृश भाव

कविवर मतिराम ने संस्कृतकवियों के भी अनेकानेक भावों को अपनी कविता में सनिवेशित किया है, पर इस मार्ग में भी उनकी नीति निराली है। दासजी के समान कोरा अनुवाद इन्होंने कभी नहीं पसंद किया है। उक्ति का रूप या तो इन्होंने और भी परिमार्जित और मनोरम कर दिया है, या भाव को नाम-मात्र अपने छंद में लेकर उसको बिलकुल मौलिकता का ही रूप दे डाला है। नीचे ऐसे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) तदाननं मृत्सुरभिक्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचि व्यपाये वनराजिपल्वलम् ॥
—कालिदास

ग्रीष्म के अंत में बादलों की बूँदों से छिड़के गए वन के अल्प जलाशय को बार-बार सूँघने पर भी जिस तरह हाथी की तृप्ति नहीं होती, उस तरह मिट्टी की सुगंधिवाले सुदक्षिणा के मुँह को एकांत में अनेक बार सूँघने पर भी राजा दिलीप की तृप्ति न हुई।

अनुवादक—पं० महावीरप्रसादजी

पिय आयो नवबाल-तन बाढ़यो हरष बिलास।
प्रथम बारि बूँदन उठै ज्यों बसुमती-सुबास ॥
—मतिराम

आगतपतिका नायिका के हर्ष की तुलना प्रथम वारिवर्षण से समुद्भूत वसुमती-सुवास से कितनी हृदयहारिणी है! अगर छोटे मुँह बड़ी बात न मानी जाय, तो मतिराम कालिदास के पीछे नहीं हैं।

(२) गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्तः कोपस्तदपि न जहासि क्रुधमहो
स्तनप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ॥

मानवती के मान-संबंधी विस्तृत वर्णन को थोड़े ही में निपटाकर हृदय और उरोजों के साथ-साथ रहने से बराबर ही कठोर होनेवाले भाव को मतिरामजी अपने छोटे-से दोहे में किस सफाई से निभाते हैं—

प्रानपियारो पग परयो तूँ न लखत यहि ओर।
ऐसो उर जु कठोर तौ उचितै उरजु कठोर॥

जब उर ऐसा कठोर है, तो उरज (कुच, उर से पैदा होनेवाले) का कठोर होना ठीक ही है।

(३) अधरोऽयमधीराक्ष्या बन्धुजीवप्रभाहरः।
अन्यजीवप्रभा हन्त हरतीति किमद्भुतम्॥

इस चंचल नेत्रवाली के अधर बधुजीव (गुलदुपहरिया के फूल) की प्रभा को हरनेवाले हैं, अर्थात् उनसे भी अधिक लाल और सुदर हैं। जब वे बंधुजीव (अपने भाई के जीवन) की प्रभा को हर लेते हैं, तो दूसरों के जीवन की प्रभा हर लेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या है? बंधुजीव इस शब्द में श्लेष है। इसके माने गुलदुपहरिया का फूल तथा भाई का जीवन दोनो हैं।

अनुवादक—पं० जनार्दन भट्ट एम्० ए०

मतिरामजी ने इस भाव को इसी प्रकार से अपने दोहे में यों अभिव्यक्त किया है—

सुधा मधुर तेरो अधर सुंदर सुमन सुगंध।
पीव जीव को बंधु यह बंधुजीव को बंध॥

(४) दृष्टिर्वन्दनमालिका स्तनयुगं लावण्यपूर्णौ घटौ।
शुभ्राणां प्रकटः स्मितः सुमनसां वक्त्रप्रभादर्पणः।
रोमाञ्चोद्गम एव सर्षपकणः पाणी पुनः पल्लवौ।
स्वाङ्गैरेव गृहप्रियस्य विगतस्तन्व्या कृतं मङ्गलम्॥

भावार्थ—जब प्रियतम घर में प्रवेश करने लगा, तो उसकी प्रियतमा ने अपने अंगों ही से यथोचित मगलाचार पूरा किया। उसके एकटक देखने ने बंदनवार का, दोनो स्तनों ने लावण्यरूपी जल से भरे हुए दो घड़ों का, मुस्किराहट ने सफेद फूल की वर्षा का, मुख की काति ने दर्पण का, रोमाच ने सरसों के कणों का, हाथों ने पल्लवों का काम दिया।

अनुवादक—पं० जनार्दन भट्ट एम्० ए०

मतिराम के दोहे में भी नायिका 'स्तनयुगं लावण्यपूर्णौ घटौ' के रूप में दर्शाती हैं। पर आगमन के समय नहीं, वरन् नायक के विदेशयात्रा करने को

भाँति सुसज्जित पाते हैं। जो बात स्थलसंकोच के कारण आर्याकार ने एक शब्द द्वारा प्रकट की थी, घनाक्षरीकार ने वही बात स्थान की कमी न होने से अनेक शब्दों द्वारा दर्शाई है। पाठकगण दोनो रचनाएँ साथ-साथ देखें—

परमोहनाय मुक्तो निष्करुणे तरुणि तव कटाक्षोऽयम्।
विशिख इव कलितकर्णः प्रविशति हृदयं न निःसरति॥
—आर्याशप्तशती, ३५५

आलसबलित कोरे काजरकलित
मतिराम **वे ललित अति पानिप धरत हैं।**
सरस सरस सोहैं सलज सहास सग-
रब सबिलास है मृगानि निदरत हैं।
बरुनी सघन बंक तीछन कटाक्ष बड़े
लोचन रसाल उर पीर ही करत हैं।
गाढ़े ह्वै गड़े हैं न निसारे निसरत मैन-
बान-से बिसारे न बिसारे बिसरत हैं॥
—मतिराम

आर्या के 'कलितकर्ण' की घनाक्षरी में विशद् व्याख्या हुई है। 'परमोहनाय' का भाव 'बिसारे न बिसारे बिसरत हैं' इन पदों द्वारा भली भाँति परिस्फुटित हो गया है। 'प्रविशति हृदयं न निःसरति' का तो 'गाढ़े ह्वै गड़े हैं न निसारे निसरत' पदसमूह एक प्रकार का अनुवाद ही है। गोवर्द्धनाचार्य के 'विशिख' को मतिराम ने 'मैन-बान' कर डाला है। आर्या के "निष्करुण को हम घनाक्षरी के 'उर पीर ही करत हैं' में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित पाते हैं। पूर्ववर्ती कवि का प्रधान लक्ष्य कटाक्षवर्णन है, पर परवर्ती कवि रसाल लोचन का आलोचन करता है। 'मैन-बान' और 'रसाल लोचन' का सुंदर साम्य मतिराम ने अपने प्रथम तीन पदों में खूब सुंदर दिखलाया है।

सूर और मतिराम—हिंदीसाहित्य-संसार के सूर्य महात्मा सूरदास और मतिराम की कविता की तुलना ही क्या? पर उभय कवियों के भावसादृश्य से इतना पता अवश्य चल जाता है कि मतिराम का अध्ययन कितना गहरा था। एक बात और है, सूर जैसे महा कवि के भाव को मतिराम ने जिस कौशल से अपनाया है, उसको देखकर मन मुग्ध हो जाता और मतिराम की मार्मिकता पर उन्हें बधाई देने को जी चाहता है। देखिए—

(१) रुँधे रतिसंग्राम-खेत नीके।
एक-ते-एक रनबीर जोधा प्रबल मुरत नहिं नेक अति सबल जी के।
भौंह कोदंड सर नैन जोधानि की काम छूटनि कटाक्षनि निहारे।
—सूर

महात्मा सूरदास के रतिसंग्राम के लड़ाके कौन हैं? वही श्रीकृष्ण और राधिकाजी; पर मतिराम ने दंपति के नेत्रों को ही सूर बना दिया है, और सब बातें वे ही हैं—

भौंह कमान कटाक्ष सर समरभूमि बिचलै न।
लाज तजेहूँ दुहुँन के सलज सुभट-से नैन॥
—मतिराम

मतिराम की समरभूमि अथवा स्मर (समर) भूमि बड़ी ही समीचीन है। हमारी राय में वह 'रतिसंग्राम-खेत' से विशेष भावमयी है। जब नेत्र लड़ गए हैं, तब उन्हें एक दूसरे का सामना करना ही होगा। ऐसी दशा में आँखों की झेंप कैसे रह सकती है। सो वे अवश्य ही लाज तजे हुए हैं, पर उन्हें सलज भी मानना ही पड़ता है; क्योंकि शूरवीरों को अपनी बात की बड़ी लाज होती है। दपति के नेत्र भी बाणप्रहार की परवा न करके 'समरभूमि' से विचलित नहीं हो रहे हैं। बराबर वहीं डटे हैं। अपनी शूरता की लज्जा रख रहे हैं, तब उन्हें सलज कैसे न कहें? सो वे यथार्थ में ही 'लाज तजेहूँ दुहुँन के सलज सुभट-से नैन' हैं।

(२) हारिल पक्षी के लिए यह लोकप्रसिद्धि है कि वह जिस लकड़ी या तिनके को अपने पजों में दाव लेता है, उसे फिर छोड़ता नहीं। जैसा हारिल का इस लकड़ी के प्रति भाव होता है, वैसा ही भाव किसी बात या प्राणी के प्रति नायक-नायिका में भी पाया जा सकता है। इसी विचार से किसी के प्रति अत्यंत अनुराग या घोर हठ को सूचित करने के लिए 'हारिल की लकरी' से उपमा दी जाती है। यह उपमा बहुप्रचलित नहीं है, फिर भी कई कवियों ने इसका व्यवहार किया है। महात्मा सूरदास और कविवर मतिराम ने इस उपमा का व्यवहार किया है। सूर की गोपियों के 'हरि हारिल की लकरी' हो रहे हैं, तो मतिराम की नायिका का हठ हारिल की लकरी हो रहा है।

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन क्रम बचन नंदनंदन उर यह दृढ़ करि पकरी।
जागत सोवत स्वप्न दिवस निसि कान्ह-कान्ह जकरी।
—सूर

आयो है सयानपन गयो है अयान मन
नित उठि मान करिबे की टेव पकरी।
घर घर मानिनी हूँ मानतीं मनाए तें वै
तेरी ऐसी रीति और काहू में न जकरी।
कबि *मतिराम* कामरूप घनस्याम लाल
तेरी नैनकोर ओर चाहैं इकटक री।
हा हा कै निहोरेहूँ न हेरति हरिननैनी
काहे को करत हठ हारिल की लकरी॥

—मतिराम

(३) मतिराम और सूर, दोनो ही कवियों ने मोती को घुँघची बना डाला है। मोती की सफेदी का कहीं पता नहीं रह गया। उसका कुछ अंश श्याम हो रहा है और कुछ लाल। पर जिन कारणों से सूर ने मोती को गुंजाफल बनाया, उन्हीं कारणों से मतिराम का मोती घुँघची नहीं बना है। नेत्रों की श्यामता और अधरों की लाली का प्रतिबिंब पड़ने से पूर्ववर्ती कवि का मोती चिरमिटी-रूप पाता है, तो केशपाश की श्यामता और एँड़ियों की ललाई से परवर्ती कवि का मुक्ता 'गुंजरुचि' धारण करता है। दोनो भाव साथ-साथ देखिए—

गुंजा की-सी छबि लई मुक्ता अति बड़भाग।
नैननि की लई स्यामता अधरन को अनुराग॥

—सूरदास

तरुनि अरुन एँड़ीन की किरनिसमूह उदोत।
बेनीमंडन मुकुत के पुंज गुंजरुचि होत॥

—मतिराम

मतिराम ने जिस नायिका का वर्णन किया, उसकी वेणी में मुक्ता गुथे हुए हैं। वह छूटकर एँड़ियों तक पहुँच रही है। एँड़ियाँ खूब अरुण हैं। इनकी ललाई का प्रतिबिंब उन मोतियों पर पड़ रहा है। श्याम केशपाश की झलक भी उन पर पड़ती है। बस, ऐसा जान पड़ता है कि सारे-के-सारे मोती घुँघची हो रहे हैं।

गोस्वामी तुलसीदास और मतिराम—कविकुलमुकुट गोस्वामी तुलसीदासजी और महाकवि मतिराम बिलकुल भिन्न कोटि के कवि हैं। इन

दोनो कवियों की कविता की तुलना नहीं की जा सकती। दोनो के ही वर्णित विषय भिन्न-भिन्न हैं। कथनशैली में भी पृथक् बिलगाव है। सादृश्य का सामान बहुत कम है। यह सब होते हुए भी हम जो दो-एक उदाहरण दोनो कवियों के भावसादृश्य दिखलाने को यहाँ देते हैं, उससे हमारा अभिप्राय यह है कि सुकवि मतिराम ने कविवर तुलसीदास के काव्य को भी पढ़ा था। अपने 'रसराज' और 'ललितललाम' के अनुरूप जो चीज उन्हें गोस्वामीजी के ग्रंथों से मिली, उसे उन्होंने निस्संकोच अपनाया। उदाहरण लीजिए—

(१) जनकनंदिनी के केशपाश में सुंदर-सुंदर उज्ज्वल मोती गुथे हुए हैं। इन मोतियों पर जब बालों की श्यामता का प्रतिबिंब पड़ता है, तो ऐसा जान पड़ता है कि वे मरकतमणि के मनोहर दाने हैं। मोतियों की सफेदी का लोप हो जाता है, उनमें केशकलाप की श्यामता झलकने लगती है। वे अपने रंग को छोड़कर दूसरे के रग को ग्रहण करते हैं; पर सीताजी एक बार इन्हीं मोतियों को फिर अपने हाथों पर रखती हैं। क्षण-मात्र में इन पर पड़नेवाला चिकुरश्यामता का प्रतिबिब नष्ट हो जाता है। हाथ के साथ-साथ एक बार मोतीगण अपना वही उज्ज्वल रग फिर धारण करते हैं। उन्हें अपना पूर्वरूप प्राप्त हो जाता है। गोस्वामीजी इस भाव को अपने मनोमोहक बरवै में इस प्रकार प्रकट करते हैं—

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकता करत उदोत॥

—तुलसी

मतिरामजी ने ठीक इसी भाव को कुछ उलट-पुलट करके अन्यत्र बिठाला है। श्रीकृष्णचंद्र के हृदयस्थल पर उन्हीं उज्ज्वल मोतियों की माला झूल रही है। सहज श्यामल गात की आभा से यह माला मरकतमणि की माला समझ पड़ती है; पर पास ही श्रीवृषभानुनदिनी भी विराज रही हैं। वह कभी-कभी मंद-मंद स्मित कर दिया करती हैं। इस मुसक्यान की उज्ज्वल प्रभा चारो ओर उदित हो पड़ती है। वह मरकतमणिवत् भासित होनेवाले मोतियों की माला पर भी पड़ती है। उस समय एक बार मोतियों को अपनी पूर्व उज्ज्वलता फिर प्राप्त हो जाती है। लोगों को श्रीकृष्ण के हृदय में एक बार शुभ्र मोतियों की माला ही झूलती हुई फिर दिखलाई पड़ती है। पूर्वरूप अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण कवि के नेत्रों के सामने नृत्य करने लगता है। मतिराम की मति उसे तत्काल यों प्रकट कर देती है—

मुकुतहार हरि के हिये मरकत मनिमय होत।
पुनि पावत रुचि राधिका मुख मुसकानि उदोत॥

—मतिराम

एक छोटा-सा और उदाहरण लीजिए—

जनकनंदिनी को उज्ज्वल बेले का हार पिन्हाया जाता है, पर वह चंपकवर्ण का समझ पड़ने लगता है। शरीर की काति का प्रतिबिंब फूलों पर पड़ता है और बेले के स्थान में वे चपे के फूलों का रंग धारण करते हैं। तद्गुण अलकार का कैसा अच्छा उदाहरण है—

सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत॥

—तुलसी

मतिरामजी ने गोस्वामीजी से वर्णपरिवर्तन-ताले को खोलनेवाली कुंजी प्राप्त कर ली। अब वह उसका मनमाना प्रयोग करने में समर्थ हो गए। नायिका हीरे और मोती के गहने पहनती है, तो वे भी सोने के जान पड़ने लगते हैं। चमेली के सफेद फूलों का हार धारण करती है, तो उसमें चंपक-पुष्प की द्युति दमकने लगती हैं। यहाँ तक कि जब कभी वह श्वेत वस्त्र धारण करती है, तो वे केसर रँगे समझ पड़ते हैं। सारे सफेद वस्त्र, गहने और हार अपना रग बदल डालते हैं। वे पीले पड़ जाते हैं। सफेदी से पीलापन किसी भी प्रकार से छिपाया नहीं छिप सकता। ऐसी दशा में नायिका की देहद्युति के छिपाने के सब उद्योग व्यर्थ हैं।

हीरनि-मोतिन के अवतंसनि सोने के भूषन की छबि छावै।
हार चमेली के फूलन के तिनमैं रुचि चंपक की सरसावै।
अंग के संग तैं केसरि रंग की अंबर सेत मैं जोति जगावै।
बाल छबीली छुपाए छुपै नहिँ लाल कहौ अब क्यौं करि आवै॥

—मतिराम

महाकवि केशवदास और मतिराम—कविवर केशवदास और मति-राम के भावों में भी कहीं-कहीं अद्भुत भावसादृश्य मौजूद है। केशवदासजी का कहने का ढंग परम गंभीर है। एक शब्द का भी व्यवहार व्यर्थ में नहीं होता। मतिरामजी ने अपने पूर्ववर्ती कविवर की इन दोनो ही विशेषताओं

को अपनाया है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने काव्य में मधुरता की ऐसी सोहावनी पुट दे दी है कि बस, सोने में सुगंधि की कहावत चरितार्थ होती है। लीजिए, भावसादृश्य के दो उदाहरण उपस्थित किए जाते हैं—

(१) बाला के मृदु हास पर उभय कविवर रीझ गए हैं। कल्पना के विस्तृत क्षेत्र में इस मंद हास्य को लेकर कवियों ने खूब परिभ्रमण किया है। जिस प्रकार केशवदास को 'भोरी गोरी की थोरी-थोरी हाँसी' को देखकर नाना प्रकार के सदेह उठे हैं कि यह मंद हास्य अमुक-अमुक वस्तु तो नहीं है, उसी प्रकार मतिराम के मतिमुकुर पर भी ऐसे ही अनेक संदेहों के मनोरंजक प्रतिबिंब दिखलाई पड़ते हैं। बाला के वदन में जो मृदु हास विलसित था, उसकी बदौलत मतिराम को कल्पनाकल्लोलिनी में खूब गहरे में उतरना पड़ा है। पहले केशवदास की प्रतिभा का सुख लूटिए—

किधौं मुखकमल ये कमला की ज्योति होति
किधौं चारु मुखचंद्र चंद्रिका चुराई है।
किधौं मृगलोचनी मरीचिका मरीचि किधौं
रूप की रुचिर रुचि सुचि सौं दुराई है।
सौरभ की सोभा की दसन घनदामिनी की
केसव **चतुर चित ही की चतुराई है।**
एरी गोरी भोरी तेरी थोरी-थोरी हाँसी मेरी
मोहन की मोहनी कि गिरा की गोराई है॥

—केशव

उपर्युक्त छंद में 'गोरी की थोरी-थोरी हाँसी' के संबंध में जो अनेक संदेह कवि ने उठाए हैं, वे सभी मार्के के हैं, परंतु इस मंद हास्य के संबंध में गिरा की गोराई और मोहन की मोहनी होने का संदेह उठाकर कवि ने अपनी प्रखर प्रतिभा का बड़ा ही सुंदर परिचय दिया है। निस्संदेह केशवदास के इस छंद का अंतिम पद बड़ा ही भव्य है। अब मतिराम के हस्तलाघव को देखिए। कैसी सुमति का विकास है—

बानी को बसन कैधौं बात के बिलास डोलै
कैधौं मुखचंद चारु चंद्रिकाप्रकास है।
कवि *मतिराम* **कैधौं काम को सुजस कै**
परागपुंज प्रफुलित सुमनसुबास है।

नाक नथुनी के गजमोतिन की आभा कैधौं
देहवंत प्रकटित हिये को हुलास है।
सीरे करिबे को पियनैन घनसार कैधौं
बाल के बदन बिलसत मृदु हास है॥
—मतिराम

हमारी राय में केशवदास की 'गिरा की गोराई' मतिराम के 'बानी के बसन' से अच्छी है, परंतु पूर्ववर्ती कवि की 'चतुर चित की चतुरता' से परवर्ती कवि का 'देहवंत हिये को हुलास' विशेष उल्लासकर है। अन्य स्थल दोनो ही छंदों में अपने-अपने ढंग से अनूठे हैं। फिर भी मतिराम की मार्मिकता का विकास उनके छंद के अंतिम पद में पाया जाता है। कवि ने कैसा अच्छा संदेह उठाया है, अहा! यह बाला का मृदु हास्य है, या उसके प्रियतम के नेत्रों को शीतल करनेवाला शुभ्र घनसारखंड। कर्पूर शीतल है, शुभ्र और उद्दीपक भी। नायिका का मृदु हास्य भी नायक को समान भाव से सुखद है। सो हास्य के संबंध में घनसार का संदेह उठाकर मतिराम ने अपने मतिमुकुर में प्रतिमा की मनोरंजिनी छाया दिखला दी है। संदेहालंकार के दोनो ही छंद उत्कृष्ट उदाहरण हैं। दूसरा उदाहरण लीजिए—

दुरिहै क्यों भूषन बसन दुति जोबन की
देहहूँ की जोति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाहक सुबास लागे ह्वै है कैसी *केसव*
सुभावती की बास भौंर भीर फारे खाति है।
देखि तेरी सूरति की मूरति बिसूरतिहूँ
लालन के दृग देखिबे को ललचाति है।
चालिहै क्यों चंद्रमुखी कुचन के भार भए
कचन के भार ही लचकि लंक जाति है॥
—केशव

चरन धरै न भूमि बिहरै तहाँई जहाँ
फूले फूले फूलन बिछायो परजंक है।
भार के डरनि सुकुमारि चारु अंगन में
करत न अंगराग कुंकुम को पंक है।
कवि *मतिराम* देखि बातायन बीच आयो
आतप मलीन होत बदन मयंक है।

कैसे वह बाल लाल बाहिर बिजन आवै
बिजन बयारि लागै लचकति लंक है ॥
—मतिराम

यद्यपि उभय कविवरों के वर्णन में प्रसंग की दृष्टि से पर्याप्त पार्थक्य है, फिर भी केशव और मतिराम, दोनो ने ही सुकुमारता की दोहाई दी है। एक कवि को यदि यह फ़िक्र पड़ी है कि जब बालों के बोझ से अभी कमर लचक जाती है, तो पीन पयोधरों का भार वह कैसे वहन कर सकेगी, तो दूसरा कवि साफ़-साफ़ कह देता है कि सुकुमारी की लंक पंखे की हवा से भी बल खा जाती है। इसलिए उसका बाहर जाना असंभव है। पूर्ववर्ती कवि के छंद में देहद्युति और शरीर के सुवास का भी अच्छा परिचय है, परंतु परवर्ती कवि ने एकमात्र सुकुमारता को ही अपनाया है। उसके प्रत्येक पद से सुकुमारता के भाव की ही पुष्टि होती है। मध्यम दूती और द्वितीय सबंधातिशयोक्ति के उदाहरण में यह छंद क्रम से रसराज और ललितललाम में समाविष्ट है।

रहीम और मतिराम—अब्दुर्रहीम खानखाना उपनाम रहीम कवि के भाव भी यत्र तत्र मतिरामजी की कविता में पाए जाते हैं। पाठकों के मनोरंजन के लिए कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) गई आगि उर लाय आगि लेन आई जो तिय।
लागी नहीं बुझाय भभकि-भभकि बरि-बरि उठै ॥
—रहीम

नैन जोरि मुख मोरि हँसि नैसुक नेह जनाइ।
आगि लैन आई हिये मेरे गई लगाइ ॥
—मतिराम

रहीम के हृदय में जो अग्नि लगी है, वह बुझाने से नहीं बुझती, भभक-भभककर बल उठती है। मतिरामजी के दोहे से यह नहीं प्रकट है कि इस अग्नि का बल उनके हृदय पर कितना हुआ है। इतना अवश्य प्रकट है कि आग लग गई है। रहीमजी के उर में आग लगने की किसी विशेष दशा का पता नहीं है, परंतु मतिरामजी के हृदय में आग लगने के पहले नेत्रों का संमिलन, मुख का मोड़ना, हँसी और थोड़ा-सा स्नेह का संचार भी हुआ है। अपने-अपने ढंग से दोनो ही भाव अच्छे हैं।

(२) करत न हिय अपरधवा सपनेहु पीय।
मान करन की बिरियाँ रहि गो हीय॥

—रहीम

सपनेहूँ मनभावतो करत नहीं अपराध।
मेरे मन ही में रही सखी मान की साध॥

—मतिराम

यद्यपि दोनो पद्यों का भाव बिलकुल एक ही है, फिर भी मतिराम ने अपने दोहे की अंतिम पंक्ति में जो मधुरता और स्वाभाविकता भर दी है, वह रहीम के बरवै की अंतिम पंक्ति में नहीं है।

(३) सुभग बिछाय पलँगिया अंग सिँगार।
चितवति चौंकि तरुनियाँ दै दृगद्वार॥

—रहीम

सुंदरि सेज सँवारिकै साजे सकल सिँगार।
दृगकमलन के द्वार पै बाँधे बंदनवार॥

—मतिराम

यद्यपि मतिराम और रहीम दोनो के भाव बिलकुल एक ही हैं, फिर भी मतिराम ने दोहे की अंतिम पंक्ति में अपनी योग्यता का परिचय अपूर्व रीति से दिया है। द्वार की ओर नायिका के नेत्रकमलों का सतत प्रक्षिप्त होना कवि ने बंदनवार बँधवाकर ऐसा अभिव्यक्त किया है कि उनकी मार्मिकता पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। बंदनवार कई भावों का द्योतन कराता है। बंदनवार बँधना किसी पवित्र और शुभ अवसर पर ही होता है। उसमें स्वागत का भी निर्देश है। कार्य में सफलता की भी संभावना है। नायिका द्वारा शय्या का तथा अपने शृंगार का सामंजस्य भी इसी बंदनवार में है। नेत्रों का दरवाजे पर बंदी होकर विवशतावश ठहरना कुछ भद्दा मालूम होता है; परंतु बंदनवाररूप में स्वागत के लिए वहाँ उनकी उपस्थिति एक सद्गृहस्थ के अनुरूप ही है।

नरहरि और मतिराम—

नरहरि कबि ते गऊ की बिनती को सुनि
हैं गए अकब्बर सबीह जैसे नकसी।

दीन्हौं है हुकुम करवाय आम खास बीच
बंद भयो गोबध खबरि फेरि बकसी।
फैलि गयो सुजस दिलीप लौं जहाँन बीच
हिंसक समाज बैठि बोलैं अकबकसी।
आनँद कसाइन को गाइन को दीन्हौं अरु
गाइन की मौत सो कसाइन को बकसी॥

उपर्युक्त छंद एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर बना है। नरहरि कवि ने 'अरिहु दंत तृन धरहिं' इत्यादि छप्पय लिखकर और गाय के मुख में दबाकर अकबर बादशाह के सामने भेजा था। कहते हैं, बादशाह पर उसका इतना असर पड़ा कि उसी दिन से उन्होंने अपने राज्य में गोवध बंद करा दिया। बादशाह की उसी आज्ञा का उल्लेख उपर्युक्त छंद में है। हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि छंद किसका निर्मित है। अधिकतर प्रसिद्ध यह है कि उपर्युक्त छंद भी नरहरि-कृत ही है, जो उन्होंने अपने मनोरथ के सफल होने पर बनाया था। जो हो, यदि इस छंद की रचना कवि मतिराम के कविताकाल के पहले हुई है, तो मतिरामजी ने ललितललाम में जो प्रायः इसी से मिलता-जुलता छद है, उसे इसे ही देखकर बनाया है। वह छंद इस प्रकार है—

जोर दल जोरि साहिजादो साहिजहाँ जंग
जुरि मुरि गई रही राव में सरम-सी।
कहै *मतिराम* देवमंदिर बचाए जाके
बर बसुधा में बेद श्रुति बिधि यों बसी।
जैसो रजपूत भयो भोज को सपूत हाड़ा
ऐसो और दूसरो भयो न जग में जसी।
गायनि को बकसी कसायनि की आयु सब
गायनि की आयु सो कसायनि को बकसी॥

—मतिराम

कहते हैं 'रावरतन' ने भी दिल्लीश्वर से यह प्रतिज्ञा करा ली थी की उनके शिविरों के निकट कभी गोवध न होगा। संभवतः उसी घटना का निर्देश करते हुए मतिरामजी ने यह रचना की है। जो हो, छंद के अंतिम पद में ही चमत्कार है।

रसखान और मतिराम—रसखान और मतिराम की कविता में भी कहीं-कहीं भावसादृश्य पाया जाता है। यहाँ पर केवल एक उदाहरण दिया जाता है—

कौन ठगोरी भरी हरि आज बजाई है बाँसुरिया रसभीनी।
तान सुनी जिनहीं जितहीं तिनहीं तिन लाज बिदा करि दीनी।
घूमैं खरी खरी नंद के बार नवीनी कहा अरु बाल प्रबीनी।
या ब्रजमंडल में *रसखान* सु कौन भटू जु लटू नहि कीनी॥

—रसखान

आननचंद निहारि-निहारि नहीं तनु औ धन जीवन वारैं।
चारु चितौनि चुभी *मतिराम* हिये मति को गहि ताहि निकारैं।
क्यौं करि धौं मुरली मनि कुंडल मोरपखा बनमाल बिसारैं।
ते धनि जे ब्रजराज लखैं गृहकाज करैं अरु लाज सँभारैं॥

—मतिराम

रसखान ने जो बात स्पष्ट शब्दों में कह दी है, उसी को मतिराम ने घुमा-फिराकर ऐसे ढंग से कहा है कि चमत्कार बढ गया है। रसखानजी की राय में सारे व्रजमंडल में कोई भी 'भटू' ऐसी नहीं है, जिसको कृष्णचंद्र ने 'लटू' न किया हो। अर्थात् सभी पर व्रजराज का स्पष्ट प्रभाव है, पर मतिरामजी उन व्रजबालाओं को शाबाशी देने के लिए तैयार हैं, जो व्रजराज को देख चुकने के बाद भी लज्जा को सँभालती हुई गृहकाज में लगी पाई जायँ। इसका तात्पर्य यह है कि मनमोहन के दर्शन के बाद व्रजयुवती का अपने आपे में रहना असभव है। हमारी राय में मतिराम के कहने का ढंग रसखान से अच्छा है।

बिहारी और मतिराम—कविवर बिहारीलाल और मतिरामजी ने प्रायः एक ही समय में कविता की है। दोनो ही प्रतिष्ठित राजघरानों के आश्रित कवि थे। 'जयपुर' और 'बूँदी' राजपुताने के चिरप्रसिद्ध राज्य हैं। यहाँ के शासक बड़े ही गुणी और गुणग्राहक रहे हैं। हिंदीसाहित्य दोनो ही दरबारों से लाभान्वित हुआ है। बिहारीलाल महाराजा जयसिंह जयपुर-नरेश के आश्रित थे और मतिरामजी बूँदी-नरेश भावसिंहजी के। उभय कविवरों ने अपनी कविता का अधिकांश भाग श्रृंगाररस के सत्कार में नियोजित किया है। दोनो ही कवि पक्के श्रृंगारी हैं। दोनो कवियों ने मधुर व्रजभाषा में

अपना काव्य संपादित किया है। बिहारीलाल ने अपनी समग्र कविता दोहा और सोरठा-छंदों में निबद्ध की है, परंतु मतिरामजी ने घनाक्षरी, सवैया, छप्पय, सोरठा एवम् दोहा आदि कई छंदों का प्रयोग किया है। मतिरामजी ने नायिकाभेद और अलंकार एवम् पिंगलशास्त्र समझानेवाले ग्रंथ भी बनाए हैं। कुछ विद्वानों की राय है कि बिहारीलाल के दोहे हिंदीसाहित्य में अपना जोड़ नहीं रखते। हिंदीसाहित्य में बिहारीसतसई सचमुच अद्वितीय ग्रंथ है। कविवर मतिरामजी ने भी अपने ग्रंथों में अनेक दोहों की रचना की है। उन्होंने दोहामय मतिरामसतसई भी बनाई है। यह सतसई बिहारीसतसई से कुछ ही घटकर है। कुछ विद्वानों की राय है कि अगर किसी के दोहे बिहारीलाल के दोहों की समानता को पहुँचते हैं, तो वे मतिराम के ही दोहे हैं। हमारी राय में मतिराम के कोई-कोई दोहे वास्तव में अनुपम हैं। इस ग्रंथावली में पाठकों को स्थल-स्थल पर मतिराम के कुछ ऐसे दोहे पढ़ने को मिलेंगे। मतिराम और बिहारी के किसी-किसी दोहे में भावसादृश्य पाया जाता है। यह सादृश्य भावापहरण के कारण है, अथवा दोनो ही कवियों को एक साथ ही समान भाव सूझे हैं—यह बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती; पर दोनो की कविता में भावसादृश्य है अवश्य। यहाँ इस प्रकार के कुछ उदाहरण उद्धृत किए जाते हैं। दोनो पर युगपद् ध्यान देने से अलौकिक आनंद प्राप्त होता है—

(१) शरद् का शुभागमन है। निर्मल जल की बहार है। खंजन पक्षी गृहस्थों के आँगन-आँगन में नाच रहा है। सरोवरों में कमल फूले हुए हैं। रात्रि में शशधर अपनी षोड़श कला से उदित होता है। शृंगारी कवि बिहारीलाल और मतिरामजी, दोनो ही इस प्रकृतिसौंदर्य को देखते हैं। 'शरदागम का सुहावना समय नायिका के अवयवों का प्रतिस्पर्द्धी बनता है। बिहारीलालजी कहते हैं—

अरुन सरोरुह कर चरन दृग खंजन मुख चंद।
समय आय सुंदरि सरद काहि न करत अनंद॥

इसी भाव का निर्वाह मतिरामजी यों करते हैं—

सरदागम पिय आगमन जगी जोति मुखइंदु।
अंग अमल पानिप भयो फूले दृग अरबिंदु॥

उभय कविवरों में किसका भाव विशेष रमणीय है, इसका भार सहृदय पाठकों की रुचि पर छोड़कर हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि

मतिरामजी के दोहे में आगतपतिका नायिका एवम् रूपक अलंकार का संपूर्ण निर्वाह हुआ है।

(२) बेचारे नेत्रों के भाग्य में सुख का अभाव ही समझ पड़ता है। जब प्रियतम से साक्षात् होता है, तब लज्जा एवम् आनंदाश्रुप्रवाह के कारण उनके दर्शन सम्यक् नहीं हो पाते और वियोग में सदा रोना-ही-रोना रहता है। इस भाव को बिहारीलाल ने अपने दोहे में यों अभिव्यक्त किया है—

इन दुखिया अँखियान को सुख सिरजोई नाहिँ।
देखे बनै न देखते बिन देखे अकुलाहिँ॥

मतिरामजी इसी भाव को यों दर्शित करते हैं—

बिन देखेँ दुख के चलैँ देखे सुख के जाहिँ।
कहो लाल इन दृगन के अँसुवा क्यों ठहराहिँ॥

दोनो में किसका भाव उत्कृष्ट है, इसका भार हम फिर सहृदय पाठकों की रुचि पर छोड़ते हैं।

(३) प्रौढाधीरा नायिका नायक को अपराधी पाकर भी अपने क्रोध को प्रकट नहीं कर रही है, परंतु उसकी रति-संबंधिनी उदासीनता से नायक को उसका मान अवगत हो जाता है। इसी दशा का चित्र कविवर बिहारीलाल यों खींचते हैं—

चितवनि रूखे दृगन की हाँसी बिनु मुसकानि।
मान जनायो मानिनी जानि लियो पिय जानि॥

इस भाव को मतिरामजी ने 'रसराज' की एक घनाक्षरी में बड़े ही अच्छे ढंग से दिखलाया है। घनाक्षरी का अंतिम पद यह है—

कहा चतुराई ठानियत प्रानप्यारी तेरो
मान जानियत रूखी मुख-मुसकानि सौं।

घनाक्षरी के अतिरिक्त एक अन्य दोहे में इस भाव को मतिरामजी ने और भी मार्मिकता से व्यक्त किया है—

ढीली बाहन सौं मिली बोली कछू न बोल।
सुंदरि मान जनाय यों लियो प्रानपति मोल॥

अंतिम दोहे की भावोत्कृष्टता का अंदाजा पाठकगण इसी से कर सकते हैं कि 'दास' जैसे उद्भट कवि भी इस भाव के अपहरण का लोभ संवरण न कर सके। यथा—

याही ते हिय जानि गो मान हिये को लाल।
अरसीली ढीली मिलनि मिली रसीली बाल॥

—दास

(४) आभूषण-विशेष की झलक नायिका के अवयव-विशेष पर पड़ी है। नायिका इस बात को समझ नहीं पाती और उस झलक को दूर करने का उद्योग करती है। सखी उपहास करती हुई असली बात नायिका को समझा देती है। बिहारीलालजी कहते हैं—

बेसरि मोती दुति झलक परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय क्यों पट पोछो जाय॥

कितना मार्मिकतामय वर्णन है। सखी की कैसी मृदु हँसी है। मतिरामजी ने भी इसी भाव को एक दोहे में संपुटित किया है, पर वहाँ धोखा खानेवाली सखी है, नायिका नहीं। नायिका के कपोलों पर रदछद बने हुए थे। लज्जावश वह उन्हें कपड़े से ढँककर सखी से छिपाना चाहती थी, सखी इस भेद को समझ न सकी, वह समझी कि लाल तरथोना की आभा कपोलों पर पड़ रही है—उसको भ्रम हो गया—या संभव है कि वह जान-बूझकर नायिका की लज्जा दूर करने को बन गई हो। जो हो, उसने नायिका को गोपनकार्य से विरत किया—

प्रभा तरथोना लाल की परी कपोलनि आनि।
कहा छुपावति चतुर तिय कंत दंतछत जानि॥

इस दोहे को 'जसवंतजसोभूषणकार' कविराजा मुरारिदान ने अपने अलंकारग्रंथ में 'भ्रम' के उदाहरण में उद्धृत किया है।

(५) लाज लगाम न मानहीं नैना मो बस नाहिं।
ये मुँहजोर तुरंग लौं ऐंचतहूँ चलि जाहिं॥

—बिहारी

मानत लाज-लगाम नहिं नैक न गहत मरोर।
होत लाल लखि बाल के दृगतुरंग मुँहजोर॥

— मतिराम

दृगतुरंगों पर अपना बस न रहने के कारण बिहारीलाल का यह कहना कि 'नैना मो बस नाहिं' बड़ा ही विदग्धतापूर्ण और सुकुमार भाव है। दृग-तुरंग' का रूपक बड़ी शान-बान से उठा था, पर 'लौं' वाचक के प्रयोग से बिहारीलाल ने उसे बिगाड़ दिया। मतिरामजी के दोहे में इतनी विशेषता अवश्य है कि उन्होंने रूपक नहीं बिगड़ने दिया।

(६) प्रिय और प्रियतमा का साक्षात्कार हुआ है। दोनो एक दूसरे को टकटकी लगाकर देख रहे हैं। सात्त्विक प्रभाव से अश्रुप्रवाह हुआ है। इस दृश्य का फोटो खींचना उभय कवियों को अभीष्ट है। एक कवि नायक-नायिका, दोनो के नेत्रों के अश्रुप्रवाह को देखकर नेत्रपिचकारी द्वारा एक दूसरे पर प्रेमरंग छिड़कवाता है, तो दूसरा 'रीझ' के भार से थकी हुई आँखों में 'श्रमजल' का आना दिखलाता है। दोनो ही बड़े सुकुमार भाव हैं—

रस भिजए दोऊ दुहुन इकटक रहे टरै न।
छबि सौं छिरकत प्रेमरँग भरि पिचकारी नैन॥

—बिहारी

बाल रही इकटक निरखि ललित लाल मुखइंदु।
रीझ भार अँखियाँ थकीं झलके श्रमजल-बिंदु॥

—मतिराम

'को बड़ छोट कहत अपराधू' वाले गोस्वामीजी के कथन के अनुसार हम नहीं कह सकते कि दोनो में कौन भाव आगे निकल जाता है। सहृदय पाठक स्वयम् निर्णय कर लें।

(७) मर्यादा भाग ४, संख्या १, पृष्ठ ३ पर पं० शिवाधार पांडेय एम० ए०, एल् एल्० बी० लिखते हैं—

चढ़ी अटारी बाम वह कियो प्रनाम निखोट।
तरनि किरनि ते दृगन की करसरोज करि ओट॥

यह क्रियाविदग्धा का उदाहरण है। पति को नीचे जाता हुआ देखकर कोई स्त्री सूर्य को प्रणाम करने के बहाने नेत्रों की ओट करके नीचे पति की ओर देखती है × × × उधर प्रणाम का बहाना भी हो जाता है, इधर अपने लजीले नेत्रों के लिए सूर्य भगवान् से क्षमा भी माँगी जाती है। यह शृंगार में एक अद्भुत भक्ति और हास्यरस का प्रवेश है × × ×। बिहारी भी इसी

तरह के एक दोहे को कहते हैं, पर कहना न होगा कि मतिराम की मिठास को नहीं पाते ।

रबि बंदौं कर जोरिकै सुने स्याम के बैन ।
भए हँसौहैं सबन के अति अनखौहैं नैन ॥

यहाँ न वह भाव ही है, न वह अवस्था ही और न वह अद्भुतरस ही; कोरा हास्यरस है ।

(८) शरीर में आभूषण, नेत्रों में कजल और पैरों में महावर का व्यवहार करने से नायिका की शोभा नहीं बढ़ती है । यह सब शृंगार कहने-भर को है । इस आशय को बिहारीलाल ने अपने छोटे से दोहे में बड़ी ही मार्मिकता से दिखलाया है । अपनी सवैया में मतिराम का भी वही लक्ष्य है, पर लेखक को बिहारी के दोहे से विशेष सहानुभूति है—

तन भूषन अंजन दृगन पगन महावर रंग ।
नहिं सोभा को साज यह कहिबेई के अंग ॥

जावक रंग रँगे पगपंकज नाह को चित्त रँगे रँग जातैं ।
अंजन दैकरि नैननि मैं सुषमा बढ़ी स्याम सरोज प्रभातैं ।
सोने के भूषन अंग रचे *मतिराम* सबै बस कीबे की घातैं ।
यों हीं चलै न सिंगार सुभावहि मैं सखि भूलि कही सब बातैं ॥

उपर्युक्त उदाहरणों से पाठकगण निश्चय कर सकते हैं कि कविवर मतिरामजी बिहारीलाल से बहुत पीछे नहीं रह जाते ।

मतिराम और आलम—'आलमकेलि' और 'रसराज' को साथ-साथ पढ़िए, तो आपको भावसादृश्य के अनेक उदाहरण मिलेंगे । यदि मतिरामजी कहते हैं कि

पानिप अमल की झलक झलकन लागी
काई-सी गई है लरिकाई मिटि अंग ते ।

तो हम आलम को भी वयःसंधि के वर्णन में ठीक यही बात कहते पाते हैं । उनके कथन को सुनकर कौन न कहेगा कि दोनो भाव एक हैं । देखिए—

***आलम* उमँगि रूप सोना सरवर भरयो**
पानिप ते काई लरिकाई मिटि गई है ।

मतिरामजी का अन्यसंभोगदुःखिता नायिका का उदाहरण लीजिए—

याही कौं पठाई भलो काम करि आई बड़ी
तेरी ये बड़ाई लखे लोचन लजीले सौं।
साँची क्यौं न कहै कछु मोकौं किधौं आपही कौं
पाई बकसीस लाई बसन छबीले सौं।
मतिराम **सुकबि सँदेसा अनुमानियत**
तेरे नखसिख अंग हरष कटीले सौं।
तूँ तो है रसीली रसबातन बनाय जानै
मेरे जान आई रस राखिकै रसीले सौं॥

उपर्युक्त छंद से नीचे लिखा आलम का छंद मिलाइए। देखिए, कैसा सुंदर साम्य है—

तो सी ढीठी निठुर बसीठी देखी मैं न कहूँ
मीठी मुख आगे पीठि पाछे करै रारि-सी।
मेरे आए मेरी भई वा पै वाही की ह्वै गई
दई को न डरु लोकलाज दई डारि-सी।
आलम **सुकबि आई बातन रिझाय मनु**
मुरझानो मोहन मुरी है बेझा मारि-सी।
बात-सी बनाय सु लचाय हिय लाए इत
तूँ तौ चली नारि फिर नावक की नारि-सी॥

आलमजी में मतिराम का भावसौकुमार्य और भाषामाधुर्य नहीं है। उभय कविवरों के छंदों में बहुत बड़ा अंतर है। मतिरामजी का गोपीउद्धव-सवादवाला वह छंद जिसका अंतिम पद यह है—

ऊधो तुम कहत बियोग तजि जोग करो
जोग तब करैं जो बियोग होय स्याम सौं।

इस पुस्तक में कई बार उद्धृत किया जा चुका है। इस भाव को बडे-बड़े कवियों ने अपनाने की चेष्टा की है। आलम भी इस लोभ को संवरण करने में समर्थ नहीं हो सके; पर इनमें मतिराम की वह माधुरी कहाँ? पाठक स्वयम् देख लें। आलमजी का छंद इस प्रकार है—

तरनिजातट बंसीबट कुंजपुंज बीथी
बन घन जहाँ तहाँ आनँदुपयोगी हैं।

सोई रहै ध्यान ऊधो ज्ञान को न काज कीजै
ये तो ब्रजवासी ब्रजराज के बियोगी हैं।
आलम सुकबि कहै तन बीच कान्ह छबि
जोग देन आए तुम कहा हम जोगी हैं।
जोग तौ सिखावै ताहि जोग की जुगुति जानै
जोग को न काज हम बंसीरस-भोगी हैं॥

भूषण और मतिराम—

(१) उत्तंग मरकत मंदिरन महँ बहु मृदंग जु बाजहीं।
घन समै मानहुँ घुमरि करि घन घनपटल गल गाजहीं।
मुकतानि की झालरनि मिलि मनिमाल छज्जा छाजहीं।
संध्या समै मानहु नखतगन लाल अंबर राजहीं॥

(२) *भूषन* भनत जहँ परसिकै मनि पुहुप रागन की प्रभा।
प्रभु पीत पट की प्रगट पावत सिंधु मेघन की सभा।

(३) देसन-देसन नारि नरेसन *भूषन* यों सिख देहि दया सों।
मंगन ह्वै करि दंत गहो तिन कंत तुम्है है अनंत महा सों।
कोट गहो कि गहो बन ओट कि फौज की जोट सजो प्रभु तासों।
और करो किन कोटिक राह सलाह बिना बचिहो न सिवा सों॥

—भूषण

(१) जहाँ छहो ऋतु मैं मधुर सुनि मृदंग मृदु सोर।
संग ललित ललनान के नृत्य करत गृहमोर॥

(२) सरद बारिधर-से लसत अमल धौरहर धौल।
चित्रनि चित्रित सिखर जहँ इंद्रधनुष-से नौल॥

(३) महलनि ऊपर जहँ बने कंचनकलस अनूप।
निज प्रभानि सौं करत हैं गगन पीत अनुरूप॥

(४) बिपिनि-सरन कै चरन तकौ राव ही के
चढ़ौ गिरि पर कै तुरंग परवर मैं।
राखो परिवार कौं कि आपनीयै हठ राज
संपति दै मिलौ कै नगारे दै समर मैं।
कहै *मतिराम* रिपुरानी निज नाहन सौं
बोलैं यौं डरानी भावसिंहजू के डर मैं।

> बैर तो बढ़ायो कह्यो काहू को न मान्यो अब
> दाँतन तिनूका कै कृपान गह्यो कर मैं ॥
>
> —मतिराम

ऊपर दिए हुए पहले तीन वर्णन क्रम से रायगढ और बूँदी के राज-महलों के हैं। भूषणजी मंदिरों में होनेवाली मृदंगध्वनि की तुलना घनगर्जन से करते हैं। मतिरामजी उसी ध्वनि का प्रभाव यों बतलाते हैं कि मयूर नाचने लगते हैं। मयूर भी वे, जो गृह में पालित हैं। गृहमयूर मतलब से खाली नहीं है। इमें तो भूषण के 'घनपटल गल गाजहीं' से मतिराम का 'मधुर मृदु सोर' अच्छा मालूम होता है। दूसरे वर्णन में वैसा सादृश्य नहीं है, पर मतिराम का वर्णन स्वाभाविक विशेष है। तीसरे वर्णन में कंचनकलशों का अपनी पीतप्रभा से गगन को पीत करना जितना सरल और मनोरम है, उतना भूषण का सादृश्यवर्णन नहीं। मतिराम का चौथा वर्णन तो भूषण के वैसे ही वर्णन से सभी प्रकार से अच्छा बन पड़ा है। इन दोनों भाइयों के अन्य कई वर्णनों में भी भावसादृश्य है। उनकी तुलना पाठकगण अन्यत्र पढ़ें। यद्यपि रौद्र और भयानक-वर्णन करने में भूषण बड़े ही सिद्धहस्त हैं, परंतु प्रतिभा और काव्यकलाकौशल में मतिराम का पद उनसे ऊँचा है।

मतिराम और देव—एक सहज सुंदरी चारु कोमलांगी सुकुमारी युवती अपने अंग-प्रत्यंगों की सुवास और दीप्ति से चारों ओर सुगंधि और आलोक फैलाती और अपनी मंद-मंद मुसकान से शुभ्र ज्योत्स्ना की ज्योति छिटकाती (रात्रि में) शयन करने के लिए अपने प्राणप्यारे के पास छत पर जाने लगी। चलने में किंकिणी बज उठी। बड़े ही असमंजस की बात है। घर के गुरुजन लोग अभी जग रहे हैं। वे लोग लजीली नायिका का प्रियतम के सनिकट गमन जान जायँगे, इस विचार से बेचारी पद-पद पर जैसे जैसे रसना (किंकिणी) बज उठती है, तैसे-ही-तैसे वह अपनी रसना (जीभ) को दाँतों से दबा लेती है। दाँतों से जीभ दबाने में लज्जित होने का जो भाव है, वह प्रकट ही है। यहाँ रसना-पद के यमक ने इसे और भी चमत्कृत कर दिया है। नायिका की इस प्रकार की स्वाभाविक लज्जा का फोटो मतिरामजी के मधुर शब्दों में इस प्रकार है—

> (१) सहज सुबासजुत देह की दुगुनि दुति
> दामिनी दमक दीप केसरि कनक तैं।

मतिराम सुकबि सरस सुकुमार अंग
सोहत सिंगार चारु जोबन - बनक तैं।
सोइबे को सेज चली प्रानपति प्यारे पास
जगत जुन्हाई जोति हँसन तनक तैं।
चढ़त अटारी गुरु लोगन की लाज प्यारी
रसना दसन दाबै रसना - झनक तैं॥

—मतिराम

देवजी ने मतिराम के 'रसना दसन दाबै रसना झनक तैं' पद को एक छंद में अपनाया है। देवजी की नायिका को भी लज्जावश होकर ही दाँतों तले जीभ दबानी पड़ी है, पर यह लज्जा दूसरे ही प्रकार की है। 'सुरतारम्भ-गोष्ठ्यादावश्लीलत्वं तथा पुनः' नामक साहित्यदर्पण की कारिका से देवजी अश्लीलत्वदोष से भले ही छुटकारा पा जायँ, परंतु तुलना के समय स्वाभाविक वर्णन एवम् निर्दोष भाव के परिस्फुटन में मतिरामजी देव से आगे हैं। हाँ, शब्दचमत्कार में अवश्य ही देवजी ने मतिराम को दबा दिया है। देवजी की मनोमोहिनी उक्ति इस प्रकार है—

नेवर के बजत कलेवर कँपत देव
देवर जगैं न लग सोवत तनक तैं।
ननद नछीछी त्यौरी तोरति तिरीछी लखि
बीछी कैसो बिष बगरावैगी भनक तैं।
देखिये कठिन साथ गह्यो जू न हठि हाथ
कैसे कहौं जाहु नाथ आप हौ बनक तैं।
बसना हमारे रंग रसना बनत चौंकि
रसना दसन दाबै रसना - झनक तैं॥

—देव

मतिरामजी ने 'रसना' का प्रयोग दो बार करके यमक का चमत्कार दिखलाया था। देवजी ने उसका प्रयोग एक बार और अधिक किया है। मतिरामजी की नायिका को किंकिणी शब्द के कारण मार्ग में ही लज्जा ने आ घेरा है, परंतु देवजी की नायिका प्रियतम के संनिकट होती हुई, रसना शब्द से चौंकती है। पहले छंद में नायिका का नायक के पास गमन हुआ है और दूसरे में नायक नायिका के पास 'बनक' से गया है। पहले छंद में नायिका

को गुरुजन की लज्जा दबाए डालती है, पर दूसरे छंद में देवर और ननद का ही डर है।

शृंगारी कवियों में देवजी का स्थान मतिरामजी से ऊँचा है, फिर भी उपर्युक्त दोनो छंदों में मतिरामजी ही सिरे हैं।

(२) उद्धवजी प्रेमविह्वला, विरहविधुरा गोपियों को समझाते हैं कि तुम योगमार्ग में प्रवृत्त हो जाओ। इससे तुमको भविष्य में कृष्णचंद्र की अवश्य-प्राप्ति होगी। गोपियाँ एक प्रकार से उद्धवजी का परिहास करती हुई कहती हैं कि आपके आज्ञापालन की तो तब आवश्यकता थी, जब हमारा कृष्णचंद्र से वियोग होता, उनके प्रेम में तो हमारी तन्मयता इस हद तक पहुँच गई कि हमें सर्वत्र ही सदा उनके दर्शन का सुख सुलभ हो रहा है। फिर हमारे लिए योगसाधन की क्या आवश्यकता है? किसलिए हम ऐसे सुखद वियोग का त्याग करें? मतिराम और देव दोनो ही कवियों ने इस विषय पर रचना की है। हम दोनो कवियों की उक्तियाँ बिना टीका-टिप्पणी के उद्धृत करते हैं और सहृदय पाठकों की रुचि पर इस बात का भार छोड़ते हैं कि किसकी उक्ति विशेष चमत्कारिणी है—

जो न जी मैं प्रेम तब कीजै व्रतनेम जब
कंज मुख भूलै तब संजम बिसेखिये।
आस नहीं पी की तब आसन ही बाँधियत
सासन कै सासन को मूँदि पति पेखिये।
नख ते सिखा लौं सब प्रेममई बाम भई
बाहिर लौं भीतर न दूजो देव **देखिये।**
जोग करि मिलै जो बियोग होय बालम जु
ह्याँ न हरि होयँ तब ध्यान धरि देखिये॥

—देव

निसि-दिन स्त्रौनन पियूष सो पियत रहैं
छाय रह्यो नाद बाँसुरी के सुर ग्राम को।
तरनितनूजा तीर बन कुंज बीथिन मैं
जहाँ-तहाँ देखति है रूप छबिधाम को।
कबि *मतिराम* **होत हाँतो ना हिये ते नैक**
सुख प्रेम गात को परस अभिराम को।

ऊधो तुम कहत बियोग तजि जोग करो
जोग तब करैं जो बियोग होय स्याम को ॥
—मतिराम

(३) दोनों कवियों की वचनविदग्धाओं का भी एक-एक उदाहरण लीजिए। गोपिका बहाने के साथ श्रीकृष्ण को एकांतस्थल में ले जाना चाहती है। एक कवि गोदोहन-कार्य का आश्रय लेकर और दूसरे जंगल में खाए हुए बछड़े के ढूँढ़ने का कथन करके इस भाव को दिखलाते हैं। एक छंद में सूर्योदय के पहले ही जाकर गोपिका कृष्णचंद्र से गोदोहन के लिए कहती है तथा दूसरे में संध्यासमय बछड़े के ढुँढाने की प्रार्थना है। दानो ही उक्तियाँ परम रसीली हैं। लेखक की राय में मतिराम की उक्ति में कुछ स्वाभाविकता विशेष है—

ननँद उठाई उन सोवत उठाई सासु
पेलिकै पठाई अधरातक अँध्यारेई।
रैहौं ना बिठाई हौंहीं जाऊँगी पठाई तुम्हैं
उत वै हठीली हठ मोहीं सो पसारेई।
पीतंबर खोलो मुख देखो हौं तिहारो नेक
देखो भोर भयो जू बनैगो पगु धारेई।
चोखी जाति गैया कोई और न दुहैया देव
देवर कन्हैया कहा सोवत सवारेई ॥
—देव

आई है निपट साँझ गैयाँ गईं घर माँझ
हाँ लो दौरि आई मेरो कह्यो कान्ह कीजिये;
हौं तो हौं अकेली और दूसरो न देखियत
बन की अँधेरी में अधिक भय भीजिये।
कबि *मतिराम* मनमोहन सौं पुनि-पुनि
राधिका कहति बात साँची कै पतीजिये।
कब की हौं हेरति न हेरे हरि पावति हौं
बछरा हिरान्यो सो हिराय नेक दीजिये ॥
—मतिराम

देव और मतिराम के भावसादृश्य पर विचार करते समय पाठकों को इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि मतिरामजी पूर्ववर्ती और देवजी परवर्ती

कवि हैं। इस कारण यदि एक-से भावों में अर्थापहरण का संदेह किया जा सकता है, तो मतिराम अपहरणदोष के दोषी नहीं ठहराए जा सकते।

दास और मतिराम—कविवर भिखारीदास और मतिरामजी के भावों में कहीं कहीं सदृशता पाई जाती है। अनेक ऐसे भावसादृश्यों में से कुछ पाठकों के मनोरंजनार्थ नीचे उद्धृत किए जाते हैं। स्मरण रहे, मतिरामजी पूर्ववर्ती और दासजी परवर्ती कवि हैं—

(१) किंसुक के फूलन के फूलन बिभूषित कै
 बाँधि लीनी बलया बिगत कीन्हीं बजनी।
ता पर सँवारयो सेत अंबर को डंबर
 सिधारी स्याम संनिधि निहारी काहू न जनी।
छीर के तरंग की प्रभा को गहि लीन्हीं तिय
 कीन्हीं छीरसिंधु छिति कातिक की रजनी।
आनन-प्रभा ते तन छाँहहूँ छपाए जात
 भौंरन की भीर संग लाए जात सजनी॥

—दास

अंगन में चंदन चढ़ाय घनसार सेत
 सारी छीरफेन की-सी आभा उफनाति है।
राजत रुचिर रुचि मोतिन के आभरन
 कुसमकलित केस सोभा सरसाति है।
कबि *मतिराम* प्रानप्यारे सों मिलन चली
 करिकै मनोरथनि मृदु मुसकाति है।
होति न लखाई निसिचंद की उज्यारी मुख-
 चंद की उज्यारी तन छाँहौं छपि जाति है॥

—मतिराम

दोनो ही कवियों ने शुक्लाभिसारिका का अपूर्व अभिसार दिखलाया है। नायिका विमल चाँदनी में अपने प्रियतम को मिलने जा रही है। इसलिए उसका संपूर्ण उद्योग यह है कि उसके वस्त्र-आभूषण इत्यादि ऐसे हों, जो चाँदनी में छिप जायँ। उज्ज्वल चाँदनी में सफेद वस्तुओं के ही छिपने की संभावना है। इसीलिए मतिरामजी ने अभिसारिका के अंगों में कपूर-मिश्रित श्वेत चंदन का लेप करा दिया है। यह लेप अभिसार के लिए

उपयोगी है, और साथ ही उद्दीपक भी। कर्पूर की उग्र गंधि पद्मिनी के शरीर की स्वाभाविक पद्मगंधि को भी दवा देती है। इससे भ्रमरमंडली नायिका का पीछा नहीं करती है, सो कर्पूरमिश्रित चंदन का लेप अभिसारकार्य प्रकट न होने देने में भी सहायता पहुँचाता है। मोतियों के गहने और केशपाश में कुसुम-कलियों से सजाकर मतिरामजी उसे दुग्धफेन के सदृश उज्ज्वल सफेद साड़ी भी उढ़ा देते हैं। सब उपाय हो जाने पर भी चाँदनी में शरीर की छाया के छिपाने का कोई प्रबंध न था, पर कवि ने उसे भी दूर ही कर दिया। यदि और सब सामग्री 'निसिचंद' की उज्यारी में छिप गई थी, तो 'छाँह' मुखचंद की उजियारी में न ठहर सकी। आखिर मुखचंद की चाँदनी का भी तो कुछ उपयोग होना चाहिए था। दासजी ने भी 'आनन-प्रभा' में छाँह को छिपाया है, पर हमारी राय में कोरी आनन-प्रभा से 'मुखचंद की उज्यारी में विशेष चमत्कार है। मतिराम के भाव में दासजी कोई अनूठापन नहीं ला सके हैं, या यों कहें कि उन तक पहुँच ही नहीं सके हैं। किंसुक के फूलों के करनफूल शुक्लाभिसारिका के लिए कैसे उपयोगी हैं? फिर 'कातिक की रजनी' में ताजे फूल कहाँ से आए? वसंत की चीज शरद् में कहाँ से आई? शुक्लाभिसारिका के साथ भौंरों की भीड़ का होना भी अभिसार का साधक न होकर बाधक ही होगा। काले भौंरों से शुक्लाभिसारिका को अपने को छिपाने के उद्योग में बड़ा ही संकट उपस्थित हो गया है। माना कि भौंरों का होना पद्मिनी नायिका का बोध कराता है; पर इस स्थान पर उसका उल्लेख शुक्लाभिसारिका के लिए हितकर नहीं है। दासजी ने भौंरोंवाला भाव भी मतिराम से ही लिया है। यथा—

पीछे पीछे आवति अँधेरी-सी भँवर-भीर
आगे आगे फैलति उज्यारी मुखचंद की।

पर वहाँ अभिसार गणिका का है, जिसको अपने छिपाने की उतनी आवश्यकता भी नहीं। अँधियाला और उजियाला पास ही कैसा मालूम पड़ता है। यह भी मतिराम ने दिखलाया है। आगे मुखचंद्र की उज्ज्वलता है, तो पीछे भ्रमरमंडली-कृत घनघोर तिमिर है। इस विषमता को धन्य है।

मतिराम के मर्म को यथावत् न समझकर उनका अनुकरण करने में दासजी चूक गए। मतिराम का छंद दास के छंद से कहीं अच्छा है।

(२) बाँघरे झीन सोँ सारी महीन सोँ पीन नितंबन भार उठै सचि।
बास सुबास सिँगार सिँगारनि बोझनि ऊपर बोझ उठै मचि।
स्वेद चलै मुखचंद ते च्वै डग द्वैक धरै महि फूलन सोँ पचि।
जात है पंकजबारि बयारि सोँ वा सुकुमारि को लंक लला लचि॥

—दास

चरन धरै न भूमि बिहरै तहाँई जहाँ
फूले फूले फूलन बिछायो परजंक है।
भार के डरनि सुकुमारि चारु अंगन मैँ
करत न अंगराग कुंकुम को पंक है।
कबि *मतिराम* देखि बातायन बीच आयो
आतप मलीन होत बदन मयंक है।
कैसे वह बाल लाल बाहिर बिजन आवै
बिजन बयारि लागै लचकत लंक है।

—मतिराम

दोनो ही कवियोँ ने नायिका की सुकुमारता को पराकाष्ठा के दरजे तक दिखलाया है। दासजी के छंद मैँ श्रृंगार का बोझ बढ़ जाता है, पर मतिराम के छद मैँ तो नायिका भार (बोझ) के डर से शरीर मैँ अँगराग धारण ही नहीँ करती है। पहले छंद मैँ नायिका दो-एक डग चलती तो है, पर दूसरे छद मैँ तो वह भूमि पर चरण ही नहीँ धरती है। दासजी के कथनानुसार दो एक डग चलने से ही नायिका पसीने-पसीने हो जाती है, पर मतिरामजी की नायिका जिस कमरे मैँ फूलोँ की शय्या पर विहार कर रही है, उसमैँ यदि खिड़की से कहीँ थोड़ी-सी भी धूप आ जाती है, तो उसका चेहरा कुम्हला जाता है। खिड़की से आई हुई धूप की मामूली झलक भी नायिका को असह्य है। आतप से वदनमयंक का मलीन होना कितना मर्मज्ञतामय है! धूप निकलते ही चंद्रदेव निष्प्रभ हो जाते हैँ। एक कवि की नायिका की कमर पखे की हवा से लचक जाती है, तो दूसरे की पंकजबारि-बयारि से वही दशा होती है। पंकजबारि-बयारि मैँ शीतलता और सुगंधि भले ही हो, परंतु पंखे की सादी हवा से उसमैँ 'भारीपन' अवश्य ही कुछ अधिक होगा। इस दृष्टि से भी 'बिजन-बयारि' से लंक का लचकना ही विशेष सुकुमारता

दर्शित करता है। कविवर दासजी इस तुलना में भी मतिरामजी के पीछे ही रह गए।

मतिराम और तोष—मतिराम और तोष के भावों में भी कहीं-कहीं सादृश्य दिखलाई पड़ता है। तोषजी के 'सुधानिधि' ग्रंथ से संकलित करके दो-एक उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) यों *मतिराम* बढ़्यो हिय मैं सुख बाल के बालम सों दृग जोरैं।
जैसे मिहीं पट मैं चटकीलो चढ़ै रँग तीसरी बार के बोरैं।

—मतिराम

करि जाय बड़ाई तिती करियो तब आय सुअंग में रंग मढ़ै।
बिन ढंग भट्ट पटह्न में जथा बिनु तीसरे रंग ना रंग चढ़ै।

—तोष

अंतिम पद ही दोनो उक्तियों की जान है। मतिरामजी का उक्त पद तोष के वैसे ही पद से कहीं अच्छा बन पड़ा है, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

(२) कबि *मतिराम* होत हाँतो ना हिये ते नैक
सुख प्रेम गात को परस अभिराम को।
ऊधो तुम कहत बियोग तजि जोग करो
जोग तब करैं जो बियोग होय स्याम को।

—मतिराम

***तोष* कबौ तन न्यारोई होत नहीं ते कहूँ अब जाय सकैं जू।**
साँचो सँजोग बियोग ही मैं हम ऊधो बिभूति न लाय सकैं जू।

—तोष

तन्मयता की मात्रा मतिराम की उक्ति में विशेष है। गोपियाँ वियोग का अनुभव ही नहीं कर रही हैं, उन्हें तो संयोग-ही-संयोग दिखलाई पड़ता है। तोषजी के छंद में गोपियाँ वियोगावस्था को भूलती नहीं, पर उसे कारण विशेष से संयोग से अच्छा समझती हैं। एक में संयोग-वियोग में कोई भेद नहीं रह जाता है, पर दूसरे में भेद मौजूद रहते भी वियोग स्वीकार किया जाता है। दोनो ही उक्तियों में उद्धवजी का योग-उपदेश अस्वीकृत होता है।

(३) जा दिन तैं चलिबे की चरचा चलाई तुम
ता दिन तैं वाके पियराई तन छाई है।

कहै *मतिराम* छोड़े भूषन बसन पान
सखिन सौं खेलनि हँसनि बिसराई है।
आई ऋतु सुरभि सुहाई प्रीति वाके चित्त
ऐसे मैं चलो तो लाल रावरी बड़ाई है।
सोवत न रैनि-दिन रोवति रहति बाल
बूझे तैं कहति सुधि मायके की आई है॥

—मतिराम

पीतम औधि गए बदिकै जिय मैं तिय तापर धीर न ल्याई।
रोजहि रोज सरोजमुखी कहि *तोष* रहै करुनारस छाई।
सोच भरी क्यों रहै सब बूझति सासु परोसिनि सौंह दिवाई।
बोलि मरू करिकै मुख मोरिकै मोहिं तो माइके की सुधि आई॥

—तोष

पति के परदेश जाने का इरादा करने तथा जा चुकने पर नायिका की जो दशा हुई है, वही क्रम से मतिराम और तोष* के छंदों में वर्णित है।

---

* हिंदीसाहित्य के इतिहास में 'तोष' और 'तोषनिधि' एक ही कवि माने गए हैं, पर हमारी राय में तोष और तोषनिधि दो भिन्न-भिन्न कवि हैं। तोषनिधि का बनाया 'महाभारतसार' नामक एक ग्रंथ 'रेहुआ' जिला सीतापुर-निवासी पिनाकी मिश्र के पास था। उसमें के बहुत-से छंद उन्होंने हमें लिखवा दिए हैं। उन छंदों में किसी-किसी में बजाय तोषनिधि के, 'मिश्रजू' सुकवि आया है। पिनाकीजी का कहना था कि हम कालपी में स्वयम् एक खँडहर की दीवारें देख आए हैं, जिसे लोग तोषनिधि के मकान की दीवारें कहते हैं। तोष कवि शुक्ल थे। सुधानिधि ग्रंथ में उन्होंने अपने नाम का प्रयोग ३४१ बार किया है, मगर एक बार भी उन्होंने तोषनिधि का प्रयोग नहीं किया है। तोषनिधि के नाम से जो छंद हैं, उनकी और तोष के नामवाले छंदों की भाषा भी एक तरह की नहीं है। नवीन कवि और शिवसिंजी ने भी तोष को तोषनिधि से पृथक् माना है। इन्हीं कारणों से हमारा मत यह है कि तोष सरयूपारीण ब्राह्मण शुक्ल थे तथा तोषनिधि कान्यकुब्ज ब्राह्मण मिश्र थे। तोष सिंगरौर और तोषनिधि कालपी के रहनेवाले थे। तोषनिधि का एक छंद नीचे दिया जाता है—

मतिराम का वर्णन स्वकीया और तोष का परकीया का है। हमारी राय में मतिराम का छंद हर तरह से तोष के छंद से अच्छा है। सहृदय पाठक इसका स्वयम् निर्णय कर लें।

मतिराम और रघुनाथ—मतिराम के पूर्ववर्ती कई कवियों से उनकी कविता की तुलना पाठकों ने पढ़ी है। उनके परवर्ती कवियों की कविता भी भावसादृश्य से खाली नहीं है। रघुनाथजी का रसिकमोहन एक परम प्रसिद्ध अलंकारशास्त्र-संबंधी ग्रंथ है। इसके अनेकानेक छंदों में मतिराम के भावों की झलक है। रघुनाथजी के कोई-कोई छंद बड़े ही अनूठे बन पड़े हैं, पर प्रतिशत इनका औसत बहुत ही कम है। इनके छंदों में मुख्य भाव को पुष्ट करनेवाली सामग्री कम और भर्ती के पदों का बाहुल्य रहता है। मतिराम की कविता ठीक इसके विपरीत है। उनके उत्तम छंदों का प्रतिशतक औसत बहुत अधिक है, और मुख्य भाव को पुष्ट करने की सामग्री की तो यह अवस्था है कि पद-पद का प्रयोग खूब सोच समझकर मुख्यार्थपरिपोषक ही होता है। व्यर्थ का पद ढूँढने से भी नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त मतिरामजी की कविता में मधुरता की भी विशेषता है। रघुनाथजी ने अलंकारों के उदाहरण अवश्य ही बहुत साफ दिए हैं। ऐसी दशा में मतिरामजी रघुनाथजी से कहीं अच्छे कवि हैं। आइए, दोनो कवियों के कुछ छंदों की तुलना करें—

(१) सत्ता के सपूत भाऊ तेरे दिये हलकनि
    बरनी ऊँचाई कबिराजन की मति मैं।

सक्र जो न माँगि लेतो कुंडल कवच पुनि
    चक्र जो न लीलती धरनि रथ धारतो।
कुंती जो न सरन समेटि लेती द्विजराज
    साप जो न होतो सल्य सारथी निवारतो।
तोषनिधि जो पै प्रभु पीतपटवारो बनि
    सारथीपने को कछु कारज न सारतो।
तौ तौ बीर करन प्रतापी रबिनंदन सु
    पांडुसुत सेना को चबेना करि डारतो॥

—तोषनिधि

मधुकरकुल करिनीन के कपोलन तैं
उड़ि-उड़ि पियत अमिय उडुपति मैं।
—मतिराम

छिन मैं महल बिसकरमै तैयार कीन्हों
कहै *रघुनाथ* कैयो जोजन के घेरे के।
अति ही बिलंद जहाँ चंद मैं ते अमी चारु
चूसत चकोर बैठे ऊपर मुड़ेरे के।
—रघुनाथ

दोनो छंदों का भाव बिलकुल एक ही है। हथनियाँ और महल दोनो ही इतने ऊँचे हैं कि चंद्रमा उनसे बहुत निकट रह जाता है। रघुनाथजी ने मतिरामजी का भाव लिया है। हमारी राय में 'चूसने' से 'पीने' का प्रयोग अच्छा है। मधुकरों का हथनियों के मदमडित कपोलों से आकृष्ट उतनी ऊँचाई तक जाना तो ठीक है, पर तीतर जाति के बहुत ही कम उड़ सकने-वाले चकोर पक्षी के उतने ऊँचे पहुँचने का कोई पर्याप्त कारण रघुनाथजी ने नहीं दर्शाया। 'मुडेर' के स्थान में यदि किसी 'कँगूरे', 'छतरी' इत्यादि का प्रयोग होता, तो और भी रमणीय होता। मतिराम का भाव हमारी राय में विशेष अच्छा है।

(२) **असरन सरन के चरन सरन तके**
त्यौंही दीनबंधु निज नाम की सुलाज की।
धाए रतिमान अति आतुर गुपाल मिली
बीच ब्रजराज को गरज गजराज की।
—मतिराम

कठिन समै बिचारि साहस सौं गयो हारि
हरिपद ध्यान *रघुनाथ* ज्यौंही सरज्यो।
असरन सरन की बिरद परज देखो
पहिले गरज भई पीछे गज गरज्यो।
—रघुनाथ

मतिरामजी के वर्णन में 'चचलातिशयोक्ति' और रघुनाथजी के वर्णन में 'अत्यंतातिशयोक्ति' है। पर रघुनाथजी ने भाव साफ ही मतिरामजी का लिया है। मतिरामजी का वर्णनक्रम, छद की बदिश, अनुप्रासन्यास तथा

उक्ति की रमणीयता ये सभी रघुनाथजी से बढ़कर हैं। सहृदय पाठक स्वयम् निर्णय कर लें।

(३) हीरनि मोतिनि के अवतंसनि सोने के भूषन की छबि छावै।
हार चमेली के फूलन के तिनमैं रुचि चंपक की सरसावै।
अंग के संग तैं केसरि रंग की अंबर सेत मैं जोति जगावै।
बाल छबीली छपाए छपै नहिँ लाल कहो अब क्यौं करि आवै॥
—मतिराम

सोनजुही की है जाति है माल बनायकै मालती की पहिराइये।
मोती के भूषन भूषिये जे पुखराज के ते सिगरे कहि गाइये।
जोबन आवत लाली सरीर मैं हे *रघुनाथ* **कहाँ लौं बताइये।**
खोरि लगाइये चंदन की अँग के सँग केसरि को रँग पाइये॥
—रघुनाथ

दोनो कवियों के छंद तद्गुण अलंकार के उदाहरण के हैं। दोनो ही छंदों में मधुरता कूट कूटकर भरी है। मतिरामजी के छंद में एक भी मीलित वर्ण नहीं आने पाया है। दो शब्दों को छोड़कर जिनमें चार या उससे अधिक अक्षर हैं, बाकी केवल दस शब्द तीन-तीन अक्षरों के हैं। सोलह शब्द केवल दो-ही-दो अक्षरों के हैं। आधे दर्जन के लगभग शब्द सानुस्वार हैं। हीरे मोती के गहने—सोने के समझ पड़ते हैं—सफेद फूलों के हार पीले फूलों के मालूम होने लगते हैं। सफेद कपड़े केसर रंग से रँगे जान पड़ते हैं—शरीर की दीप्ति सभा पर अपना ही रंग जमा देती है। रघुनाथजी का छंद भी बड़ा ही अच्छा है, पर मतिराम के छंद को नहीं पाता।

मतिराम और पद्माकर—साधारण हिंदीकविता पढ़नेवालों में सरल, विशेष अनुप्रासमयी तथा अधिक गंभीर न होने के कारण पद्माकर की कविता का मतिराम की कविता से कुछ विशेष आदर है। पद्माकरजी की कविता परम सराहनीय होते हुए भी मिठास, स्वाभाविक वर्णनप्रवाह एवम् गभीरतासंयुक्त रमणीयता की दृष्टि से मतिराम का स्थान ऊँचा है। दोनो कवियों के प्रायः एक ही प्रकार के भाव तुलना के लिए उद्धृत किए जाते हैं—

(१) निसि दिन स्रौननि पियूष-सौं पियत रहै
छाय रह्यो नाद बाँसुरी के सुर ग्राम को।
तरनितनूजा-तीर बन कुंज बीथिन मैं
जहाँ तहाँ देखिति हैं रूप छबिधाम को।

कबि *मतिराम* होत हाँतो ना हिये तैं नैक
सुख प्रेम गात को परस अभिराम को।
ऊधो तुम कहत बियोग तजि जोग करो
जोग तब करैं जो बियोग होय स्याम को॥

—मतिराम

प्रानन के प्यारे तनताप के हरनहारे
नंद के दुलारे ब्रजवारे उमहत हैं।
कहै *पदमाकर* त्यों रीझे उर अंतर यों
अंतर चहेहू जे न अंतर चहत हैं।
नैननि बसे हैं अंग अंग हुलसे हैं रोम
रोमनि रसे हैं निकसे हैं को कहत हैं।
ऊधो गुबिंद कोऊ और मथुरा में यहाँ
मेरे तो गुबिंद मोहि मोही मैं रहत हैं॥

—पद्माकर

दोनो छंदों में गोपियाँ वही बात उद्धवजी से कहती हैं। मतिरामजी के छंद में गोपियाँ विशेष घटना, विशेष अवसर और विशेष स्थान की रमणीयता का स्मरण रखती हुई अपनी उक्ति उपस्थित करती हैं, इसलिए उसका हृदय पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अनुप्रास के पीछे 'दीवाने' न होते हुए इनकी रचना में जो स्वाभाविक प्रवाह और माधुर्य है, वह पद्माकर के छंद में नहीं है। पद्माकरजी के छंद में अनुप्रास का चमत्कार विशेष अच्छा है, तन्मयता भी खूब है, पर कृत्रिमता भी आ गई है।

(२) मानहु आयो है राज कछू चढ़ि बैठे हो ऐसे पलास के खोढ़े।
गूँज गरे सिर मोरपखा *मतिराम* हो गाय चरावत चोढ़े।
मोतिन को मेरो तोरयो हरा गहि हाथन सों रहे चूनरी पोढ़े।
ऐसे ही डोलत छैल भए तुम्हैं लाज न आवत कामरी ओढ़े॥

—मतिराम

केसर रंग महावर सै सरसै रसरंग अनंगचमू के।
धूम धमारन को *पदमाकर* छाए अकास अबीर के मूके।
फाग यों लाड़िली की तिहि मैं तुम्हैं लाज न लागति गोप कहूँ के।
छैल भए छतियाँ छिरको फिरो कामरी ओढ़े गुलाल कों ढूके॥

—पद्माकर

उपर्युक्त दोनो छद बिब्बोक हाव के उदाहरण हैं। अभिमानवश नायिका प्रिय का आदर करती है। कृष्णचंद्र का 'गँवारपन', उनका गोप होना इत्यादि दर्शित किया गया है। मतिरामजी ने अपनी आडंबरशून्य स्वाभाविक भाषा में एक 'छैल' उद्धत गोप का फोटो ही खड़ा कर दिया है। पद्माकरजी के यहाँ केसर-अबीर का ऐसा बाहुल्य है कि सब कुछ उसी में छिप जाता है।

मतिराम और बेनीप्रबीन—कविवर मतिराम और बेनीप्रबीन के भावों में भी यत्र-तत्र सुदर सादृश्य मौजूद है। उदाहरण के लिए केवल एक छद दिया जाता है—

कुंदन को रँगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारु गुराई।
आँखिन मैं अलसानि चितौनि मैं मंजु बिलासनि की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं *मतिराम* लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यौं-ज्यौं निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यौं-त्यौं खरी निकरै-सी निकाई॥
—मतिराम

चंपक-सो तनु नैन सरोज-से इंदु-सो आनन जोति सवाई।
बिंब-से ओठ लसै तिलफूल-सी नासिका स्वास सुबास सुहाई।
बाहैं मृनाल-सी *बेनीप्रबीन* उरोज उतंगन यौं छबि छाई।
ज्यौं ज्यौं बिलोकिये जू प्रति अंगन त्यौं-त्यौं लगै अति सुंदरताई॥
—बेनीप्रबीन

यह स्पष्ट है कि परवर्ती कवि ने पूर्ववर्ती कवि के भाव को देखकर ही अपने छंद की रचना की है। सुकवि मतिराम के छद में सरसता, मधुरता और स्वाभाविकता छलकी पड़ती है। प्रथम पद में प्रतीप की प्रतिष्ठा से नायिका का गौर वर्ण नेत्रों के सामने नृत्य करने लगता है। द्वितीय पद को पढकर किसी की आलस-भरी आँखों और विलासमयी चितवन का अनुभव सा होने लगता है। अत्यंत मृदुल स्वभावोक्ति की झाँकी है। मीठे-मीठे स्मित के वश कौन नहीं हो जाता है? तीसरे पद में लोकोक्ति के आश्रय से कवि ने नायिका की 'मुसकानि मिठाई' का कैसा अनूठा चित्र खींचा है! मिठाई का प्रभाव ही ऐसा है। कवि ने दूर से आपको नायिका के तप्त काचन-सम गौर वर्ण, आलसभरी विलासमयी चितवन एवम् मधुर मुस्किराहट के दर्शन करा दिए हैं। इनका आकर्षण स्वभावतः ऐसा है कि आप नायिका को निकट से देखने पर विवश हैं। बस, जैसे-जैसे आप उसे निकट से देखेंगे,

तैसे-ही-तैसे आपको उसके अंग-प्रत्यंग की और भी अच्छाइयाँ स्पष्ट होती जायँगी। कितनी अच्छी स्वाभाविकता की बहार है! बेनीप्रबीनजी के छंद में वह बात कहाँ है? उन्होंने तो आरंभ से ही सब अंगों की नाप-जोख आरभ कर दी है। कहीं शरीर चपक से सदृशता पाता है, तो नेत्र कमलों की बराबरी करते हैं। इसी प्रकार आनन और इंदु, नासिका तथा तिलफूल एवम् बाहु और मृणाल का साम्य उपस्थित किया गया है। यहाँ कोरी उपमा की बहार है। उपमाएँ भी वही बहुप्रचलित हैं। चतुर्थ पद तो मतिराम के छंद की छाया का पूरा पता देता है। पर छाया छाया ही है, वह मूल के अनुरूप कैसे हो सकती है? 'त्यौं-त्यौं लगै अति सुदरताई' यह पद कुछ खटकता है। लगै का क्या अर्थ है, यहीं नहीं जान पड़ता है, अथवा लगै से नीकी लगै का अभिप्राय है? इमें मतिराम के छंद में स्वाभाविकता और बेनीप्रबीन के छंद में कृत्रिमता दिखाई पड़ती है। परवर्ती कवि ने अनेक उपमाओं की चहल-पहल में मतिराम के भाव को छिपा डाला है।

मतिराम और शेक्सपियर—हिंदी भाषा के मतिराम जैसे सुकवियों के काव्य में अनेकानेक ऐसे भाव भी हैं, जो जगत्प्रसिद्ध शेक्सपियर जैसे महाकवियों की कविता में भी हैं। व्रजभाषाकाव्य के समालोचक महानुभावगणों में से बहुत-से ऐसे भी हैं, जो उन्हीं भावों को शेक्सपियर में तो बड़े चाव से पढते हैं, पर अपने यहाँ के शृंगारी कवियों में 'घृणित विचार' कहकर तिरस्कृत करते हैं। पुस्तककलेवर-वृद्धि के भय से विवश होकर यहाँ हम मतिराम और शेक्सपियर के भावसादृश्यों के दो ही एक उदाहरण देकर संतोष करते हैं।

रोमियो और जूलियट नामक प्रसिद्ध नाटक में एक स्थान पर प्रणयी अपनी प्रणयिनी को हाथ पर कपोल रखे देखता है। उसके हृदय में एक अपूर्व भाव का उदय होता है। वह कहता है—

'अहा! प्रियतमा कैसा अपने हाथों पर कपोल रखे हुए है। क्या ही अच्छा होता कि मैं उन हाथों का दस्ताना ही होता, जिससे मुझे कपोलस्पर्श-सुख तो नसीब होता'।*

---

* सी हाऊ शी लीँस हर चीक अपान हर हैंड!
ओ, दैट आई वेयर ए ग्लव अपान दैट हैंड,
दैट आई माइट टच दैट चीक!

—शेक्सपियर

शेक्सपियर के इस अनूठे भाव की प्रशंसा करनी ही पड़ती है, पर मतिरामजी ने इसी भाव को विशेष सहृदयता और मर्मज्ञता से वर्णित किया है। गोपिका के मन में तप करने की धुन इसलिए समाई है कि दूसरे जन्म में वह वनमाल होकर श्रीकृष्णचंद्र के हृदय से लगी रहे और मुरलीरूप में उनके अधरों का स्पर्श करती हुई अधररस-पीयूष पान करे।

दस्तानारूप में कपोलस्पर्श से वनमाल और मुरलीरूप में हृदयसंलग्नता और अधररस पान में निराला ही स्वाद है—

होते रहै मन यों *मतिराम* कहूँ बन जाइ बड़ो तप कीजै।
ह्वै बनमाल हिये लगिये अरु ह्वै मुरली अधरारस लीजै।

महामति शेक्सपियर ने जूलियट की दशा का जो चित्र खींचा है, वह नितात रमणीय अथच सराहनीय है। आश्चर्य की बात है कि ठीक ऐसा ही चित्र मतिराम ने भी बनाया है। पाठकगण दोनो ही चित्र साथ-साथ देखें—

'इस एकाकी नन्हें-से शरीर में नौका, समुद्र और तूफान की अनुरूपता पाई जाती है। आँसुओं से परिपूरित और प्रवाहित नेत्र ही समुद्र हो रहे हैं। शरीर नौका के समान है, जो इस लावण्यमय जल में तैर रहा है। उसासों की आँधी से अश्रु और उनसे उसास परिपुष्ट होते हुए—विना शांति-व्यवधान के—जान पड़ता है, इस तूफान के सताए शरीर को अभिभूत कर लेंगे'।*

बरखा-सी लागी निसिबासर बिलोचननि
बाढ़यो परबाह भयो नावनि उतरिबो।

---

* इन वन लिटिल बाडी,
दाऊ काउंटरफीट्स ए बार्क, ए सी, ए विंड,
फार स्टिल दाई आईज ह्विच आई मे काल दि सी,
डू एब ऐंड फ्लो विद टीयर्स दि बार्क दाई बाडी इज,
सेलिंग इन दिस साल्ट फ्लड, दि विंड्स, दाई साइज;
हू—रेजिंग विद दाई टीयर्स, ऐंड दे विद देम
विदाउट ए सडेन काम, विल ओवरसेट,
दाई टेंपेस्ट टास्ड बाडी.

—शेक्सपियर

सहौ जात कौन पै सुकबि *मतिराम* अति
बिरह-अनल-ज्वाल-जालनि ते जरिबो।
जैयत समीप तो उड़ैयत उसासन सौं
हमकों तो होत उत हेरत हहरिबो।
कियो कहा चाहत सो करो न कुँवर कान्ह
रह्यो अब वाको उपचारनि को करिबो॥
—मतिराम

मतिराम के छंद में नौका-शरीर की कमी है, तो शेक्सपियर के वर्णन में विरहानल-ज्वाला का अभाव है। शेष सामग्री प्रायः समान ही है। विरह-निवेदन-रूप में सखी द्वारा नायिका की इस व्याधिदशा का नायक से बड़ा ही अनूठा वर्णन है। इसमें स्वाभाविकता है। उधर शेक्सपियर ने जूलियट की वैसी दशा का वर्णन कैपूलेट से करवाया है। भारतीय समाज-आदर्श के अनुसार पिता अपनी पुत्री का वर्णन इस प्रकार करने में अक्षम है। बिहारीलाल ने अपने एक दोहे में इस भाव को खूबी से दिखलाया है—

प्रगट्यो आगि बियोग की बह्यो बिलोचन नीर।
आठो जाम हियो रहै उड्यो उसास-समीर॥
—बिहारी

रवींद्रनाथ और मतिराम—

*जीवनधन मम प्रानपियारो सदा बसत हिय मेरे।
जहाँ बिलोकैं ताकैं ताको कहा दूरि कहँ नेरे।
आँखिन की पुतरिन में सोई सदा रहै छबि घेरे।
सुनन मधुर सुर गई दूरि कछु लौटी अपने डेरे।

---

* माई हार्ट बिल्वेड इज एवर इन माई हार्ट,
दैट इज ह्वाइ आई सी हिम एव्रीह्वेयर,
ही इज इन दि प्युपिल्स आव् माई आईज,
दैट इज ह्वाइ आई सी हिम एव्रीह्वेयर
आई वेंट फार अवे टु हियर हिज वोन वर्ड्स,
बट, आह, इट वाज वेन!
ह्वेन आई केम बैक आई हर्ड देम
इन माई वोन सांग्स.

गाए गीत आपने मुख सों सुने तासु सुर टेरे।
भिक्षुक सम घर घर तेहि खोजत मूरखता के चेरे।
हिय घुसि ताको रूप बिलोको छलकत अँसुवन मेरे।
जीवनधन मम प्रानपियारो सदा बसत हिय मेरे॥

ऊपर जो पद्य उद्धृत किया गया है, वह फुटनोट में दिए अँगरेजी पद्य का टूटा-फूटा अनुवाद है। प्रेमी को प्राणप्यारा सर्वत्र सुलभ हो रहा है। उसकी आँखों के सामने उसी की मूर्ति नाचती है। अपने ही गीतों में उसे प्यारे का प्यारा स्वर सुन पड़ता है। उसे इस स्वर को सुनने के लिए दूर जाने की जरूरत नहीं। अन्य लोग जो उसे इधर-उधर खोजते फिरते हैं, उन्हें वह हँसता है। उसका कथन है कि प्रेमी के हृदय में उसकी खोज करनी चाहिए। प्यारे की मूर्ति तो प्रेमी के आँसुओं में ही पाई जाती है। टैगोर महाशय ने प्रेमतन्मयता का बड़ा ही सुंदर चित्र खींचा है, पर कविवर मतिराम का चित्र इससे सुंदर है। वृंदावन का मनोहर दृश्य है। गोपीनाथ गोपियों को छोड़कर वृंदावन से मथुरा चले गए हैं; पर प्रेम के रंग में रँगी गोपियों को आज भी व्रजेश से वियोग नहीं समझ पड़ता है। श्रीकृष्ण की मधुर मुरली का सुखद सगीत आज भी उनके कर्ण-कुहरों में वैसा ही प्रविष्ट हो रहा है, कालिंदीकूल के कुंजों में कुंजबिहारी के आज भी वैसे ही दर्शन होते हैं। प्यारे के कोमल शरीरस्पर्श का सुख आज भी उनके हृदयों को वैसा ही उल्लसित किए है, फिर क्या आवश्यकता है कि कठिन तपस्या करके कृष्ण-प्राप्ति का कठोर प्रयास किया जाय? क्या ही अनूठा भाव है!

निसि-दिन स्रौनन पियूष सो पियत रहैं
छाय रह्यो नाद बाँसुरी के सुर ग्राम को।
तरनितनूजा-तीर बन कुंज बीथिन मैं
जहाँ-तहाँ देखति है रूप छबिधाम को।

हू आर यू टु सीक हिम लाइक
ए बेगर फ्राम डोर टु डोर!
कम टु माई हार्ट ऐंड सी हिज फेस इन
दि टीयर्स आव् माई आईज़!

—रवींद्रनाथ

कबि *मतिराम* होत हाँतो ना हिये तें नेक
सुख प्रेम गात को परस अभिराम को।
ऊधो तुम कहत बियोग तजि जोग करो
जोग तब करैं जो बियोग होय स्याम को॥
—मतिराम

एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन होने से मतिराम के वर्णन में और भी उत्कृष्टता आ गई है।

इतिहास

कविवर मतिरामजी के 'ललितललाम' ग्रंथ में अनेकानेक ऐसे वर्णन आ गए हैं, जिनका राजपूताने के प्रसिद्ध बूँदी-राज्य के इतिहास से संबंध है। जिन पाठकों ने बूँदी-राज्य का इतिहास नहीं देखा, उन्हें ऐसे वर्णन समझने में कठिनता होगी। इस कारण हम यहाँ बूँदी-राज्य का थोड़े में ऐसा इतिहास दे देना उचित समझते हैं जिससे 'ललितललाम' में आए हुए वर्णनों के समझने में किसी प्रकार की अड़चन न पड़े।

हाड़ा—राजपूतों की जो शाखा इस समय बूँदी-राज्य की अधिपति है, वह 'चौहान' नाम से जगत्प्रसिद्ध है। भारत के इतिहास में शूरता-वीरता के लिए अगर बूँदी के चौहानों के समान अन्य कोई राज-पूतवश प्रसिद्धि प्राप्त कर सका है, तो वह उदयपुर का 'सिसौदिया' ही है। बूँदी के चौहानों के आदिपुरुष का नाम 'अस्थिपाल' था। इनका यह नाम कैसे पड़ा, इस सबध में कई कथाएँ कही जाती हैं, जिनका साराश इतना ही है कि अस्थिशेष रह जाने के बाद देवी की कृपा से पुनः जीवनलाभ करने के कारण यह 'अस्थिपाल' नाम से प्रसिद्ध हुए। अस्थि का पर्याय 'हड्डी' है, सो इनके वंशज बाद को 'हाड़ा' कहलाने लगे। मतिरामजी ने अपनी कविता में जिस 'हाड़ा' शब्द का व्यवहार बार-बार किया है, उसकी उत्पत्ति इसी प्रकार है। अस्थिपालजी के वंशज वीरसिंहजी ने, सं० १३०० के लगभग, 'मीना' जाति के सरदार से 'बूँदी' छीन ली। तभी से वह चौहानों की राजधानी हुई।

दीवान—वीरसिंहजी के वंशजों में नारायणदास बडे ही शक्तिशाली और वीर पुरुष थे। यह चित्तौड़ के राणा के प्रधान सहायक थे। एक बार राणाजी

(५) दिल्ली नगर और लालकोट तक हमारा नक्कारा बजेगा।

(६) हमारे घोड़ों पर दाग न लगेंगे।

(७) हम किसी राजा के अधीन होकर युद्ध में न जायँगे।

(८) हमसे जजिया न लिया जायगा।

(९) हमारे पवित्र मंदिरों की प्रतिष्ठा की जायगी।

(१०) जैसे दिल्ली बादशाह के लिए है, वैसे बूँदी हाड़ों के लिए रहेगी। कुछ इतिहासज्ञ बूँदी के इस सुलहनामे को जाली बतलाते हैं।

रावराजा—इन शर्तों को मानकर अकबर ने सात परगने सुरजनजी को दिए। इन्होंने भी बादशाह की इच्छा के अनुकूल रणथभोर का किला खाली कर दिया। इसके बाद सुरजनजी ने बादशाह के लिए गौंडवाना विजय किया। बादशाह ने प्रसन्न होकर इनको 'रावराजा' की पदवी दी और बहुत से नए परगने इनके सिपुर्द कर दिए, जिसमें काशी भी समिलित था। काशी के इनके अधीन हो जाने से धार्मिक हिंदुओं को बड़ा सुबीता हो गया। इनका शासन न्याय, उदारता और दया के लिए प्रसिद्ध है। इन्होंने काशी में २० घाट और ४४ मंदिर बनवाए, जिनमें राजमदिर परम प्रसिद्ध है। इन वीर धर्मात्मा और न्यायी राजा का स्वर्गवास सं० १६४१ में काशी में ही हुआ।

सुरजनजी के विषय में जो कुछ इतिहास कहता है, प्रायः वही कविवर मतिरामजी ने अपने ढग से कहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मतिराम-कृत सुरजनप्रशंसा कोरी प्रशसा ही न थी, वरन् रावराजा सुरजनजी उस प्रशंसा के पूर्णतया उपयुक्त पात्र थे। मतिरामजी कहते हैं—

एक धर्मगृहखंभ जंभरिपु-रूप अवनि पर।
एक बुद्धि गंभीर धीर बीराधि बीरबर।
एक ओज-अतवार सकल सरनागतरक्षक।
एक जासु करबाल निखिल खलकुल कहँ तक्षक॥
मतिराम **एक दातानिमनि जगजस अमल प्रगट्टियउ।**
चहुवानबंस-अवतंस इमि एक राव सुरजन भयउ॥

युद्ध में अकबर बादशाह के दाँत खट्टे करनेवाला, गौंडवाने का विजेता यदि 'ओज-अवतार' कहा जाय, तो बड़ी भारी अतिशयोक्ति नहीं ठहरती है। अकबर को वश में पाकर भी उसके साथ वीरोचित बर्ताव, संधि की शर्तों

में प्राप्त आत्मसंमान और धर्मप्रेम तथा काशीशासन में न्याय के सत्कार के कारण सुरजनजी को 'धर्मगृहखंभ', 'बुद्धि-गंभीर' आदि विशेषणों का उपयुक्त पात्र मानना पड़ेगा। उनके लिए मतिरामजी का यह पद समुचित ही है—

दुरजनबधू-उरजन को सिंगार हर ऐसो जस गावैं सुर-जन सुरजन को।

भोज—रावराजा सुरजन की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र भोजजी बूँदी के सिंहासन पर बैठे। इनका शासनकाल सं० १६४२—१६६४ है। यह बड़े ही वीर पुरुष थे। चाँद सुलताना का दर्पदलन करने के उपलक्ष्य में बादशाह अकबर का बनवाया 'भोजबुर्ज' आज भी अहमदनगर (दक्षिण) में रावराजा भोज के अपूर्व वीरत्व का स्मरण कराता है। इन्होंने भी अकबर से कई मार्के की शर्तें करवाई थीं। यह बड़े ही साहसी और दृढचित्त थे। अकबर की एक परम प्रिय हिंदूबेगम के मर जाने पर बादशाह का हुक्म हुआ कि सब लोग शोक प्रकट करने के लिए दाढ़ी-मूछ मुड़ा डालें। उस समय दिल्ली में अनेकानेक हिंदूनरेश उपस्थित थे, पर किसी को भी साहस न हुआ कि बादशाह की इस अनुचित आज्ञा का विरोध करे। सभी ने मूछ-दाढ़ी मुड़ा डाली। रावराजा भोज को यह बात बहुत ही आपत्तिजनक जान पड़ी, उन्होंने दाढ़ी-मूछ मुड़ाने से साफ इनकार कर दिया। कहते हैं, यह खबर सुनकर अकबर बहुत ही अप्रसन्न हुआ, परंतु भोजजी के विरुद्ध उसने कोई काररवाई न की। इस घटना का अवलंब लेकर मतिरामजी ने ललितललाम में दो बड़े ही ओजपूर्ण छंद लिखे हैं।

रावराजा भोज ने मूछें नहीं मुड़ाई थीं, उनके मुख पर काली काली मूछें विराजमान थीं। किंतु मुखमंडल क्रोध से रक्तवर्ण हो रहा था। इधर और नृपतियों के मुखमंडल मुच्छविहीन थे और इसलिए मूछों की स्याही का चेहरे पर पता न था। रावराजा के मुख पर स्याह मूछें रहते हुए भी उनके चेहरे पर लाली देखकर और राजाओं के चेहरे जो मूछें मुड़ी होने के कारण स्याही से हीन थे, श्यामरंग हो गए, अर्थात् उनपर अपमान और लज्जा की स्याही दौड़ आई। स्वयम् मतिरामजी के शब्दों में—

जेते पेंड़दार दरबार-सिरदार सब
ऊपर प्रताप दिल्लीपति को अभंग भो।
मतिराम **कहै करवार के कसैया केते**
गाड़र-से मूँड़े जग हाँसी को प्रसंग भो।

सुरजनसुत रजलाज - रखवारो एक
भोज ही तैं साह को हुकुम-पग पंग भो।
मूछनि सौं रावमुख लाल रंग देखि मुख
औरनि को मूछनि बिना ही स्याम रंग भो॥

ऐसे अवसर पर केवल बादशाह के कह देने मात्र से मूछें मुड़ा डालना वास्तव में बडे ही अपमान की बात थी। जिन राजों ने ऐसा किया, उनकी हया (लज्जा) मानो नष्ट हो गई। अकेले भोजराज ने मूछें न मुड़ाकर मानो राजपूती-लज्जा की रक्षा की। लज्जा बेचारी को एक-मात्र भोज ही की मूछों में आश्रय मिला। लज्जा का सारा भार उन्हीं की मूछों को उठाना पड़ा। फिर भी बात बड़ी अद्भुत हुई। भोज का मुख लज्जा के भार से झुक जाना चाहिए था, पर वह सीधा रहा, विपरीत इसके और नृपतियों के मुख, जो मूछ मुड़ाने के कारण लज्जा-भार से हलके हो रहे थे, नीचे को झुक गए। कैसी मर्मस्पर्शिनी और चतुराई से भरी असंगति है। मतिरामजी कहते हैं—

दारुन तेज दिलीस के बीरन काहू न बंस के बाने बजाए।
छोड़ि हथ्यारन हाथन जोरि तहाँ सबही मिली मूँड़ मुड़ाए।
हाड़ा हठी रह्यो ऐंड़ किये *मतिराम* दिगंतन मैं जस छाए।
भोज के मूछनि लाज रही मुख औरनि लाज के भार नवाए॥

रतन—संवत् १६६४ में रावराजा भोज का स्वर्गवास हो गया और उनके पुत्र रावराजा रत्नसिंह बूँदी के सिंहासन पर आ विराजे। यह दिल्लीश्वर जहाँगीर के परम कृपापात्र थे। उसने इनको अपने रोजनामचे में सर बुलंदराय के नाम से संबोधित किया है। सर बुलंदराय का अर्थ है, सबके सामने सर ऊँचा रखनेवाला, किसी को भी सर न झुकानेवाला। रावराजा रत्नसिंह के समय में बूँदी और दिल्ली में बड़ा मेल रहा। दक्षिण के निजामशाही, कुतुबशाही आदि पठान राज्यों और मुगलों में छेड़छाड़ होती ही रही तथा दिल्लीश्वर की ओर से रावरत्न वहाँ के नरेशों को सदा दबाते रहे। इसी को लक्ष्य करके मतिरामजी ने कहा है—

बंस-बारिनिधि रतन भो रतन भोज को नंद।
साहनि सौं रनरंग मैं जीत्यो बखत बलंद॥

जहाँगीरपुत्र खुर्रम ने जब अपने पिता के विरुद्ध बगावत का झंडा उठाया, तो शाहजादे के दमन करने का भार बादशाह ने रावरत्न को ही

सौंपा। उन्होंने इस काम को भी बड़े ही कौशल से पूर्ण किया। रावरत्न के पुत्र गोपीनाथजी थे। यह बडे ही उदार और वीर थे। इनका एक ब्राह्मणी से अनुचित प्रेम था। ब्राह्मणी के पति ने एक दिन राजकुमार को अपने घर में स्त्री के साथ देख लिया। क्रोध के वशीभूत होकर उसने तत्काल उनकी हत्या कर डाली। रावरत्नजी को अपने एक-मात्र पुत्र की ऐसी मृत्यु पर शोक तो बहुत हुआ, परंतु इस मामले में उन्होंने अपने पुत्र का ही दोष समझकर ब्राह्मण को किसी प्रकार का दंड न दिया। न्यायप्रियता के ऐसे उदाहरण थोडे ही मिलेंगे। यदि ऐसे उदार और ऊँचे भाव सतयुगी कहे जायँ, तो अनुचित न होगा। जान पड़ता है, बूँदी-नरेश के ऐसे ही वीरोचित कार्यों का स्मरण करके मतिरामजी ने कहा था—

जगत-बिदित बूँदी नगर सुखसंपति को धाम।
कलिजुगहूँ में सत्यजुग तहाँ करत बिश्राम॥

रावरत्न ने दिल्लीश्वर से यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि उनके शिविरों के निकट गोबध न होने पाएगा। वे बडे ही गोभक्त थे। उनके गोरक्षा-संबंधी कामों के विषय में मतिरामजी ने लिखा है—

जोर दल जोरि साहिजादो साहिजहाँ जंग
जुरि मुरि गई रही राव में सरम-सी।
कहै *मतिराम* **देवमंदिर बचाए जाके**
बर बसुधा में बेद श्रुति बिधि यों बसी।
जैसो रजपूत भयो भोज को सपूत हाड़ा
ऐसो और दूसरो भयो न जग में जसी।
गायनि को बकसी कसायनि को आयु सब
गायनि की आयु सो कसायनि को बकसी॥

रावरत्नजी का संवत् १६८८ में स्वर्गवास हो गया। पुत्र गोपीनाथजी का देहांत तो पहले ही हो चुका था, इसलिए पौत्र छत्रसाल या शत्रुशल्यजी बूँदी के राजसिंहासन पर बैठे।

छत्रसाल—छत्रसालजी बडे ही वीर पुरुष थे। इन्होंने ५२ लड़ाइयों में भाग लिया था। इनके वीरता के काम सुनकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। इनका यशोविस्तार 'शत्रुशल्यचरित्र' नामक संस्कृतग्रंथ में खूब हुआ है। कविवर 'भूषण' एवम् 'लाल' ने भी कई छंदों द्वारा इनकी प्रशंसा की

है। मतिरामजी के आश्रयदाता राव भावसिंहजी के तो यह पिता ही थे। ललितललाम में इनकी प्रशंसा के कई छद हैं। औरंगजेब और दाराशिकोह में दिल्ली के तख्त के लिए जो घोर युद्ध हुआ था, उसमें सम्राट् शाहजहाँ की आज्ञा से यह दारा की ओर से लडे थे। उस भीषण लड़ाई में जब दारा की सेना भाग निकली, तब इन्होंने औरंगजेब से डटकर लड़ाई की और प्राण रहते उसे आगे न बढने दिया। अंत में जब यह युद्धस्थल में मारे गए, तब कहीं विजयलक्ष्मी औरंगजेब के हाथ आई। इनके शत्रु भी इनकी वीरता की प्रशंसा करते थे। राजपूताने के इतिहास में इनके जोड़ के वीर दो ही चार मिलेंगे। ऊपर जिस भयंकर युद्ध का उल्लेख हुआ है, उसी को लक्ष्य करके कविवर मतिरामजी कहते हैं—

औरँग-दारा जुरे दोउ जुद्ध भए भट क्रुद्ध विनोद-विलासी।
मारू बजै *मतिराम* बखानै भई अति अस्त्रनि की बरखा-सी।
नाथतनै तिहि ठौर भिरयो जिय जानिकै छत्रिन कौं रनकासी।
सीस भयो हरहार सुमेरु छता भयो आपु सुमेरु को बासी॥

रणस्थल में लोहू बरसाकर, शत्रुशाल ने जिस प्रकार 'रजपूती' की रक्षा की, उसका वर्णन भी मतिरामजी ने 'विरोधाभास' के उदाहरण में खूब किया है। 'रज' का अर्थ 'धूल' और 'रजोगुण' (रजपूती) है। रणागण में लोहू की वर्षा के बाद भी रज का रह जाना विरोधाभास है, क्योंकि आर्द्र लोहू, 'रज' को अवश्य बिठाल देगा, पर यहाँ 'रज' का अर्थ 'रजोगुण' का होने से प्रत्यक्ष विरोध नहीं रह जाता है। मतिरामजी कहते हैं—

दोऊ जुरे सहजादन के दल जानत है सगरो जग साखी।
मारू बजै रस बीर छकै बर बीरन किति बड़ी अभिलाखी।
नाथतनै करतूति करी जसजोति जगी *मतिराम* सुभाखी।
श्रोनित बैरिन को बरसायकै राव सता रन में रज राखी॥

शत्रुशालजी को इमारत का भी बडा शौक था। इन्होंने बूँदी के राजमहलों की अपूर्व श्रीवृद्धि की। इनका बनाया 'छत्रमहल' बड़ा ही विचित्र है। अनेक पाषाणमूर्तियाँ एवम् सरोवर और कूप आदि भी इन्होंने निर्मित कराए थे। इनका देहात सं० १७१५ में हुआ और इनके पुत्र राव भावसिंहजी उसी वर्ष बूँदी के राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इन्हीं राव भावसिंहजी के आश्रित कविवर मतिरामजी थे और 'ललितललाम' ग्रंथ इन्हीं के आदेश से

निर्मित हुआ। भावसिंहजी का शासनकाल सं० १७१५ से १७३८ तक है। मतिरामजी ने भावसिंहजी को कई जगह 'बलाबंध'-पति कहा है। मेहता लज्जारामजी ने अपने 'पराक्रमी हाड़ाराव' नामक ग्रंथ के पृष्ठ २६५ पर 'बलाबध' इस शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है—

'बलाबंध—आड़ाबला। वह पहाड़ी-सिलसिला जो बूँदी के राज्य में ओर से छोर तक निकल गया है'।

भावसिंहजी-विषयक मतिराम के छंदों की संख्या 'ललितललाम' में ६० है। कवि के वर्णनों और इतिहास को मिलाने से यह बात प्रमाणित होती है कि मतिराम का वर्णन प्रायः सतोषप्रद है। मतिरामजी ने भावसिंहजी को जैसा कुछ दिखलाया है—उनके वर्णनों में जहाँ-जहाँ ऐतिहासिक तथ्य हैं—उनका विवेचन हम आगे चलकर करेंगे।

राव भावसिंह (संवत् १७१५—३८)—शत्रुशाल के पुत्र भावसिंह इस संसार में हिंदुओं की ढाल के समान थे। मुसलमानी मत का ऐसा प्रबल तिमिर छाया हुआ था कि श्रुतिधर्म-पथ के पथिकों को मार्ग ही नहीं सुझाई पड़ता था। ऐसे समय में भावसिंह का उदय दिनकर के समान हुआ। वह सच्चे बलाबंध-पति थे। शाति और युद्ध दोनो में ही उनका समान भाव से यश था। शाति में उनके दान की चर्चा थी, तो युद्ध में कृपाण की। सुकवि मतिराम ने इन्हीं भावसिंह की प्रसन्नता के लिए 'ललितललाम' ग्रंथ की रचना कर डाली*। प्रचंड मार्तंड के उदय होने पर तालाबों का जल सूख जाता है। किसी विशेष गहरे जलाशय में ही उसकी स्थिति रह जाती है। दिल्लीश्वर औरगजेब के आतक के सामने इसी प्रकार से सारे राजों की बहादुरी भाग गई थी। वह सब अब भावसिंह में ही आकर ठहरी थी। भावसिंहजी दान की दृष्टि से कल्पद्रुम के समान थे। वह समर से हटते न थे। उनमें ज्योति थी, तेज था और प्रभाव था। अपने प्रणप्रतिपालन में वह

---

* ललितललाम के छंद ७४–७८, ८१, ८७, ८९, ९२, ९४, ९६, ९८, १००, १०२, १०४, १०६, १०९, १११, ११५, ११७, ११९–२०, १३५, १३८, १४६, १४९, १६०–६१, १६३, १७०, १७२, १८१, १८४, १८८, १९०, १९२, १९७, १९९, २०७, २१४, २१६, २२२, २७९, २८३, २९२, २९४, ३००, ३०४, ३०६, ३१०, ३१८, ३२०, ३७३, ४१६, ४२१, ४३३, ४४१ और ४४३ का सारांश।

सच्चे थे, उनका मन शुद्ध और सरल था। वह धनधान्य से परिपूर्ण थे और उनका प्रताप सार्वभौम था। राजाओं में भावसिंह की अच्छी शोभा थी। उनका वंश, मन, हृदय और ऐश्वर्य—सभी महान् थे। भावसिंह के समान भावसिंह ही थे। जैसे उनका मन उच्च था, वैसे ही दान देने में भी वह मुक्तहस्त थे। उनकी समता दिल्लीश्वर से ही की जा सकती थी। बड़ों की समता बड़ों से करना ही ठीक है। भावसिंहजी की दान शालीनता के आगे बड़ी-बड़ी मनोकामनाओं को पूरी करनेवालों का मस्तक झुक जाता था। इनके आश्रय में बड़े-बड़े लोगों को स्थान मिला था। इनके सैन्यदल के हाथी क्या थे, चलते-फिरते पहाड़ थे। उनको देखकर मेघमाला का धोका होता था। यह अपने पूर्ण प्रताप से मध्याह्न काल के सूर्य के समान तपते थे। पर ब्राह्मणों पर इनका अनुग्रह रहता था। इन्होंने बडे-बडे गज दान दिए। अपनी-अपनी भावना के अनुसार लोग इनको भिन्न-भिन्न प्रकार से देखते थे। कुछ लोगों को इनके इंद्र महाराज होने का धोका होता था। भावसिंहजी या तो अपने हाथियों का सेना से शत्रु का पराभव करते थे या कविराजों को पुरस्कार में बड़े-बड़े गज दान दे दिया करते थे। इनका यश बहुत दूर तक फैला था। यह भक्त भी बड़े अच्छे थे। इनके हाथी डीलडौल में बडे ऊँचे थे। इन हाथियों को देखकर बडे-बडे मनसबदारों को लालच लगता था। पर कविराजों को ऐसे हाथी सहज ही में मिल जाते थे। अपनी इज्जत बचाने के लिए बादशाह ने शिवाजी के मुकाबले में इन्हीं को भेजा था। ये दान देने में हिंदू-मुसलमान का भेदभाव न रखते थे। कवि लोग इनका यश वर्णन करके अपने को धन्य मानते थे। हाड़ाओं के योग्य वंशधर भावसिंह को समर में सदा विजय प्राप्त होती थी। इनकी समरयात्रा का बडा आतंक था, पर इनका यशःसौरभ परम सुगंधमय था। शत्रु लोग स्वयम् आ आकर इनकी अधीनता स्वीकार कर लिया करते थे। इनकी धार्मिक वृत्ति भी सराहनीय थी। अपने पवित्र चरित्र से यह राजऋषि पद के अधिकारी थे। शत्रुशालपुत्र युवा, नवल भावसिंह, का सुयश नित्य नया दिखाई पड़ता था। इनके राज्य में अनुचित बातों का ही अभाव दिखलाई पड़ता था। इनके शत्रु या तो इनकी अधीनता स्वीकार करते थे या पराजित होते थे। इनके पास सभी प्रकार के हाथी थे। इन्होंने कभी किसी से दबना स्वीकार नहीं किया। इनके यहाँ रोशनी का बड़ा अच्छा प्रबंध था। इनके नाम

भावसिंह शब्द सार्थक थे। कविवर मतिराम ने 'ललितललाम' के अंत में बड़े ही प्रभावोत्पादक शब्दों में इन्हें आशीर्वाद दिया है।

मतिराम का वंशपरिचय

महाकवि मतिराम के वंश आदि के विषय में अब तक जो मत प्रचलित है, उसका सारांश यह है कि ये चार सगे भाई टिकमापुर जिला कानपुर के रहनेवाले थे। चारो भाइयों के नाम भूषण, मतिराम, चिंतामणि तथा जटाशंकर हैं। इनके पिता का नाम रत्नाकरजी था और ये चारो पुत्र श्रीदेवीजी के आशीर्वाद से हुए थे। भूषणजी ने देवीजी पर अपनी जिह्वा चढाकर कवित्व-शक्ति प्राप्त की थी। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और इनका कश्यपगोत्र में जन्म हुआ था तथा ये 'त्रिपाठी' उपाधि से विभूषित थे। कुल, गोत्र एवम् पिता के नाम आदि की पुष्टि शिवराजभूषण के निम्नलिखित दोहे से होती है—

दुज कनौज कुल कस्यपी रतनाकर॰ सुत धीर।
बसत त्रिबिक्रमपुर सदा तरनितनूजा-तीर॥

इस दोहे में इस बात का कहीं भी उल्लेख नहीं है कि भूषणजी के भाइयों में मतिराम, चिंतामणि तथा जटाशंकर भी थे। फिर भी हिंदी के विद्वानों में यह बात बहुत काल से ऐसी ही प्रसिद्ध है। कुछ मत देखिए—

१-वंशभास्कर—(सूर्यमल्ल)

भूषण
मतिराम
चिंतामणि

'यथा जेठो भ्रात भूषन रु मध्य मतिराम तीजो चिंतामनि विदित भए थे कविताप्रवीन। बुँदेलन भूमै ब्रजभाषा कबि बिप्र तीन'।

२-पराक्रमी हाड़ाराव—(लज्जाराम मेहता)

भूषण
मतिराम
चिंतामणि

३-मुंशी देवीप्रसादजी—मुंसिफ जोधपुर के १४-५-२१ के पत्र का अंश—'भूषण बड़ा, मतिराम छोटा और सबसे छोटा चिंतामणि यह मैं ने भी सुना है'।

४-मनोहरप्रकाश—(रसराज की टीका) सं० १६५२ का छपा। (हरिदान) 'ईश्वर-इच्छा से ऐसा ही हुआ, तब उन चारो के नाम (१)

चिंतामणि, (२) भूषण, (३) मतिराम और (४) जटाशंकर रखे गए'।

५-शिवसिंहसरोज—(सं० १६३४ का छपा—शिवसिंह) (१) चिंतामणि, (२) भूषण, (३) मतिराम, (४) जटाशकर।

६-मिश्रबंधुविनोद व नवरत्न—(मिश्रबंधु)

चिंतामणि
भूषण
मतिराम
जटाशंकर

उपर्युक्त संमतियों के अनुसार केवल दो बातों में मतभेद है—एक तो नं० १, २ और ३ के मतानुसार जटाशंकरजी का नाम नहीं लिया गया है। केवल भूषण, मतिराम और चिंतामणि भाई माने गए हैं। दूसरे, अंतिम तीन समतियों के अनुसार चिंतामणि सबसे बडे थे, पर पहली तीन संमतियों के अनुसार चितामणि सबसे छोटे और भूषण सबसे बडे माने गए हैं। पर इन सब संमतियों में इस बात का ऐकमत्य है कि भूषण, मतिराम तथा चिंतामणि सगे भाई थे। यह स्मरण रहे कि इन संमतियों का एक मात्र आधार किंवदंती है। स्वयम् भूषणजी इस भ्रातृसंबंध के विषय में कुछ नहीं कहते हैं।

मतिरामजी के वश में बिहारीलाल नाम के एक परम प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। शिवसिंहसरोज के पृष्ठ ४४४ पर इनके विषय में लिखा है—'३ लाल कवि बिहारीलाल त्रिपाठी टिकमापुरवाले स० १८८५ में। ये कवि मतिराम-वंशी कवि बड़े भारी कवि थे। इस कुल में इन्हीं तक कविता रही। पीछे जो रामदीन, शीतल इत्यादि हुए, वे सामान्य कवि थे'। पृष्ठ २७६ पर इन कवि के चार छंद भी उद्धृत किए गए हैं। शिवसिहजी ने बिहारीलाल का जो उत्पत्तिकाल माना है, वह अशुद्ध है। आगे का वर्णन पढने से यह बात स्पष्ट हो जायगी। बिहारीलालजी चरखारी के महाराज विक्रमादित्य के राज-कवि थे। इन नृपति का शासनकाल १८५५ से १८८५ तक रहा है। यह स्वयम् कवि थे। इन्होंने विक्रमसतसई नाम की एक कविता-पुस्तक लिखी थी। बिहारीलाल ने इस पुस्तक पर रसचंद्रिका नाम की एक टीका लिख डाली। इस टीकाग्रंथ में उन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

बसत त्रिबिक्रमपुर नगर कालिंदी के तीर।
बिरच्यो भूप हमीर जनु मध्य देस को हीर॥

भूषन चिंतामनि तहाँ कबि भूषन मतिराम।
नृप हमीर सनमान ते कीन्हेँ निज-निज धाम॥
है पंती मतिराम के सुकबि बिहारीलाल।
जगन्नाथ नाती बिदित सीतल सुत सुभचाल॥
कस्यप बंस कनौजिया बिदित त्रिपाठी गोत।
कबिराजन के बृंद मैं कोबिद सुमति उदोत॥
बिबिध भाँति सनमान करि ल्याए चलि महिपाल।
आए बिक्रम की सभा सुकबि बिहारीलाल॥

इस टीका का रचनाकाल निम्नलिखित दोहार्द्ध से प्रकट है—

दृग[२] मुनि[७] बसु[८] ससि[१] बर्ष मैं सिद्धि सोम मधु मास।

सो यह रसचद्रिका सवत् १८७२ मैं बनी थी। इसके रचयिता के मतानुसार मतिरामजी के पुत्र का नाम जगन्नाथ, पौत्र का शीतल तथा प्रपौत्र का बिहारीलाल था। नवीन कवि ने भी बिहारीलाल को मतिराम का वंशज माना है। नवीन और बिहारीलाल का समय बहुत पास-पास है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि शिवसिंहजी का दिया संवत् अशुद्ध है। उनका यह लिखना भी ठीक नहीं कि शीतल बिहारी के बाद के कवि हैं। इस वर्णन के अनुसार तो वह बिहारी के पिता थे। शिवसिंहसरोज के पृष्ठ ४३६ पर जिन रामदीन त्रिपाठी का उल्लेख है, वे संभवतः इन्हीं बिहारीलाल के पुत्र थे। यह सब होते हुए भी बिहारीलाल ने यह बात स्पष्ट तौर से कहीं नहीं लिखी है कि भूषण और चिंतामणि मतिराम के भाई थे। उनके वर्णन से तो यही ध्वनि निकलती है कि ये तीन कवि कहीं दूसरे स्थान से लाकर यहाँ संमानपूर्वक हमीर राजा द्वारा बसाए गए थे और इन्होंने अपने-अपने घर यहाँ बना रखे थे। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इन तीनो कवियों के घर* अलग-अलग थे। ये भाई थे या नहीं, इस सबंध में बिहारीलाल भी कुछ नहीं कहते हैं। जटाशकर का इन्होंने भी उल्लेख नहीं किया है। जो हो, इस वर्णन से इतना पता अवश्य चलता है कि मतिराम, भूषण और चितामणि एक ही जगह—टिकमापुर में रहते थे। उपर्युक्त उद्धरण हमें सं० १९७९ के 'कवि' नामक मासिक पत्र के तृतीय वर्ष की ज्येष्ठवाली तृतीय संख्या में मिला है।

अच्छा, तो ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे ज्ञान पड़ता है, भूषण कश्यपगोत्री त्रिपाठी और टिकमापुर के रहनेवाले थे तथैव चिंतामणि भी

टिकमापुर के रहनेवाले थे; पर क्या वे कश्यपगोत्री त्रिपाठी भी थे? पं० मयाशंकरजी याज्ञिक को चिंतामणिकृत रामाश्वमेध के आदि के कुछ पृष्ठ मिले हैं, उनमें कविवंश का भी कुछ अंश है, पर पूरा नहीं। यदि आगे के पृष्ठ मिल जायँ, तो सब बातें ठीक-ठीक मालूम हो जायँ। फिर भी अब तक जितना अंश मिला है, उससे यह स्पष्ट है कि चिंतामणिजी कान्यकुब्ज कश्यपगोत्री मनोह के तिवारी थे। सो चिंतामणि को भी कश्यपगोत्री त्रिपाठी और टिकमापुर का रहनेवाला मानने में कोई आपत्ति नहीं रह जाती है।

जिला हरदोई में कस्बा बिलग्राम चिरकाल से प्रसिद्ध है। इसमें प्राचीन काल से बड़े-बड़े गुणी उत्पन्न होते आए हैं। यहीं के विद्वान् गुलामअली नाम के एक सज्जन ने संवत् १८१० में 'तजकिरा सर्व आजाद हिंद' नामक एक फारसी-ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ 'कुतुबखाना आसफिया हैदराबाद दक्खिन' की ओर से प्रकाशित भी हो गया है। मीर जलील नाम के एक और मुसलमान सज्जन बिलग्राम में हो गए हैं। ये हिंदी के कवि थे। गुलामअली इन्हीं मीर जलील के भाजे थे। बिलग्राम के ही रहनेवाले सैयद रहमतुल्ला साहब मोगल-सरकार की ओर से जाजमऊ और बैसवाड़े के दीवान थे। रहमतुल्ला साहब हिंदीकाव्य के ज्ञाता थे और चिंतामणि को उन्होंने पुरस्कृत किया था। मीर जलील रहमतुल्ला के मित्र और प्रशंसक थे। ये सब बातें 'तजकिरा सर्व आजाद हिंद' में लिखी हुई हैं। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि गुलामअली को चिंतामणि के विषय की सच्ची बातें जानने का पूरा अवसर था। फिर बिलग्राम और टिकमापुर के बीच में फासला भी बहुत दूर का नहीं है। जो हो, गुलामअली ने यह बात साफ-साफ लिखी है कि चिंतामणि के दो भाई और थे, जिनके नाम मतिराम और भूषण थे। किंवदंती भी यही बात कहती है। ऐसी दशा में गुलामअली की बात पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं समझ पड़ता। इसलिए हम मतिराम, चिंतामणि और भूषण को सगा भाई तथा कश्यपगोत्री त्रिपाठी और टिकमापुर का रहनेवाला मानते हैं। चिंतामणि का 'भाषापिंगल' नामक ग्रंथ हाल ही में हमको मिला है। इसमें, शिवाजी के पितामह मकरंद शाह और उनके पिता शाहजी की प्रशंसा है। संभवतः चिंतामणि, जहाँगीर के राजत्वकाल में कविता करते थे और तीनो भाइयों में सबसे बड़े थे। मतिराम इनसे छोटे और भूषण सबसे छोटे थे। इस बात के बहुत कम

प्रमाण मिल रहे हैं कि जटाशंकर भी इनके भाई थे। सो उनको हम मतिराम का भाई नहीं मानते हैं। मतिराम और भूषण की कविता में भी ऐसी कुछ भावसाम्य, भाषासादृश्य तथा लक्षण आदि की एकता है कि उससे भी इनके भ्रातृत्व की बात की पुष्टि होती है। कुछ वैसी सामग्री आगे दी जाती है।

ललितललाम और शिवराजभूषण दोनो ही अलकारग्रथ हैं। दोनो ही में अलकारों के लक्षण और उदाहरण दिए हुए हैं। दोनो कवियों के लक्षणों का ध्यानपूर्वक मिलान करने से हमें उभय कवियों के लक्षणों में अद्भुत सादृश्य दिखलाई पड़ा है। यह सादृश्य इतना अधिक बढ़ा हुआ है कि लक्षण दोहा के अतिम तुक भी मिल जाते हैं। किसी-किसी में तो कवि के नाम भर का भेद रह जाता है। यों तो प्रत्येक आचार्य के लक्षण कुछ-न-कुछ मिल ही जायँगे, पर तुक और शब्दसमूह का न्यास भी यदि एक ही प्रकार का हो तो क्या इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा कि दोनो कवि एक दूसरे से परिचित थे और उनका संबंध ऐसा था कि एक दूसरे का अनुकरण करने में वे हानि न समझते थे। पाठकगण काशी-नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित शिवराजभूषण और भारतजीवन प्रेस, काशी के छपे ललितललाम को सामने रख लें और निम्नलिखित लक्षणों का मिलान करें—

मालोपमा

जहाँ एक उपमेय को होत बहुत उपमान।
तहाँ कहत मालोपमा कबि *मतिराम* सुजान॥

—ललितललाम

जहाँ एक उपमेय के होत बहुत उपमान।
ताहि कहत मालोपमा *भूषन* सुकबि सुजान॥

—शिवराजभूषण

उल्लेख

कै बहुतै कै एक जहँ एकहि को उल्लेख।
बहुत करत उल्लेख तहँ कहत सुकबि सबिसेख॥

—ललितललाम

कै बहुतै कै एक जहँ एक बस्तु को देखि।
बहु बिधि करि उल्लेख हैं सो उल्लेख उलेखि॥

—शिवराजभूषण

छेकापह्नुति

जहाँ और की संक ते साँच छुपावत बात।
छेकापह्नुति कहत हैं तहाँ बुद्धि अवदात॥

—ललितललाम

जहाँ और को संक करि साँच छिपावत बात।
छेकापह्नुति कहत हैं भूषन कबि अवदात॥

—शिवराजभूषण

दीपक

बर्न्य अबर्न्यनि को जहाँ धरम होत है एक।
बरनत हैं दीपक तहाँ कबि करि बिमल बिबेक॥

—ललितललाम

बर्न्य अबर्न्यनि को धरम जहँ बरनत हैं एक।
दीपक ताको कहत हैं भूषन सुकबि बिबेक॥

—शिवराजभूषण

निदर्शना

सदृस वाक्य जुग अर्थ को जहाँ एक आरोप।
बरनत तहाँ निदर्सना कबिजन मति अति ओप॥

—ललितललाम

सदृस बाक्य जुग अर्थ को करिये एक अरोप।
भूषन ताहि निदर्सना कहत बुद्धि दै ओप॥

—शिवराजभूषण

विस्तारभय से और अधिक लक्षण उद्धृत न करके हम पाठकों से प्रार्थना करेंगे कि वे दोनो ग्रथों में क्रम से समाधि, संभावन, अवज्ञा, तद्गुण, अतद्गुण, अनुगुण, स्वभावोक्ति और भाविक आदि अलकारों के लक्षणों का मिलान करें, उन्हें तुक तक की समता मिलेगी। इतने से ही संतुष्ट न होकर आइए, दोनो कवियों की कविता पर भी किंचित् बारीक निगाह डाली जाय। देखिए—

(१) चली अली नवलाहि लै पिय पै साज सिँगार।
ज्यों मतंग अँडदार को लिये जात गँडदार॥

—मतिराम

दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय
जैसे गँडदार अँडदार गजराज को।
—भूषण

(२) आई फूलनि लैन को चली बाग में लाल।
मृदु बोलनि सों जानिये मृदु बेलिन में बाल॥
—मतिराम

सिव सरजा तुव सुजस में मिले धौल छबि तूल।
बोल बास ते जानिये हंस चमेली फूल॥
—भूषण

(३) दानहीन कलभ कदलिदल कंपजुत
राव भावसिंहजू के राज में निहारिये।
—मतिराम

कंप कदली में बारिबुंद बदली में
सिवराज अदली के राज में यों राजनीति है।
—भूषण

(४) तन तरवारिन में मन परमेसुर में
प्रान स्वामिकारज में माथो हरमाल में।
—भूषण

सीस भयो हरहार सुमेरु छता भयो आपु सुमेरु को बासी।
—मतिराम

(५) तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भए
स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे।
—भूषण

मूछनि सों रावमुख लाल रंग देखि मुख
औरनि को मूछनि बिना ही स्याम रंग भो।
—मतिराम

(६) भूषन तोषन तेज-तरन्नि सों बैरिन को कियो पानिप हीनो।
—भूषण

दिल्ली के दिनेस के प्रचंड तेज आँच लागे
पानिप रह्यो न काहू भूपति तलाब में।
—मतिराम

(७) चमकति चपला न फेरत फिरंगैं भट
इंद्र की न चाप रूप बैरख समाज को।
धाए धुरवा न छाए धूरि के पटल मेघ
गाजिबो न बाजिबो है दुंदुभि दराज को।
भौंसिला के डरन डरानी रिपुरानी कहैं
पिय भजौ देखि उदौ पावस की साज को।
घन की घटा न गजघटनि सनाह साजे
भूषन भनत आयो सैन सिवराज को॥

—भूषण

पावस भीति बियोगिनी बालनि यौं समुझाय सखी सुख साजैं।
जोति जवाहिर की *मतिराम* नहीं सुरचाप छिनो छबि छाजैं।
दंत लसैं बकपाति नहीं धुनि दुंदुभि की न घने घन गाजैं।
रीझिकै भाऊ नरिंद दिये कबिराजन के गजराज बिराजैं॥

—मतिराम

(८) देसन-देसन नारि नरेसन *भूषन* यौं सिख देहिं दया सौं।
मंगन ह्वैकरि दंत गहो तिन कंत तुम्हैं है अनंत महा सौं।
कोट गहौं कि गहौं बन ओट कि फौज की जोट सजो प्रभुता सौं।
और करो किन कोटिक राह सलाह बिना बचिहो न सिवा सौं॥

—भूषण

बिपिन-सरन कै चरन तकौ राव ही के
चढ़ो गिरि पर कै तुरंग परवर मैं।
राखो परिवार कौं कि आपनीयै हठ राज
संपति दै मिलो कै नगारे दै समर मैं।
कहै *मतिराम* रिपुरानी निज नाहन सौं
बोलैं यौं डरानी भावसिंहजू के डर मैं।
बैर तौ बढ़ायो कह्यो काहू को न मान्यो अब
दाँतन तिनूका कै कृपान गहो कर मैं॥

—मतिराम

(९) दल के चढ़त फनमंडल फनीपाति को
फूटि फाटि जात साथ सैल की सिलान के।

—मतिराम

काच-से कचरि जात सेस के असेस फन
कमठ की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है।
—भूषण

(१०) औरनि के औगुननि तचि कबिजन राव
होत हैं सुखित तेरी किति-सर न्हायकै।
खायकै अँगार आँच औटिकै चकोरगन
होत हैं मुदित चंद-चाँदनी को पायकै॥
—मतिराम

भूषन यौं कलि के कबिराजन राजन के गुन पाय नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजै बर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी।
—भूषण

मतिराम के ग्रंथ और आश्रयदाता

महाकवि मतिराम के जिन ग्रंथों का पता अब तक लगा है, उन सबका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

(१) फूलमंजरी—इस ग्रथ में ६० दोहे हैं। एक दोहे को छोड़कर शेष ५६ दोहों में फूलों का वर्णन है। प्रत्येक दोहे में एक फूल का कथन है। इनमें कवि की प्रतिभा का विशेष चमत्कार नहीं दिखलाई पड़ता है। फिर भी वर्णनशैली और शब्दमाधुर्य आदि सभी गुणों की दृष्टि से इसके दोहे मतिराम की अन्य रचनाओं के समान ही हैं। उक्तिचमत्कार में जो कमी दिखलाई पड़ती है, वह इस अनुमान को पुष्ट करती है कि यह पुस्तक कवि की प्रथम रचना है। दिलीश्वर जहाँगीर की आज्ञा से आगरा नगर में मतिरामजी ने इस पुस्तक को बनाया था। फूलमजरी के अंतिम दोहे में यह बात स्पष्ट दी हुई है—

हुकुम पाय जहँगीर को नगर आगरे धाम।
फूलन की माला करी मति सों कबि *मतिराम*॥

हमारा विचार है कि फूलमजरी में जैसी कविता पाई जाती है, उसको ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक को उस समय की बनी मानना चाहिए, जब कवि की अवस्था १८ वर्ष के लगभग थी। आगरे-नगर में किसी विशेष उत्सव के अवसर पर ही इस ग्रंथ के निर्माण की विशेष संभावना समझ पड़ती है। कवि के अन्य ग्रंथों के रचनाकाल एवम् अवस्था तथा कई

ऐतिहासिक परिस्थितियों को लक्ष्य में रखते हुए हमारा अनुमान है कि सम्राट् जहाँगीर के शासनकाल के १५ वर्ष समाप्त हो जाने के बाद सोलहवें वर्ष के प्रारंभ में बड़ी धूमधाम के साथ जो 'नौरोज' का उत्सव मनाया गया था, उसी समय मतिरामजी ने भी पुस्तकरचना-रूप में अपनी भाग्यपरीक्षा प्रारंभ कर दी थी। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी द्वारा अनुवादित 'जहाँगीर-नामा' के पृष्ठ ४६४ व ४६५ पर इस उत्सव का वर्णन इस प्रकार से हुआ है—

'चंद्रवार २७ रबीउल आसिर सन् १०३० हिजरी (चैत्र-बदी १४) को सूर्य मेष में आया। सोलहवाँ वर्ष बादशाह के राज्याभिषेक में लगा। बादशाह ने शुभ घड़ी, शुभ मुहुर्त में आगरे के राजसिंहासन पर विराजमान होकर शाहजादे शहरयार का मनसब ८ हजारी ४००० सवार का कर दिया। ×××बुधवार को बादशाह बेगमों-सहित नाव पर बैठकर नूरअफशाँ बाग में गया। यह बाग नूरजहाँ की सरकार में था। इसलिए उसने दूसरे दिन गुरुवार के उत्सव की बड़ी भारी मजलिस करके एक शानदार भेंट पेश की। बादशाह ने एक लाख रुपए के जवाहिर, जड़ाऊ पदार्थ और दिव्य वस्त्र उसमें से चुनकर ले लिए'।

हो सकता है कि 'फूलमंजरी' की रचना इसी समय में हुई हो और उसमें जिन फूलों का वर्णन पाया जाता है, वे 'नूरअफशाँ बाग' के ही मनोमोहक पुष्प हों। पर यह हमारा अनुमान-ही-अनुमान है। निश्चयपूर्वक कोई भी बात नहीं कही जा सकती। जो हो, हम 'फूलमंजरी' का रचना-काल संवत् १६७८ मानते हैं। इस समय मतिरामजी की अवस्था १८ वर्ष के लगभग थी। सो उनका जन्मकाल संवत् १६६० के आस-पास पड़ता है। 'फूलमंजरी' हमें श्रीयुत भवानीशंकरजी याज्ञिक की कृपा से प्राप्त हुई है। उसके दो और दोहे यहाँ उदाहरणस्वरूप दिए जाते हैं—

कमलनैन लीनें कमल कमलमुखी के ठाउँ।
तन न्योछावरि राज की यहि आवनि बलि जाउँ॥
निस कारी भारो हुतो तरसत मेरो जीव।
फुलनिवारी को सरस वारी तुम पर पीव॥

(२) **रसराज**—इस ग्रंथ में शृंगाररसातर्गत नायिकाभेद का वर्णन है। यह किसी राजा के आश्रय में नहीं बनाया गया है। मतिराम का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ यही है। कवि की अवस्था जिस समय ३० या ३५

वर्ष की होगी, उस समय यह ग्रंथ बना होगा। अनुमान से इसका रचनाकाल हम सं० १६६० और १७०० के बीच में मानते हैं। इस ग्रंथ की उत्कृष्टता का अंदाजा इसी बात से हो सकता है कि इस पर कई उत्कृष्ट कवियों ने टीकाएँ लिखी हैं। संवत् १८१२ के लगभग चरखारी के राजा रतनसिंह के आश्रित बख्तेश कवि ने रसराज पर एक अत्युत्कृष्ट टीका बनाई। संवत् १८९६ में सुप्रसिद्ध प्रतापसाहि कवि ने भी इस ग्रंथ पर एक अनुपम तिलक लिखा। अभी सवत् १९५० में कवि हरिदानजी सिंढायच ने भी 'मनोहरप्रकाश' नाम से एक टीका बनाई है। यह पुस्तक छप भी गई है।

(३) **छंदसारपिंगल**—कहा जाता है कि श्रीनगर के फतेहसाहि बुँदेला के लिए इस ग्रंथ की रचना हुई थी। इसका निर्माणकाल अनिश्चित है, पर अनुमान किया जाता है कि वह संभवतः सं० १७०० और १७१० के बीच में बना होगा।

(४) **ललितललाम**—यह अलंकारशास्त्र-संबंधी ग्रंथ है। बूँदी के महाराज भावसिंहजी के लिए इस ग्रथ की रचना हुई है। हमारा विचार है कि यह पुस्तक सवत् १७१८ और १७१९ के बीच में बनी थी। इस पर गुलाब कविराज ने संवत् १९४१ में 'ललितकौमुदी' नाम से एक टीका भी की है। सटीक 'ललितललाम' भारतजीवन प्रेस, काशी में मुद्रित भी हो गया है। इसके और रसराज के समय पर हमने आगे विशेष विचार किया है।

(५) **मतिरामसतसई**—यह पुस्तक किन्हीं भोगराज नाम के गुणी राजा के लिए मतिरामजी ने बनाई है। इस ग्रंथ का भी समय अनिश्चित है। हमारे खयाल से इसकी रचना 'रसराज' और ललितललाम के बाद की है। संभवतः यह ग्रथ सवत् १७२५ और १७३५ के बीच में बना है। इस ग्रथ पर आगे हमने विस्तार के साथ विचार किया है।

(६) **साहित्यसार**—यह १० पृष्ठ का एक छोटा-सा ग्रंथ है। इसमें नायिकाभेद का वर्णन है। इसकी हस्तलिखित प्रति दतिया-राज्य के पुस्तकालय में मौजूद है। यह प्रति सं० १८३७ की लिखी हुई है। ग्रथ संभवतः १७४० में बना होगा।

(७) **लक्षणशृंगार**—यह १४ पृष्ठ का छोटा-सा ग्रंथ है। इसमें भावों और विभावों का वर्णन है। हस्तलिखित प्रति संवत् १८२२ की लिखी हुई है

और बिजावर-राज्य के पुस्तकालय में मौजूद है। इसकी रचना भी संभवतः १७४५ के लगभग हुई होगी।

(८) **अलंकारपंचाशिका**—यह ग्रंथ सवत १७४७ में कुमायूँ के राजा उदोतचद के पुत्र ज्ञानचंद के लिए मतिरामजी ने बनाया। इसके कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(दोहा)

गजपुर गिरिजा गिरिस रवि हरि पूँजौं हर बार।
मन बच राजकुमार कौं कीजो कृपा अपार॥
महाराज उद्योतचँद भयो धरम को धाम।
तपत धरनि पर एक सम चहूँ चक्र पर नाम॥
देस दाबि दिल्लीस को गए सुरसरी न्हान।
लए बिकट गढ़ जीतिकै दए षोड़सौ दान॥
तिनके राजकुमार घर ज्ञानचंद कुलचंद।
कुबलय कोबिद कबिन कौं बरसै सुधा अमंद॥
यौं कुमारता ही भयो जहाँ तहाँ परगास।
अरुन उदै ही होत ज्यौं अंधकार को नास॥
ज्ञानचंद के गुन घने गनै भनै गुनवंत।
बारिधि के मुक्तान को कौने पायो अंत॥
तदपि यथामति सौं कह्यो सब्द अर्थ अभिराम।
अलंकारपंचासिका रची रुचिर *मतिराम*॥
संसकिरत को अर्थ लै भाषा सुद्ध बिचार।
उदाहरन क्रम ए किये लीजो सुकबि सुधार॥
मानि लेत जहँ एकहू बहु प्रकार बहु लोग।
उल्लेखा तासौं कहत बड़े बड़ाई जोग॥

(कबित्त)

उत्तर तपत तेज तपत उदोतचंद
ताको नंद ज्ञानचंद मूरति मनोज है।
कबि *मतिराम* नव निधिन निधान जाकौ
बिबिध बिधान जोग बिलसत रोज है।

जैसो जो चहत ताहि वैसोई दिखाई देत
हेत हूक परत न देखो करि खोज है।
बैरी कहैं बाड़व बिड़ौजा कहैं बड़े जन
मामा कहैं भामिनी भिखारी कहैं भोज है॥

(दोहा)

जहँ अनेकधा बरनिये एक बस्तु निरधार।
उल्लेखा दूजो कहै अलंकार मति सार॥

(कबित्त)

साहस को सागर सुमेरु सरदारन को
समर को सदन मदन बनितान को।
कबि *मतिराम* वह देव द्विज दीनन को
कंचन बरस अंस महिप पुरान को।
गंजन गनीमन को रंजन गुनीमन को
दान देनहार जग षोड़स बिधान को।
ज्ञानिन को गुरु ज्ञानचंद्र चंद्रबंसिन को
बासो सुभटन को सु टीको हिंदुआन को॥

सहज सिकार खेले पुहुमि पहार पति
भार रहो थल गढ़ ढार सों लपटिकै।
कहै *मतिराम* नाद सुनत नगारन की
नगन के गढ़पति गढ़ तैं निकरिकै।
साहै दलबृंद मैं गयंद पर ज्ञानचंद
बखतबिलंद रही सोभा ऐसी बढ़िकै।
मेरे जान मेघन के ऊपर अमारी कसि
मघवा मही को सुख लेन आयो चढ़िकै॥

कुमायूँ-नरेश उदोतचंद इनका बड़ा आदर करते थे। इनकी प्रशंसा में मतिरामजी ने बड़े अच्छे अच्छे छंद रचे हैं। एक छद नीचे दिया जाता है—

पूरन पुरुष के परम दृग दोऊ जानि
कहत पुरान बेद बानी यों ररति गई।
कबि *मतिराम* दिनपति औ' निसापति यों
दुहुन की कीरति दिसान माँझ मढ़ि गई।

रबि के करन भए एक महादानि यह
जानि जिय आनि चिंता चित माँझ चढ़ि गई।
तोहि राज बैठत कुमायूँ श्रीउदोतचंद
चंद्रमा की करक करेजेहूँ ते बढ़ि गई॥

सूर्य और चंद्र की प्रसिद्धि बराबर चली आती थी। सूर्य के कर्ण जैसा दानवीर तनय उत्पन्न हुआ। इससे उसका यश चद्रमा से बढ गया। चंद्रमा को वैसा योग्य पुत्र न था। इससे उसे यह बात सदा खटका करती थी, पर जब उदोतचंद कुमायूँ के राजसिंहासन पर बैठे, तो चद्रमा के कलेजे की वह कड़क मिट गई, क्योंकि कर्ण के समान दानी पुत्र उसे भी मिल गया, अब वह भी सूर्य के बराबर हो गया; कैसी सरस और चातुर्य से भरी उक्ति है! यही उदोतचद एक बार किसी कविराज की उद्दंडता से दरबार के सभी कवियों से रुष्ट हो गए थे। सभी का अनादर करने लगे थे। उस अवसर पर मतिरामजी ने कैसी मधुर चेतावनी दी थी!

करन के बिक्रम के भोज के प्रबंध सुनो
कैसी भाँति कबिन को आगे लीजियतु है।
कबि *मतिराम* **राजसभा के सिंगार हम**
जाके बैन सुनत पियूष पीजियतु है।
एक के गुनाह नरनाह श्रीउदोतचंद
कबिन पैं एतो कहा रोष कीजियतु है।
काहू मतवारे एक अंकुस न मान्यो तो
दुरद दरबारन ते दूरि कीजियतु है॥

कुमायूँ-नरेश की प्रशसा भूषण ने भी की है।

वृत्तकौमुदी—प्रायः दो वर्ष हुए, जब पं० भगीरथप्रसादजी दीक्षित ने इस पुस्तक को असनी में ढूँढ़ निकाला। इसके रचयिता का नाम भी मतिराम है और इसका निर्माणकाल संवत् १७५८ है। इसमें कवि का वंशपरिचय भी दिया हुआ है। इससे वृत्तकौमुदी के रचयिता वत्सगोत्री त्रिपाठी प्रमाणित होते हैं। इनका निवासस्थान बनपुर में था तथा इनके पिता का नाम विश्वनाथ था। दीक्षितजी रसराज और वृत्तकौमुदी के रचयिता को एक ही व्यक्ति मानते हैं और उनका कहना है कि रसराज के रचयिता का जो 'छदसारपिंगल' प्रसिद्ध है, वही यह 'वृत्तकौमुदी ग्रंथ' है। क्योंकि इसके अंत में भो 'छदसारसग्रह' दिया हुआ है। दीक्षितजी का यह भी कहना है कि 'शिवसिंहसरोज' में 'छंदसारपिंगल' के जो दो छद उदाह-

रणरूप दिए गए हैं, उनमें से एक (दाता भयो जैसो इत्यादि) 'वृत्तकौमुदी' में भी मौजूद है। इसलिए 'वृत्तकौमुदी' ही छंदसारपिंगल है। 'वृत्तकौमुदी' रसराज के रचयिता की ही बनाई है या नहीं, इस बात की भली भाँति छानबीन करने के लिए हमने संपूर्ण 'वृत्तकौमुदी' ग्रंथ देखने का विचार किया और इसलिए पं० भगीरथप्रसादजी से उसके मँगा देने की प्रार्थना की तथैव जहाँ उन्होंने ग्रंथ के होने का पता दिया था, वहाँ पत्र लिखे और दो आदमी भी भेजे, पर हमको ग्रंथ न मिला। इतना ही नहीं, हमारे भेजे आदमियों ने तो हमें यह उत्तर दिया कि जिस महाशय के यहाँ उक्त ग्रंथ बतलाया जाता है, उनका कहना है कि हमारे यहाँ ग्रंथ नहीं है। दीक्षितजी का भी कहना है, अब हमें ग्रंथ नहीं मिल रहा है। ऐसी दशा में 'वृत्तकौमुदी' का जितना अंश 'माधुरी' तथा 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' में छपा है, हमें उतने पर ही संतोष करना पड़ता है। हमने इस अंश को ध्यान से पढ़ा, तो हमें इसके रचयिता रसराज और ललितललाम के कर्ता से भिन्न जान पड़े। रसराज के रचयिता की कविता में प्रसादगुण की प्रचुरता है, तथैव उन्होंने उसी बात को बार बार दोहराया नहीं, पर वृत्तकौमुदी में क्लिष्टता है और पिष्टपेषण भी। रसराज के कर्ता का जो पिंगल प्रसिद्ध है, उसका नाम 'छंदसार' है, पर इसका नाम 'छंदसारसंग्रह' या 'वृत्तकौमुदी' है। 'शिवसिंहसरोज' में जो दो छंद उद्‌धृत हैं, उसमें से एक 'वृत्तकौमुदी' में भी हो, तो इससे दोनो ग्रंथ एक न हो जायँगे। शिवसिंहजी ने बहुत सी बातें सुनी सुनाई भी लिखी हैं। संभव है, इन दो छंदों को भी उन्होंने सुनकर ही लिखा हो। क्या दीक्षितजी को वह दूसरा छंद भी 'वृत्तकौमुदी' में मिला है, जिसको शिवसिंहजी ने 'छंदसार' से उद्‌धृत किया है? वह दूसरा छंद तो सेनापति का है और 'कवित्तरत्नाकर' में मौजूद है। इससे स्पष्ट है कि शिवसिंहजी ने सुनी हुई बात ही लिखी है। फिर 'वृत्तकौमुदी' के रचयिता ने यह स्पष्ट निर्देश किया है कि मैं 'दंडकपद्धति' बना रहा हूँ, पर पंडित भगीरथप्रसादजी का कहना है कि 'वृत्तकौमुदी' में दंडक दो ही चार हैं। यह क्यों? ललितललाम, रसराज तथा मतिराम-सतसई इन तीनो ही ग्रंथों में बहुत से समान छंद पाए जाते हैं, पर 'वृत्तकौमुदी' में ऐसे छंद नहीं हैं। ऐसा क्यों? 'ललितललाम' में कोरा शृंगार नहीं है। फिर भी उसमें अनेक वैसे छंद हैं, जो सतसई और रसराज में भी हैं। पं० भगीरथप्रसादजी 'फूलमंजरी', 'रसराज' और

'वृत्तकौमुदी' का रचयिता एक ही व्यक्ति मानते हैं। 'फूलमंजरी' जहाँगीर के समय में लिखी गई और 'वृत्तकौमुदी' 'औरंगजेब के मृत्युकाल के निकट। सो इस हिसाब से जब मतिराम की अवस्था सौ बरस के लगभग हुई, तब उन्होंने 'वृत्तकौमुदी' जैसे पिंगल की रचना प्रारंभ की। ऐसा होना बहुत कम संभवनीय है। कवि लोग पिंगल जैसे विषय के ग्रंथ अपने जीवन की प्रारंभिक अवस्था में लिखते हैं, मरणकाल के समीप नहीं। रसराज के रचयिता के वंशज बिहारीलाल एक प्रतिष्ठित कवि थे। इन बिहारीलाल के वंशज और संबंधी आज भी टिकमापुर जिला कानपुर में मौजूद हैं। बिहारीलालजी तथा शीतल और रामदीन बडे बडे रजवाड़ों में रसराज के रचयिता मतिराम के वंशज माने जाकर ही सम्मानित होते थे। कविवर 'नवीन' ने भी बिहारीलाल को मतिराम कवि का वंशज माना है। स्वयम् बिहारीलालजी ने 'रसचंद्रिका' ग्रंथ में जो अपना वंशपरिचय दिया है, उसमें अपने को 'मतिराम' का पंती स्वीकार किया है। पं० भगीरथप्रसादजी ने इस ग्रंथ को भी देखा है। इस ग्रंथ में मतिराम के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र तक का नाम दिया हुआ है और उनके कान्यकुब्ज कश्यपगोत्री त्रिपाठी होने की बात लिखी है। दीक्षितजी को कुल, वंश और गोत्र शब्दों के प्रयोग पर कुछ आपत्ति है, पर यदि वे कृपा करके एक बार गोत्र और कुल शब्दों का अर्थ संस्कृत और हिंदी के प्रतिष्ठित कोशों में देखेंगे, तो उनकी यह आपत्ति आप ही आप दूर हो जायगी। बिहारीलाल ने मतिराम को टिकमापुर में बसानेवाले हमीर नाम के राजा का नाम लिया है। इस पर दीक्षितजी को आपत्ति है कि उस समय मध्यदेश में हमीर नाम का कोई राजा ही नहीं था। यह बात भी ठीक नहीं है। 'छत्रप्रकाश' में धँधेरे हमीर राजा का स्पष्ट उल्लेख है। इसका समय भी मतिराम के समय से मिलता है तथा इसकी कार्यभूमि भी हम दीक्षितजी के माने मध्यदेश में ही पाते हैं। निदान 'रसचंद्रिका' द्वारा प्राप्त वंशपरिचय को प्रामाणिक मानते हुए हम रसराज और ललितललाम आदि ग्रंथों के रचयिता कश्यपगोत्री त्रिपाठी मतिराम को 'वृत्तकौमुदी' के रचयिता वत्सगोत्री मतिराम से भिन्न मानते हैं। वृत्तकौमुदी ग्रंथ रसराज के रचयिता का बनाया नहीं है।

रसराज और ललितललाम की टीका के नमूने

अब हम रसराज और ललितललाम इन दो ग्रंथों के संबंध में कुछ विस्तार के साथ विचार करना चाहते हैं। हम ऊपर लिख आए हैं कि इन

थीं पर बड़ी ही सुंदर टीकाएँ बनी हैं। यहाँ उन टीकाओं के कुछ नमूने दिए जाते हैं—

(१)

'अथ रसराज की बितपत्ता। ग्रंथ कौ नाम रसराज। रसराज कहे तैं शृंगार या ग्रंथ मैं शृंगारैई प्रधान है। तातैं या ग्रंथ कौ नाम रसराज धरौ है इति॥ अथ मूल दोहा—

होत नाइका नाइकहि आलंबित शृंगार।
तातैं बरनौं नाइका नाइक मति अनुसार॥ १॥

अथ टीका नाइका नाइक जो है ताके आलबित कहै आधार शृंगाररस होत है कौन प्रकार कै आधार कहैं दोष कैं तातैं कवि कहत है कै नाइका नाइक कौ बरनन करत हौ अपनी बुद्धि के अनुसार तैं ग्रंथ कौ नाम रसराज है सो रस नाइका नाइक के आधीन होत है॥ इति॥ १॥ रसराज टीका संयुक्त बख्तेश।

(२)

दोहा

समुझि-समुझि सब रीझिहै सज्जन सुकबि समाज।
रसिकन के रस को कियो सकल भयो रसराज॥ ४२४॥

कवि मतिराम कहै कै मैंने जो रसराज ग्रंथ कियौ सो जे रसिक रस के जाननवारे सज्जन अरु सुकविन के समाज ते सुनि समुझिकै सब रीझिहै'।

—रसराजतिलक प्रतापसाहिकृत

(३)

मोहि पठाई कुंज मैं सठ आयो नहिं आप।
आली औरौ मित्त को मेरो मिट्यो मिलाप॥ १५४॥

'मेरे और मित्र का मिलाप मिटा याते नायका कुलटा जानी जाती है और लालच नहीं पाया जाता है याते गनिका साबित नहीं होती है। उत्तर। जो कुलटा होती तो सखी से कहती कि मुझे किसी और पुरुष से मिलाओ पर इसे और पुरुष की अभिलाषा नहीं है सो धन देनेवाले और मित्रों का मिलाप मिटा क्योंकि सदैव बैसिक नायक इसके घर पर आते थे सो वह समय नहीं रहा गनिका विप्रलब्धा स्पष्ट'।

—मनोहरप्रकाशटीका रसराज कवि हरिदानजीकृत

(४)

कबि *मतिराम* गनेस कौं सुमिरत सुख सरसात।
श्रौन पौन लागै बिघन तूल तूल उड़ि जात॥

'मतिराम कवि कहै हैं गणेश कौं सुमिरत तैं सुख सरसावत है कानन की पवन लगतैं हीं बिघन प्रत्यूहन को तूल लंबाव अर्थात् फैलाव सोई भयो तूल रूई सो उड़ि जात है, अथवा विघ्न है सो रूई के तुल्य उड़ि जात है यहाँ सुमिरत सुख सरसात मैं हेतु विघ्न मैं रूपक, तूल तूल मैं जमकालंकार है'।

—ललितकौमुदीटीका ललितललाम गुलाबकृत

रसराज ग्रंथ पर और भी कई टीकाएँ लिखी गई हैं। काव्यशास्त्र के पढ़नेवाले इस ग्रथ को अवश्य पढते हैं। प्रायः सभी संग्रहग्रंथों में इस ग्रंथ के तथा ललितललाम के छंद उद्धृत किए गए हैं। कविराजा मुरारिदान ने अपने जसवंतजसोभूषण में इन दोनो ग्रंथों के बहुत से छंद उद्धृत किए हैं। इसके भाव अपनाने को बडे बडे कवियों ने हाथ फैलाए हैं। इसके बहुत से उदाहरण तुलनात्मक समालोचनावाले अध्याय में मिलेंगे। रसराज के छंदों में आनेवाले भावों को लेकर चित्र भी बनाए गए हैं। ऐसे सचित्र रसराज का एक अंश काशी के सुप्रसिद्ध रईस और साहित्यसेवी राय कृष्णदासजी के पास सुरक्षित है।

ललितललाम पहले बना या रसराज

रसराज और ललितललाम में किस ग्रंथ की कविता अधिक उत्तम है, इस विषय में मतभेद की कम संभावना है। प्रायः सभी विद्वानों की यही राय है कि रसराज की कविता विशेष हृदयग्राहिणी और मार्मिकतामयी है। रसराज ग्रंथ किसी राजा या महाराजा के नाम पर नहीं बनाया गया है। रसराज और ललितललाम में किस ग्रंथ की रचना पहले हुई, इस विषय में मतभेद हो सकता है। कुछ विद्वानों की राय है कि रसराज की रचना ललितललाम के बाद हुई है। इसके कारण ये बतलाए जाते हैं—

(क) रसराज की कविता ललितललाम की कविता से श्रेष्ठ है। कवि का प्रथम ग्रथ प्रायः उतना अच्छा नहीं बनता है, जितनी बाद की रचनाएँ। इस कारण स्पष्ट है कि रसराज बाद को बना है।

(ख) रसराज और ललितललाम में कुछ शृंगाररस के ऐसे छंद हैं, जो दोनो ग्रथों में समान रूप से पाए जाते हैं। जान पड़ता है कि ललित-

ललाम के अच्छे अच्छे छंद चुनकर मतिराम ने बाद को रसराज में भी उद्धृत कर दिए हैं।

(ग) ललितललाम बूँदी नरेश भावसिंह के समय बना था। भावसिंह के बाद भी राव बुद्धसिंह के समय तक बूँदी से मतिराम का संबंध रहा है। फिर भी मतिराम ने रसराज बूँदी नरेश के नाम से नहीं बनाया। सो जान पड़ता है कि यह ग्रंथ मतिराम के बूँदी से संबंध टूटने के बाद बना।

हम इन कारणों पर क्रमशः विचार करते हैं—

(क) कवि का प्रथम ग्रंथ प्रायः उतना अच्छा नहीं बनता है, यह बात ठीक है, परंतु ऐसे उदाहरण भी दिए जा सकते हैं, जिनमें कवि की प्रथम रचना को उसकी बाद की रचनाएँ नहीं पा सकी हैं। अवस्था, रुचि और विषय का प्रभाव कवि पर बहुत अधिक पड़ता है। तुलसीदासजी का रामचरितमानस उनके और कई ग्रंथों के पहले बना था, पर उन सबसे 'मानस' की कविता चौगुनी-पचगुनी अच्छी है। मानस में ही 'बाल' और 'अयोध्याकाड' में जैसी उत्कृष्ट कविता है, वैसी बाद के काडों में नहीं। रसराज का भी पूर्व भाग उत्तर भाग से प्रौढ है। ऐसी दशा में अकेले कविताप्रौढता के विचार से यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि 'रसराज' बाद की रचना है।

(ख) जैसे यह कहा जा सकता है कि ललितललाम से उठाकर मतिरामजी ने रसराज में छंद रख दिए, वैसे ही यह भी कहा जा सकता है कि रसराज के छंदों को ललितललाम में रख दिया। जब दोनो ग्रंथों में वे ही छंद पाए जाते हैं, तो एक दूसरे में वे अवश्य रखे गए हैं।

रसराज में भावभेद और ललितललाम में अलकारों के लक्षण दिए हैं। इन्हीं के उदाहरणों में जो शृंगाररस के बहुत से शब्द हैं, उनमें से कुछ रसराज और ललितललाम में समान रूप से पाए जाते हैं। देखना-यह चाहिए कि रसराज के जिस लक्षण के उदाहरणवाला छंद ललितललाम के किसी लक्षण के उदाहरण में आया है, वह उभय ग्रथों में किस ग्रंथ के लक्षण के उदाहरण में विशेष चस्पाँ होता है। मेरे विचार से यदि ये शृंगाररस के छंद ललितललाम के अलंकारलक्षणों के उदाहरणों में रसराज के उदाहरणों से विशेष चस्पाँ हैं, तो वे ललितललाम के लिए ही बनाए गए हैं और वहीं से उठाकर रसराज में रखे गए हैं, पर यदि वे रसराज में दिए लक्षणों के

उदाहरण मैं विशेष चस्पाँ हों, तो ललितललाम में उनको बाद को स्थान मिला है। उदाहरण के लिए दो छंद लीजिए—

(१) सतरौंही भौहनि नहीं दुरत दुराए नेह।
होत नाम नँदलाल के नीपमाल सी देह॥

उपर्युक्त छंद ललितललाम में चंचलातिशयोक्ति के उदाहरण में दिया है और रसराज में लक्षिता नायिका के उदाहरण में। लक्षिता और चंचला-तिशयोक्ति दोनो का निर्वाह दोहे में भलो भाँति होता है। परंतु संपूर्ण दोहे पर लक्ष्य रखने से यह साफ प्रकट होता है कि कवि ने जिस समय दोहे की रचना की, तो उसका लक्ष्य लक्षिता नायिका ही थी। दोहे की प्रथम पंक्ति चचलातिशयोक्ति के लिए आवश्यक नहीं है, पर लक्षिता के लिए उस पंक्ति का अभाव सहन नहीं किया जा सकता है। दूसरी पंक्ति दोनो के लिए समान हितकारिणी है। हमारी राय है कि उपर्युक्त दोहा लक्षिता नायिका के उदा-हरण में विशेष रूप से चस्पाँ है।

(२) जा दिन तैं चलिबे की चरचा चलाई तुम
ता दिन तैं वाके पियराई तन छाई है।
कहै *मतिराम* **छोड़े भूषन बसन पान**
सखिन सौं खेलनि हँसनि बिसराई है।
आई ऋतु सुरभि सुहाई प्रीति वाके चित्त
ऐसे मैं चलो तो लाल रावरी बड़ाई है।
सोवत न रैनदिन रोवति रहति बाल
बूझे तैं कहति सुधि मायके की आई है॥

ललितललाम में उपर्युक्त छद तृतीय आक्षेप और रसराज में मुग्धा प्रवत्स्यत्प्रेयसी के उदाहरण में दिया हुआ है। कहना नहीं होगा कि नायिका और अलंकार दोनो का निर्वाह छद में समान चमत्कार के साथ हो जाता है, परंतु तृतीय आक्षेप का काम अंतिम पक्ति से भी चल सकता था। पर प्रवत्स्यत्प्रेयसी के लिए सभी पद समान रूप से उपकारी हैं। छंद को पढना आरभ करते ही हठात् यही विचार उठता है कि मतिरामजी प्रवत्स्यत्प्रेयसी का उदाहरण दे रहे हैं। अंतिम पक्ति मुग्धत्व और आपेक्ष, दोनो के लिए समान उपयोगिनी है, पर सपूर्ण छद मुग्धा प्रवत्स्यत्प्रेयसी का फोटो है। उसी के उदाहरण में चस्पाँ है।

पाठकों से हमारी प्रार्थना है कि वे इसी प्रकार प्रौढा आगतपतिका और स्मृति संबंधी रसराज के वर्णन ललितललाम के उपमा के उदाहरणों से मिलाएँ एवम् परिहास और भ्रम, मध्या स्वाधीनपतिका और वस्तूत्प्रेक्षा, मध्यम दूती संबंधातिशयोक्ति, मुग्धा, तुल्ययोगिता, मंडन आक्षेप और मध्या सम आदि अनेक उदाहरणों पर विचार करें। हमने प्रायः इन सभी पर विचार करके यह निष्कर्ष निकाला है कि उपर्युक्त सभी उदाहरण रसराज में विशेष फबते हैं। यदि ललितललाम से छंद लिए गए होते और रसराज के बनते समय उक्त ग्रंथ प्रस्तुत होता, तो यह संभव नहीं जान पडता है कि 'ललितललाम' के कई एक शृंगाररस के अत्युत्कृष्ट छंद रसराज में स्थान न पाते। उदाहरण के लिए—

ह्वैकै डहडहे दिन समता के पाए बिन
साँझ सरसिजनि सरमि सिर नायो है।
निसा भरि निसापति करिकै उपाय बिन
पाए रूप बासर बिरूप ह्वै लखायो है।
कहै *मतिराम* **तेरे बदन बराबरि को**
आदरस बिमल बिरंचि न बनायो है।
दरप न रह्यो ताते दरपन कहियत
मुकुर परत ताते मुकुर कहायो है॥
—ललितललाम

यह छंद था छलापह्नुति के उदाहरण का—

रातैं-दिन फेरै अमरालय के आस पास
मुख मैं कलंक मिस कारिख लगायकै।

या संदेह के उदाहरण का—

सीरे करिबे को पियनैन घनसार कैधौं
बाल के बदन बिलसत मृदु हास है।

या इसी प्रकार के कई और छंद रसराज में सहज ही स्थान पा सकते थे। मतिराम का रसराज में रूपगर्वितावाला छंद ऊपर दिए ललितललामवाले छंद से बहुत घट कर है। यदि यह छंद रसराज के बनते समय पहले से ही प्रस्तुत होता, तो उसमें अवश्य स्थान पाता। सारांश यह कि हमारी राय में ललितललाम से लेकर रसराज में

छंद नहीं रखे गए। इसके विपरीत रसराज के अच्छे छंदों ने ललितललाम में स्थान पाया है। जिन अलंकारों के उदाहरण में कई छंद दिए हैं, जिनमें का एक भावसिंह से संबंध रखनेवाला है, तो वह प्रायः पहले दिया है। बाद को शृंगारवाले छंद दिए गए हैं। इससे भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ललितललाम के लिए खास जिस छंद की रचना हुई थी, उसको पहले देकर कवि ने अपने अन्य ग्रंथ के छंद भी उठाकर ललितललाम में रख दिए।

(ग) किसी बूँदी-नरेश के नाम पर न बनने के कारण जैसे यह नतीजा निकाला जाता है कि 'रसराज' बूँदी से मतिराम के संबंध भंग होने के बाद बना, उसी प्रकार यह नतीजा निकलने में भी कोई आपत्ति नहीं है कि बूँदी से संबंध स्थापित होने के पहले ही रसराज की रचना हुई थी और इस बात का क्या प्रमाण है कि बुद्धसिंह के समय मतिराम का बूँदी से संबंध था? (क) और (ख) के संबंध में हमने अपने जो विचार प्रकट किए हैं, उनसे हमारी धारणा यही है कि रसराज ललितललाम से पहले बना और इसी ग्रंथ की सुख्याति से लाभान्वित होकर मतिराम का बूँदी आदि दरबारों में संमान होने लगा।

हमारी उपर्युक्त धारणा की पुष्टि निम्नलिखित कारणों से और भी होती है—

(१) कविजन की अधिक शृंगारमयी कविता युवावस्था में ही बनती है। कई कवियों के प्रथम ग्रंथ शृंगाररस संबंधी हैं। केशवदास की रसिकप्रिया और दास का शृंगारनिर्णय ऐसे ही ग्रंथ हैं। ललितललाम की अपेक्षा रसराज विशेष शृंगारमय है। मतिरामजी ने संभवतः रसराज युवावस्था में बनाया और यह उनकी प्रारंभिक रचनाओं में से एक है। फिर भी वह ललितललाम से प्रौढ़ है, इसका कारण कवि की अवस्था, रुचि और विषय की अनुकूलता है।

(क) ऊपर विचार करते समय हमने दिखलाया है कि प्रथम रचना भी कवि की सर्वोत्कृष्ट रचना हो सकती है, जैसे गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस।

(२) यदि हम रसराज को ललितललाम के बाद बना हुआ मानें, तो कहना पड़ता है कि रसराज की रचना मतिराम की वृद्धावस्था में हुई। वृद्ध मतिराम को रसराज में दिए रसीले भावों का बनानेवाला मानना

कुछ खटकता है। घोर शृंगारी कवि भी ५० वर्ष की अवस्था के बाद क्रम से शृंगार से विरक्ति प्रदर्शित करने लगते हैं। काशी नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित भूषण-ग्रंथावली में दिए भूषण के समय पर जिस कोटिक्रम से विचार किया गया है, उससे रसराज की रचना मतिराम की सत्तर और अस्सी वर्ष की अवस्था के बीच में ठहरती है। हमारी राय में रसराज कवि की इस अवस्था में नहीं बना है।

(३) कविजन प्रायः अपने प्रथम ग्रंथ में अपने गुरु की वंदना करते हैं। बाद के ग्रंथों में उसका उतना विचार नहीं रहता है। मतिराम ने रसराज के आरंभ में 'श्रीगुरुचरन मनायकै' तब गणपति का ध्यान किया है। इसी प्रकार प्रथम ग्रंथ में ही अपने सहयोगी कवियों को संबोधन करके क्षमा इत्यादि माँगी जाती है। आजकल भी जब कोई नवीन लेखक साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होता है, तो वह साहित्यसेवियों की सहानुभूति आकर्षित करने को उन सबकी क्षमाप्रार्थना करता है। मतिरामजी का यह कथन कि

कबित्तार्थ जानौं नहीं कछुक भयो संबोध।
भूल्यो भ्रम ते जो कछुक सुकबि पढ़ैंगे सोध॥

हमारा नम्र निवेदन है कि ऐसे कथनों के स्थान पाने की सभावना कवि की प्रथम रचना में ही अधिक है। रसराज के अत का दोहा भी यही इशारा करता है कि उक्त ग्रंथ ही कवि की प्रथम रचना है। यथा—

रसिकन के रस को कियो नयो ग्रंथ रसराज।

कुल बातों पर विचार करके हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि रसराज ललितललाम से पहले बना है। रसराज कब और किसके लिए बनाया गया, इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं है। रसराज की 'मनोहरप्रकाश' नामक एक टीका राजस्थान यत्रालय, अजमेर में, स० १९५२ में छपी थी। टीका के प्रारंभ में कविपरिचय भी दिया गया है। उक्त परिचय का कुछ अश नीचे उद्धृत किया जाता है—

'कहते हैं, यह तीसरा ग्रंथ रसराज दिल्ली के बादशाह औरगजेब के कहने से बनाया गया था और प्रकट रूप से अपने इष्टदेव का मगलाचरण न करने का भी यही कारण बतलाते हैं। क्योंकि उक्त सम्राट् वैदिक मत का बड़ा द्वेषी था। इसके साथ ही यह सदेह डालनेवाली बात भी है कि इस

ग्रंथ में बादशाह की प्रशंसा कहीं भी नहीं लिखी है कि जिसकी बड़ी भारी चाल आज तक चली आती है' इत्यादि।

उक्त प्रेस से प्रकाशित रसराज का प्रारंभ 'होत नायका नायकहि आलंबित शृंगार' इत्यादि दोहे से हुआ है, परंतु अन्य यंत्रालयों से प्रकाशित होनेवाली प्रतियों में इस दोहे के पूर्व ४ छंद और हैं। मंगलाचरणरूप प्रथम सवैया में देववंदना है। दूसरे दोहे में श्रीगुरुचरण और गणपति का ध्यान किया गया है, तथा तीसरे दोहे में कवि ने सुकवियों से क्षमाप्रार्थना की है। रसराज की मुद्रित प्रतियों में सबसे पुरानी स० १९२५ में बनारस के लाइट छापेखाने में छपी है। इस प्रति में देवता और गुरुविषयक छद मौजूद हैं। वेंकटेश्वर प्रेस और नवलकिशोर प्रेस वाली प्रतियों में भी ये छद हैं। इस कारण इष्टदेव का मंगलाचरण न होने से पुस्तक औरगजेब के लिए बनाई गई, यह निष्कर्ष निकालना भ्रममात्र समझ पड़ता है।

ऐसा जान पड़ता है कि रसराज की रचना उस समय हुई, जब मतिरामजी पूर्ण युवा थे। यह समय सं० १६९० और १७०० के बीच में होगा। मतिरामजी का कविताकाल कविवर बिहारीलाल के कविताकाल से बहुत पहले आरंभ होता है, यद्यपि दोनो कवि कुछ समय के लिए समसामयिक भी थे। जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं, मतिराम ने किसी नरेश के आश्रय में न बनाकर अपनी काव्यप्रतिभा के प्रताप से सुकवियों का सुखदायक रसराज रसिकों के मनोरजन के लिए बनाया था; परतु इस ग्रथ की ख्याति इतनी हुई कि इसी की बदौलत मतिराम का बड़े बडे रजवाड़ों में आदर होने लगा। ललितललाम बूँदी के राव भावसिंह के लिए बना था। राव भावसिंह सं० १७१५ में बूँदी के राजसिंहासन पर बैठे। इनके पिता जिन औरगजेब के विरोधी थे, वही इस समय दिल्ली के अधीश्वर हो रहे थे। ऐसी दशा में राव भावसिंह के शत्रुओं की सख्या कम न थी। उनका दमन करने में राव भावसिंहजी को कम से कम दो वर्ष अवश्य ही लगे होंगे। इस दो वर्ष के समय में इनका दिल्ली से किसी प्रकार का सपर्क न रहा। राजपूताने के अन्य राजा महाराजा दिल्लीनरेश को प्रसन्न करने का उद्योग करते रहे, परंतु इन्होंने अपने राज्य को सुदृढ करना ही ठीक समझा। शत्रुदमन एवम् सुशासन से इनकी धाक बैठ गई। संवत् १७१७ के लगभग दक्षिण में संभवतः शिवाजी और मुगलों से छेड़छाड़ आरंभ हुई। भावसिंहजी के बाबा रावराजा रत्नसिह दक्षिण में विद्रोह शात करने में ख्यातिलाभ कर

चुके थे। ऐसी दशा में मराठों के प्रारंभिक आक्रमणों के समय औरंगजेब ने भावसिंहजी से अपने बाबा के काम पर जाने के लिए कहा और इन्होंने जाकर कुछ आक्रमण निवारण किए। राव भावसिंह औरंगाबाद में पड़ाव डालकर वहीं से लड़ते थे। वहीं इन्होंने एक भावपुरा गाँव बसाया था। यहीं इनकी मृत्यु हुई। जदुनाथ सरकार ने भावसिंह के दक्षिण समर में रहने का वर्णन किया है। मतिराम तथा भूषण इस बात को अपने निम्न-लिखित छंदों द्वारा पुष्ट करते हैं—

सूबनि को मेटि दिल्ली देस दाबिबे को चमू
सुभट समूहनि सिवा की उमहति है।
कहै *मतिराम* ताहि रोकिबे को संगर मैं
काहू के न हिम्मति हिये मैं उलहति है।
सत्रुसालनंद के प्रताप की लपट सब
गरबी गनीम बरगीन को दहति है।
पति पादसाह की इजति उमरावन की
राखी रैया राव भावसिंह की रहति है॥

—मतिराम

सासताखाँ दुरजोधन सो औ दुसानन-सो जसवंत निहारयो।
द्रोन-सो भाऊ करन्न करन्न-सो और सबै दल सो दल भारयो।
ताहि बियोग सिवा सरजा भनि *भूषन* औनि छुता यौं पछारयो।
पारथ कै पुरुषारथ भारथ जैसे गजाय जयद्रथ मारयो।

—भूषण

यह घटना संभवतः स० १७१८ के लगभग की समझ पड़ती है। मतिरामजी के ललितललाम ग्रंथ में भावसिंह द्वारा दिल्लीनरेश की इसी सहायता का उल्लेख है। राव भावसिंह स० १७२० के पश्चात् फिर दिल्ली गए थे। औरंगजेब ने इनको मनसब दिया था। दिल्ली में इनका रहना प्रायः दो वर्ष हुआ था। भगवान् के विमानों के निकालने में इन्होंने बड़ी दृढ़ता दिखलाई थी। कहते हैं, औरंगजेब ने हिंदूनरेशों से बादशाह के साथ भोजन करने का प्रस्ताव किया था, जिसका अकेले इन्होंने ही विरोध किया था। केशवराय के मंदिर की रक्षा में भी इनका हाथ था। अंतिम समय में इनकी इज्जत देवतों के समान हो गई थी। राव भावसिंहजी के जीवनकाल की उपर्युक्त सभी घटनाएँ ऐसी हैं, जिनका उल्लेख उन्हीं का आश्रित कवि

उनके आदेश से बनाए ग्रथ में अवश्य करता, परंतु ललितललाम में इन घटनाओं से संबंध रखनेवाले वर्णनों का स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। यदि ये घटनाएँ घट चुकी होतीं, तो मतिरामजी इनका उल्लेख कैसे न करते ? सो यह मानने में कोई प्रबल आपत्ति नहीं कि 'ललितललाम' की रचना इन घटनाओं के पूर्व की है। औरंगजेब और शिवाजी की प्रारंभिक छेड़छाड़ का आरंभ स० १७१८ के लगभग हुआ था। मतिरामजी ने इस घटना का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस संबंध में उनका जो छद है, वह ऊपर दिया ही जा चुका है। ललितललाम के अंत में कवि ने राव भावसिंहजी को एक छप्पय द्वारा आशीर्वाद दिया है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

नृप सत्रुसालनंदन नवल भावसिंह भूपालमनि।
जग चिरंजीव तब लगि सुखद कहत सकल संसार धनि।

उक्त पद्यांश में 'नवल' शब्द पर हम पाठकों का ध्यान विशेष रीति से आकर्षित करते हैं। हमारा विचार है कि यह छप्पय उस समय बना है, जब भावसिंह को सिंहासनासीन हुए बहुत समय नहीं बीता था। सब बातों पर ध्यान देने के पश्चात् हमारी राय है कि ललितललाम १७१६ में बना है।

बूँदी-दरबार में मतिराम की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। भावसिंहजी के लिए इन्होंने ललितललाम ग्रथ बनाया था। बूँदी-नरेश को यह ग्रंथ इतना पसंद पड़ा कि उन्होंने कविवर को इस उपलक्ष्य में समस्त वस्त्र दिए, आभूषण दिए, चार हजार रुपए दिए, ३२ हाथी दिए और पाटन परगने के रिड़ी और चिड़ी दो गाँव दिए।* यह विवरण राव सूर्यमल्ल कवि के वंशभास्कर में भी दिया हुआ है। वशभास्कर की रचना सवत् १८६७ में हुई थी। इसमें बूँदी-राज्य का इतिहास विस्तार के साथ है। मुंशी देवीप्रसाद की राय में इसमें इतिहास है, मगर कविता में छिपा हुआ। इस पुस्तक में मतिराम के संबध में जो कुछ लिखा है, वह अविकल उद्धृत किया जाता है—

भाऊ को प्रभाव अलंकारन बिषय आनि
नूतन बनाय ग्रंथ ललितललाम नाम।
संसद को पाय सो नरेसन सुनाय रुचि
रीझ पै बढ़ाय कह्यो आगम जितेक काम।

---

* पराक्रमी हाड़ाराव, पृष्ठ ६२।

सब पट भूषन 'रु बारन बतीस कहै
बाइसहु कति 'रु दए चउ सहस दाम।
गेहहि इते गज निबाहन बहुरि दए
पाटनि के प्रांत के रिरी 'रु चिरी दुव गाम॥
भाऊ भूमिपाल अभिलाष *मतिराम* को यों
पूरन बिरंचि भेद्यो जगती जगाय जस।
भौन भौन ललितललामहू बिदित भयो
पढ़न पढ़ावन मैं सुकबिन रम्य रस।

मतिरामजी का कवित्वयश सुनकर भावसिंहजी के भाई भगवंतसिंह ने भी इन्हें बुला भेजा था, परंतु इन्होंने बूँदी-राज्य के विरोधी भगवंतसिंह के दरबार में जाना अस्वीकार कर दिया।

यदि नृपशंभु वास्तव में शंभाजी हों, तो मानना पड़ता है कि मतिरामजी सतारागढ़ भी जाया करते थे। वहाँ से भी इनको अच्छी अर्थप्राप्ति हुई होगी।

शिवसिंहसरोज में मतिराम का सतारागढ के सोलंकी राजा शम्भुनाथ के यहाँ जाना भी लिखा है। सतारागढ के सोलंकी राजा शम्भुनाथ कौन थे, इस विषय में हमें संदेह था। सो हमने इस विषय में हिंदीसाहित्य-संसार में प्रसिद्ध परलोकगत इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ से पूछा। उन्होंने हमें जवाब में जो कुछ लिखा, वह इस प्रकार है—'शंभु या नृपशंभु सतारे के राजा शंभाजी मरहटा सेवाजी के बेटे थे। सोलंकी नहीं थे। यह भूल शिवसिंहसरोज से मिश्रबंधुविनोद में भी, इतिहास न जानने से, आ गई है। सतारा बंबई हाते में है। कोल्हापुर-महाराज नृपशंभु के घराने के हैं। नृपशंभु ने कविता कवि कलश से सीखी थी'। इस विषय में हम अपना मत अब भी नहीं निश्चय कर सके हैं।

मतिरामसतसई

महाकवि मतिराम ने दोहों की एक सतसई भी बनाई है, यह बहुत दिन से सुन पड़ती थी, पर सतसई की हस्तलिखित प्रति सुलभ न थी। ऐसी दशा में 'रहीमसतसई' के समान 'मतिरामसतसई' की सत्ता के संबंध में भी बहुत लोगों को संदेह था, परंतु काशी की नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से जो खोज का काम होता है, उसके प्रयत्न से १२ या १३ वर्ष हुए, जब यह निश्चयात्मक पता लगा कि हुसेनगंज,

फतहपुर के निवासी पं० शिवदुलारेजी दुबे के यहाँ उक्त सतसई की एक संपूर्ण हस्तलिखित प्रति मौजूद है। सभा की ओर से उक्त पुस्तक का नोटिस भी लिया गया, जो खोजविभाग की रिपोर्ट (बाबत सन् १९०९-११) के पृष्ठ २८५-८६ में है। दुबेजी ने कृपा करके अब वह हस्तलिखित प्रति गंगा-पुस्तकमाला के स्वामी के हाथ बेच डाली है, इसलिए अब वह जिल्द हमारे देखने में भी आ गई है। इसमें लिपिकाल नहीं दिया है। इस प्रति के मिलने के पूर्व हमें एक और खंडित प्रति श्रीयुत पं० भवानीशंकरजी याज्ञिक से मिली थी। शिवदुलारेजी की प्रति खंडित प्रति से कागज और लिपि में बिलकुल मिल जाती है। शायद दोनो प्रतियाँ एक ही लेखक की लिखी हैं। इसलिए जो बातें खंडित प्रति के विषय में लिखी जाती हैं, वे ही शिवदुलारे की प्रति के संबंध में भी कही जा सकती हैं। खंडित प्रति अधिक शुद्ध है।

सतसई की जो खंडित प्रति हमारे देखने में आई है, वह संपूर्ण प्रति के एक तिहाई अंश से अधिक नहीं है। अंत के ५० पृष्ठ से लेकर ७२ पृष्ठ तक खंडित नहीं है। यह स्पष्ट है कि इस हस्तलिखित प्रति में ७२ पृष्ठ थे। प्रत्येक पृष्ठ की लंबाई साढ़े आठ इंच तथा चौड़ाई साढ़े पाँच इंच के लगभग है। औसत से प्रत्येक सफे में १५ पंक्तियाँ हैं। कागज मोटा खुरखुरा पुराने ढंग का है। लिपि सुंदर, स्पष्ट तथा पक्की रोशनाई की है। बीच बीच में लाल रोशनाई का भी प्रयोग हुआ है, पुस्तक हरताल लगाकर शुद्ध भी की गई है। 'फतू' नाम के किसी लेखक ने इसे लिखा है। पुस्तक लिखे जाने का संवत् भी दिया है। सवत् के आदि के १७ तथा अंत का ४ तो बिलकुल स्पष्ट है, पर बीच का अंक कुछ खुरच गया है, जिससे उसके पढ़ने में भ्रम होता है। जो हो, उपलब्ध प्रति सं० १७९४ के बाद की लिखी तो किसी भी प्रकार से नहीं है। आजकल की देवनागरी लिपि से उक्त लिपि में व्यवहृत कुछ अक्षरों में भेद पड़ता है। उदाहरण के लिए उक्त प्रति में व्यवहृत 'भ' का रूप आजकल के 'ल' से मिल जाता है। अंतिम दोहे की संख्या ७०४ है। खोज की रिपोर्ट में मतिरामसतसई के जो दो अंतिम दोहे उद्धृत हैं, वे वही हैं, जो इस प्रति में हैं। भेद इतना ही पड़ता है, रिपोर्टवाले अंतिम दोहे की संख्या ७०५ है और इस प्रति के दोहे की ७०७। वे दोनो दोहे ये हैं—

तिरछी चितवनि स्याम की लसति राधिका ओर।
भोगनाथ को दीजिये वह मन सुख बरजोर ॥ १ ॥

मेरी मति मैं राम है कबि मेरे *मतिराम*।
चित मेरो आराम मैं चित मेरे आराम ॥ २ ॥

रिपोर्ट में 'भोगनाथ' के स्थान पर 'लोगनाथ' छपा है। यह भ्रम कदाचित् 'भ' और 'ल' के रूप में समता होने के कारण हुआ है। रिपोर्ट में जिस सतसई का उल्लेख है, उसमें ५७ पृष्ठ हैं। प्रति पृष्ठ की लंबाई ६ इंच तथा चौड़ाई साढ़े पाँच इंच है। प्रति पृष्ठ में १८ पंक्तियाँ तथा पूरी प्रति में ८४० दोहे हैं। खोज की रिपोर्ट में मतिरामसतसई के आदि और मध्य के जो ६ दोहे और दिए हुए हैं तथा जो हमको मिलनेवाली खंडित प्रति में नहीं हैं, उन्हें भी हम दिए देते हैं—

मो मन तम तोमहि हरो राधा को मुखचंद।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नँदनंदन आनंद॥
मुंजगुंज को हार उर मुकुट मोरपर पुंज।
कुंजबिहारी बिहरिये मेरेई मनकुंज॥
रतिनायक सायक सुमन सब जग जीतनवार।
कुवलयदल सुकुमार तन मन कुमार जय मार॥
राधा मोहन लाल को जा दिन लावत नेह।
परियो मुठी हजार दस ताकी आँखिन खेह॥—आदि
तेरी मुख समता करी साहस करि निरसंक।
धूरि परी अरबिंदमुख चंदहि लग्यो कलंक॥
खेलत गार सिकार है घाड़ोरे पास समेत।
नैनमृगनि सौं बाँधिकै नैन मृगनि गहि लेत॥—मध्य

मतिरामजी ने अपनी सतसई किन्हीं भोगनाथ नरनाथ के लिए बनाई है। इन्होंने भोगनाथ की बड़ी प्रशंसा की है। मतिराम जैसे सत्कवि का सत्कार करनेवाले भोगनाथजी अवश्य ही गुणी और गुणियों का आदर करनेवाले होंगे। हमें इनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं कि यह कहाँ के रहनेवाले थे तथा इनका शासनकाल कौन-सा रहा है। इनसे संबंध रखनेवाले भी दो दोहे नीचे दिए जाते हैं—

सुनत सदा गुरुबचन हित रहत बिबुधगन साथ।
भोगनाथ यह जानियत सदा भूमि सुरनाथ॥
सरनागत पालक महा दान जुद्ध अति धीर।
भोगनाथ नरनाथ यह पग्यो रहत रस बीर॥

भोगनाथ का समय निश्चित हुए बिना 'मतिरामसतसई' का समय बतलाना बड़ा कठिन काम है, पर हमारा अनुमान है कि संभवतः इसकी रचना 'रसराज' और 'ललितललाम' के बनने के बाद हुई है। रसराज के बहुत से उत्कृष्ट दोहे इसको सतसई में मिले हैं, तथैव ललितललाम का मंगलाचरण भी इसमें मौजूद है। इस बात की कम संभावना है कि कवि ने 'ललितललाम' का मंगलाचरण अलग न बनाकर उसे अपनी 'सतसई' से उठाकर रख दिया हो। दुबेजी द्वारा जो संपूर्ण प्रति हमको मिली है, वह इस ग्रंथावली में छापी गई है। उस में एक दोहा शिवाजी की प्रशंसा का भी है।

फुटकल छंद

मतिरामसतसई में जो एक दोहा शिवाजी की प्रसंसा का है, उसके अलावा शिवाजी की प्रशंसा में मतिरामजी के दो और छंद प्राप्त हुए हैं। वे भी आगे दिए जाते हैं। एक छंद छत्रशाल की प्रशंसा में भी है। वह छंद भी दिया जाता है। इनके पढ़ने से जान पड़ता है कि मतिरामजी को शिवाजी और छत्रशाल का भी आश्रय प्राप्त था। संग्रहों में कुछ और भी छंद मिलते हैं जिनमें मतिराम का नाम आया है। पर हमें वे संदिग्ध समझ पड़े। इसलिए उन्हें यहाँ उद्धृत नहीं करते हैं। संभवतः मतिराम का जन्म संवत् १६६० के लगभग हुआ था, स्वर्गवास संवत् १७५० के लगभग हुआ।

मोह मद छाके बिरचे ते बर बाँके ऐसे
बकसे सिवा के कबिराज लिये जात हैं।
धावत धरनि धराधर धुकि धक्कन सौं
चिक्करत जिन्हैं देखि दिग्गज परात हैं।
तामसी तरुन तामरस तोरि *मतिराम*
गगन की गंगा मैं करत उतपात हैं।
मंद गति सिंधुर मदंध मैं बिलदु बिंदु
ज्ञान अरबिंदकंद चंदहि चबात हैं॥ १॥
बान अरजुन को बखानै *मतिराम* कबि
गदा भीमसेन की सदा ही जसकाज की।
बासव को बज्र बासदेव जू को चक्र
बलदेव को मुसल सदा कीरति है लाज की।

मातराम

रसराज

मंगलाचरण (सवैया)

ध्यावैं सुरासुर-सिद्ध-समाज महेसहु आदि महामुनि ज्ञानी।
जोग मैं जंत्र मैं मंत्र मैं तंत्र मैं गावैं सदा श्रुति सेष भवानी।
संकटभाजन आनन की दुति पूरन दंड उदंड सो जानी।
ध्याय सदा पदपंकज को[1] *मतिराम* तबै रसराज बखानी ॥१॥

प्रार्थना (दोहा)

कबित्तार्थ जानौं नहीं कछुक भयो संबोध।
भूल्यो भ्रम ते जो कछुक सुकबि पढ़ैंगे सोध ॥ २ ॥
बरनि नायका नायकनि रच्यो ग्रंथ *मतिराम*।
लीला राधारमन की सुंदर जस अभिराम* ॥ ३ ॥

नायक-नायिका

होत नायका नायकहि आलंबित सिंगार।
तातैं बरनौं[2] नायका नायक मति अनुसार ॥ ४ ॥
उपजत जाहि बिलोकिकै चित्त-बीच रसभाव[3]।
ताहि बखानत नायका जे प्रवीन कबिराव ॥ ५ ॥

---

१ ध्याय सदा तिनके पद को। २ जातैं बरनत। ३ रति।

* प्रथम तीन छंद केवल वेंकटेश्वर प्रेस और नवलकिशोर प्रेसवाली प्रतियाँ में पाए जाते हैं। कुछ विद्वान् इन्हें मतिरामकृत नहीं मानते।

[१] श्रुति, कृति (भारत)। पूरन, सुंदर (सभा, भारत)। दंड उदंड; दंड (सभा)। 'गोपाल' तथा 'रत्ना' में यह छंद नहीं है। इसके पश्चात् 'सभा' और 'भारत' में निम्नलिखित छंद है—

दोहा—श्री गुरुचरन मनायकै गनपति कौं उर ध्याइ।
रसिक हेत रसराज किय सुकबिन कौं सुखदाइ ॥

[२] सुकबि पढ़ैंगे, सुकबिन पढ़िहैं (भारत)। 'गोपाल' तथा 'रत्ना' में यह नहीं है।

[३] 'रत्ना' में यह नहीं है।

उदाहरण (सवैया)

कुंदन को रँगु फीको[1] लगै झलकै अति[2] अंगन चारु गुराई।
आँखिन मैं[3] अलसानि[4] चितौन मैं मंजु बिलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं *मतिराम* लहै[5] मुसकानि मिठाई।
ज्यौं ज्यौं निहारिये नेरे[6] ह्वै नैननि त्यौं त्यौं खरी निकरै सी निकाई ॥६॥

(दोहा)

जाल[7] रंध्र मग ह्वै कढ़ै तियतनु दीपतिपुंज।
झिझिया कैसो घट भयो दिन ही मैं बन कुंज ॥ ७ ॥
तरुनि अरुन एँड़ीन की किरनि - समूह - उदोत।
बैनी मंडन मुकुत के पुंज गुंज दुति[8] होत ॥ ८ ॥

नायिकाभेद

कही नायका तीन बिधि प्रथम स्वकीया मान[9]।
परकीया पुनि दूसरी गनिका तीजी जान[10] ॥ ९ ॥

स्वकीयालक्षण

लाजवती निसिदिन पगी निज पति के अनुराग।
कहत स्वकीया सीलमय ताको पति बड़भाग ॥१०॥

उदाहरण (सवैया)

संचि बिरंचि निकाई मनोहर लाजति[11] मूरतिवंत बनाई।
तापर तो परभाग बड़े *मतिराम* लसै पतिप्रीति सुहाई।

---

१ नीको। २ असि, ऐसे, इमि। ३ की। ४ अलसौनि। ५ लसै। ६ नीर कै नैननि। ७ छिद्रजाल। ८ रुचि। ९ प्रथमहि स्वकीया जान। १० मानि। ११ लाजतैं।

[६] अति, असी (गोपाल), इमि (रत्ना)। चितौन, चिचितौनि (सभा)। मुसुकानि मिठाई; पतिप्रीति सुहाई (गोपाल)। नेरे; नीके (गोपाल)। निकरै, निषरै (सभा, रत्ना)। इसके पश्चात् 'गोपाल' तथा 'सभा' में ८ सख्यक छद है।

[७] जाल रंध्र; रंध्रजाल (गोपाल)।

[८] मुकुत, मुक्त (गोपाल)। दुति, रुचि (गोपाल, सभा)। 'भारत' में यह नहीं है।

तेरे सुसील सुभाव भटू कुलनारिन को कुलकानि सिखाई।
तैही जनो[1] पतिदेवत के गुन गौरि सबै गुनगौरि पढ़ाई ॥११॥

(दोहा)

जानति सौति अनीति है जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानत लाज है पीतम जानत प्रीति ॥१२॥

स्वकीयाभेद

त्रिविध स्वकीया जानियो[2] प्रथमहि मुग्धा नाम।
मध्या पुनि प्रौढ़ा गनौं बरनत कबि *मतिराम* ॥१३॥

मुग्धालक्षण

अभिनव जौबन-आगमन जाके तन[3] मैं होय।
तासौं[4] मुग्धा कहत हैं कबि कोबिद सब कोय ॥१४॥

उदाहरण (कबित्त)

नैक मंद मधुर कपोल मुसक्यान लगे
नैक मंद गमन गयंदन की चाल भौ।
रंचक[5] न ऊँचो लगो अंचल उरोजन के
अंकुरनि बंक दीठि नैक सो बिसाल भौ।
मतिराम सुकबि रसीले कछु बैन भए
बदन सिंगाररस बेलि-आलबाल भौ।
बालतनु-जोबन-रसाल उलहत सब[6]
सौतिन कै साल भौ निहाल नंदलाल भौ ॥१५॥

---

१ मनो। २ जानियै। ३ अग। ४ को। ५ रंच ऊँची अंचल उरोजनि के अंकुरनि बंक-दीठि नैन जुग नेसुक बिसाल भो। ६ लखि।

[११] लाजति, लाजते (गोपाल), लाज तैं (सभा, रत्ना)। लसै, लहै (गोपाल)। तापर; तेरे (सभा, रत्ना)। तैही जनो, तैंई मनौं (गोपाल); तैंहीं मनो (सभा, रत्ना), नेही जने (भारत)। पढ़ाई, बढ़ाई (सभा); पठाई (भारत)।

[१२] सुनीति; सुनीकि (रत्ना)।

[१३] गनौं, बहुरि (गोपाल)।

[१४] तासौं; ताकौं (सभा, भारत)।

[१५] रचक न ऊँचो लगो, रच ऊचौ (गोपाल, रत्ना, सभा); रंचक न ऊची लागौ (भारत)। नेक सो, नेन जुग नेसिक (गोपाल), नैन

(दोहा)

अभिनव जौबनजोति सौं जगमग होत बिलास।
तिय के तनु पानिप बढ़ै पिय के नैननि प्यास ॥१६॥

मुग्धाभेद

मुग्धा के द्वै भेद बर भाषत सुकबि सुजान।
एक अज्ञातहि जौबना ज्ञातजौबना आन ॥१७॥

अज्ञातयौवनालक्षण

निज तनु जौबन-आगमन जो नहिँ जानति नारि।
सो अज्ञात सु जौबना बरनत कबि निरधारि ॥१८॥

उदाहरण (सवैया)

खेलन चोर-मिहीचनि आजु गई हुती पाछिले द्यौस की नाईं।
आली कहा कहौं एक भई *मतिराम* नई यह बात तहाँई[1]।
एकहि भौन दुरे इकसंग ही अंग सौं अंग छुवायो कन्हाई।
कंप छुट्यो[2] घनस्वेद बढ़्यो तनु रोम उठ्यो[3] अँखियाँ भरि आई ॥१९॥

(दोहा)

लाल तिहारे संग मैं खेलै खेल बलाइ।
मूँदत मेरे नयन हो करन कपूर[4] लगाइ ॥२०॥

---

१ हँसाई। २ तन। ३ उठै। ४ कपोल।

जुग नैसुक (रत्ना), नैन जुगु नेकु सु (सभा)। कछु बैन; कछू नैंन (गोपाल)। बेलि; बेली (गोपाल); बोली (भारत)। उलहत सब, उलहन आये (गोपाल); उलहत लखि (रत्ना, सभा)। साल भौ, साल (गोपाल)।

[१६] जोति, जोर (गोपाल)। जगमग; जोमग (गोपाल)।

[१७] अज्ञातहि जौबना, अज्ञात जोबन बहुरि (गोपाल); अज्ञातक यौवना (सभा; भारत)।

[१८] खेलन, खेलत (भारत)। गई हुती, आ गई हुती (सभा)। नाईं; नाही (गोपाल.), नौंई (सभा), माईं (रत्ना, भारत)। छुवायो, लायौ (गोपाल), छुवाय (रत्ना)। उढ्यो, उठे (गोपाल); उठ्यौ (रत्ना); उठ्यो (भारत)।

[२०] बलाइ, बलाई (गोपाल), बनाइ (भारत)। नयन; द्रमन (गोपाल); नैन (रत्ना, सभा भारत)।

ज्ञातयौवनालक्षण[१]

निज तनु जोबन-आगमन जानि परत है जाहि।
कबि कोबिद सब कहत हैं ज्ञातजौबना ताहि ॥२१॥

उदाहरण (कबित्त)

कानन लौं लागे मुसकान प्रेमपागे लौने
लाजभरे[१] लागे लोल लोचन अनंग ते।
भारु धरि भुजनि[२] डुलावति चलति मंद
औरैं ओप उलहत उरज उतंग ते।
मतिराम **जोबन[३]-पवन की झकोर आय**
बढ़िकै[४] सरस रस तरल तरंग ते।
पानिप अमल की झलक झलकन लागी
काई-सी गई है लरिकाई कढ़ि अंग ते॥ २२॥

(दोहा)

इतै उतै सचकित चितै चलत डुलावत[५] बाँह।
दीठि[६] बचाइ सखीन की छिनक निहारति[७] छाँह ॥२३॥

---

१ विलसति। २ भुज को। ३ के पवन। ४ बाढ़त। ५ चलै झुलावति। ६ डीठि। ७ निरीखति।

[२१] जाहि; ताहि (गोपाल)। ताहि, जाहि (गोपाल)।
[२२] लागे लोल लोचन; बिलसत लोचन (गोपाल, सभा); लागे लोचन (भारत)। भारु धरि भुजनि; भार धरि भुज कौ (गोपाल)। पवन, पत्रन (भारत)। आय, आवै (गोपाल), आये (सभा); पाइ (रत्ना)। बढ़िकै; बाढत (गोपाल, रत्ना, सभा); बढकै (भारत)। पानिप, पानीप (सभा), पाविय (भारत)। अमल; बिमल (रत्ना, सभा)। कढ़ि, मिटि (गोपाल)।
[२३] सचकित, सकुचित (गोपाल), चकित (सभा)। दीठि, डीठि (गोपाल)। छिनक, छिन छिन (गोपाल), छिनकु (रत्ना, सभा); छनकु (भारत)।

नवोढालक्षण

मुग्धा जो भय लाज जुत रति न चहै पतिसंग।
ताहि नवोढ़ा कहत हैं जे प्रबीन रसरंग ॥२४॥

उदाहरण (सवैया)

साथ सखी के नई दुलही को भयो हरि को हियो हेरि हिमंचल।
आय गए *मतिराम* तहाँ घरु[1] जानि इकंत अनंद ते चंचल[2] ॥
देखत ही नँदलाल को बाल के पूरि रहे अँसुवानि दृगंचल।
बात कही न गई सु रही गहि हाथ दुहू सों सहेली को अंचल ॥२५॥

(दोहा)

ज्यों ज्यों परसत[3] लाल तन त्यों त्यों राखै[4] गोय।
नवल बधू[5] डर[6] लाज तें इंद्रबधू सी होय ॥२६॥

विश्रब्धनवोढालक्षण

होय नवोढ़ा कै कछू प्रीतम सों परतीति।
सो विश्रब्धनवोढ़ यों बरनत कबि रसरीति ॥ २७ ॥

उदाहरण (सवैया)

केलि कै राति[7] अघाने नहीं दिन[8] ही में लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोउ पानी दै जाइयो भीतर बैठिकै बात सुनाई।
जेठी पठाई गई दुलही[9] हँसि हेरि हरे *मतिराम* बुलाई।
कान्ह के बोल में कान न दीनो सु गेह की देहरी पै[10] धरि आई ॥२८॥

---

१ घर। २ अनदित चचल, अनंद सों चंचल। ३ परसै। ४ राखत। ५ बाल, नारि। ६ उर। ७ रैनि। ८ हूकै। ९ जिठानी पठाई गई दुलही हँसि इत्यादि, जेठी पठाई गई इत्यादि। १० हो।

[२४] जो; जहाँ (रत्ना, सभा)। जुत, तैं (रत्ना)।

[२५] भयो; भयौ भयौ (गोपाल)। तहाँ, जहाँ (गोपाल); तहीं (रत्ना)। अनंद तें, अनंग तें (गोपाल); अनंत सो (सभा); अनंद सो (भारत)। देखत ही; देषही (सभा)।

[२६] बधू; बाल (गोपाल)।

[२७] कै, की (गोपाल)। सो; ताहि (गोपाल)। यों; कहत (गोपाल)।

[२८] अघाने; अघने (गोपाल)। जेठी···गई, जिठानी पठाइ दई (गोपाल)। हँसि······बुलाई, मतिराम हरे हसि हेरि बुलाई (गोपाल)।

(दोहा)

प्रीतम तुम्हरी[1] सेज पर[2] हौं आऊँ नँदलाल[3]।
दया गहो बात न कहो दुख न दीजिये लाल ॥२९॥

मध्यालक्षण

जाके तन[4] में होत है लाज मनोज समान।
ताकों[5] मध्या कहत हैं कवि *मतिराम* सुजान ॥३०॥

उदाहरण (कवित्त)

चित्र[6] में बिलोकत ही लाल को बदन बाल
जीते जिहि कोटि चंद सरद-पुनीन के।
मुसकानि अमल कपोलन में रुचिबृंद
चमकै तरयोननि की रुचिर चुनीन[7] के।
प्रीतम निहारयो बाँह गहत अचानक ही
जामें *मतिराम* मन सकल मुनीन के।
गाढ़े गही लाज मैन कंठ ह्वै फिरत बैन
मूल छूवै फिरत नैनबारि बरुनीन के ॥३१॥

(दोहा)

केलिभवन की देहरी खरी बाल छबि नौल[8]।
कामकलित हिय को लहै लाजकलित दृगकौल[9] ॥३२॥

---

१ प्रीति तुम्हारी। २ पै। ३ गोपाल। ४ मन। ५ तासो। ६ चित। ७ गुनीन। ८ मौन। ९ कौन।

[२९] प्रीतम; प्रीति (रत्ना, सभा)। तुम्हरी, तिहारी (गोपाल, सभा)। हौं आऊँ नँदलाल, हौं आवति गोपाल (गोपाल)। कहो, करो (गोपाल)।

[३०] ताकों, तासों (गोपाल, सभा, भारत)।

[३१] चित्र, चित (भारत)। जीते, जाते (रत्ना)। जिहि कोटि, जिनि कोर (गोपाल)। चमकै, चमक (गोपाल)। रुचिर चुनीन; रुचिर चिनीनि (गोपाल), रुचिर चुरनीन (सभा)। बाँह गहत··· ही, बाँहन हत अवान कहीं (भारत)। मन सकल, सकल (गोपाल)। मैन; मेन (गोपाल)। बैन, बेन (गोपाल)। नैनबारि, नैन बार (रत्ना)। अंतिम दो चरण 'सभा' में नहीं हैं।

[३२] लाजकलित, लाज ललित (गोपाल, भारत)।

प्रौढ़ालक्षण

निज पति सौं रतिकेलि की सकल कलानि प्रबीन।
तासौं प्रौढ़ा कहत हैं जे कबिता[१] - रस - लीन ॥३३॥

उदाहरण (सवैया)

प्रानप्रिया मनभावन संग अनंग-तरंगनि रंग पसारे।
सारी निसा *मतिराम* मनोहर केलि के पुंज हजार[२] उघारे।
होत प्रभात चल्यो चहै प्रीतम सुंदरि के हिय मैं दुख भारे।
चंद-सो आनन दीप-सी दीपति स्याम सरोज-से नैन निहारे ॥३४॥

(दोहा)

लपटानी अति प्रेम सो दै उर उरज उतंग।
घरी एक लौं छुटेहु पर[३] रही लगी - सी अंग ॥३५॥

मध्या-प्रौढा-भेद

मध्या प्रौढ़ा मान तैं[४] तीन भाँति पुनि जानि।
धीरा बहुरि[५] अधीर तिय धीरा धीरा मानि ॥३६॥

मध्याधीरा-प्रौढा-लक्षण

बचननि की रचनानि सौं पियहि जनावत[६] कोप।
मध्याधीरा कहत हैं ताहि सुमति-रस - चोप ॥३७॥

उदाहरण (कबित्त)

तुम कहा करो कान[७] काम तैं अटकि रहे
तुमकौं[८] न दोस सो तो आपनोई भाग है।
आय मेरे भौन बड़े भोर उठि प्यार ही तैं
अति हरबरन बनाय बाँधी पाग है।

---

१ कबित्त। २ अनेक। ३ छूटे पर घरि एक लौ रहौ। ४ प्रौढ़ा मध्या मान मैं। ५ और। ६ जनावै। ७ काहू। ८ तुम्हैं कहा।

[३३] कबिता; कबित्त (रत्ना, भारत); कबित्व (सभा)।

[३५] लौं, लगि (गोपाल)। छुटेहु पर, छूटि परि (गोपाल); छुटें पर (भारत)।

[३६] मध्या प्रौढा, प्रौढ़ा मध्या (गोपाल)। तैं; मैं (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)। पुनि; की (गोपाल)। बहुरि; और (गोपाल)।

[३७] जनावत, जनावै (रत्ना, सभा, भारत)। सुमति; सुकबि (गोपाल)।

मेरे ही बियोग रहे जागत सकल राति
गात अलसात[1] मेरो परम सुहाग है।
मनहु की जानी प्रानप्यारे *मतिराम* यहै
नैननिहूँ माहिँ पाइयतु अनुराग है ॥३८॥

(दोहा)

अजौं उड़ावत हौ नहीं पीर न होत सभाग।
ठौर ठौर या भौंर के डसे[2] अधरदल - दाग ॥३९॥

मध्या-अधीरा-लक्षण

मध्या कही अधीर तिय बोलै बोल[3] कठोर।
पियहिँ जनावति कोप सो[4] बरनत कबि सिरमौर ॥४०॥

उदाहरण (सवैया)

कोऊ नहीं बरजै *मतिराम* रहो तितही जितही मन भायो।
काहे कौं सौंहैं हजार करौ तुम तौ कबहूँ अपराध न ठायो।
सोवन दीजै न दीजै हमैं दुख यौं ही कहा रसबाद[5] बढ़ायो।
मान रहोई नहीं मनमोहन मानिनी होय सो मानै मनायो ॥४१॥

(दोहा)

बलय पीठि तरिवन भुजन उर कुच कुंकुम - छाप।
तितैं जाहु मनभावते जितैं बिकाने आप ॥४२॥

---

१ अंग अलसाने। २ लसे। ३ बचन। ४ यौं। ५ बकवाद।

[३८] कान काम तैं, काहू काम सौं (गोपाल); काहू काम तैं (रत्ना); कहूँ काहु काम तैं (सभा); कहूँ काम ते (भारत)। तुमकौं; तुम्हैं (सभा)। तैं; सौं (गोपाल)। बनाय, सभारि (गोपाल)। गात; अंग (गोपाल)। माहिँ; माँझ (गोपाल)।

[३९) अधरदल-दाग, अधर डल दाम (सभा)।

[४०] बोल; बचन (गोपाल)। सो; है (गोपाल)।

[४१] सोवन, सौं मन (गोपाल)।

[४२] तितैं जाहु; वही जाउ (गोपाल); तिते जाव (भारत)।

मध्या-धीराधीरा-लक्षण

मध्या धीराधीर तिय ताहि कहत सब कोय।
पिय सौं कहिकै बचन कछु रोस जतावै[1] रोय ॥४३॥

उदाहरण (सवैया)

आजु कहा तजि बैठी हो भूषन ऐसे हीं अंग कछू अरसीले।
बोलती बोल रुखाई लिये *मतिराम* सनेह सने न रसीले[2]।
क्यौं न कहौं दुख प्रानप्रिया अँसुवानि रहे भरि नैन लजीले।
कौन तिन्हैं[3] दुख है जिनके तुम-से मनभावन छैल छबीले ॥४४॥

(दोहा)

तुमसौं कीजै मान क्यौं बहु नायक मनरंज।
बात कहत यौं बाल के भरि आए दृगकंज ॥४५॥

प्रौढा-धीरा-लक्षण

पिय सौं प्रगट न रिस करै रति ते रहै उदास।
प्रौढ़ा-धीरा जानिये सो निज सुमति बिकास[4] ॥४६॥

उदाहरण (कबित्त)

वैसे ही चितैकै मेरे चित्त को चुरावती हौ
बोलती हौ वैसे ही मधुर मृदु बानि सौं।
कबि *मतिराम* अंक भरत मयंकमुखी
वैसे ही रहत गहि[5] भुज-लतिकानि सौं।

---

१ जनावै। २ मतिराम सनेह सुनैं ते रसीले। ३ तुम्हैं। ४ बिलास। ५ गहत रहि।

[४३] सब कोय; कबि कोइ (गोपाल)। जतावै; जनावै (गोपाल, सभा, भारत)।

[४४] अरसीले; परसीलै (सभा), अरसीलो (भारत)। बोलती बोल; बोलत बेन (गोपाल); बोलत बोल (सभा, भारत)। सने न; सुने तो (गोपाल); सुने ते (सभा, भारत)। रसीले, सुसीलै (सभा); रसीलो (भारत)। कहौं; कहै (गोपाल)। लजीले, लजीलो (भारत)। जिनके, तिनके (गोपाल), जिनते (सभा)। छबीले, छबीलो (भारत)।

[४६] रिस; सिस (सभा)। ते; सौं (गोपाल); तैं (रत्ना)। सो निज; बरनत (गोपाल)। बिकास, बिलास (गोपाल, सभा, भारत)।

चूमति कपोल पान करत अधररस
वैसे ही निहारियत[1] सकल कलानि सौं।
कहा चतुराई ठानियत प्रानप्यारी तेरो
मान जानियत रूखी मुख-मुसकानि सौं ॥४७॥

(दोहा)

ढीली बाँहन सौं मिली बोली कछू न बोल।
सुंदरि मान जनाय यौं लियो प्रानपति मोल ॥४८॥

प्रौढा-अधीरा-लक्षण

डरु दैकै प्रिय को प्रिया देय सुमन की मारु।
प्रौढ़-अधीरा कहत हैं ताहि सुकबि मति[2] चारु ॥४९॥

उदाहरण (कबित्त)

जाके अंग अंग की निकाई निरखत आली
वारनैं अनंग की निकाई कीजियतु है।
कबि[3] *मतिराम* जाकी चाह ब्रजनारिन को
देह अँसुवान के प्रवाह भीजियतु है।
जाके बिनु देखे न परत कल तुमहूँ कौं
जाके बैन सुनत सुधा-सी पीजियतु है।
ऐसे सुकुमार प्रिय नंद के कुमार को यौं
फूलन के मालन की मारु दीजियतु है[4] ॥५०॥

(दोहा)

जहाँ जहाँ सखि देत तू फूलमाल को मारु।
तहाँ तहाँ नँदलाल के उठैं[5] रोम तन चारु ॥५१॥

प्रौढ़ा-धीरा-अधीरा-लक्षण

रति उदास ह्वै नाह कौं डर दिखरावै बाम।
प्रौढ़-अधीरा-धीर तिय बरनत कबि[6] *मतिराम* ॥५२॥

---

१ निहारी रीति। २ सुमति कवि। ३ कहे। ४ ऐरी बोरी फूलन की मारु दीजियतु है। ५ उठत। ६ कहत सुकवि।

[४७] लतिकानि, लेति कानि (भारत)। निहारियत, निहारी रीति (सभा, भारत)। मुख; मृदु (गोपाल)।

[४८] यौं, के (गोपाल, सभा)।

[४९] डरु, उर (गोपाल, सभा)।

[५०] अनग; अमंग (सभा)। को यौं, ताहि (गोपाल)।

उदाहरण (सवैया)

प्रीतम आए प्रभात प्रियाघर राति रमैं रतिचिह्न लिये हीं।
बैठि[1] रही पलका पर सुंदरि नैन नवायकै धीर धरैं हीं।
बाँह गहैं *मतिराम* कहैं न रही रिस मानिनी के हठ कैं हीं।
बोली[2] न बोल कछू सतरायकै भौंह चढ़ाय तकी तिरछौंहीं ॥५३॥

(दोहा)

आवत उठि आदर कियो बोली[3] बोल रसाल।
बाँह गही नँदलाल जब भए बालदृग लाल ॥५४॥

जेष्ठा-कनिष्ठा-लक्षण

बरनत जेष्ठ-कनिष्ठिका जहँ द्वै ब्याही नारि।
प्रथम पियारी दूसरी घटि प्यारी निरधारि ॥५५॥

उदाहरण (कबित्त)

बैठी एक सेज पै सलोनी मृगनैनी दोऊ
आय तहाँ प्रीतम सुधासमूह बरसै।
कबि *मतिराम* ढिग बैठे मनभावनजू[4]
दुहुँन के हिय-अरबिंद मोद सरसै।

---

१ पौढ़ि। २ बोल। ३ बोलै। ४ बैठ्यो मनभावतो सो।

[५३] घर; ग्रह (गोपाल), कहौ (भारत)। पलका, पलिका (गोपाल; सभा); पलँगा (भारत)। धरैं; कियौ (गोपाल)। हठ; हट (गोपाल, रत्ना)। कैं; पै (गोपाल, सभा)। भौंह चढ़ाय; नेन नवाइ (गोपाल)।

[५४] बोली; बोले (गोपाल, भारत)। गही; गहत (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)। जब; कौं (गोपाल); के (रत्ना, सभा, भारत)।

[५५] जहँ; जहा (गोपाल); जिहँ (सभा); यह (भारत)। घटि; घट (गोपाल)। निरधारि; उर धारि (गोपाल)।

[५६] पै, मैं (गोपाल)। तहाँ; जहाँ (गोपाल)। समूह; सौं मुहु (गोपाल)। मनभावनजू; मनभामन (गोपाल, सभा); मनभावन के (भारत)। मोद; मोदबृंद (गोपाल)। एक सौं; एक कौं (गोपाल)। कह्यो यौं; कह्यौ (गोपाल)। देखौ, लखौ (गोपाल,

आरसी दै एक सौं कह्यो यौं निज मुख देखौ
जामै बिधु-बारिज-बिलास बर दरसै ।
दरप-सौं भरी वह दरपन देख्यो जौलौं
तौलौं प्रानप्यारी के उरोज हरि[1] परसै ॥५६॥

(दोहा)

बेनी गूँथत एक की नंदलाल चित लोल ।
चूमत प्यारी के मधुर[2] बिहँसत गोल कपोल ॥५७॥

परकीयालक्षण

प्रेम करै पर पुरुष सौं परकीया सो जान ।
दोय भेद ऊढ़ा कहत बहुरि अनूढ़ा मान ॥५८॥

ऊढालक्षण

ब्याही औरै पुरुष सौं औरै सौं रसलीन ।
ऊढ़ा तासौं कहत हैं कबि[3] पंडित परबीन ॥५६॥

उदाहरण (सवैया)

क्यौं इन आँखिन सौं निरसंक ह्वै मोहन को तनपानिप पीजै ।
नैक निहारैं[4] कलंक लगै इहि गाँव बसे कहौ कैसे के जीजै ।
होत रहै मन यौं *मतिराम* कहूँ बन जाइ बड़ो तप कीजै ।
ह्वै बनमाल हिये लगिये अरु ह्वै मुरली अधरारस लीजै ॥६०॥

(दोहा)

कंत चौक सीमंत की बैठी गाँठि जुराय ।
पेखि परोसिनि कौं प्रिया घूँघट मैं मुसकाय ॥६१॥

---

१ हार । ३ अधर । २ जे । ३ लखे तैं ।

सभा, भारत) । दरसै; डर से (रत्ना) । जौलौं, तौलौं (गोपाल) । तौलौं, तौलौं प्यारे (गोपाल, सभा, भारत) । हरि; कर (गोपाल); हर (सभा) ।

[५८] कहत, प्रथम (सभा, भारत) ।

[६०] इन; नई (सभा) । पीजै, पजे (गोपाल) । निहारैं, निहारिकैं (गोपाल), तिहारे (सभा) । जीजै; कीजे (सभा) । ह्वै; कै (सभा) । हिये; गरै (गोपाल) । लगिये, बसिये (रत्ना) । लीजै, पीजै (भारत) ।

[६१] पेखि, देषि (गोपाल) । प्रिया, तिया (गोपाल) ।

अनूढ़ालक्षण

अनब्याही केहु पुरुष सौं अनुरागिनि जो होय।
ताहि अनूढ़ा कहत हैं कबि कोबिद सब कोय ॥६२॥

उदाहरण (सवैया)

गोपसुता कहै गौरि गुसाइँनि पायँ परौं बिनती सुनि लीजै।
दीन दयानिधि दासी के ऊपर नैक सुचित्त दयारस भीजै।
देहि जो ब्याहि उछाह सौं मोहनै मात पिताहू को सो मन कीजै।
सुंदर साँवरो नंदकुमार बसै उर जो वह सो बर दीजै ॥६३॥

(दोहा)

मैं सुनि आई नंदघर अब तू होहु निसंक।
राधे मोहन[1] ब्याह सौं जैहै धोय कलंक ॥६४॥

परकीयाभेद

परकीया के भेद षट गुप्ता प्रथम बखान।
बहुरि बिदग्धा लच्छिता मुदिता कुलटा मान ॥६५॥
और जु अनुसयना कही तिनके बिमल[2] बिबेक।
बरनत कबि *मतिराम* यह रस सिंगार को सेक ॥६६॥

गुप्तालक्षण

सुरति छिपावै जो तिया सो गुप्ता उर आनि।
बरनत कबि *मतिराम* यह चतुराई की खानि ॥६७॥

---

१ माधव। २ त्रिबिध।

[६२] अनब्याही, न ब्याही, (सभा)। केहु; कोउ कहु (गोपाल); कोउ (रत्ना); कहुँ (सभा)। अनुरागिनि; अनुरागी (गोपाल)।

[६३] दीन; दान (भारत)। नैक सुचित; नेंसिकु चित्त (गोपाल); नेसुक चित्त (सभा)। दयारस भीजै; कृपा कछु कीजै (गोपाल)। सौं, कै (गोपाल)। जो वह; जो बर (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)।

[६४] सौं; ते (गोपाल, भारत); तैं (सभा)।

[६५] षट; ए (गोपाल); यह (सभा), इह (भारत)।

[६६] बिमल; त्रिबिध (सभा, भारत)। यह; हैं (गोपाल)।

[६७] तिया; त्रिया (गोपाल)। यह, हैं (गोपाल); है (सभा, भारत)।

उदाहरण (सवैया)

लेन गई हुती बागन फूल अँध्यारी लखैं डर बाढ़्यो महाई[1]।
रोम उठै तन कंप छुटै *मतिराम* भई श्रम की सरसाई।
बेलिन मैं उरझी अँगिया छतिया अति कंटक के छतछाई।
देह मैं नैक सँभार रह्यो न यहाँ लगि भाजि मरू करि आई ॥६८॥

(दोहा)

भलो नहीं यह केवरो सजनी गेह अराम।
बसन फटै कंटक लगै[2] निसि-दिन आठौं जाम ॥६९॥

विदग्धाभेद

द्विबिध बिदग्धा कहत हैं कबि करि बिमल बिबेक।
बचनबिदग्धा एक है क्रियाबिदग्धा एक ॥७०॥

विदग्धालक्षण

करै बचन सौं चातुरी बचनबिदग्धा जान।
करै क्रिया सौं चातुरी क्रियाबिदग्धा मान ॥७१॥

वचनविदग्धा-उदाहरण (कबित्त)

आई[3] है निपट साँझ गैयाँ गईं घरमाँझ
हाँ सो दौरि आई मेरो कह्यो कान्ह कीजिये।
हौं तो हौं अकेली और दूसरो न देखियत
बन की अँधेरी मैं अधिक भय भीजिये।

---

१ तहाँई। २ अटै। ३ आवै।

[६८] बागन, बागहि (गोपाल, सभा); बागही (भारत)। बाढ़्यो; लागै (गोपाल), लाग्यौ (रत्ना)। सँभार…यहाँ; सभारहो नहीं ह्याँ (गोपाल)। भाजि; भाति (सभा)।

[६९] गेह; ग्रह (गोपाल)।

[७०] द्विबिध; दुबिधि (गोपाल)। कहत…कहत करि; कबि कहत हैं करियत (गोपाल)।

[७१] जान, मानि (सभा)। मान; जानि (सभा)।

[७२] घर; बन (भारत)। ह्याँ सो; याते (गोपाल); ह्याँ तैं (रत्ना); ह्याते (सभा, भारत)। कान्ह; काम (गोपाल)। अधिक; निपट

कवि *मतिराम* मनमोहन सौं पुनि पुनि
राधिका कहति बात साँचो ये पतीजिये।
कब की हौं हेरति न हेरे हरि पावति हौं
बछुरा हिरान्यो सो हिराय नेक दीजिये ॥७२॥

(दोहा)

खेत निहारौ[1] धान को यौं बूझो मुसकाय।
इहो हमारो है कह्यो सघन ज्वार[2] दरसाय ॥७३॥

क्रियाविदग्धा-उदाहरण (सवैया)

बैठी तिया गुरु लोगन मैं रति तैं अति सुंदर रूप बिसेखी।
आयो तहाँ *मतिराम* सुजान[3] मनोभव सौं बढ़ि कांति उरेखी[4]।
लोचन रूप पियो ही चहैं अरु लाजनि जात नहीं छबि पेखी।
नैन नमाय रही हियमाल मैं लाल की मूरति लाल मैं देखी ॥७४॥

(दोहा)

चढ़ी अटारी बाम[5] वह कियौ प्रनाम अखोट[6]।
तरनिकिरन तैं दृगन कौं करसरोज की ओट ॥७५॥

---

१ निहारै। २ उब्र। ३ सु जामैं। ४ बिसेखी। ५ बाल। ६ निखोट।

(गोपाल)। पुनि पुनि; पुनि (सभा)। हिराय; हिलाय (गोपाल)। नैक; हरि (रत्ना)।

[७३] निहारौ; तिहारौ (गोपाल, रत्ना, सभा); निहारै (भारत)। धान; भानु (रत्ना)। यौं बूझो, हौं पूछति (गोपाल); यौं बूझन (भारत)। है कह्यो; ए कहे (गोपाल)।

[७४] तहाँ; इते मैं तहाँ (गोपाल)। मतिराम सुजान, सुजान (गोपाल); मतिराम सुजानैं (रत्ना)। सौं, तैं (गोपाल, सभा, भारत)। बढ़ि; अति (सभा, भारत)।

[७५] अखोट; खिषोट (गोपाल); निखोट (सभा, भारत)। कौं; करि (रत्ना); की (भारत)। करसरोज; करि सरोज (गोपाल)। की; करि (सभा, भारत)।

लज्जितालक्षण

होत लखाय सखीन कों पिय सौं जाको प्रेम।
ताहि लच्छिता कहत हैं कबि कोबिद करि नेम ॥७६॥

उदाहरण (सवैया)

आई हौ पायँ दिवाय महावर कुंजन तें करिकै सुखसैनी।
साँवरे आजु सँवारयो है अंजन नैनन को लखि लाजति ऐनी।
बात के बूझत ही *मतिराम* कहा करिये यह[1] भौंह तनैनी।
मूँदि न राखत प्रीति भटू[2] यह गूँदी[3] गुपाल के हाथ की बैनी ॥७७॥

(दोहा)

सतरौंहीं भौंहन नहीं दुरै दुरायो नेह।
होत नाम नँदलाल के नीपमाल[4] सी देह ॥७८॥

कुलटालक्षण

जो चाहत बहु नायकन सरस सुरति पर-प्रीति।
तासौं कुलटा कहत हैं लखि ग्रंथन की रीति ॥७९॥

उदाहरण (सवैया)

अंजन दै निकसै नित नैनन मंजनकै अति अंग सँवारै।
रूपगुमान भरी मग मैं पग ही के अँगूठा-अनौट सुधारै।
जोबन के मद सौं *मतिराम* भई मतवारिनि लोग निहारै[5]।
जाति चली यहि भाँति गली[6] बिथुरी अलकैं अँचरा न सँभारै[7]॥८०॥

---

१ भटू। २ अली। ३ गूँथी। ४ दीपमाल। ५ मतवारी न अंग सँभारै। ६ अली। ७ उर धारै।

[७६] सखीन, सषीय (गोपाल)। पिय···प्रेम, पिय सौं तिय सौं प्रेम (गोपाल), जासो प्रिय सो प्रेम (सभा); जाको पिया सौं प्रेम (भारत)।

[७७] आजु, आप (गोपाल)। सँवारयो; सभारयौ (गोपाल)। ऐनी; अयनी (सभा), रेनी (भारत)। करिये, कहियै (गोपाल)। भटू; अली (गोपाल, सभा, भारत)। गूँदी, गूँथी (गोपाल, रत्ना); गूंधी (भारत)।

[७८] नाम; नई (गोपाल)। नीपमाल, दीपषिषा (गोपाल); दीपमाल (भारत)।

[८०] मंजन, मंज (सभा)। अति, निन (गोपाल)। सँवारै; संभारै

(दोहा)

मोह मधुर मुसकानि सौं सबै गाम के छैल।
सकल सैल बन कुंज मैं तरुनि सुरति की सैल ॥८१॥

मुदितालक्षण

चित चाही सुन बात लखि मुदित होय जो बाल।
तासौं मुदिता कहत हैं कबि *मतिराम* रसाल ॥८२॥

उदाहरण (सवैया)

मोहन तैं कछु द्योसन मैं *मतिराम* बढ़्यो अनुराग सुहायो।
बैठी हुती तिय मायके मैं ससुरारि को काहू सँदेसो सुनायो।
नाह के ब्याह की चाह[1] सुनी हिय माँहि उछाह छबीली के छायो।
पौढ़ि रही पट ओढ़ि अटा दुख को मिस कै[2] सुख बाल छिपायो ॥८३॥

(दोहा)

बिछुरत रोवत दुहुँन को सखि यह रूप लखै न।
दुख अँसुवा पियनैन हैं सुख-अँसुवा तियनैन ॥८४॥

पहली अनुसयनालक्षण

केलि करे जहँ कंत सौं सो थल मिट्यो निहारि।
कहि अनुसयना तासु सौं सोच करे बर नारि ॥८५॥

---

१ बात। २ मिसु कै।

-(गोपाल), सवारौ (सभा)। ही के, के (गोपाल)। अनोट; अनोठ (भारत)। सुध रै, सभारै (गोपाल); सुधारौ (सभा)। मतवारिन; अलबेली यौं (गोपाल)। चली; इकली (गोपाल)। गली; अली (गोपाल)।

[८१] मोह, मोहि (गोपाल, सभा, भारत), मोहे (रत्ना)। सौं, मैं (गोपाल)। तरुनि, तरुण (गोपाल)। सैल; गैल (गोपाल)।

[८२] चित चाही, चितही (भारत)। लखि; कौं (सभा); को (भारत)। तासौं; ताको (भारत)।

[८३] तैं, सौं (गोपाल, सभा, भारत)। द्योसन मैं, द्वै दिन ते (गोपाल); द्योसनि ते (सभा, भारत)। चाह; चार (भारत)। हिय; उर (गोपाल)। मिस कै, मिसु कै (भारत)।

[८४] यह, इह (गोपाल)। 'गोपाल' मैं उक्त तीनो छंद ९३ संख्यक छंद के बाद हैं।

[८५] कहि; सुनि (गोपाल)। तासु सौं, नाइका (गोपाल)।

उदाहरण (कवित्त)

आई ऋतु पावस अकास आठौं दिसन मैं
सोहत स्वरूप जलधरन की भीर को।
मतिराम सुकबि कदंबन की बासजुत
सरस बढ़ावैं रस परस समीर को।
भौन तैं निकसि बृषभानु की कुमारि[1] देख्यो
ता समै[2] सहेट को निकुंज गिरयो तीर को।
नागरि के नैननि तैं नीर को प्रबाह बढ़यो
निरखि प्रबाह बढ़यो जमुना के नीर को ॥८६॥

(दोहा)

ग्रीषम ऋतु मैं देखिकै बन मैं लगी द्वारि[3]।
एक अपूरब बात यह जरत हिये बर नारि ॥८७॥

दूसरी अनुसयना

होनहार संकेत को जहँ अभाव उर आनि[4]।
अनुसयना कहिये यहौ हिये दुखनि की खानि[5] ॥८८॥

उदाहरण (सवैया)

बेलिन सौं लपटाय रही है तमालन की अवली अति कारी।
कोकिल केकी[6] कपोतन के कुल केलि करैं जहँ आनँद भारी।

---

१ कुँवरि। २ तासु मे॑ं। ३ दवौंरि। ४ सोच करै जो नारि। ५ होय हिये दुख भारि। ६ कूक।

[८६] परस, परम (भारत)। तैं, मैं (भारत)। निरखि; देषिकैं (गोपाल), देखत (सभा, भारत)। नीर; तीर (सभा)।

[८७] दवारि, दमारि (गोपाल), दवॉरि (भारत)। अपूरब, अपरबस (भारत)। यह; है (गोपाल)। जरत…नारि; मन मैं जति गँवारि (सभा); मन मैं जरति गॅवारि (भारत)।

[८८] जहँ…आनि; सोच करै जो नारि (भारत)। अनुसयना…खानि; इहै अनुसयना कही होइ हियैं दुष षानि (गोपाल); इही अनुसयना कही होइ हिये दुष आनि (सभा), ए हो अनुसयना कही होइ हिये दुख भारि (भारत)।

[८९] केकी, कूक (भारत)। जहँ; तहाँ (गोपाल); जहाँ (रत्ना); अति

सोच करौ जिन होहु सुखी *मतिराम* प्रबीन सबै नर नारी।
मंजुल बंजुल कुंजन मैं घनपुंज सखी ससुरारि तिहारी ॥८९॥

(दोहा)

केलि करैं मधुमत्त जहँ घन मधुपन के पुंज।
सोच न कर तुव सासुरे सखी सघन बनकुंज ॥९०॥

तीसरी अनुसयना

प्रीतम गए सहेट कौं जानै हेतुहि पाय।
तृतिया अनुसयना कही हौं न गई पछिताय ॥९१॥

उदाहरण (कबित्त)

साँझ समै *मतिराम* कामबस बंसीधर
बंसीबट तट पै बजाई जाय बाँसुरी।
सुमिरि सहेट बृषभानु की कुमारि[1] - उर
दुख अधिकानो भयो सुख को बिनासु री।
सर-सौं समीर लाग्यो सूल-सी सहेली सब
बिष-सौं बिनोद लाग्यो बन-सो निवासु री।
ताप चढ़ि आयो तन पीरी परि आई मुख
आँखिन के ऊपर उमँगि आए आँसु री ॥९२॥

(दोहा)

छुरी सपल्लव लाल कर लखि तमाल की हाल।
कुम्हिलानी उरसाल धरि फूलमाल ज्यौं बाल ॥९३॥

---

१ कुँवरि।

(सभा, भारत)। भारी, वारी (गोपाल, सभा, भारत)। मैं; के (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)।

[९०] मधुमत्त, मधुसत्त (सभा)।

[९१] तृतीया; यहै (गोपाल), इहो (सभा), ए हौ (भारत)।

[९२] बंसीधर; बँधी (भारत)। पै; मैं (गोपाल, सभा, भारत)। सर सौं; सरस (गोपाल)। सूल; सूर (गोपाल)। पीरी परी, पीर परि (सभा), पीर बढ़ि (भारत)। आँखिन; नेननु (गोपाल)।

[९३] साल; सूल (गोपाल, रत्ना), माल (सभा, भारत)। ज्यौं; सी (गोपाल)।

गणिकालक्षण

धन दै जाके संग मैं रमैं पुरुष सब कोइ।
ग्रंथन को मत देखिकै गनिका जानहु सोइ ॥६४॥

उदाहरण (कवित्त)

लाल कर चरन रदनछद नख लाल
मोतिन की रदन[1] रही है छबि छाइकै।
कवि *मतिराम* मुख सुबरन रूप रहि[2]
रूपखानि मुसकानि सोभा सरसाइकै।
आनन कौं इंदु जान आँखैं अरबिंद मानि
इंदिरा रजनि दिन रहति सिहाइकै[3]।
नायक नवल क्यों न देय धन-मन ऐसे
सुतनु कौं सुतनु अतनु-धन पाइकै ॥६५॥

(दोहा)

लसत गूजरी ऊजरी बिलसत लाल इजार[4]।
हिये हजारनि के हरै बैठी बाल बजार ॥६६॥

अन्यसंभोगदुःखितादि-भेद

अन सौं रति हुय दुःखिता प्रेमगर्बिता जान।
रूपगर्बिता और पुनि मानवती उर आन ॥६७॥

---

१ गूँदन। २ देह सुबरन रूप जानि। ३ सुहाय। ४ बिचार।

[६४] जानहु; कहियै (गोपाल), जानो (सभा, भारत)।

[६५] रजनि; राजानि (गोपाल), रति जिन (सभा)। सिहाइ; सुभाइ (गोपाल), सुहाइ (सभा, भारत)। सुतनु कौं सुतनु; सुतन कौ इतन (गोपाल)। अतनु-धन, अतुनधन (गोपाल); धन (सभा); अनत धन (भारत)।

[६६] बिलसत, बिहसति (गोपाल)। इजार, बिचार (भारत)।

[६७] अन सौं रति; अन्य सुरति (गोपाल, भारत), अन्य सुरत (रत्ना, सभा)। हुय दुःखिता; दुषा बहुरि (गोपाल), है दुःखिता (रत्ना); दुखिता कहि (सभा); दुखिता कही (भारत)।

अन्यसंभोगदु:खिता-लक्षण

निज पति के रतिचिह्न जो लखे और तिय देह।
अन्यसुरतिदुखिता कहौ करै पेच रिस तेह ॥६८॥

उदाहरण (कवित्त)

याही कौं पठाई भलो काम करि आई 'बड़ी
तेरी ये बड़ाई लखे लोचन लजीले सौं।
साँची क्यों न कहै कछु मोकौं किधौं आपही कौं
पाई बकसीस लाई बसन छबीले सौं।
मतिराम सुकबि सँदेसा अनुमानियत[1]
तेरे[2] नखसिख अंग हरष कटीले सौं।
तू तो है रसीली रसबातन बनाय जानै
मेरे जान आई रस राखिकै रसीले सौं ॥६६॥

(दोहा)

कहत तिहारो रूप यह सखी पैंड को खेद।
ऊँची लेत उसास है कलित सकल तन स्वेद ॥१००॥

प्रेमगर्विता-लक्षण

निज नायक के प्रेम कौं गरब जनावै बाल।
प्रेमगरबिता कहत हैं तासौं सुमति-रसाल ॥१०१॥

---

१ कबि मतिराम मोसों कहत सँदेसोऊ न। २ भरे।

[६८] पति; पिय (गोपाल)। सुरति दुखिता···रिस तेह; सुरति दुषि तासु कौं कहैं पेच सिर तेह (गोपाल), सुरत दुषिता कही करै पेच सौ तेह (सभा), सुरत दुखिता कहैं करै पेच सौं नेह (भारत)।

[६६] भलो, ऐसो (गोपाल); बड़ो (सभा, भारत)। तेरी ये, टेरियै (सभा); तेरी है (भारत)। हरष; निरषि (गोपाल); हरय (सभा)।

[१००] तिहारो; निहारौ (भारत)। यह सखी, लषि इह (गोपाल)। पैंड; पेंडे (गोपाल), पैढ (भारत)। खेद; षद (गोपाल); खेल (रत्ना)। स्वेद; षेद (सभा)।

[१०१] कौं; सौं (भारत)। बाल; बाम (गोपाल)। तासौं; ताकौं (सभा)। सुमति-रसाल, कबि मतिराम (गोपाल); सुकबि रसाल (रत्ना)।

उदाहरण (कवित्त)

मेरे हँसे हँसत हैं मेरे बोले बोलत हैं
मोही कों जानत तन[1] मन धन प्रान री।
कबि *मतिराम* भौंह टेढ़ी किये हाँसीहू मैं
छोड़ देत भूषन बसन खान पान री।
मोतें प्रानप्यारी प्रानप्यारे के न और कोऊ
तासों रिस कीजै कहौ कहाँ की सयान री।
मैनकामिनी के[2] मैनकाहू के न रूप रीझे
मैं न काहू के सिखाएँ आनो मन मान री ॥१०२॥

(दोहा)

औरन के पाइन दियो नायनि जावक लाल।
प्रानपियारी रावरी परखति तुम्हें रसाल ॥१०३॥

रूपगर्वितालक्षण

जाकेँ अपने रूप को अति ही होय गुमान।
रूपगरबिता कहत हैं तासों परम सुजान ॥१०४॥

उदाहरण (सवैया)

सोय रही रति अंत रसीली अनंत बढ़ाय अनंग-तरंगनि।
केसरि खौरि रची तिय के तन प्रीतम और सुबास के संगनि।
जागि परी *मतिराम* सरूप गुमान जनावत भौंह के भंगनि।
लाल सों बोलति नाहिन बाल सुपोंछति आँखि अँगोछति अंगनि॥१०५॥

---

१ मोहि को सो जानत है। २ सी।

[१०२] जानत, जानैं हैं (गोपाल), गनत (रत्ना), जानैं (सभा)। खान पान; पानी पानु (गोपाल, सभा, भारत)। तासों, जासों (गोपाल), ताकों (सभा)। रिस; रस (सभा)। कहौ; इह (गोपाल); कहि (सभा); यह (भारत)। के न; सुनैन (भारत)। रूप, काम (गोपाल)। सिखाएँ, मनाये (भारत)। आनो, मान्यौ (गोपाल), मानौं (भारत)।

[१०३] परखति, परपन (भारत)।

[१०५] रति अंत, अति रग (गोपाल)। अनंत; अनद (गोपाल, सभा, भारत)। रची, करी (गोपाल, सभा, भारत)। भौंह; भौन (सभा)। आँखि, आँसू (गोपाल)।

(दोहा)

कैसे आऊँ हूँ वहाँ ह्व जित नंदकिसोर।
दिनहूँ मैं मुखचंद को लखि ललचात चकोर ॥१०६॥

मानवतीलक्षण

करै ईरषा सौं जु तिय मनभावन सौं मान।
मानवती तासौं कहत कबि *मतिराम* सुजान[1] ॥१०७॥

उदाहरण (सवैया)

सो मनमोहन होत लटू मुख जाके भटू बिधु की छबि छाजै।
खोलिकै नैनन देखै जो नैक तो स्याम सरोज पराजय लाजै।
जो बिहँसै मुख सुंदर तो *मतिराम* बिहान को बारिज लाजै।
बोले अली मृदु मंजुल बोल तो कोकिल-बोलनि को मद भाजै ॥१०८॥

(दोहा)

सुन चित[2] दै मनमानिनी बिन अपराध रिसानि।
नेह जरावन को महा दीपजोति जिय जानि ॥१०९॥

दश नायिका

प्रोषितपतिका खंडिता कलहंतरिता जान।
बिप्रलुब्ध उतकंठिता[3] बासकसज्जा मान ॥
स्वाधिनपतिका कहत कबि[4] अभिसारिका सुनाम।
कही प्रवच्छतिप्रेयसी[5] आगतपतिका बाम ॥

---

१ कबिजन परम सुजान। २ सुनु इत, सुनियत। ३ उत्का बहुरि। ४ स्वाधीनै प्रियतम कहै। ५ प्रवत्स्यत्प्रेयसी।

[१०६] वहाँ; इहाँ (गोपाल), उहाँ (रत्ना; सभा, भारत)।

[१०७] सौं; तैं (गोपाल, भारत); तै (सभा)।

[१०८] देखै जो; देषियै (गोपाल)। बिहँसै; बहसै (गोपाल)। सुंदर; सुंदरि (गोपाल)। को; सो (गोपाल)।

[१०९] सुन चित, सुनियतु (गोपाल, भारत); सुनि रत (सभा)। मनमानिनी; मनुभामिनी (गोपाल); इत मानिनी (रत्ना)। जरावन; जनामन (गोपाल)। महा, जहाँ (गोपाल)। दीपजोति; जोतिदीप (गोपाल)। जिय; जहँ (गोपाल)।

[११०] कलहंतरिता जान; कलहंतरितानि (सभा); खलहंतरिता जानि (रत्ना)। उत्कंठिता, उत्का बहुरि (गोपाल)।

दसौं अवस्थाभेद सौं दसौं नायका जानि।
तिनके लच्छन लच्छ अब आछे[1] कहौं बखानि ॥११०॥

मुग्धा-प्रोषितपतिकालक्षण

जाको पिय परदेस मैं बिरहबिकल तिय होय।
प्रोषितपतिका नायका ताहि कहत सब कोय ॥१११॥

उदाहरण (सवैया)

बार कितेक सहेलिन के कहैं कैसेहूँ लेत न बीरी सँवारी।
राखति रोकि कहै *मतिराम* चलैं अँसुवा अँखियानि तें भारी।
प्रानपियारो चल्यो जबतैं तबतैं कछु और ही रीति निहारी।
पीरी जनावति अंगन मैं कहि पीर जनावति काहे न प्यारी ॥११२॥

(दोहा)

पियबियोग तियदृग जलधि जलतरंग अधिकाय।
बरुनि-मूल-बेला परसि बहुरयो जात बिलाय ॥११३॥

मध्या-प्रोषितपतिका-उदाहरण (कबित्त)

चंद के उदोत होत नैनकंज तपे कंत
छायो परदेस देह दाहनि दगतु[2] है।
उलिर गुलाबनीर करपूर परसत
बिरहअनल-ज्वाल-जालन जगतु है।

१ नीके। २ दहतु।

स्वाधिनपतिका……कवि, कहि स्वाधिनपतिका बहुरि (गोपाल); स्वाधिनपतिका नायिका (सभा); स्वाधिनपतिका कहत हैं (भारत)। प्रबच्छति; प्रवसत (गोपाल); प्रवत्स्यत (सभा, भारत)। सौं; मैं (गोपाल)। अब; हौं (गोपाल), जे (सभा); यह (भारत)। आछे, आगैं (रत्ना); नीके (भारत)।

[१११] परदेस, बिदेस (गोपाल, सभा, भारत)।

[११२] बार कितेक; बारकि टेक (रत्ना)। सँवारी; सभारी (गोपाल)। अंगन मैं; अंगनि (गोपाल)।

[११४] होत……कत; नेन चंद कंत कंत (गोपाल), होत नैन चंद काति कंत (सभा), होत नेन चंद कात कंत (भारत)। परदेस, पिय

लाजनि ते कछू न जनावै[१] काहू सखीहूँ सौं[२]
उर को उदार अनुराग उमगतु है।
कहा करौं[३] मेरी बीर उठी है[४] अधिक पीर
सुरभी समीर सीरो तीर सौं लगतु है ॥११४॥

(दोहा)

बहू दूबरी होत क्यौं[५] यौं जब बूझो सास।
ऊतर कढ्यो न बालमुख ऊँचे लेत[६] उसास ॥११५॥

प्रौढा-प्रोषितपतिका-उदाहरण (कबित्त)

बिरह तिहारे लाल बिकल[७] भई है बाल
नींद भूख प्यास सिगरी बिसारियतु है।
चोरी कैसी बान चंद्रमाहूँ ते चुराइयति[८]
बसननि तानिकै बयारि बारियतु है।
कहै *मतिराम* कलाधर कैसी कला छीन
जीवनबिहीन मीन सी निहारियतु है।
बार बार सुकुमार फूलन की मार[९] ऐसी
मार के मरोरन[१०] मरोरि मारियतु है ॥११६॥

---

१ जनैये। २ सखिन सौं, लोगन सौं। ३ घहौं। ४ उठहि। ५ कत। ६ ऊँचो लयो। ७ व्याकुल। ८ छिपाइयतु। ६ माल। १० मसूसनि, मरूरनि।

परदेस (गोपाल)। दगतु, गहतु (गोपाल), दहतु (भारत)। अनल-ज्वाल; जलनिज्वाल (गोपाल ; की परि हिये (भारत)। सखीहूँ सौं; लोगन कौं (गोपाल), सषीन सौं (सभा, भारत)। करौं; कहौं (गोपाल, सभा, भारत)। सीरो, बीर (गोपाल)।

[११५] क्यौं; कति (गोपाल)। कढ्यो; कह्यौ (रत्ना, सभा)। लेत, लयौ (गोपाल); लियो (रत्ना), लई (सभा, भारत)।

[११६] प्यास…बिसारियतु; प्यास हास बास टारियतु (गोपाल)। चोरी; बौरी (भारत)। कैसी; कीसी (गोपाल, सभा, भारत)। चुरायति; चुराइ और (गोपाल); छिपाइतु (सभा); छिपाइयतु (भारत)। तानि; बाधि (गोपाल)। कहै, कबि (गोपाल, भारत)। मार; माल (गोपाल, सभा, भारत)। मरोरन, मरूरनि (गोपाल); मसूसनि (भारत)।

(दोहा)

चंद्रकिरन लगि बालतन उठति आँच[1] यौं जागि।
दुपहर-दिनकरकर परसि ज्यौं दरपन मैं आगि ॥११७॥

परकीया-प्रोषितपतिका-उदाहरण (सवैया)

ह्वाँ मिलि मोहन सौं *मतिराम* सुकेलि करी अति आनँदवारी।
तेई लता द्रुम देखत दुःख चलै अँसुवा अँखियान तैं भारी।
आवति हौं जमुनातट[2] कौं नहिं जानि परै बिछुरे गिरिधारी।
जानति हौं सखि आवत चाहत कुंजन तैं कढ़ि कुंजबिहारी ॥११८॥

(दोहा)

लाज छुटी गेहौ छुट्यो सुख सौं छुट्यो सनेह।
सखि कहियो वा निठुर सौं रही; छूटेबे देह ॥११९॥

सामान्या-प्रोषितपतिका-उदाहरण (सवैया)

आली सिँगारति है हठ सौं पर लागत अंग सिँगार अँगारो।
पीरी परी तन मैं *मतिराम* चलै अँखियान तैं नीर पनारो।
सोउ नहीं[3] मनभावन नायक आवत जो बहुतै धनवारो।
बारबिलासिनि कौं बिसरै न बिदेस गयो पिय प्रानपियारो ॥१२०॥

(दोहा)

धन के हेतु बिलासिनी रही सँवारे बेस।
जो तिय के हिय मैं बसै सो पिय बसै बिदेस ॥१२१॥

---

१ आगि। २ जल। ३ सो न अहै।

[११७] आँच; आगि (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)। यौं, लौं (गोपाल)। दिनकर, दिन मैं (गोपाल)।

[११८] जमुनातट; जमुनाजल (रत्ना)। आवन, या वन (सभा)।

[११९] गेहौ, गृह (गोपाल) सुख, मुष (सभा), सब (भारत)।

[१२०] सिँगार अँगारो, अगार सिगारो (सभा)। सोउ नहीं, सो न अहै (रत्ना), सोहै नहीं (भारत)। जो, यौं (गोपाल)। बार-बिलासिनि, बालबिलासन (गोपाल)।

[१२१] सँवारे, सिगारै (गोपाल), सँभारे (भारत)। पिय बसै, पिय गयौ (गोपाल)।

खंडितालक्षण

पियतन औरै नारि के रति के चिह्न निहारि।
दुखित होत सो खंडिता बरनत सुकवि विचारि[1] ॥१२२॥

मुग्धा-खंडिता-उदाहरण (सवैया)

लाल तुम्हैँ कहुँ और तिया की लख्यो अँगिया मैँ लगावत चोवै।
ता छिन तैँ *मतिराम* न खेलत बूझैँ सखीनहुँ सौँ दुख गोवै।
लिखै कर के नख सौँ पग को नख[2] सीस नवायकै नीचे ही जोवै।
बाल नवेली न रूसनो[3] जानति भीतर भौन[4] मसूसति रोवै ॥१२३॥

(दोहा)

बाल सखिन की सीख तैँ मान न जानति ठानि।
पिय बिन आगम भौन मैँ बैठी भौँहैँ तानि[5] ॥१२४॥

मध्या-खंडिता-उदाहरण (कबित्त)

जावक लिलार ओठ अंजन की लीक सोहै
खैये न अलीक लोकलीक न बिसारियै।
कबि *मतिराम* छाती नखछत जगमगै
डगमगै पग सूधै मग मैँ न धारियै।
फलकै उघारत हौ पलक पलक यातैँ
पलका पै पौढ़ि श्रम राति को निवारियै[6]।
अटपटे बैन मुख बात न कहत बनै
लटपटे पैँच सिरपाग के सुधारियै[7] ॥१२५॥

---

१ सुधारि। २ पा नख को लिखै पानि नखै। ३ रूसिबो। ४ भौन। ५ खैयन अलीक। ६ पल याते पलका मैँ पौढ़ि स्नम राति के रमन को निवारिए। ७ लटपटे पैँच कछु बात न कहत बनै, लटपटे पैँच सिर पाग के सँवारिए।

[१२२] निहारि, लषाइ (गोपाल)। विचारि, बनाइ (गोपाल); सुधारि (सभा)।

[१२३] छिन; दिन (रत्ना)। खेलत, बोलति (गोपाल)। गोवै; वोवै (रत्ना)। लिखै······नख, पा नख कौँ सुलिखे कर कैँ नख (रत्ना); पा नष को लिखै पानि नखै तिमि (भारत)। न रूसनो; सु रूसि न (गोपाल); न रूसिबौ (रत्ना, भारत)।

[१२५] लिलार; लिलाट (गोपाल)। खैये न; दसनन (गोपाल); बैयेन (सभा)। अटपटे बैन, लटपटे पेच (गोपाल, सभा)। मुख;

(दोहा)

कोऊ करो कितेक[1] यह[2] तजो न टेव गुपाल।
निसि औरनि के पग परो दिन औरनि के लाल॥१२६॥

प्रौढा-खंडिता-उदाहरण (सवैया)

प्रीतम आए प्रभात प्रिया[3] मुसकाय उठी दृग सों दृग जोरै।
आगैं ह्वै आदर सों *मतिराम* कहै मृदु बैन सुधारस बोरै।
ऐसे सयान सुभायन हीं सों मिली मनभावन सों मन भोरै[4]।
मान गो जानि सुजान तबै अँगिया की तनी न छुटी जब छोरै॥१२७॥

(दोहा)

आदर करि[5] पिय सों मिली तिय हिय राख सयान।
दृढ़ कसि बाँधी कंचुकी[6] समुझायो मन-मान॥१२८॥

परकीया-खंडिता-उदाहरण (सवैया)

रावरे नेह को लाज तजी अरु गेह के काज सबै बिसराए।
डारि दिये गुरु लोगन को डर गाम चवाय मैं नाम[7] धराए।
हेत कियो हम जो तो कहा[8] तुमतो *मतिराम* सबै बहराए[9]।
कोऊ कितेक[10] उपाय करो कहुँ होत हैं आपने पीउ पराए॥१२९॥

(दोहा)

हमसों तुमसों लाल इत नैनन ही सों नेह।
उत प्यारी के दृगन के सलिल सींचियत देह॥१३०॥

---

१ करे। २ हू। ३ तिया। ४ मोरै। ५ दै। ६ किंकिनी। ७ नाउँ। ८ हिय सों। ९ न जी ठहराए। १० कितकौ।

सिर (सभा)। पाग के सुआरियै, पाग के सभारियै (गोपाल); पाग के सँवारियै (रत्ना), पाग के (सभा)।

[१२६] यह, इह (गोपाल, सभा), हू (भारत)। टेव, टेक (गोपाल, रत्ना)।

[१२७] ह्वै, ते (गोपाल)। आदर सों, आदर के (गोपाल, सभा, भारत)। भौरै, मोरे (रत्ना, भारत)।

[१२८] करि, कै (गोपाल, सभा), दै (भारत)। दृढ़, डिढ (गोपाल)। कसि, गहि (सभा, भारत)। कंचुकी, किंकिनी (गोपाल, सभा)।

[१२९] डारि, वारि (रत्ना)। पीउ, पीर (गोपाल)।

[१३०] इत, इ (गोपाल)। दृगन के, दृगन सों (गोपाल)।

गणिका-खंडिता-उदाहरण (सवैया)

ह्याँ हमसौं मिलिबो ठहरायकै सैन कहूँ अनतैं ही करीजै।
भोरहिं आप बनायकै बातनि चातुर ह्वै बिनती बहु कीजै।
ऐसीहि रीति सदा *मतिराम* सु[1] कैसे पियारे जु प्रेम[2] पतीजै।
सौंहैं न खाइये जाइये ह्याँ ते न मानहुँ जो धन लाखन दीजै[3] ॥१३१॥

(दोहा)

कंत कहा सौंहन करौ जानि परयो अब नेह।
देन कह्यो सो बिन दियैं जान न पैहो गेह ॥१३२॥

कलहांतरितालक्षण

कह्यो न मानै कंत को पुनि पीछे पछिताय।
कलहंतरिता नायका ताहि कहत कबिराय ॥१३३॥

मुग्धा-कलहांतरिता-उदाहरण (सवैया)

गौने की चूनरी वैसिय है दुलही अबही से ढिठाई बगारी[4]।
वेऊ मनावन आए हैं आपन हाथ सौं जात न पाग सँवारी।
पाँइ परे *मतिराम* लला मनुहारि करी कर जोरि हहारी।
आप ही मान्यो मनायो न कान्ह को आप ही खात न पान पियारी॥१३४॥

(दोहा)

आई गौने कालि ही सीखी कहा सयान।
अबहीं तैं रूसन लगी अबहीं तैं पछितान ॥१३५॥

---

१ सो। २ प्रीति। ३ न मानिहौं तौहूँ जो लाखन दीजै। ४ बिगारी।

[१३१] सैन, रैंन (गोपाल)। ही करीजै, रसु लीजै (गोपाल)। ह्वै; यौं (गोपाल)। ऐसीहि ; अैसीयै (गोपाल, सभा, भारत)। पियारे जु, तुमे पिय (गोपाल)। जाइये, जाइयै जाइयै (गोपाल)। ह्याँ ते, ह्याति (गोपाल)। मानहुँ जो धन, मानिहौं जो अन्न (गोपाल), मनिहौं तौहूँ जो (सभा, भारत)।

[१३२] कंत; लाल (गोपाल)।

[१३३] पुनि, फिरि (गोपाल)। पीछे, पाछैं (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)।

[१३४] बिगारी, बिगारी (गोपाल)। हाथ सौं, हाथन (भारत)। जातन··· सँवारी; पाग न जाति सभारी (गोपाल); जात हैं पाग सँवारी (भारत)। मनुहारि; अनुहारी (भारत)।

मध्या-कलहांतरिता-उदाहरण (सवैया)

पाँयन आनि परे तो परे रहे केती करी मनुहारि न झेली[1]।
मान्यो मनायो न मैं *मतिराम* गुमान मैं ऐसी भई अलबेली।
प्यारो गयो दुख मान कहूँ अब कैसे रहूँ यहि राति अकेली।
आप २ते ल्याउ मनाय कन्हाई को मेरो न लीजियो नाम सहेली ॥१३६॥

(दोहा)

जो तू कहै तो राधिका[3] पियहि मनावन जाउँ।
वहाँ कहौंगी जायकै सखी तिहारो नाउँ ॥१३७॥

प्रौढा-कलहांतरिता-उदाहरण (सवैया)

ठाढ़े भए कर जोरिकै आगे अधीन ह्वै पाँयन[4] सीस नवायो।
केती करी बिनती *मतिराम* पै मैं न कियो हठ तैं मन भायो।
देखत ही सिगरी सजनी तुम मेरो तो मान महा मद छायो।
रूठि गयो उठि प्रानपियारो कहा कहिये तुमहूँ न मनायो ॥१३८॥

(दोहा)

पीतम जब पाँयन परयो तब अति भई सरोस।
कह्यो न मान्यो कंत[5] को हमैं दीजियतु दोस ॥१३९॥

परकीया-कलहांतरिता-उदाहरण (सवैया)

जाके लिये गृहकाज तज्यो न सिखी सखियान की सीख सिखाई।
वैर कियो सिगरे ब्रजगाम सौं जाके लिये कुलकानि गँमाई।
जाके लिये घर बाहरहूँ *मतिराम* रहे हँसि लोग लुगाई[6]।
ता हरि सौं हित एकहि बार गँवारि मैं तोरत बार न लाई ॥१४०॥

---

१ सहेली। २ आज तो। ३ राधिके। ४ पाँय को। ५ आपु ही। ६ चवाई।

[१३६] न झेली, सुहेली (सभा), सहेली (भारत)। यहि राति, इहाँ रैंन (गोपाल)। आप, आजु (भारत)।

[१३७] जो तू, तू जौ (गोपाल)। राधिका, राधिके (भारत)। जायकै; जाइ हौं (सभा)।

[१३८] प्रानपियारो, प्राणपियासु (गोपाल)।

[१३९] कंत को, आपुही (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)।

[१४०] न, नहीं (गोपाल)। सखियान, सखीन (गोपाल)। लुगाई; चवाई (गोपाल, सभा, भारत)।

(दोहा)

जोरतहू सजनी बिपति तोरत बिपति[1] समाज ।
नेह कियो बिन काज पुनि[2] नेह कियो बिन[3] काज ॥१४१॥

गणिका-कलहांतरिता-उदाहरण (सवैया)

जाते लही जगबीच बड़ाई मैं मेरे बियोग जो होत है छीनो ।
मोहि गिने *मतिराम* जो प्रान सो मेरे सदा हीं रहे जो अधीनो ।
मेरे लिये नित ही उठिकै गहनों जु गढ़ायकै लावे नवीनो ।
प्रानपियारो सो पाइन लाग्यो री मैं हँसि[4] कंठ लगाइ न लीनो ॥१४२॥

(दोहा)

जासों कियो सनेह मन रही न एको साध ।
तासों भई सरोस हौं सजनी बिन अपराध ॥१४३॥

विप्रलब्धा-लक्षण

मिलन आस करि जाय तिय मिले न पिय संकेत ।
बिप्रलब्ध सो जानिये बिरहबिकल बिन चेत[5] ॥१४४॥

---

१ तपत । २ ही । ३ फिन । ४ भरि ।
५ (क) आप जाय संकेत मैं मिलै न जाको पीय ।
ताहि बिप्रलब्धा कहत सोच करत अति जीय ॥
(ख) लखै न पियहि सहेट मैं होइ बिकल जो बाल ।
बिप्रलब्ध तासों कहैं जे कबि सुमति-रसाल ॥

[१४१] बिपति समाज; तपत समाज (गोपाल, सभा, भारत) । पुनि, ही (भारत) । नेह; नेहु (गोपाल) ।

[१४२] बीच; माझ (गोपाल) । बड़ाई, बड़ा (गोपाल) । जो, मैं (गोपाल) । सो, और (गोपाल) । सो, जो (गोपाल); रहै (रत्ना); कै (सभा) । सदा हीं, सदाई (गोपाल) ।

[१४४] यह छंद केवल 'रत्ना' में है । इसके स्थान पर 'सभा' तथा 'भारत' में टिप्पणी का ५ (क) छंद है और 'गोपाल' में ५ (ख) संख्यक छंद ।

मुग्धा-विप्रलब्धा-उदाहरण (सवैया)

आलिन को सुख मानिबे कौं पियप्यारे की सेज[1] गई चलि बागै।
छाय रह्यो हियरा दुख सौं जब देख न हाँ नँदलाल सभागै।
काहू सौं बोल कछू न कह्यो *मतिराम* न चित्त कहूँ अनुरागै।
खेलति खेल सहेलिन मैं पर खेल नवेली कौं जेल[2] सौं लागै ॥१४५॥

(दोहा)

लख्यो न कंत सहेट मैं लख्यो नखत को राय।
नवल बाल को कमल सौं गयो बदन कुँभिलाय ॥१४६॥

मध्या विप्रलब्धा-उदाहरण (सवैया)

केलि के मंदिर देखो न लाल को बाल के दाहन अंग दहे हैं।
भौंह चढ़ाय सखी सो लख्यो[3] *मतिराम* कछू न कुबोल कहे हैं।
भूलि हुलास विलास गए दुख तैं भरिकै अँसुवा उमहे हैं।
ईछनछोरन तैं न गिरे मनौं तीछन छोरन[4] छेद रहे हैं ॥१४७॥

(दोहा)

तिय को मिलो न प्रानप्रिय[5] सजल जलद तन मैन।
सजल जलद लखिकै भए सजल जलद-से[6] नैन ॥१४८॥

प्रौढा विप्रलब्धा-उदाहरण (कवित्त)

साँझ ही[7] सिंगार साजि संग लै सहेलिन कौं
सुंदरि मिलन चली आनँद के कंद कौं।
कबि *मतिराम* मग करति मनोरथनि
पेख्यो परजंक पै न प्यारे नँदनंद कौं।

---

१ प्रीति। २ सेल। ३ सखीन लख्यो। ४ कोरन। ५ पति। ६ तिय। ७ सकल।

[१४५] सेज, प्रीति (गोपाल, सभा, भारत)। न हाँ, नहीं (गोपाल, भारत)। जेल, डेल (गोपाल), सेल (रत्ना, भारत), जेलु (सभा)।

[१४७] सो, कौं (गोपाल)। दुख तैं, दुख सौं (गोपाल)। छोरन, कोरन (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)।

[१४८] प्रिय, पति (गोपाल, सभा, भारत), पिय (रत्ना)। से, तिय (रत्ना)।

नेह ते लगी है देह दाहन दहत गेह
बाग[1] कौं बिलोकि द्रुम बेलिन के बृंद कौं।
चंद को हँसत तब आयो मुखचंद अब
चंद लाग्यो हँसन तिया के मुखचंद कौं ॥१४६॥

(दोहा)

लख्यो न मंदिर केलि के पिय रुचि-बिजित अनंग।
नैनकरन तैं जल-बलय गिरे एक ही संग ॥१५०॥

परकीया-विप्रलब्धा-उदाहरण (कबित्त)

चली *मतिराम* प्रानप्यारे को मिलन घात
नैसुक निहारिकै बिसारि काज घर को।
पियरो बदन दुख हियरे समाय रह्यो
कुंजन मैं भयो न मिलापु गिरिधर को।
बिसरे बिलासु वे बिलाय गयो हासु छायो[2]
सुंदरि के तन मैं प्रताप पंचसर को।
तीछन जुन्हाई भई ग्रीषम को घाम भयो
भीसम पियूषभानु[3] भानु दुपहर को ॥१५१॥

(दोहा)

तची भूमि अति जोन्ह सौं झरे कुंज तैं फूल।
तुम बिन वाको बन भयो खडगपत्र के तूल ॥१५२॥

---

१ बाल। २ सोह्यो। ३ पियूषमान।

[१४६] साँझ ही, सकल (गोपाल, रत्ना, सभा)। सहेलिन; सहेलि (गोपाल)। मग, मन (रत्ना), बाल (भारत)। पेख्यो, देख्यौ (गोपाल)। ते, सौं (गोपाल)। दाहन दहत, दाहन दहन (गोपाल, रत्ना, सभा); दारुण गहन (भारत)। बिलोकि द्रुम, बिलोकत ही (गोपाल)।

[१५१] बिसारि, बिगारि (भारत)। कुजन में, कुज मैं न (गोपाल)। वे, और (गोपाल)। तीछन, छीन (सभा)। पियूषभानु भानु; पयूष मानो भानु (गोपाल), पियूष भानु (रत्ना)।

[१५२] तची……जोन्ह सों, तपी जोन्हि सौं भूमि (सभा), तची जोन्हि सौं भूमि अति (भारत)। झरे, धरे (रत्ना)। तैं, के (सभा, भारत)। तुम, सुमति (सभा)। खडगपत्र, खड्गपंथ (सभा)।

* यह छंद 'गोपाल' में नहीं है।

मध्या-उत्कंठिता-उदाहरण (सवैया)

बारहि बार बिलोकति द्वारहि चौंकि परै तिनके खरके हूँ।
सेज परी *मतिराम* बिसूरति आई अहो[1] अबही लखि मैं हूँ।
संग सखान के खेलत हौ अजहूँ रजनीपति के अथए हूँ।
लालन बेगि न जाहु घरै पुनि[2] बाल न मानिहै पाँय परे हूँ ॥१५९॥

(दोहा)

कहाँ रहो आयो, सखी पीय पहर जुग मैन।
अधनिकरे अखरानि सौं बालबदन तैं बैन ॥१६०॥

प्रौढा-उत्कंठिता-उदाहरण (सवैया)

कैयो घरी निसि बीति गई अरु मेह चहूँ दिसि आयो[3] उनैहै।
अंग सिँगार कै बैठी है, साँवरे रावरो[4] बाट बिलोकति ह्वैहै।
बैठे कहा *मतिराम* रसाल हो राति मनावत ही पुनि[5] जैहै।
जाहु न बेगि तिहारी पियारी सु दोसु बिहारी हमैं पुनि[6] दैहै ॥१६१॥

[7](दोहा)

पीव न आयो ध्यानकै मूँदे लोचन बाल।
पलक उघारी पलक मैं आयो होय न लाल ॥१६२॥

---

१ अली। २ फिरि। ३ आए। ४ तेरियै। ५ चलि। ६ बहु। ७ तहाँ।

[१५९] अहो; इहाँ (गोपाल), अली (भारत)। अबही; अजहूँ (गोपाल)। सखान, सखीन (सभा)। अथए, अपने (गोपाल)। न जाहु; दे जाउ (गोपाल)। पुनि; फिरि (सभा)।

[१६०] सखी, नहीं (गोपाल), नखि (सभा)। जुग, जुन (गोपाल)। अखरानि सौं; अखरा कढ़ें (गोपाल), अखरान सौं (सभा, भारत)।

[१६१] कै बैठी है, सवारि कैं (गोपाल); सिँगार कै (भारत)। साँवरे; सामरे (गोपाल)। ह्वैहै, अैहै (गोपाल)। हो; ह्याँ (गोपाल)।

[१६२] कै; मैं (गोपाल, रत्ना), कौं (भारत)। मूँदे; मूलै (सभा)। पलक, पल पलक (गोपाल)।

परकीया-उत्कंठिता-उदाहरण (कवित्त)

जमुना के तीर बहै सीतल समीर जहाँ[७]
मधुकर करत मधुर मंद सोर हैं।
कवि *मतिराम* तहाँ छबि सौं छबीली बैठी
अंगन तैं फैलत सुगंध के झकोर हैं।
पीतम बिहारी की निहारिबे को बाट ऐसी
चहूँ ओर दीरघ दृगन करि दौर हैं।
एक ओर मीन मनौं एक ओर कंजपुंज
एक ओर खंजन चकोर एक ओर हैं ॥१६३॥

(दोहा)

कंत[1] बाट लखि गेह कौं कुंज देहरी आय।
ऐहैं पीव बिचारि यौं नारि फेर फिरि जाय ॥१६४॥

गणिका-उत्कंठिता-उदाहरण (सवैया)

पीतम को धरि ध्यान घरीक करे मन ही मन काम किलोलैं।
पातहु के खरकैं *मतिराम* अचानक ही अँखियाँ[2] पुनि खोलैं।
पीतम ऐहैं अजो सजनी अँगराय जँभाय घरीक यौं बोलैं।
गावे घरीक गरे ही हरे हरे गेह के बाग हरे हरे डोलैं ॥१६५॥

(दोहा)

बारबधू पियपंथ लखि अँगरानी अँग मोरि।
पौढ़ि रही परजंक जनु[3] डारी मदन मरोरि ॥१६६॥

---

१ कंत बाट लखि कुंज ते गेह देहरी आय।
प्यो आयो ह्वैहै समुझि नारि फेरि फिरि जाय ॥
२ पलकैं। ३ मनु।

[१६३] मधुकर······सोर हैं, मधुकुर मधुप करत मंद सोर हैं (गोपाल); मधुकर मधु करत मंद सोर जहाँ (सभा)। ओर, दिस (गोपाल)।

[१६४] कौं; तैं (गोपाल, रत्ना)। यौं, इह (गोपाल)।

[१६५] धरि, करै (गोपाल)। अँखियाँ, पलकैं (गोपाल)। अँगराय; अधिकाइ (गोपाल)। यौं; मैं (गोपाल)। घरीक······हरे हरे; घरीक घरीक हँसैं हरे (गोपाल), घरीक गरै ही हरैं (सभा); घरीकु हरेही हरे हरि (भारत)।

[१६६] जनु, पर (गोपाल), मनु (भारत)।

बासकसज्जालक्षण

ऐहैं प्रीतम आजु यौं[1] निस्चय जाने बाम।
साजे सेज सिँगार सुख[2] बासक सज्जानाम ॥१६७॥

मुग्धा-बासकसज्जा-उदाहरण (कबित्त)

भई हौ सयानी तरुनाई सरसानी प्रीति
प्रीतम पत्यानी दूरि लाज उर नाखियो।
कबि *मतिराम* काम केलि की कलानि करि
मोहन लला को बास कीबो अभिलाखियो।
मृदु मुसकाय परजंक मैं निसंक जाय
अंक भरि आनँद अधरसुधा[3] चाखियो।
नेवर की झनक झनक राखि प्यारी आजु
रसना की झनक तनक रस राखियो ॥१६८॥

(दोहा)

डीठि बचाय सखीन की केलिभवन मैं जाय।
पौढ़ि रहे छिन सेज मैं[4] तिय[5] आनँद अधिकाय ॥१६९॥

मध्या-बासकसज्जा-उदाहरण (कबित्त)

केसरि कनक कहा चंपक बनक कहा
दामिनी यौं दुरि जात देह की दमक तैं।
कबि *मतिराम* लोने लोचन लपेट लाज
अरुन कपोल काम तेज की तमक तैं।

---

१ ही। २ सखि। ३ रस। ४ तिय। ५ अति।

[१६७] सुख, यौं (गोपाल), सखि (भारत)।

[१६८] प्रीतम, पीतमैं (सभा), रीति मैं (भारत)। दूरि······नाखियो; डरु लाज दुरि राषियौ (गोपाल), दूरि लाज डर नाखियौ (रत्ना), उर लाज डर नाषियौ (सभा, भारत)। अभिलाखियो; अभिलाष यौं (गोपाल)। मैं, पै (गोपाल)। सुधा, रस (सभा, भारत)। झनक झनक; तनक झनक (गोपाल, सभा, भारत); झनक भनक (रत्ना)। राखि प्यारी, रति प्यारी (रत्ना), रसु राषि (सभा)। झनक तनक, तनक झनक (गोपाल, सभा, भारत)।

[१६९] छिन सेज; परजंग (सभा)।

पग के धरत कल किंकिनी नूपुर[1] बजे
बिछिया भनक उठै एक ही झमक[2] तैं।
नाहसुख चाहि चित औंचक हँसति चौंक
परै चंदमुखी निज चौका की चमक तैं ॥१७०॥

(दोहा)

निसि नियराति निहारियति सोतिवदन अरबिंदु।
सखी एक यह देखिये तेरो आनन इंदु ॥१७१॥

प्रौढ़ा-वासकसज्जा-उदाहरण (सवैया)

बारनि धूपि अँगारनि धूप कै धूम अँध्यारी पसारी महा है।
आननचंद समान उगो[3] मृदु मंद हँसी जनो जोन्हछटा है।
फैलि रही *मतिराम* जहाँ तहाँ दीपति दीपनि[4] की परभा है।
लाल तिहारे मिलाप को[5] बाल ने आजु[6] करी दिन मैं ही निसा है ॥१७२॥

(दोहा)

सब सिंगार सुंदरि सजै बैठी सेज बिछाय।
भयो द्रौपदी को बसनु बासर नाहिँ बिहाय ॥१७३॥

---

१ नवर। २ जमक। ३ उयो। ४ सुनारन। ५ सु। ६ मानो।

[१७०] बनक, बरन (गोपाल, सभा, भारत)। तमक; तम (सभा)। नूपुर, नेवर (गोपाल, भारत), मेवर (सभा), झमकि (रत्ना)। बिछिया, बिझवा (सभा)। भनक, झनक (गोपाल, रत्ना, सभा)। हँसति, हसति परि (गोपाल), हँसति प्यारी (सभा)। चौंक; चौंकि (गोपाल); चोकी (सभा)। निज चौका, चोका (गोपाल, सभा)।

[१७१] आनन इंदु, पूरन चंद (गोपाल)।

[१७२] धूम; धूप (गोपाल, रत्ना, भारत)। उगो; उदो (गोपाल); उयौ (रत्ना); उयो (सभा), उग्यो (भारत)। मृदु; मृग (गोपाल)। जनो, मनौ (गोपाल), जनु (रत्ना, सभा, भारत)। छटा, छहा (गोपाल)। दीपति दीपनि, दीप सुतारन (भारत)। ने, सु (गोपाल, सभा, भारत)। मैं ही; मैं (गोपाल, रत्ना, भारत); रही मै (सभा)।

[१७३] सुंदरि, सुंदर (गोपाल)। नाहिँ, हूत (गोपाल)।

परकीया-बासकसज्जा-उदाहरण (सवैया)

साँझ ही तेँ करि राखे सबै करिबे के जे काज हुते रजनी के।
पौढ़ि रही उमगी अति ही *मतिराम* अनंद अमात न जी[1] के।
सोवत जानिकै लोग सबै अधिकाने मिलाप[2] मनोरथ पी के[3]।
सेज ते बाल[4] उठी हरुए हरुए पट खोल दिये खिरकी के ॥१७४॥

(दोहा)

मनमोहन के मिलन को करै मनोरथ[5] नारि।
धरै पौन के सामुहैँ दियो भौन[6] को बारि ॥१७५॥

सामान्या-बासकसज्जा-उदाहरण (कबित्त)

सेत सारी सोहत उजारी मुखचंद की सी
महलनि मंद मुसक्यान की महमही।
अँगिया के ऊपर है[7] उलही उरोज-ओप
उर *मतिराम* माल मालती डहडही।
माँजे मंजु मुकुर-से मंजुल कपोल गोल
गोरी की गुराई गोरे गातन गहगही।
फूलनि की सेज बैठी दीपति फैलाय लाय
बेला को फुलेल फूली बेलि-सी लहलही ॥१७६॥

---

१ ही। २ बिलास। ३ नीके। ४ नारि। ५ करि मनोरथनि।
६ भवन। ७ है।

[१७४] जी, ही (गोपाल, सभा, भारत)। मिलाप; बिलास (भारत)। पी के; नीके (रत्ना, भारत)।

[१७५] मनमोहन, मनभामन (गोपाल)। भौन; भोन (गोपाल); पवन (सभा); भवन (भारत)। को; मैं (गोपाल)।

[१७६] महमही; महामही (भारत)। ऊपर; ऊपर (सभा)। है, है (गोपाल)। उर, और (गोपाल)। डहडही; डहाडही (भारत)। माँजे मंजु मुकुर; मजे मंजु आरसी (गोपाल)। गातन; गान (सभा)। गहगही; महागही (भारत)। लहलही; लहालही (भारत)।

(दोहा)

सुंदरि सेज सँवारिकै साजे सकल[1] सिँगार।
दृगकमलन के द्वार पै बाँधे बंदनवार ॥१७७॥

स्वाधीनपतिकालक्षण

सदा रूपगुन रीझि पिय जाके रहे अधीन।
स्वाधीनैपतिका[2] तियै बरनत कबि परबीन ॥१७८॥

मुग्धा-स्वाधीनपतिका-उदाहरण (सवैया)

आपने हाथ सौं देत महावर आप ही बार सँवारत[3] नीके।
आपुन ही पहिरावत आनिकै हार सँवारिकै मौरसिरी[4] के।
हौं सखि लाजनि जात मरी[5] *मतिराम* सुभाव कहा कहौं पी के।
लोग मिलैं घर घैरु करैं अबही ते ये चेरे भए दुलही के ॥१७९॥

(दोहा)

अंग अंग अवलोकिकै तिय जोबन की जोति।
सुधासिंधु अवगाहजुत डीठ नाह की होति ॥१८०॥

---

१ शकल। २ स्वाधीनपतिका नायिका। ३ सिंगारत। ४ मौलसिरी। ५ गड़ी।

[१७७] सँवारि, सिगारि (गोपाल)। पै; पर (गोपाल), मैं (सभा, भारत)। बंदनवार, बंधनवार (सभा)।

[१७८] स्वाधीनैपतिका तियै; स्वाधीनपतिका ताहि कौं (गोपाल); स्वाधिन-पतिका नायिका (रत्ना, सभा, भारत)।

[१७९] सँवारत, सभारत (गोपाल); सिंगारत (भारत)। सँवारि; नवाइ (गोपाल)। मौरसिरी; मौरछली (गोपाल), मौलसिरी (रत्ना, सभा, भारत)। मरी; गड़ी (गोपाल, भारत)। मिलैं, सबै (गोपाल)। घर घैरु करैं; घरु घेरु करैं (गोपाल); घर घेर करैं (सभा); घर घेरे कहैं (भारत)।

[१८०] अवलोकिकै······जोबन; अवलोकियत तिय के वदन (गोपाल)। डीठ; दीठि (रत्ना, भारत)।

मध्या-स्वाधीनपतिका उदाहरण (कबित्त)

जगमगे जोबन अनूप तेरो रूप चाहि
रति ऐसी रंभा-सी रमा-सी बिसराइये।
देखिबे को प्रानप्यारी पास खरो प्रानप्यारो
घूँघट उघारि नैक बदन दिखाइये।
तेरे अंग अंग मैं मिठाई औ लुनाई भरी
मतिराम सुकबि[1] प्रगट यह पाइये।
नायक के नैनन मैं नाइये सुधा-सी सब
सौतिन के लोचनन लोन-सो लगाइये ॥१८१॥

(दोहा)

बड़े आपने दृगन कौं तुम कहि सकौ सुमैन।
प्रियनैनन भीतर सदा बसत तिहारे नैन ॥१८२॥

प्रौढा-स्वाधीनपतिका-उदाहरण (सवैया)

लालन मैं रतिनायक तैं सुभ[2] सुंदरता रुचि कुंजन पेखी।
बाल मैं त्यौं *मतिराम* कहै रति तैं अति रूपकला अवरेखी।
सामुहि बैठि लखै इक सेज मैं बोल अली सुख[3] प्रीति बिसेखी।
भाल मैं तेरे लिखी बिधि सो यह लाल की मूरति लाल मैं देखी ॥१८३॥

(दोहा)

सुधा-मधुर तेरे अधर सुंदर सुमन सुगंध।
पीय जीव को बंध यह बंधुजीव को बंध ॥१८४॥

---

१ कहत। २ सुख। ३ मृदु।

[१८१] प्रानप्यारी; प्रानप्यारौ (गोपाल)। पास; साथ (गोपाल)। प्रानप्यारो, प्रानप्यारी (गोपाल)। दिखाइये; दिषराइयै (गोपाल)। औ; यौं (गोपाल)। सुकबि; कहत (सभा, भारत)। लोचनन; आँखिन मैं (गोपाल), लोचन मि (सभा)।

[१८२] दृगन कौं; दृग कहौ (गोपाल); दगनि कौं (सभा)।

[१८३] सुभ, सुख (भारत)। कुंजन; पुजन (गोपाल); पुंजनि (सभा, भारत)। बाल मैं, बालम (गोपाल)। बोल, बोली (गोपाल, सभा, भारत)। सुख; सुष (गोपाल)। लाल की; लाज की(सभा)।

[१८४] सुमन; फलन (गोपाल)। बंध; बंधु (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)। यह; इह (गोपाल); है (सभा, भारत)। बंध; बंधु (सभा)।

परकीया-स्वाधीनपतिका-उदाहरण (सवैया)

मो जुग नैन चकोरन कौं यह रावरो रूपसुधा ही को नैबो।
कीजै कहा कुलकानि तें आनि परयो अब आपनो प्रेम छिपैबो।
कुंजनि मैं *मतिराम* कहूँ निसि द्योसहू घात परैं मिलि जैबो।
लाल सयानी सखीन[1] के बीच निवारियेछाँ की गलीन को ऐबो॥१८५॥

(दोहा)

बिषम लोग ब्रजगाम के लाल बिलोको बास।
बढ़ि जैहै इन दृगन के हाँसहि[2] ते उपहास॥१८६॥

सामान्या स्वाधीनपतिका-उदाहरण (सवैया)

बारन बार सँवारि सिँगारत मोतिन हार धरैं तन गोरैं।
पाँइ महावर देत बनाय यों बेनी बनावत नेह निहोरैं।
यों रसलीन रहै नित ही बस औरन सों दृग नाहन जोरैं।
लाज गिनै नहिँ लोगन की पिय पाँइ परे धन देत करोरैं॥१८७॥*

(दोहा)

छाँडि सबै सुधि सदन की रहत मदनबस लीन।
मोही कौं धन देत हैं पिय सुजान परबीन॥१८८॥

---

१ अलीन। २ हाँसी ही।

*वेंकटेश्वर प्रेसवाले 'रसराज' में यह छंद दिया है—

भूषन अंबर लावत आपु रहै पहिरावन को मुख हेरे।
आप ही पान खवावत आनि सहेली न आवन पावत नेरे।
ता पिय सों रिस कैसे करौं *मतिराम* कहै सिखए सखि तेरे।
पूरि रहे मनभावन के गुन मान को ठौर नहीं मन मेरे॥

[१८५] सुधा······नैबौ, सुधा को अचैबो (गोपाल)। तें, कैं (रत्ना)। कहूँ, कहैं (गोपाल)। द्योसहु; बासर (गोपाल)। सखीन, अलीन (गोपाल, सभा, भारत)।

[१८६] हाँसहि ते; हास इतै (गोपाल); हासहिँ कैं (रत्ना); हाँसनि ते (भारत)।

[१८७] इस छंद के स्थान पर पादटिप्पणी में उद्धृत छंद 'गोपाल', 'रत्ना', 'सभा' तथा 'भारत' की प्रतियों में है।

[१८८] छाँडि, छोड़ि (रत्ना)। 'गोपाल', 'सभा', और 'भारत' में यह छंद नहीं है।

मोहि लगो सजनी भलो जाको धन मन प्रान।
सपनेहू ता पीय सों मान भलो न सयान ॥१८६॥

अभिसारिकालक्षण

पियहि बुलावै आप कै आपहि पिय पै जाय।
ताहि कहत अभिसारिका जे प्रबीन कबिराय ॥१९०॥

मुग्धा-अभिसारिका-उदाहरण (सवैया)

बातन जाय लगाय लई रस ही रस के मन हाथ के[1] लीनो।
लाल तिहारे बुलावने को *मतिराम* मैं बोल कह्यो परबीनो।
बेग चलौ न बिलंब करौ लखि बाल नवेली को नेह नबीनो।
लाजभरी अँखियाँ बिहँसीं चली[2] बोल कह्यो[3] बिन ऊतरु दीनो॥१९१॥

(दोहा)

चली अली नवलाहिँ लै पिय पै साजि सिँगार।
ज्यों मतंग अँडदार को लिये जात गँडदार ॥१९२॥

मध्या-अभिसारिका-उदाहरण (सवैया)

बैठि रहे *मतिराम* लला घर भीतर साँझहि तैं अनुरागी।
बानिक सों बनि चारु सिँगारनि आई सुहागिनि प्रेम सों पागी।
प्यारे कह्यो हँसि आइहि[4] सेजहि प्यारी की जोति बिलासनि जागी।
नैन नवाय रही मुसकायकै हार हिये को सँवारन लागी ॥१९३॥

---

१ का। २ बलि। ३ हे। ४ आइए।

[१८६] लगो; लषै (सभा), लखे (भारत)। सजनी, सनी (सभा)। भलो, बहाँ (गोपाल); सदा (सभा, भारत)।

[१९०] कै; पै (गोपाल, रत्ना, सभा)। आपहि······जाय; पिय पै आपु न जाइ (गोपाल); पिय पै आपहि जाइ (सभा, भारत)।

[१९१] रस ही रस, मिस ही मिस (गोपाल)। बुलावने; बुलामन (गोपाल)। बिहँसीं; बिलसी (गोपाल)। चली; बलि (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)।

[१९३] सुहागिनि, सुहागिल (गोपाल)। हार हिये को सँवारन; सुवाती दिया की सभारन (गोपाल)।

(दोहा)

जोबन - मद्गज मंद गति चली बाल पिय[1] - गेह।
पगनि लाज - आँदू[2] परी चढ़्यो[3] महावत - नेह ॥१६४॥

प्रौढ़ा-अभिसारिका-उदाहरण (कबित्त)

सहज सुबासजुत देह की दुगुनि दुति
दामिनी दमक दीप केसरि कनक तैं।
मतिराम सुकबि सरस[4] सुकुमार अंग
सोहत सिँगारु चारु जोबन - बनक तैं।
सोइबे को सेज चली प्रानपति प्यारे पास
जगत जुन्हाई जोति हँसन तनक तैं।
चढ़त अटारी गुरु लोगन की लाज प्यारी
रसना दसन दाबै रसना - झनक तैं ॥१६५॥

(दोहा)

सजि सिँगार सेजहि चली बाल प्रानपति[5] प्रान।
चढ़त अटारी की सिढ़ी भई कोस परमान ॥१६६॥

परकीया-कृष्णाभिसारिका-उदाहरण (कबित्त)

उमड़ि घुमड़ि दिगमंडल मंडि रहे
झूमि झूमि बादर कुहू की निसि कारी मैं।
अंगनि मैं कीनो मृगमद अंगराग तैसो
आनन ओढ़ाय लीनो स्याम रंग सारी मैं।
मतिराम सुकबि मेचक रुचि राजि रही
आभरन राजी मरकत मनिवारी मैं।

---

१ पति। २ साँकर। ३ चढी। ४ सुमुखि, सिरीष। ५ बहाँ पति।

[१६४] मदगज, गजमद (गोपाल)। पिय, पति (गोपाल, भारत)। आँदू; साँकर (भारत)।

[१६५] केसरि; केसरी (सभा)। सरस, सिरीष (गोपाल, सभा, भारत)। बनक, जमक (गोपाल)।

[१६६] प्रानपति; बहाँ पति (भारत)।

[१६७] ओढ़ाय; बढ़ाइ (गोपाल), दुराइ (रत्ना)। रंग; अंग (गोपाल)। मेचक, सुस्याम (गोपाल)। राजि, राज (गोपाल, सभा)।

मोहन छबीले को मिलन चली ऐसी छबि
छाँह लौं छबीली छबि छाजत अँध्यारी मैं ॥१९७॥

(दोहा)

स्याम बसन मैं स्याम निसि दुरी न तिय को देह।
पहुँचाई चहुँ ओर घिरि[1] भौंरभीर पियगेह ॥१९८॥

चंद्राभिसारिका- उदाहरण (कबित्त)

अंगन मैं चंदन चढ़ाय घनसार सेत
सारी छीरफेन की सी आभा उफनाति है।
राजत रुचिर रुचि[2] मोतिन के आभरन
कुसुमकलित केस सोभा सरसाति है।
कबि *मतिराम* प्रानप्यारे सौं मिलन जात
करिकै मनोरथनि मृदु मुसकाति है।
होति न लखाई निसिचंद की उज्यारी मुख-
चंद की उज्यारी तन छाँहौं छिपि जाति है ॥१९९॥

(दोहा)

मलिन करी छबि जोन्ह की तन छबि सौं बलि[3] जाउँ।
क्यों जैहौं[4] पिय पै सखी लखि जैहै सब गाउँ ॥२००॥

परकीया दिवाभिसारिका-उदाहरण (कबित्त)

सारी जरतारी की झलक झलकति तैसी
केसरि को अंगराग कीनो सब तन मैं।
तीखन तरनि के किरन तैं दुगुन जोति
जगत[5] जवाहर - जटित आभरन मैं।

---

१ मिलि। २ सुचि। ३ चलि। ४ को जैहै। ५ सोहत।

राजी...मनिवारी, साजि नीलकातमनवारी (गोपाल)। को; सौं (गोपाल)। छाजत, अधिक (गोपाल)।

[१९८] बसन, बरण (गोपाल)। घिरि, घरि (गोपाल), मिलि (भारत)।

[१९९] अंगन मैं......घनसार, अंगन सम्रन घनसार अंगराग (गोपाल); अंगनि चदन घनसार अंगरात (भारत)। आभा, साभा (गोपाल)। सौं, कौं (गोपाल), कौं (सभा, भारत)। जात; चली (गोपाल, सभा, भारत)।

[२००] सौं, की (गोपाल); सौ (रत्ना)। बलि, चलि (भारत)। क्यों; को (भारत)।

कबि *मतिराम* आभा अंगनि अँगारनि की
धूम की सी धार छबि छाजति कचन[1] मैं।
ग्रीषम-दुपहरी मैं हरि कौं मिलन जात
जानी जात नारि न दवारिजुन[2] बन मैं ॥२०१॥

(दोहा)

ग्रीपम ऋतु की दुपहरी चली बाल बनकुंज।
अंग लपटि[3] तीछन लुएँ मलय पवन के पुंज ॥२०२॥

सामान्या-अभिसारिका-उदाहरण (कबित्त)

साँझि ही सिँगार साजि प्रानप्यारे पास जाति
बनिता बनिक बनी बेलि-सी अनंद की।
कबि *मतिराम* कलकिंकिनी की धुनि बाजै
मंद मंद चलनि[4] बिराजति गयंद की।
केसरि रँग्यो दुकूल हाँसी मैं झरति फूल
केसनि मैं छाई छबि फूलन के बृंद की।
पीछे पीछे आवति अँधेरी-सी भँवरभीर
आगे आगे फैलति उजारी मुखचंद की ॥२०३॥

---

१ कुचन। २ जाता। ३ आगि लपट। ४ चाल ज्यौं।

[२०१] तैसी; तैसो (गोपाल, सभा); जैसी (भारत)। अंगराग, अंगरंग (भारत)। कीनो; रग्यो (गोपाल); कीन्हौं (सभा)। तीखन; तिष्षिन (गोपाल), छीनत (सभा)। जोति, दुति (गोपाल)। जगत, जागति (रत्ना)। अँगारनि की, अगार कैसी (गोपाल)। धार, धारा (सभा, भारत)। कचन, कुचन (भारत)। जात; चली (गोपाल, सभा)। बन, बनि (भारत)।

[२०२] अंग लपटि, आगलपट (गोपाल), आगिलपट (रत्ना, सभा, भारत)। लुएँ, लगै (गोपाल)।

[२०३] पास, पारा (सभा)। सी; ज्यौं (सभा)। अनद, अनंग (गोपाल)। चलनि, चाल ज्यौं (सभा)। फूल, फूलनि (सभा)। फूलन; फूललि (सभा)।

(दोहा)

नागरि सकल[1] सिंगार सजि चली प्रानपति पास।
बाढ़ि चली बिहसनि मनौ सोभा सहज[2] बिलास ॥२०४॥

प्रवत्स्यत्प्रेयसी लक्षण

होनहार पिय के बिरह बिकल होय जो बाल।
ताहि प्रवच्छुतिप्रेयसी[3] बरनत बुद्धि-बिसाल ॥२०५॥

मुग्धा-प्रवत्स्यत्प्रेयसी-उदाहरण (कवित्त)

जा दिन तैं चलिबे की चरचा चलाई तुम
ता दिन तैं वाके पियराई तन छाई है।
कहै *मतिराम* छोड़े भूषन बसन पान
सखिन सौं खेलनि हँसनि बिसराई है।
आई ऋतु सुरभि सुहाई प्रीति वाके चित्त
ऐसे मैं चलौ तो लाल रावरी बड़ाई है।
सोवत न रैन दिन रोवत रहति बाल
बूझे तैं कहति मायके की सुधि आई है ॥२०६॥

(दोहा)

क्यौं सहिहै सुकुमारि वह पहलो बिरह गुपाल।
जब वाके चित हित भयो चलन लगे तब लाल ॥२०७॥

मध्या-प्रवत्स्यत्प्रेयसी-उदाहरण (सवैया)

गौने के द्योस छुसातक बीते न चौथी कहा अबहीं चलि[4] आई।
लालन बाल कैं ताछिन मैं *मतिराम* परी मुख पै पियराई।
तू न बहू को पठाय अली[5] यह देख दुहूँन की प्रीति सुहाई।
रोए-से लोचन रोचन मोए-से सोए न सोचन रैन[6] बिताई ॥२०८॥

---

१ शकल। २ बारिधि बीचि। ३ प्रवत्स्यत्प्रेयसी। ४ इत। ५ अरी, सखी। ६ राति।

[२०४] सजि, करि (गोपाल, सभा, भारत)। सोभा सहज बिलास; सोभा सहस सुबास (गोपाल); बारिधि-बीचि-बिलास (रत्ना); सोभा सहज सुभाव (सभा); सोभा सहज सुबास (भारत)।

[२०६] सुहाई; सुदाई (सभा)। बूझे, पूछे (गोपाल), बूझ (सभा)।

[२०८] द्योस, द्वैस (गोपाल)। चलि, इत (सभा)। मैं, ते (गोपाल)। मुख पै; तन मैं (गोपाल), मुख मैं (सभा, भारत)। अली; अरी (गोपाल, भारत)। मोए; मोहे (गोपाल)। रैन, राति (गोपाल, सभा, भारत)।

(दोहा)

अबहीं लै मिलि मोहि सखि चलत आज ब्रजराज।
अँसुवन राखति रोकिकै जियहि निकासति लाज ॥२०९॥

प्रौढ़ा-प्रवत्स्यत्प्रेयसी-उदाहरण (कबित्त)

मलय समीर लागो चलन सुगंध सीरो
पथिकन कीने परदेसन तें आवने।
मतिराम सुकबि समूहनि सुमन फूले
कोकिल मधुप लागे बोलन सुहावने।
आयो है बसंत भए पल्लवित जलजात
तुम लागे चलिबे की चरचा चलावने।
रावरी तिया को तरवर सरवरन के
किसलै ! कमल ह्वैहैं बारक बिछावने ॥२१०॥

(दोहा)

कौंपनि तैं किसलैं जबै होय कलिन तैं कौल।
तबहीं चलियो[1] चलन की चरचा नायक नौल ॥२११॥

परकीया-प्रवत्स्यत्प्रेयसी-उदाहरण (कबित्त)

मोहन लला को सुन्यो चलनि बिदेस भयो
बाल मोहनी को[2] चित निपट उचाट मैं।
परी तलाबेली तन मन मैं छबीली राखै
छिति पर छिनकु छिनकु पाँव खाट मैं।

---

१ तब चलाइयो। २ मोहनी को चारु।

[२०९] कै; हौं (सभा), है (भारत)।

[२१०] चलन, चलत (गोपाल)। सुमन, सुबन (गोपाल)। जलजात; जलत (गोपाल)।

[२११] तबहिं चलियो; तब चलाइयै (गोपाल); तब चलाइयो (रत्ना, भारत); तब चाइए (सभा)। नायक, नागर (भारत)।

[२१२] बाल मोहनी को, तब तैं तिया को (गोपाल), मोहनी को चारु (भारत)। तन मन, तन मन तन मन (सभा)। खाट मैं, षा मैं (सभा)। कुबलयन, कुबलयनी (गोपाल), कुबलयनि (रत्ना, भारत)। गागरी; गरि (सभा)।

प्रीतम नयन-कुवलयन को चंद घरी
एक मैं चलेगो *मतिराम* जिहि बाट मैं।
नागरी नवेली रूप आगरी अकेली रीती
गागरी लै ठाढ़ी भई बाट ही के घाट मैं ॥२१२॥

(दोहा)

चलत सुन्यो परदेस कौं हियरा रह्यो न ठौर।
लै मालिनि मीतहिं दयो नव रसाल को मौर ॥२१३॥

सामान्या-प्रवत्स्यत्प्रेयसी-उदाहरण (कबित्त)

मंजन कियो न तन अंजन दियो न नैन
जावक दियो न पाइ रही मनु मारिकै।
मतिराम सुकबि तमोल छोड़ि बैठी बाल[1]
पहिरे बसन डारे भूषन उतारिकै।
ऐहैं आजु पीय बिदा माँगन बिदेस कौं यौं
नेह के जनाइबे की चातुरी बिचारिकै।
गारि राख्यो चंदन बगारि राख्यो घनसार
आँगन मैं सेज सरसिजनि सँवारिकै ॥२१४॥

(दोहा)

चलत पीव परदेस कौं बरज सकौं नहिं तोहि।
लै ऐहौ आभरन जो[2] जियत पायहौ मोहि ॥२१५॥

आगतपतिका-लक्षण

जा तिय को परदेस तें आयो प्यौ *मतिराम*।
ताहि कहत कबि लोग हैं आगतपतिका बाम ॥२१६॥

---

१ तमोल तेल छाँड़ि बैठी। २ तौ।

[२१३] ठौर, ठोर (सभा)। नव रसाल, नवल साल (सभा)। मौर; मोर (सभा)।

[२१४] तमोल······बाल, तमोर तेल छाड़ि उह (गोपाल), तमोल तेल छाड़ि बैठी (रत्ना, भारत), तमोल तेल छाड़ि वोइ (सभा)। डारे; अरु (गोपाल)। आँगन मैं, आगमन (गोपाल, सभा, भारत)। सेज सरसिजन, कंज सिजन (गोपाल)।

[२१६] प्यौ; पति (गोपाल); पिय (सभा)। आगतपतिका; आगमपतिका (गोपाल)।

मुग्धा-आगतपतिका-उदाहरण (सवैया)

आए बिदेस तेँ प्रानपिया *मतिराम* अनंद बढ़ाय अलेखै।
लोगन सौं[1] मिलि आँगन बैठि[2] घरी ही घरी सिगरो घर पेखै।
भीतर भौन के द्वार खरी सुकुमारि तिया तनकंप बिसेखै।
घूँघट को पट ओट दिये पट ओट किये पिय को मुख देखै॥२१७॥

(दोहा)

पिय आयो नवबाल तन बाढ़यो हरष बिलास।
प्रथम बारि बूँदन उठै ज्यौं बसुमती सुबास॥२१८॥

मध्या-आगतपतिका-उदाहरण (सवैया)

चंदमुखी सजनीन के संग हुती पिय अंगन मैं मनु फेरत।
ताहि समै पिय प्यारे को आवन प्यारी सखी कह्यो द्वार तैं टेरत।
आय गए *मतिराम* जबै तबै देखत नैन अनंद भए रत।
भौन के भीतर भाजि गई हँसिकै हरुवै हरि को फिरि हेरत॥२१९॥

(दोहा)

पिय आगम सरदागमन बिमल बालमुख - इंदु।
अंग अमल पानिप भयो फूले दग - अरबिंदु॥२२०॥

प्रौढा-आगतपतिका-उदाहरण (सवैया)

प्रानपियारो मिल्यो सपने मैं परी जब नैसुक नींद निहोरैँ।
कंत को आगम त्यौं ही जगाय कह्यो सखी बैन पियूष निचोरैँ।
यौं *मतिराम* बढ़यो हिय मैं सुख बाल के बालम सौं दग जोरैँ।
जैसे मिहीं पट[3] मैं चटकोलो चढ़ै रंग तीसरी बार के बोरैँ॥२२१॥

---

१ को। २ बैठे। ३ ज्यौं पट मैं अति ही।

[२१८] बाल-तन, बालन (सभा)। उठै, उ (गोपाल)। बसुमती, लघुमती (गोपाल)।

[२२०] सरदागमन, तैं मोद मन (गोपाल)।

[२२१] कंत, नाह (भारत)। आगम, आइबो (गोपाल, भारत)। सखी-बोल; जब बैन (गोपाल)। जैसे···मैं; ज्यौं पट मैं अति ही (गोपाल, सभा, भारत)।

(दोहा)

पिय आयो परदेस तैं हिय हुलसी अति बाम।
टूक टूक कंचुकि करी करि कमनैती काम ॥२२२॥

परकीया-आगतपतिका-उदाहरण (सवैया)

आयो बिलंब बिदेस तैं बालम बाल बियोग बिथा बिसराई।
आई तहाँ तिनके संग ह्वै सब गाँव की जे जुवती मिलि आई[1]।
देखत ही *मतिराम* कहै अँखियान मैं आनँद की छबि छाई।
लाजन क्यौंकर बैन कहै सु कह्यो दुख देहँहि की दुबराई ॥२२३॥

भावते को सुनि आगम आनँद अंगन अंगन[2] मैं उलह्यो है।
सो हमहूँ सी सखी सो[3] दुराइये आली कह्यो यह कौने कह्यो है।
खैंच लिये सुख के अँसुआ, यह क्यौं दुरिहै जु हियो उमह्यो है।
गाढ़ी भई कर की मुँदरी अँगिया की तनीन तनाव गह्यो है ॥२२४॥

(दोहा)

सुन्यो मायके तैं वहै आयो बाम्हनु कंत।
कुसल बूझिबे के लिये[4] लीनो बोलि इकंत ॥२२५॥

सामान्या-आगतपतिका-उदाहरण (कवित्त)

नागर बिदेस मैं बिताय बहु द्यौस आयो
नागरी के हिय मैं हुलासन की खान की।

---

१ जुरि। २ अंग अनगनि तै उमह्यो है। ३ से हितू सौं। ४ मिसहिं।

[२२२] पिय; पति (गोपाल॰)। करी; कियौ (गोपाल, सभा)।

[२२३] मिलि, जुरि (गोपाल, सभा, भारत)।

[२२४] अंगन अंगन; अंग अंगन (गोपाल); अंग अनंगनि (भारत)। सी सखी सो, से हितू कौ (गोपाल); सी हितू सौं (सभा); से हितू से (भारत)। कह्यो; अहो (गोपाल)। सुख; मुख (भारत)। हियो; यौ (रत्ना)। उमह्यो; उलह्यो (भारत)। कर की मुँदरी; महुरा दरकी (गोपाल); मोहरी दरकी (भारत)। तनीन, तनीति (गोपाल)। 'सभा' में अंतिम चरण नहीं है।

[२२५] वहै; जु वह (गोपाल); कहै (भारत)। लिये, मिसन (गोपाल); मिसिहि (सभा); मिसे (भारत)।

कबि *मतिराम* अंक भरत मयंकमुखी
नेह सरसाय मोही मति[1] सुखदान की।
सुबरन बोलिकै बतावति है सुबरन
हीरन जनावति है छबि मुसकान की।
आँखिन तैं आनँद के आँसू उमगाय प्यारी
प्यारे को दिखावति सुरति मुकतान की ॥२२६॥

(दोहा)

फूली नागरि-कमलिनी उड़िगे मित्र[2]-मलिंद।
आयो मित्र बिदेस तैं भयो सुदिन आनंद ॥२२७॥

उत्तम नायिका-लक्षण

पिय हित कैं अनहित करै आप करै हित नारि।
ताहि उत्तमा नायका कबिजन कहत बिचारि ॥२२८॥

(सवैया)

राति कहूँ रमिकै मनभावन आवन[3] प्रात प्रियाघर कीनो।
देखत ही मुसकाय उठी चली आगे ह्वै आदर कै पुनि[4] लीनो।
मोहन के तन में *मतिराम* दुकूल सु नील निहारि नवीनो।
केसरि के रँग सौं रँगिकै पट पीत यौं[5] प्रीतम के कर दीनो ॥२२९॥

---

१ भौंहैं कीनी। २ निच। ३ आगम। ४ फिरि। ५ कै।

[२२६] मोही मति; भौं है कीनी (भारत)। हीरन जनावति, हैरनि बतावति (गोपाल); हीर ति जनावति (सभा), हीरन बतावति (भारत)।

[२२७] मित्र; मत्त (गोपाल)।

[२२९] मनभावन, मनभामन (गोपाल), मनमोहन (भारत)। आवन; आमन (गोपाल); आवत (सभा), आगम (भारत)। आदर; आद (गोपाल)। पुनि, फिरि (गोपाल, सभा)। लीनो; लौं (सभा)। सु नील; सो लीनो (सभा)। पट पीत; पट प्रीति (गोपाल)। यौं; कौ (गोपाल); लै (रत्ना); कै (सभा, भारत)।

(दोहा)

पिय अपराध अनेकहूँ[1] आँखिनहूँ लखि जाय।
तिय इकंतहूँ कंत सौं मानो करत लजाय ॥२३०॥

मध्यमा-नायिका-लक्षण

पिय सौं हित तैं[2] हित करै अनहित कीने मान।
ताहि मध्यमा कहत हैं कबि *मतिराम* सुजान ॥२३१॥

(कबित्त)

आयो प्रानपति राति अनतैं बिताय बैठी
भौंहन चढ़ाय रँगी सुंदरि सुहाग की।
बातन बनाय परयो प्यारी के चरन[3] आय
छल सौं छिपाई छैल छबि रतिदाग[4] की।
छूटि गयो मान लगी आपु ही सँवारन कौं
खिरकी सुकबि *मतिराम* पिय पाग की।
रिस ही के आँसू रस-आँसू भए[5] आँखिन मैं
रोस[6] की ललाई सो ललाई अनुराग की ॥२३२॥

(दोहा)

मेरे तन के रोम ये मेरे नहीं[7] निदान।
उठि आदरु आगम करैं करौं कौन बिधि मान ॥२३३॥

---

१ निज। २ मैं। ३ पगन। ४ दाम। ५ भरे आनँद के। ६ रोष। ७ मेरोहिं नहीं।

[२३०] हूँ, निज (गोपाल, सभा, भारत)। जाय, पाय (गोपाल, सभा); पाइ (रत्ना, भारत)।

[२३१] मध्यमा, मध्या (रत्ना)। तैं; मैं (गोपाल, रत्ना), मै (भारत)।

[२३२] बैठी; कहूँ (गोपाल)। रँगी; बैठी (गोपाल)। चरन; पगन (गोपाल, सभा, भारत)। बनाय; बताइ (सभा)। रस-आँसू भए, भए आनँद के (सभा)। रोस; रिस (भारत)।

[२३३] के, मैं (गोपाल)। नहीं निदान, नाहि नदान (गोपाल); नहीं मिलान (रत्ना); नाहि निदान (भारत)।

अधमा नायिका-लक्षण

पिय सौं हितहू के किये करे मान जो[1] बाल।
तासौं अधमा कहत है कबि *मतिराम* रसाल ॥२३४॥

(कबित्त)

आयो है सयानपन गयो है अयान[2] मन
नित उठि मान करबे की टेव पकरी।
घर घर मानिनी हैं मानितीं मनाए तेँ वै
तेरी ऐसी रीति और काहू मैं न जकरी[3]।
कबि *मतिराम* कामरूप घनस्याम लाल
तेरी नैनकोर ओर चाहैं इकटक री।
हा हा कै निहारेहूँ न हेरति हरिननैनी
काहे को करत हठ हारिल की लकरी ॥२३५॥

(दोहा)

कहा लियो गुरुमान को अति तातो है नेम।
पारद सौं उड़ि जायगो अलि चंचल[4] यह प्रेम ॥२३६॥

नायकलक्षण

तरुन सुघर सुंदर सकल कामकलानि प्रबीन।
नायक सो *मतिराम* कहि कबित गीत[5] रसलीन ॥२३७॥

---

१ अनहित मानै। २ अजान। ३ हू न करी। ४ अंतर। ५ रीति।

[२३५] सयानपन, सयानमन (भारत)। है; न (गोपाल)। अयान मन; अयान तोहि (गोपाल), अयानपन (रत्ना), अयान तऊ (सभा); अयान तौहू (भारत)। टेव, जक (गोपाल)। तेँ वै, तेँ (गोपाल)। कोर ओर; ओर कोर (गोपाल), कोर बोर (भारत)। हेरति; मानति (गोपाल)।

[२३६] लियो, कियौ (गोपाल)। गुरुमान, अतिमान (गोपाल)। तातो है; कीनौ इत (गोपाल), ताही को (सभा)। अलि; अति (गोपाल)। यह; है (भारत)।

[२३७] सुघर, सुथर (गोपाल)। सकल, सरस (सभा)। सो, यौं (गोपाल, भारत)।

(सवैया)

गुच्छनि के अवतंस लसैं सिर[1] पच्छन अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी करपल्लव सों *मतिराम* सुहायो।
गुंजनि के उर मंजुल हार सुकुंजनि तें कढ़ि बाहर आयो।
आजु को रूप लखें नँदलाल[2] को आजुहि नैनन को फल पायो[3] ॥२३८॥

(दोहा)

भरी भाँवरै साँवरै रास रसिक रस जान।
उनहीं मैं मति भ्रमति है ह्वै बौंडर को पान ॥२३९॥

पति आदि त्रिविध नायक-भेदवर्णन

पति उपपति बैसिक त्रिबिध नायकभेद बखान।
बिधि सों ब्याह्यौ पति कह्यो कबि *मतिराम* सुजान ॥२४०॥

पति-उदाहरण (सवैया)

पाँव धरे दुलही जिहिं ठौर रहे *मतिराम* तहाँ दृग दीने।
छोड़ि सखान के साथ को खेलिबो बैठ रहे घर ही रस भीने।
साँझहि तें ललकैं मन ही मन लालन यौं रस के बस लीने।
लोनी सलोनी के अंगनि नाह सु[4] गौने की चूनरी टोने-से कीने ॥२४१॥

---

१ सिखि। २ ब्रजराज। ३ आँखिन को फल आजुहि पायो। ४ सोने-से अंगनि।

[२३८] सिर, सिखि (रत्ना, भारत)। किरीट, की रीति (रत्ना)। समेत छरी; छरी कर में (गोपाल)। गुंजनि; कुंजन (गोपाल)। नँद-लाल, ब्रजराज (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)। नैननि; आँखिन (रत्ना, सभा, भारत)।

[२३९] उनही, वाही (सभा)। मति भ्रमति, मन मृगतु (गोपाल); मन भँवर (सभा), मन भ्रमति (भारत)। है ह्वै; है (गोपाल)।

[२४०] मतिराम सुजान, कोविद मति जानि (गोपाल, भारत), मत बान (सभा)।

[२४१] तहाँ, जहाँ (गोपाल); तहै (सभा)। रस के बस; बस कै रस (गोपाल); रस सों बस (भारत)। लोनी सलोनी, लोने सलोनी (गोपाल); लोने सलोने (सभा)। अंगनि नाह सु; सोने से अंगनि (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)।

(दोहा)

जा दिन तें गौनो भयो आई बाल रसाल।
ता दिन तें बिरहिन भई हरि-उर[1] तें बनमाल ॥२४२॥

चतुर्विध पति

चारि भाँति सों बरनिये प्रथम कहत अनुकूल।
दच्छिन गन सठ धृष्ट पुनि रस सिंगार को मूल ॥२४३॥

अनुकूल नायक-लच्छण

सदा आपनी नारि सों राखै अति ही[2] प्रीति।
परनारी तें बिमुख जो सो अनुकूल सुरीति ॥२४४॥

उदाहरण (सवैया)

क्यौंहू नहीं बिसरैं निसि बासर मंद हँसी मुखचंद उज्यारी।
त्यौं ही दीपै अति नेह सों देह की दीपकला सम दीपति न्यारी।
तेरिय जोति जगै हिय भीतर आवत और न नारि-अँध्यारी।
नैननहूँ अरु बैननहूँ तनहूँ मनहूँ को तुही अति प्यारी[3] ॥२४५॥

(दोहा)

सपनेहूँ मनभावतो करत नहीं अपराध।
मेरे मन हीं में रही सखी मान की साध ॥२४६॥

दच्छिण नायक-लच्छण

एक भाँति सब तियन सों जाको होय सनेह।
सो दच्छिन *मतिराम* कहि बरनत हैं मतिगेह ॥२४७॥

---

१ उर की। २ जासु हिए अति। ३ तुही अति लागत प्यारी।

[२४२] उर तें; उर की (भारत)।

[२४३] कहत; सुनौ (गोपाल)।

[२४४] राखै, जाकैं (गोपाल, सभा); जासु (भारत)। अति ही; हिये अति (भारत)। जो, मन (गोपाल)।

[२४५] दीपकला; दीपकली (गोपाल, भारत); दीपसिषा (सभा)। नारि; राति (भारत)। तनहूँ···प्यारी; मनहूँ कौं तुही अति लागत प्यारी (भारत)।

उदाहरण (सवैया)

साँझ-समय ललना मिलि आई खरो जहाँ नंदलला अलबेलो।
खेलन कौं निसि चाँदनी माँहि बनै न मतो *मतिराम* सुहेलो।
आपनि आपनि पौरि बतायकै बोलि कह्यो सिगरीन नवेलो।
त्यौं हँसिकै ब्रजराज कह्यो अब आज हमारिहि पौरि मैं खेलो ॥२४८॥

(दोहा)

दच्छिन नायक एक तुम मनमोहन ब्रजचंद।
फुलए ब्रजबनितान के दृग इंदीबर बृंद ॥२४९॥

शठ-नायक-लक्षण

डरै करत अपराध नहिँ[1] करै कपट की प्रीति।
बचन-क्रिया मैं अति चतुर सठ-नायक की रीति ॥२५०॥*

उदाहरण (कबित्त)

मोतैं तो कछु न अपराध पर्‌यो[2] प्रानप्यारी
मान करि रही यौं ही काहे को अरस तैं।
लोचन-चकोर मेरे सीतल हैं होत तेरे
अरुन कपोल मुखचंद के दरस तैं।
कहैं *मतिराम* उठि लागु उर मेरे किन
करत कठोर मन अँसुवा बरस तैं।
कोप तैं कटुक[3] बोल बोलत हैं तऊ मोकौं
मीठे होत अधर - सुधारस परस तैं ॥२५१॥

---

* यह दोहा वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई की प्रति मैं अधिक है—
प्रिय बोलै अप्रिय करै निपट कपटजुत होय।
सठ नायक तासौं कहत कबि कोबिद सब कोय ॥

१ डरे करे अपराध ही। २ भयो। ३ कठोर।

[२४८] आई; आनि (गोपाल)। निसि; मिलि (गोपाल)। माँहि; माँझ (गोपाल)। बोलि, बैन (भारत)। सिगरीन; सगुन (गोपाल)। अब; सब (गोपाल)।

[२५०] करत, करै (सभा)। यह छंद 'गोपाल' तथा 'भारत' मैं नहीँ है। इसके स्थान पर पादटिप्पणी मैं उद्धृत उक्त छंद दोनो प्रतियौं मैं है।

[२५१] पर्‌यो, भयो (भारत)। हैं; पैं (गोपाल)। किन; कंठ (गोपाल) कत (सभा, भारत)। अँसुवा, आँसुन (गोपाल); अगुवा (सभा) कटुक; कठोर (भारत)।

(दोहा)

पियत रहैं अधरान को रस अति मधुर अमोल ।
तातैं मीठे कढ़त हैं बालबदन तैं बोल ॥२५२॥

धृष्ट नायक-लक्षण

करै दोष निरसंक जो डरै न तिय के मान ।
लाज धरै मन मैं नहीं नायक धृष्ट निदान ॥२५३॥

उदाहरण (कबित्त)

बरज्यो न मानत हौ बार बार बरज्यो मैं
कौन काम मेरे इत भौन मैं न आइये ।
लाज को न लेस जगहाँसी को डर मन
हँसत हँसत आन[1] बात न बनाइये ।
कबि *मतिराम* नित उठि कलकानि करौ
नित झूँठी सौंहैं करो नित बिसराइये ।
ताके पग लागो निस जागि जाके उर लागे[2]
मेरे पग लागि उर आगि न लगाइये ॥२५४॥

(दोहा)

निलज नैन कुलटानि के आनि बसे ब्रजराज ।
हिये तिहारे तैं सकल मारि निकारी लाज ॥२५५॥

उपपति और वैशिक नायक-लक्षण

जो परनारिन को रसिक उपपति ताहि बखानि ।
प्रीति करै गनिकान सौं[3] बैसिक ताको जानि ॥२५६॥

---

१ बहु । २ निस जाके उर लागे लाल । ३ पीतम जो गनिकान को ।

[२५२] कढ़त; कढ़ति (गोपाल) ।

[२५३] जो; है (सभा) ।

[२५४] काम; काज (गोपाल), ज्यौं (सभा) । न आइये, आइये (सभा) । आन; आइ (गोपाल) । जगहाँसी, जब हाँसी (सभा) । हँसत-हँसत, हँसतत (सभा) । कलकानि करौ, नई केलि कीजै (गोपाल) । नित झूँठी; निजूठी (सभा) । ताके; जाके (गोपाल) । निस जागि······लागे, निसि जाके उर लागे लाल (भारत) ।

[२५६] प्रीति करै, प्रीतम जो (गोपाल, सभा, भारत) । सौं; को (गोपाल, सभा, भारत) ।

उपपति-उदाहरण (कबित्त)

सुंदरि सरस सब अंगन सिँगार साजे
सहज सुभाव निसि नेह कछु कै गई।
कीने *मतिराम* बिहसौँहैँ से कपोल गोल
बोलन अमोल इतनोई दुख दै गई।
मेरे ललचौँहैँ मुख फेरिकै लजौँहैँ
ललचौँहैँ चारु चखनि चितैकै सो चली गई[1]।
निपट निकट ह्वैकै कपट छुवाय अंग
लाय की सी लपटि लपेटि मनु लै गई ॥२५७॥

(दोहा)

नैन जोरि मुख मोरि हँसि नैसुक नेह जनाय।
आगि लेन आई हियै मेरे गई लगाय ॥२५८॥
मंद हँसनि दृगकोर लखि बस कर लेत प्रबीन।
छिन बिछुरैँ गति होत यौं ज्यौं जल बिछुरत मीन ॥२५९॥

वैशिक-उदाहरण (कबित्त)

आगमन चाहि चकचौंध रह्यो जब तब
जगर मगर आभरन के नगन भौ।

---

१ मेरे ललचौहैँ चाहि चख मुख फेरि कै लजौहैँ ललचौहैँ चारु चखन चितै गई।

[२५७] साजे; कीने (गोपाल)। सुभाव निसि नेह; सुभाइनि सनेह (गोपाल); स्वभावनि सनेह (रत्ना), सुभावनि सनेह (सभा)। बिहसौँहैँ, वह सौँहे (गोपाल)। गोल; बोली (गोपाल), बोल (भारत)। मुख, चारु चष मुष (गोपाल), चाहि चख मुख (रत्ना, सभा, भारत)। चितै···चली गई; चितै गई (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)।

[२५८] मोरि; बोरि (भारत)। गई, चली (गोपाल)। यह छंद 'सभा' में नहीं है।

[२५९] यह छंद 'गोपाल', 'सभा' और 'भारत' में नहीं है।

जोबन के मद रूपमद वाके मैनमद
छकि मतवारो ह्वैकै थकित पगन भौ।
कहै *मतिराम* लोल लोचन बिसाल बंक
तीछन कटाछन सों छिदिकै लगन भौ।
बार बार भ्रमि बारबधू-बार-भौंरन म
माँग की मुकतमाल - गंग में मगन भौ ॥२६०॥

(दोहा)

लोचन-पानिप ढिग सजी लट - बंसी परबीन।
मो मन बारिबिलासिनी फाँसि लियो मनु मीन ॥२६१॥

अभिमानी आदि त्रिविध नायक-भेद-लक्षण

मानी बचनचतुर कह्यो क्रियाचतुर पुनि जानि।
तीन भाँति औरै[1] कहत नायक सुकबि बखानि ॥२६२॥

मानी-लक्षण

करत नायका सों कछू नायक मन[2] अभिमान।
तासों मानी कहत हैं कबि *मतिराम* सुजान ॥२६३॥

उदाहरण (कबित्त)

वह सुधि करौ क्यों न नैननलिनी के दल
सेज सारे सीरे सरसिजन बिछाइये।
अमल उसीर इंदु चंदन गुलाब नीर
कहाँ लगि और उपचारन गिनाइये।

---

१ ऐसे। २ जो।

[२६०] रूपमद······मद, रूप मदरा के मद मेन (गोपाल)। कवि, कहै (गोपाल)। लगन; थगन (गोपाल)। माँग की; माल के (गोपाल)। गंग, रग (गोपाल), गाँग (सभा)।

[२६१] मनु, जनु (गोपाल, रत्ना, भारत)।

[२६३] मन, जो (गोपाल, सभा, भारत)।

[२६४] वह, वा (गोपाल), बहु (भारत)। क्यों न······सरसिजन; जु जब नलिन मलिन नीके सीरे सीरे सुमननि सेज सु (गोपाल)। नैन; नए (सभा)। के दल; दलन (भारत)। अमल, कमल (गोपाल)। इंदु, चद (गोपाल), इंदि (रत्ना)।

छल बल छलि बलि बाको मैं मिलाइयत
कबि *मतिराम* अब साहबी जनाइये।
ऐसैं मनभावन गुमान है जु मन भायो
प्यारी के मनाइबे कों तुमको मनाइये ॥२६४॥

(दोहा)

थामैं कौन सयानु है मोहनलाल सुजान।
आपु करत अपराध हौ आपुहि पुनि अभिमान[1] ॥२६५॥

वचनचतुर नायक-लक्षण

बचनन मैं जो करत है चतुराई *मतिराम*।
बचनचतुर नायक सरस लीजै जानि सकाम ॥२६६॥

उदाहरण (कबित्त)

दूसरे की बात सुनि परत न ऐसी जहाँ
कोकिल कपोतन की धुनि सरसाति है।
छाई रहे जहाँ द्रुम बेलिन सौं मिलि
मतिराम अलिकुलन अँध्यारी अधिकाति है।
नखत[2] से फूलि[3] रहैं फूलन के पुंज घन[4]
कुंजन मैं होति जहाँ[5] दिन ही मैं राति है।
ता बन की बाट कोऊ संग न सहेली साथ[6]
कैसे तूँ अकेली दधि बेचन को जाति है ॥२६७॥

---

१ करत गुमान। २ तखत। ३ फूले। ४ बन। ५ मनो। ६ कहि।

गिनाइये, जनाइये (सभा)। छल बल…बलि, छलबल (गोपाल, सभा, भारत)। कबि मतिराम, जिवाए तब कबि मतिराम (गोपाल, सभा, भारत)। अब; इह (गोपाल)। मनभावन……भयो; मनभाँमन मन भयौ गुमान मैं जो (गोपाल); मन भयो मन भावन गुमान है जू (सभा, भारत)। प्यारी, प्यारे (भारत)।

[२६७] ऐसी जहाँ; औसी भाँति (गोपाल)। बेलिन; बहु बेलिन (भारत)। सौं मिलि, मैं (गोपाल); सौं (भारत)। कुलन; कुलसेनि ते (गोपाल); कुंजन (सभा), कुलकलित (भारत)। फूलि रहे, फैलि रहे (गोपाल); फूले हैं (भारत)। घन, बन (भारत)। होति जहाँ, होत मनो (भारत)। साथ, कहि (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)।

(दोहा)

तोकों देउँ बताय हौं तूँ कत होत उचाट।
ग्वालिन दधि बेचन गई बंसीबट की बाट ॥२६८॥

क्रियाचतुर-लक्षण

करै क्रिया सों चातुरी जो नायक रसलीन।
क्रियाचतुर ताकों कहत कबि *मतिराम* प्रबीन ॥२६९॥

उदाहरण (सवैया)

नँदलाल गयो तित ही चलिकै जित खेलति बाल अलीगन[1] मैं।
तहाँ आपु ही मूँदे सलोनी के लोचन चोरमिहीचनि खेलन मैं।
दुरिबे को गई सिगरी सखियाँ *मतिराम* कहै इतने छिन मैं।
मुसकायकै राधिका कंठ लगाय छिप्यो कहूँ जाय निकुंजन मैं ॥२७०॥

(दोहा)

साझ समैं वा छैल की छलनि कही नहिं जाय।
बिन डर बन डरपायकै लई मोहिं उर लाय ॥२७१॥

प्रोषित नायक-लक्षण

नायक होय बिदेस मैं जो बियोग अकुलाय।
तासों प्रोषित कहत हैं जे प्रबीन कबिराय ॥२७२॥

उदाहरण (कबित्त)

प्यार पगे बचनपियूष पान करि करि
उमँगि उमँगि पिय[2] आनँद बिसेखिहौं।
कबि[3] *मतिराम* तनतपनि बुझाय जैहै
तब निज जनम सफल करि लेखिहौं।

---

१ सखी। २ उर। ३ कहै।

[२६८] तोकों; सबकौं (गोपाल)।

[२७०] तित, खित (गोपाल)। जित; जहाँ (गोपाल)। अली; सखी (सभा, भारत)। छिप्यो; दुर्‍यौ (गोपाल)।

[२७३] करि करि, करि उर (भारत)। पिय; अति (गोपाल); उर (रत्ना); बिय (भारत)। कबि, कहै (भारत)। तब निज; निज निज (गोपाल)। वाको, वह (भारत)।

हीतल को सीतल करन चारु चाँदनी-सी
मंद मृदु मुसकानि अनमिख पेखिहौं।
ह्वैहै तब निसा मेरे लोचन-चकोरन को
जब वाको आनन अमल इंदु देखिहौं ॥२७३॥

(दोहा)

प्रफुलित सुमनसमाज मे करबी[1] आनँद केलि।
सो नीके दिन लागिहैं उर सोने की बेलि ॥२७४॥

दर्शनभेद

दरसन आलंबनहिँ मे कबि *मतिराम* सुजान।
स्रवन स्वप्न अरु चित्र त्यौं पुनि प्रत्यच्छ बखान[2] ॥२७५॥

श्रवण-दर्शन-उदाहरण (सवैया)

आनन - पूरनचंद लसै अरबिंद - बिलास - बिलोचन पेखे।
अंबर पीत लसै[3] चपला छबि अंबुद मेचक अंग उरेखे।
कामहु ते अभिराम महा *मतिराम* हिये निहचै करि लेखे।
तैँ बरनैं निज बैनन सौं सखो मैं निज नैनन सौं जनु[4] देखे ॥२७६॥

(दोहा)

जैसो बरन्यो तैं सखी रूप कान्ह को आय।
तैसोई मेरे चखन[5] रह्यो आइ ठहराय ॥२७७॥

---

१ करबो। २ हि मान। ३ हँसै। ४ मनु। ५ हिये।

[२७४] समाज; सुबास (गोपाल, सभा, भारत)।

[२७५] कबि···सुजान, चारि भाँति के जानि (गोपाल), कबि मतिराम बखान (सभा, भारत)। बखान, हि मान (सभा), मान (भारत)।

[२७६] पीत लसै, प्रीति लसै (गोपाल), पीत हँसै (भारत)। अंबुद; अंबुज (गोपाल)। मेचक, मेंचक (गोपाल)। जनु, मनौ (गोपाल, भारत); मनु (भारत)।

[२७७] तैसोई; जैसो (गोपाल)। चखन, द्रगन (गोपाल), हिये (भारत)।

स्वप्नदर्शन-उदाहरण (सवैया)

आवत मैं सपने हरि को लखि नैसुक बाट सकोचन छोड़ी।
आगे है आड़े भए *मतिराम* चली सु चीतैं चख लालच बोड़ी[1]।
ओठन को रस लेन को मोहन मेरो गहो कर काँपति ठोड़ी[2]।
और भटू न भई कछु बात गई इतने हीं में नींद निगोड़ी ॥२७८॥

(दोहा)

पियमिलाप को सुख सखी कह्यो न जात अनूप।
सौतुक सो सपनो भयो सपनो सौतुक रूप ॥२७९॥

चित्रदर्शन-उदाहरण (कवित्त)

अचल भए हैं गात परस न जान्यो जात
कही न सुनत बात जात बात न कही।
सूँघै न सुबास न सुमन की समुझि परै
टकटकी बड़े बड़े दृगन में उलही।
कबि[3] *मतिराम* तोहि नेक परवाह नहीं
ऐसी भाँति भई वह तेरे नेह सौं नही[4]।
एरे चितचोर चलि चाहि चंदमुखि तोहि
चित्र ही[5] मैं चाहि चाहि चित्र ही मै ह्वै रही ॥२८०॥

---

१ ओड़ी। २ मेरी गही कर कजनि ठोड़ी। ३ कहै। ४ सू नही। ५ हू।

[२७८] आड़े; आगैं (गोपाल)। चली सुचितैं, सुबोली चितै (गोपाल); मिले सुचि लै (भारत)। ओठन; होठनु (गोपाल); ओढ़नी (सभा)। मोहन ··कर; मेरी गही करकंजन (गोपाल, भारत)। ठोड़ी, ओड़ी (सभा)।

[२७९] सपनो···रूप, सेतुक स्वप्न स्वरूप (गोपाल)।

[२८०] अचल, अलस (सभा)। बात जात बात; बात जाति कछू (गोपाल); बात बात जाति (सभा)। सूँघै; सूघी (गोपाल)। न सुमन; सुमनन (भारत)। समुझि, समझि नाही (भारत)। दृगन, नैंननु (भारत)। कबि; कहै (भारत)। सौं नहीं; सू नही (भारत)। चित्र ही मै; चित्रमय (गोपाल), चित्र ही सी (सभा, भारत)।

(दोहा)

चित्रहि में जाके लखे होत अनंत अनंद।
सपनेहुँ कबहूँ सखी सो[1] मिलिहैं ब्रजचंद ॥२८१॥

साक्षात् दर्शन-उदाहरण (कबित्त)

मोहनलला को मन मोहनी बिलोकि बाल
कस करि[2] राखति है उमग उमाह को।
सखिन की दीठि को बचायकै निहारति है
आनँदप्रबाह बीच पावत न थाह को।
कबि *मतिराम* और सब ही के देखतहूँ[3]
ऐसी भाँति[4] देखति छिपावत उछाह को।
वेई नैन रूखे-से लगत और[5] लोगन को
वेई नैन लागत सनेह[6] भरे नाह को ॥२८२॥

(दोहा)

नँदनंदन[7] के रूप पर रीझ रही रिझवारि।
अधमूँदी अँखियन दई मूँदी प्रीति उघारि ॥२८३॥

उद्दीपन-लक्षण

चंद कमल चंदन अगर ऋतु बन बाग बिहार।
उद्दीपन शृंगार के जे उज्जल संभार ॥२८४॥

उदाहरण (सवैया)

पूरन चंद उदोत कियो घन फूलि रही बनजाति सुहाई।
भौंरन की अवली कलकैरव कुंजन[8] पुंजन में मृदु गाई।

---

१ मोहि। २ नीठि गहि। ३ गुरु लोगन के देखत हू। ४ बिधि। ५ लागत मिठाई भरे। ६ लोनाई। ७ नदनंद। ८ कैरव-कुंजनि।

[२८१] अनंत; न अति (गोपाल)। सो, सुइ (सभा); मोहि (भारत)।
[२८२] मन; तन (गोपाल)। बिलोकि बाल कस कर, बिलोकत को निठि गहि (भारत)। उमाह; उछाह (गोपाल)। और सबही के; गुरु लोगनि कैं (रसा, भारत)। भाँति; बिधि (भारत)। सनेह भरे नाह; मिठाई भरे लोगनि (भारत)।
[२८४] संभार; संचार (गोपाल)।

बाँसुरीताननि काम के बाननि लै[1] *मतिराम* सबै अकुलाई।
गोपिन गोप कछू न गने अपने अपने घर तैं उठि धाई ॥२८५॥

(दोहा)

प्रथम कामिजन[2] मनन कौं रँगत सुरभि रितु राग।
मंडत है नवपल्लवनि पुनि पीछे बन बाग ॥२८६॥

उद्दीपनभेद

सखी दूतिका जानिये उद्दीपन के भेद।
नायक अरु नायका को हरै बिरह को खेद ॥२८७॥

सखीलक्षण

जा तिय सौं नहिँ नायका कछू छिपावे बात।
तासौं बरनत कह सखी सब कबि मति अवदात ॥२८८॥

सखी के काम

मंडन अरु सिच्छाकरन उपालंभ परिहास।
काज सखी के जानियो औरो बुद्धि-बिलास ॥२८९॥

मंडन-उदाहरण (सवैया)

जावक रंग रँगे पगपंकज नाह को चित्त रँगे रँग जातैं।
अंजन दैकरि नैननि मैं सुषमा बढ़ी स्याम सरोज प्रभातैं।
सोने के भूषन अंग रचे *मतिराम* सबै बस कीबे की घातैं।
यौं ही चलै न सिंगार सुभावहि मैं सखि भूलि कही सब बातैं ॥२९०॥

---

१ सौं। २ काम-कामि-जन मानि को।

[२८५] कलकैरव······पुंजन, किलकै रवि कै रवि कुजन (गोपाल); कलकैरव कैरव पुंजनि (भारत। लै, लौं (सभा, भारत)।

[२८६] कामिजन; कामबन (गोपाल)। बन, नव (गोपाल)।

[२८८] तासौं राखी, ताही सौं सषि कहत हैं (गोपाल)।

[२८९] सिच्छाकरन, छिछ्या वर्णन (गोपाल)।

[२९०] रँगे, रग्यौ (गोपाल); रगो (सभा); लग्यो (भारत)। पग; पद (गोपाल, सभा, भारत)। नाह को; नाइक (भारत)। चलै न, चलै (गोपाल)।

(दोहा)

सखी प्रिया[1] की देह मैं सजे सिँगार अनेक।
कजरारो अँखियान मैं भूली[2] काजरु एक ॥२६१॥

शिक्षा-उदाहरण

मलय पवन मंद मंद कै गमन लाग्यो
फूलन के बृंदनि तैं मकरंद ढारने।
कबि *मतिराम* चितचोर चारौं ओर चाहि
लाग्यो चैतचंद चारु चाँदनी पसारने।
अलिन की आली आली मैन कैसे मंत्र पढ़ि
लागी सब मानिनी के मान[3] मद झारने।
सुमन सिँगार साज सेज सुख साजि करौ
लाज करौ आज ब्रजराज पर वारने ॥२६२॥

(दोहा)

कत सजनी ह्वै अनमनो अँसुवा भरति ससंक।
बड़े भाग नँदलाल सौं झूठहु लगत कलंक ॥२६३॥

उपालभ-उदाहरण (कबित्त)

पान की कहानी कहा पानी को न पान करै
आहि कहि उठति अधिक उर आधि कै।
कबि *मतिराम* भई बिकल बिहाल बाल
राधिके जिवावरे अनंग अवराधिकै।

---

१ तिया। २ भूलो। ३ माननी के री मननि मान।

[२६१] प्रिया; तिया (सभा, भारत)।
[२६२] ढारने, झारने (गोपाल)। चितचोर; छितिछोर (गोपाल)। आली आली, अवलीन (गोपाल)। लागी…मद; लागे मानिनीन के मनन मान (गोपाल, सभा)। सिँगार; समाज (गोपाल, सभा, भारत)। लाज करौ…पर; आज ब्रजराज पर साज सब (गोपाल)।

याही को कहायो ब्रजराज दिन चार ही मैं
करी है उजारि ब्रज ऐसी रीति नाँधिकै।
जैसे तुम मोहन बिलोक्यो वाकी ओर तैसे[1]
बैरिहू सों बैरो न बिलोकै बैर साधिकै ॥२६४॥

(दोहा)

वाको मनु लीने[2] लला बोलो बोल रसाल।
भुकत तनक ही बात मैं ललित बेलि बर[3] बाल ॥२६५॥

परिहास-उदाहरण (सवैया)

गौने के द्यौस सिँगारन को मतिराम सहेलिन को गनु आयो[4]।
कंचन के बिछुवा पहिरावत प्यारी सखी परिहास बढ़ायो[5]।
प्रीतम स्रौन समीप सदा बजै यौं कहिकै पहिले पहिरायो।
कामिनि कौल[6] चलावनि कौं कर ऊँचो कियो पै चल्यौ न चलायो ॥२६६॥

(दोहा)

प्रभा तरौना लाल की परी कपोलन आनि।
कहा छुपावत चतुर तिय कंत-दंतछत जानि ॥२६७॥
भुज फुलेल लावत सखी कर चलाय मुसकाय।
गाढ़े गहे उरोज तिय बिहँसी भौंह चढ़ाय ॥२६८॥

---

१ जैसे तू बिलोक्यो हरि वाकी ओर फेरि। २ लीन्हो। ३ सी। ४ कहै मतिराम सहेलिन को मिलि कै गन आयो। ५ जनायो। ६ कंज।

[२६४] पान; पानी (भारत)। कहि, करि (गोपाल)। ब्रज; बिय (गोपाल)। तुम···तैसे, तू बिलोक्यौं आजु वासौं एरे (गोपाल); तू बिलोक्यौ हरि वाकी ओर फेरि तैसे (भारत)। साधिकै; पाधिकै (सभा)।

[२६५] बर; सी (रत्ना, भारत)।

[२६६] सिँगारन को; कहै (गोपाल, सभा)। गनु; जुरिके गनु (गोपाल); मिलिकै गन (सभा)। बढ़ायो; जनायो (भारत)। प्रीतम; प्र पिय (सभा)। कामिनि, कामि (सभा)।

[२६७] दंत; दंद (गोपाल)।

[२६८] फुलेल; फूले (भारत)।

उत्तमादि त्रिविध दूती-भेद-वर्णन

निपुन दूतता मैं सदा दूती ताहि बखान।
उत्तम मध्यम अधम यौं तीन भाँति सौं जान ॥२९९॥

उत्तमा दूती-लक्षण

मोहै जो मृदु बोलिकै मधुर बचन अभिराम।
ताहि कहत कबिराज हैं उत्तम दूती नाम ॥३००॥

उदाहरण (कवित्त)

जा दिन तैं देखे *मतिराम* तुम ता दिन तैं
बढ़ी रहै मुसकानि वाके जियराई पर।
भावत न भोजन[1] बनावत न आभरन[2]
हेतु न करत सुधानिधि सियराई पर।
चलो[3] उठि देखौ बड़े भाग हैं तिहारे अब[4]
राखो धरि[5] राधिकै कन्हाई हियराई पर।
दूनी दुति छाई देह आई दुबराई पिय
राई लौनु वारिये तिया[6] की पियराई पर ॥३०१॥

(दोहा)

तिय के हिय के हनन कौं भयो पंचसर बीर।
लाल तुम्हैं बस करन कौं रहे न तरकस तीर ॥३०२॥

---

१ भवन। २ भूषनन। ३ नेक। ४ लला। ५ मेलि राखौ। ६ पिया।

[२९९] ताहि, कही (गोपाल)। सौं; ए (गोपाल); पुनि (भारत)।

[३०१] बढी; चढ़ी (गोपाल); चढि (भारत)। बियराई; हियराई (भारत)। भोजन; भौंन (गोपाल); भौन (भारत)। आभरन; भूषननि (भारत)। चलो, नेकु (सभा)। अब; याते (गोपाल); लाल (सभा)। राखो धरि; मेलि राषो (गोपाल, सभा)। हियराई; जियराई (भारत)। लौनु; नौंन (गोपाल)। तिया; पिया (गोपाल); प्रिया (भारत)।

मध्यमा दूती-लक्षण

कछू बचन हित के कहै बोलै अहित कछूक।
मध्यम दूती कहत हैं तासों सुकबि अचूक ॥३०३॥

उदाहरण (कबित्त)

चरन धरैं न भूमि बिहरैं तहाँई जहाँ
फूले फूले फूलनि बिछायो परजंक है।
भार के डरनि सुकुमारि चारु अंगनि मैं
करति न अंगराग कुंकुम को पंक है।
कबि *मतिराम* देखि बातायन बीच आयो
आतप मलीन होत बदन मयंक है।
कैसैं वह बाल लाल बाहिर बिजन आवै[1]
बिजन बयारि लागे लचकत लंक है ॥३०४॥

(दोहा)

रीझि रही रिझवारि वह तुम ऊपर ब्रजनाथ।
लाज सिंधु की[2] इंदिरा क्योंकर आवै हाथ ॥३०५॥

अधमा दूती-लक्षण

अधम दूतिका जानिये बचन कहत सतराय।
ग्रंथन को मत देखिकै बरनत सब कबिराय ॥३०६॥

उदाहरण (कबित्त)

जानत कछू न पै कहावत रसिकराय
ल्याउ ल्याउ अबहीं तिहारे यह टेक है।
कूरन की रीति है जु डेल ऐसो डारि देत
मतिराम चतुराई चतुर लिये कहै।
बोली ना नवेली कछू बोल सतराय वह
मनसिज ओज को सुहानौ कछु[3] सेक है।

---

१ नाय। २ ज्यों सिंधुर की। ३ आजु।

[३०३] बोलै अहित; अनहित कहै (गोपाल), बोले अहि न (भारत)। तासौं सुकबि; जासौं सुमति (गोपाल)।

[३०४] आवै, करै (गोपाल), जाय (भारत)।

[३०६] सब, सो (सभा)।

[३०७] वह, कहै वाहि (गोपाल)। सुहानौ, सयानौ आज (गोपाल)। बातन; बात के (गोपाल, सभा, भारत)। गात, प्रात (भारत)।

बातन[1] सुनत अँगरात अलसात गात
सौंहैं करि नैन बिहसौंहैं भई नेक है ॥२०७॥

(दोहा)

जोबनमंडित आपनै अजौ न जानत गात।
तो चित में अति चटपटी निपट अटपटी बात ॥२०८॥

अनुभाववर्णन

जिनते चित रतिभाव को आछो अनुभव होय।
रस सिंगार अनुभाव तिहि बरनत कबि सब कोय ॥२०९॥

लोचन बचन प्रसाद मृदु हास भाव धृति मोद।
इनते प्रगटत भाव रति बरनहि सुकबि बिनोद ॥२१०॥

उदाहरण (सवैया)

गहि हाथ सों हाथ सहेली के साथ में आवत ही वृषभान लली।
मतिराम सुबास तें आवत नीरे निवारत भौंरन की अवली।
लखिकै मनमोहन कौं सकुची करयो चाहत आपनी ओट अली।
चित चोरि लियो दृग[2] जोरि तिया मुख मोरि कछू सकुचाय चली ॥२११॥

(दोहा)

सहज बात बूझत कछू बिहँसि नवाई ग्रीव।
तरुन हिये तरुनी दई नए नेह की नीव[3] ॥२१२॥

---

१ बात के। २ चख। ३ सींव।

[२०९] जिनते, निज ते (सभा)। तिहि; ते (गोपाल, सभा); तेहि (भारत)।

[२१०] भाव; हाव (गोपाल, सभा, भारत)। धृति; जुत (गोपाल)। इनते, इतनै (सभा)। रति; हिय (सभा)। सुकबि; सुमति (सभा, भारत)।

[२११] दृग; चष (भारत)। इसके पश्चात् 'गोपाल' में निम्नलिखित छंद है—

नैन जोरि मुख मोरि हँसि नेसिक नेह जनाइ।
आगि लेन आई हियैं मेरे चली लगाइ ॥

[२१२] नवाई; नाइकैं (गोपाल)। दई; ठई (गोपाल, सभा)। यह छंद 'भारत' में नहीं है।

सात्त्विक भाव

ते अनुभावै जानियो जे हैं सात्त्विक भाव।
रसग्रंथनि अवलोकिकै बरनत सब कबिराव ॥३१३॥
स्तंभ स्वेद रोमांच सुर भंग कंप वैबर्न।
आँसू औरो प्रलय कहि आठौं ग्रंथनि बर्न ॥३१४॥

स्तंभ-लक्षण

लज्जा हर्षादिकन तैं अचल होत जहँ अंग।
स्तंभ कहत हैं ताहि को जे प्रबीन रसरंग ॥३१५॥

उदाहरण (सवैया)

देखत ही *मतिराम* रसाल गही मति प्यारी की प्रेमन गाढ़ी।
चाहिबे की चितचाह भई हिय तैं कुलकानि न जाति है काढ़ी[1]।
संग सखीन को जानि दुरावति आनन आनँद की रुचि बाढ़ी।
पाइँ परे मग मैन मरूकै[2] भई मिस लाजन के फिर ठाढ़ी ॥३१६॥

(दोहा)

पाय इकंत निकुंज मैं भरी अंक ब्रजनाथ।
रोकन कौं तिय करति पै कह्यो करत नहिं हाथ ॥३१७॥

स्वेदलक्षण

हरष लाज भय कोप श्रम इत्यादिक तैं होय।
पानी परगट देह मैं स्वेद कहावत सोय ॥३१८॥

---

१ पै गई हिय तैं कुलकानि न काढी। २ भट्ठ सु।

[३१३] ते; जे (गोपाल)। सब; हैं (गोपाल)।

[३१४] आँसू···बर्न, अश्र प्रलाप पुनि कहत हैं आठौ नामनिवर्ण (गोपाल)।

[३१६] गाढ़ी, गाठी (गोपाल)। हिय···काढी, पै गई हियते कुलकानि न काढी (गोपाल), पै गई हिय तैं कलकानि न काढ़ी (भारत)। जानि; मान (भारत)। मरूकै; भट्ठ सु (रखा,), पैग परग (सभा)। मिस; तब (गोपाल)। फिर; मिस (गोपाल)।

[३१८] मैं; तैं (गोपाल, सभा, भारत)। कहावत; कहत हैं (गोपाल)।

उदाहरण (सवैया)

किंकिनि नेवर की झनकारनि चारु पसार महारस जालहि ।
काम कलोलनि मैं *मतिराम* कलानि निहाल कियो नँदलालहि ।
स्वेद के बूँद लसैं तन मैं रति अंतर ही लपटाय[1] गुपालहि ।
मानो फली[2] मुकता फल पुंजन हेमलता लपटानी तमालहि ॥३१९॥

(दोहा)

कुच तैं श्रम जलधार चलि मिलि रोमावलि रंग ।
मनो मेरु[3] की तरहटी भयो सितासित संग ॥३२०॥

रोमाच-लक्षण

हरष भयादिक तैं प्रगट रोम उमँग जो अंग ।
ताहि कहत रोमांच हैं कबिजन सुमति उतंग ॥३२१॥

उदाहरण (कवित्त)

चंद्रमुखी हाँसी मैं चमेली की लता सी होति
चंपकलता सी अंग जोति को धरति है ।
कबि *मतिराम* तेरे अंग की सुबास लहै
कौन बेली ऐसी हिये जानि न परति है ।
नैसुक निहारे ते नबेली नैन कोरन[4] सौं
ऐसी अदभुत की कलानि आचरति है ।
ललित ललाम[5] स्याम रसिक रसाल को
कदंब मुकुलित के कुलनि सौं करति है ॥३२२॥

---

१ भरि अंक । २ फूली । ३ मेरु गिरि । ४ कोर नैनन । ५ तमाल ।

[३१९] लपटाय; भरि अंक (भारत) । मानो फली; फूली मनो (भारत) । पुंजन; कुंजनि (रत्ना) ।

[३२०] चलि मिलि, बलि चली (सभा) । मेरु, मेरु गिरि (सभा) ।

[३२१] उतंग, अभंग (गोपाल) ।

[३२२] अंग, तन (सभा, भारत) । हिये; धात (गोपाल); बात (सभा); भाँति (भारत) । जानि न, जानी (सभा) । ललाम; तमाल (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत) । कदंब…कुलनि सौं; कल सोभा कलित पल कुलिन (गोपाल); कलित मुकुलनि के कुलनि सौं (सभा, भारत) ।

(दोहा)

जौन अंग ढिग ह्वै कढ़ी छुई छैल की छाँह।
अजहूँ लौं अवलोकिये पुलक पटलता[1] ताह ॥३२३॥

स्वरभंग-लक्षण

क्रोध हर्ष मद भीति तैं बचन और बिधि होय।
ताहि कहत स्वरभंग हैं कबि कोबिद सब कोय ॥३२४॥

उदाहरण (सवैया)

ताहि लै आई अली रतिमंदिर जाकी लगै रति हूँ परछाँहीं।
आय गयो *मतिराम* तहीं जिन कोटिन काम कला अवगाहीं।
देखत ही सगरी डगरी पकरी हँसिकै तिय की पिय बाँहीं।
लाजनि तैं मति मंद भई[2] सुकढ़ी मुखचंद मरू करि नाहीं ॥३२५॥

(दोहा)

कहा जनावति चातुरी कहा चढ़ावत भौंह।
अधनिकरे अखरान सौं सौंह कीजे सौंह ॥३२६॥

कंपलक्षण

क्रोध[3] हर्ष भय आदि तैं थरथराति जो देह।
ताहि कंप यौं कहत हैं कबि कोबिद मतिगेह ॥३२७॥

---

१ पलक न पलटी। २ लाजनई सुर भंग भई। ३ कोप।

[३२३] जौन; ज्योन्ह (गोपाल)। पटलता; पलकता (गोपाल)। ताह; माह (गोपाल, रवा; सभा)। यह छंद 'भारत' में नहीं है।

[३२४] बिधि; रीति (गोपाल)।

[३२५] रति हूँ; रति यौं (गोपाल)। तहीं बिन, जहीं तहाँ (गोपाल); तहीं जेहि (भारत)। डगरी; वे टरी (गोपाल); वै डरी (सभा)। तिय की पिय, पिय की तिय (गोपाल)। लाजनि तैं…भई; लाज नई सुरभंग भई (भारत)। सु कढ़ी; सु कही (गोपाल)।

[३२७] क्रोध; कोप (भारत)। थरथराति; थरहराति (गोपाल); थरहराइ (सभा); हरहरात (भारत)।

उदाहरण (सवैया)

जा दिन तैं छबि सौं मुसक्यात कहूँ निरखे नँदलाल बिलासी।
ता दिन[1] तैं मन ही मन मैं *मतिराम* पियै मुसक्यानि सुधा सी।
नेकु निमेष न लागत नैन चकी चितवै तिय देवतिया सी।
चंद्रमुखी न हलै न चलै निरबात निवास मैं दीपसिखा[2] सी॥३३७॥

(दोहा)

तो मैं अनमिषनैनता मोहन मूरति मैन।
अनमिष नैन सुनैन ये निरखत अनमिष नैन॥३३८॥

जृंभालक्षण

जृंभा कौं कबि कहत हैं नव यौं सात्विक भाव।
उपजै आलस आदि तैं बरनत सब कबिराव॥३३९॥

उदाहरण (कबित्त)

केलिकै सकल राति प्रात उठि अँगिराति[3]
नींद भरे लोचन जुगल बिलसत है।
लाजनि तैं अंगनि दुरावति है बार बार
खैंचि करि बसन बिहारी बिहँसत है।
कबि *मतिराम* आई आलस[4] जँभाई मुख
ऐसी मनभावती की छबि सरसत है।
अरुन उदोत मनौ सोभा के सरोवर मैं
सोभा मानि सोभा को सरोज बिकसत है॥३४०॥

(दोहा)

आयो पीव बिदेस तैं बहुतैं द्यौस बिताय।
सखी[5] उठाई पास तैं साँझहिं तैं जमुहाय॥३४१॥

---

१ छन। २ देह-दिया-सी। ३ अँगराति, अरसाति। ४ आरस। ५ सखिन।

[३३७] जा दिन; जा छन (भारत)। ता दिन, ता छिन (गोपाल, सभा); ता छन (भारत)। नेकु निमेष, नेननमेष (गोपाल)। नैन; नेक (गोपाल)। दीपसिखा, देह दिया (भारत)।

[३३८] मोहन, मोहै (गोपाल, सभा)। नैन, मैन (भारत)।

[३३९] कौं, सौं (गोपाल)। आलस, आरस (भारत)।

[३४०] अँगराति; अलसात (सभा)। भरे, भार (रत्ना)। बिहँसत; यौं हसत (गोपाल)।

[३४१] जो; सो (गोपाल)। कबि कोबिद; कबितबंध (गोपाल), कबि सु बिबुध (भारत)।

शृंगारवर्णन

जो बरनत तिय पुरुष को कबि कोबिद रतिभाव।
तासौं रीझत हैं सुकबि सो सिँगार रसराव ॥३४२॥
कहि सिँगार रसभाव द्वै प्रथम कहत संयोग।
ग्रंथन को मत देखिकै दूजो कहत बियोग ॥३४३॥

संयोग-शृंगार-लक्षण

प्रमुदित नायक-नायका जिहिँ मिलाप मैं होत।
सो संयोग-सिंगार कहि बरनत सुमति उदोत ॥३४४॥

उदाहरण (सवैया)

प्रानप्रिया प्रिय आनँद सौं बिपरीति रची रति रंग रह्यो भ्वै।
कामकलोलनि मैं *मतिराम* रही धुनि त्यौं कटिकिंकिनी की ह्वै।
आनन की उजियारी परी श्रमबूँद समेत[1] उरोज लखै द्वै।
चंद की चाँदनी के परसैं मनौ चंदपखान पहार चले च्वै ॥३४५॥

(दोहा)

छुवत परसपर हेरिकैं राधा नंदकिसोर।
सबमैं द्वै ही होत हैं चोर मिहीचनि चोर ॥३४६॥

---

१ समीप।

[३४३] रसभाव द्वै, रसभाँति द्वै (गोपाल), रसभेद है (सभा)। कहत; बरनि (गोपाल)।

[३४४] कहि, रस (गोपाल, सभा)।

[३४५] रग रह्यो; सो कस (भारत)। भ्वै, ह्वै (गोपाल), वै (सभा); वैर व्वै (भारत)। कटि; कलि (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)। समेत, सरोज (सभा)। लखै, लसै (गोपाल, सभा, भारत)। चंदपखान पहार, चंदपहार पषान (गोपाल)।

[३४६] सबमैं···चोर, तिय पिय गोल कपोल कौं पिय तिय उरज कठोर (भारत)।

हावलक्षण

दंपति के संयोग में होत प्रगट जे भाव।
ते संयोग सिँगार में बरनत सब कबि हाव ॥३४७॥
लीला प्रथम बिलास पुनि त्यौं बिच्छित्ति बखान।
बिभ्रम किलकिंचित बहुरि मोट्टाइत मन आन ॥३४८॥
बहुरि कुट्टमित कहत हैं पुनि बिब्बोक बखान।
ललित बरनि अरु बिहित कहि सकल हाव दस जान ॥३४९॥

लीलाहाव-लक्षण

पिय भूषन बचनादि की लीला करै जो बाल।
तासौं लीलाहाव कहि बरनत सुकबि रसाल ॥३५०॥

उदाहरण (सवैया)

प्यारपगी पगरी पिय की घर[1] भीतर आपने सीस सँवारी।
एते मैं आँगन तैं उठिकै तहाँ आय गयो *मतिराम* बिहारी।
देखि उतारन लागी पिया पिय सौंहनि सौं बहुर्‌यो न उतारी।
नैन नचाय लजाय रही उर लाय लई मुसकाय पियारी ॥३५१॥

(दोहा)

मेरे सिर कैसी लगै यौं कहि बाँधी पाग।
सुंदरि रति बिपरीत नैं प्रगट कियो अनुराग ॥३५२॥

---

१ बसि।

[३४७] दंपति···भाव; नारिन के सिँगार सब तिनसो कहियत हाव (गोपाल); नारिन के श्रृंगार की ईहा कहियत हाव (सभा), नारिन के श्रृंगार कों इहां कहत हैं हाव (भारत)। सब कबि हाव; सब कबिराव (गोपाल, भारत); है कबिराव (सभा)।

[३४८] त्यौं; और (गोपाल)। मन; उर (गोपाल, सभा, भारत)।

[३४९] कहत हैं; हुत कहि (सभा)। बरनि; बर्णं (गोपाल); बरन (सभा)। अरु, पुनि (गोपाल, सभा)। बिहित; बिहृत (सभा)।

[३५०] बचनादि; बसनानि (गोपाल)। सुकबि रसाल; सुमति रसाल (गोपाल, भारत); सुमति बिसाल (सभा)।

[३५१] घर; बसि (भारत)। सँवारी; सभारी (गोपाल); सवारी (सभा)। एते, ऐसे (गोपाल)।

विलासहाव-लक्षण

गवन नयन बचनादि मैं होत जु कछुक बिसेष।
बरनत ताहि बिलास कहि रसमय सुकबि असेष ॥३५३॥

उदाहरण (कबित्त)

किंकिनी कलित कल नूपुर ललित रव
गौन तेरो देखिकै सकतु करि गौन को।
मृदु मुसकानि मुखचंद चारु चाँदनी सौं
राख्यो कैं उज्यारो अभिराम द्वार भौन को।
सहज सुभावनि सौं भौंहनि[1] के भावनि सौं
हरति है मन *मतिराम* मनरौन को।
रूपमद छकी आजु छबि सौं छबीली देति
तिरछी चितौनि मैन बरछी सी कौन को ॥३५४॥

(दोहा)

तेरी चलनि चितौनि मृदु मधुर मंद मुसकानि।
छाय रही लखि लाल को सखियन मिस अँखियान ॥३५५॥

बिच्छित्तिहाव-लक्षण

थोरे ही भूषन बसन जहँ सोभा सरसाय।
ताहि कहत बिच्छित्ति हैँ जे प्रबीन कबिराय ॥३५६॥

---

१ मोहिनी।

[३५३] गवन, बचन (गोपाल); गमन (सभा, भारत)। बचनादि; बदनान (गोपाल)।

[३५४] रव, बर (गोपाल)। सकतु, सकल (गोपाल)। द्वार; धान (रत्ना)। भौंहनि, मोहनी (भारत)। कबि, हठि (सभा)। मनरौन, यो न रौन (गोपाल)। छकी आजु छबि, छकि छबि-छबि (गोपाल); छबि (सभा), छाकी अति छबि (भारत)। देति; छेदे (गोपाल, भारत), छेदे चित्त चितै (सभा)। मैन; बीर (गोपाल)। सी, न (गोपाल)।

[३५५] सखियन मिस अँखियान; सषि अनमिष अषियान (गोपाल, रत्ना, सभा); सखियन मिलि मिस आनि (भारत)।

[३५६] भूषन बसन जहँ, भूषनन सौं (गोपाल)।

उदाहरण (कबित्त)

बारने सकल एक रोरी ही की आड़ पर
हा हा न पहिरि आभरन और अंग मैं।
कबि *मतिराम* जैसे तीछन कटाछ तेरे
ऐसे कहाँ सर हैं अनंग के निखंग मैं।
सहज सुरूप सुघराई[1] रीझो मन मेरो
डोलत है तेरी अद्भुत[2] की तरंग मैं।
सेत सारी ही सों सब सौतैं रँगी स्याम रंग
सेत सारी ही सों रंगे स्याम लाल रंग मैं ॥३५७॥

(दोहा)

नथुनी गज मुकतान की लसत चारु सिंगार।
जिन पहिरे सुकुमारि तनु और आभरन भार ॥३५८॥

विभ्रमहाव-लक्षण

उलटे भूषन बसन को होतु जु है पहिराव।
तासों विभ्रम हाव कहि बरनत सब कबिराव ॥३५९॥

उदाहरण (सवैया)

साँझहि तैं[3] चलि आवत जात जहाँ तहाँ लोगनि हूँ न डरौगी।
प्रीतम सों रति ही यह रूप धौं[4] ह्वैहै कहा अब अंग भरौगी।
जानति हौं *मतिराम* तऊ चतुराई की बात नहीं उचरौगी[5]।
किंकिनि को उरु हारु किये कहि कौन सों जाय बिहार करौगी ॥३६०॥

(दोहा)

अली चली कहि कौन पै बड़े कौन के भाग।
उलटी कंचुकि कुचन पै कहै देत अनुराग ॥३६१॥

---

१ सुथराई। २ अचरज। ३ साँझ समै। ४ सु। ५ न हीय धरौंगी।

[३५७] सकल; सक (गोपाल)। अनंग के, अंग (सभा)। सुघराई; सुथराई (गोपाल, सभा, भारत)। अदभुत; अचरज (भारत)।

[३६०] साँझहि तैं, सांझ समय (भारत)। हूँ न; नैंक (गोपाल); ह्वै न (सभा)। धौं, किधौं (गोपाल)। अब; जब (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)। उचरौगी, उघरौंगी (गोपाल, सभा)।

किलकिंचितहाव-लक्षण

हरष गरब अभिलाष श्रम हास रोस अरु भीति।
होत एक ही संग हैं किलकिंचित यह रीति ॥३६२॥

उदाहरण (सवैया)

लालन बाल के द्वै ही दिना तें परी मन आनि सनेह की फाँसी।
काम कलोलनि में *मतिराम* लगैं मनो बाँटन मोद की आँसी।
पीतम के उर बीच चुभ्यो दुलही के बिलास मनोज की गाँसी।
स्वेद बढ्यो तन कंप उरोजनि आँखिन आँसू कपोलनि हाँसी ॥३६३॥

(दोहा)

सकुचि न रहिये साँवरे सुनि गरबीले बोल।
चढ़त भौंह बिकसत नयन बिहँसत गोल कपोल ॥३६४॥

मोट्टाइतहाव-लक्षण

बातन को बिघटन भए पुनि मिलाप की चाह।
सो मोट्टाइत जानियो बरनत सब कबिनाह ॥३६५॥

उदाहरण (सवैया)

फूलि रहे द्रुम बेलिन सौं मिलि पूरि रहीं अँखियाँ रतनारी।
मोहिं अकेली बिलोकि यहाँ कछू और ही सी भई दीठि तिहारी।
जैसी हुती हमसौं तुमसौं अब होयगी ऐसियै प्रीति निहारी।
चाहत जो चित मैं हित तौ जिन बोलिये कुंजन बीच बिहारी ॥३६६॥

---

[३६२] हास रोस, हा रोस (गोपाल)। अरु, अरि (गोपाल)। संग; बार (गोपाल, सभा, भारत)। यह, की (गोपाल, रत्ना, सभा)।

[३६३] मन; मति (सभा)। उर; हिय (गोपाल), डर (भारत)। चुभ्यो, भए (गोपाल, भारत), भयो (सभा)।

[३६४] न रहिये, रही ये (भारत)। गरबीले, सतरौहैं (सभा)। बिकसत; बरषत (गोपाल)।

[३६५] भए; करै (गोपाल, सभा)। जानियो, हाव है (भारत)।

[३६६] मिलि…रतनारी, मिलि पूरि रही अधियारी निहारी (गोपाल, भारत); मतिराम घनी अँधियारी निहारी (सभा)। दीठि; रीति (गोपाल)। ऐसियै; न वैसियै (सभा)। निहारी, ठिहारी (सभा); तिहारी (भारत)। बीच, कुंज (सभा)।

(दोहा)

झूठे ही ब्रज मैं लग्यौ मोहिँ कलंक गुपाल।
सपनेहू कबहूँ हिये लगे न तुम नँदलाल ॥३६७॥

कुट्टमितहाव लक्षण

ईहा[1] दुख अरु सुक्ख की प्रकट करे जहँ बाम।
परम ललित यह हाव है होत कुट्टमित नाम ॥३६८॥

उदाहरण (कवित्त)

सोने की सी बेली अति सुंदर नवेली बाल
ठाढ़ी ही अकेली अलबेली द्वार महियाँ।
मतिराम आँखिन सुधा की बरखा सी भई
गई जब दीठि वाके मुखचंद पहियाँ।
नेकु नीरे जाय करि बातनि लगाय करि
कछु मन पाय हरि वाकी गही बहियाँ।
चैनन चरचि लई सैनन[2] थकित भई
नैनन मैं चाह करै बैनन मैं नहियाँ ॥३६९॥

(दोहा)

प्रीतम को मनभावती मिलति बाँह दै कंठ।
बाहीं छुटै न कंठ तैं नाहीं छुटै न कंठ ॥३७०॥

बिब्बोकहाव लक्षण

जो पिय को अभिमान तैं करै अनादर बाम।
ताहि कहत बिब्बोक हैं जे प्रबीन गुनधाम ॥३७१॥

उदाहरण (सवैया)

मानहु आयो है राज कछू चढ़ि बैठे हो ऐसे पलास के खोढ़े।
गूँज गरे सिर मोरपखा *मतिराम* हो गाय[3] चरावत चोढ़े।

---

१ जहाँ। २ गौनन। ३ धेनु।

[३६८] ईहा; सवै (गोपाल); जहाँ (भारत)। जहँ; जब (गोपाल); ज्यौं (भारत)। परम.........नाम; ताही सौं कविराज सब कहत कुट्टमित बाम (गोपाल)।

[३६९] हरि वाकी, हरबाय (सभा)। सैनन; मोननि (गोपाल); गौननि (सभा, भारत)। बैनन; सैननि (रसा)।

[३७०] बाँह दै कंठ; प्रेम उतकंठ (गोपाल, सभा, भारत)।

मोतिन को मेरो तोरयौ हरा गहि हाथन सों रहे चूनरी पोढ़े।
ऐसे ही डोलत छैल[1] भए तुम्हैं लाज न आवत कामरी ओढ़े ॥३७२॥

(दोहा)

प्रानपियारो पग परयो तू न तकत यहि ओर।
ऐसो उर जु कठोर तौ न्यायहि[2] उरज कठोर ॥३७३॥

ललितहाव-लक्षण

बनै बानिकन सों सरस सकल आभरन अंग।
ललितहाव तासों कहैं जे कबि बुद्धि उतंग ॥३७४॥

उदाहरण (सवैया)

मंद गयंद की चाल चलै कटि[3] किंकिन नेवर की धुनि बाजै।
मोती के हारनि सों हियरो हरिजू के बिलास हुलासनि साजै।
सारी सुही *मतिराम* लसै मुख संग किनारी की यों छबि छाजै।
पूरन चंद पियूष मयूष मनौ परबेष की रेख बिराजै ॥३७५॥

(दोहा)

बिरी अधर अंजन नयन मिहँदी पग अरु पानि।
तनु कंचन के आभरन नीठि परत पहिचानि ॥३७६॥

विहितहाव लक्षण

जो परिपूरन होत नहिँ पिय समीप अभिलाख।
ताकौं बिहित बखानहीं जिनकी कबिता दाख[4] ॥३७७॥

---

१ साह। २ उचितहि। ३ कल। ४ साख।

[३७२] आयो, पायो (रत्ना)। ऐसे, ऊचे (सभा)। गाय; धेनु (भारत)। पोढ़े, ओढ़े (भारत)। छैल, साह (भारत)।

[३७३] उर जु; उरज (गोपाल, भारत)। न्यायहि, उचितै (भारत)।

[३७४] बुद्धि उतंग, बुद्धि उमग (गोपाल); बुद्ध उतंग (सभा)।

[३७५] कटि, कल (गोपाल सभा, भारत)। मोती के.........बिलास; मोतिन हारन सौं हियरो हियरो हरिबे कौं (गोपाल, सभा), मोतिन हारनि मै हियरा हरि जू के (भारत)। साजै; लाजै (सभा)। चंद; बिब (गोपाल, सभा)।

[३७६] दाख; साष (भारत)।

उदाहरण (कबित्त)

सकल सहेलिन के पीछे पीछे डोलति है
मंद मंद गौनु आजु हिय को हरत है।
संमुख होत *मतिराम* सुख होत जबै
पौन लागे घूँघट को पट उघरत है।
कालिंदी[१] के तट बंसीबट के निकट
नंदलाल कौं[२] सकोचन तैं चाह्यो न परत है।
तनु तो तिया को बर भाँवरै भरत मनु
सामरे बदन पर भाँवरै भरत है ॥३७८॥

(दोहा)

रूप साँवरो साँचु है सुधासिंधु मैं[३] खेल।
लखि न सकैं अँखियाँ सखी परी लाज[४] की जेल ॥३७९॥

वियोगशृंगार

प्यारी पीव[५] मिलाप बिनु होत नहीं[६] आनंद।
सो बियोगशृंगार कहि बरनत सब कबिबृंद ॥३८०॥

वियोग-शृंगार-भेद

कहि पूरब अनुराग अरु[७] मान प्रवास बिचारि।
रस सिंगार बियोग के तीन भेद निरधारि ॥३८१॥

---

१ जमुना। २ पै। ३ को। ४ लाल। ५ पिया। ६ न हिय। ७ कहि।

[३७८] आजु……हरत है; आब हीउ पकरत है, (गोपाल), आजु हियो पकरतु है (सभा), आपु आपही करतु है (भारत)। कालिंदी; जमुना (सभा, भारत)। कौं; पै (गोपाल, सभा, भारत)। चाह्यो; (गोपाल)। बर; पर (गोपाल)।

[३७९] मैं; को (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)।

[३८०] पीव; पियहिं (रत्ना); पिया (भारत)। नहीं; न हिय (रत्ना, भारत)।

[३८१] अरु, कहि (भारत)। भेद; भाति (गोपाल)।

पूर्वानुराग-लक्षण

जो प्रथमहिं देखे सुने बढ़ै प्रेम की लाग।
बिन मिलाप जो बिकलता सो पूरब अनुराग ॥३८२॥

उदाहरण (सवैया)

क्योते गए कहुँ नेह बढ्यो *मतिराम* दुहूँ के लगे दृग गाढ़े।
ऊँचे अटा पर काँधे सहेली के ठोढ़ी दिये चितवैं दुख बाढ़े।
लाल चले सुनिकै गृह कौं तिय अंग अनंग की आगि सौं डाढ़े।
मोहनजू मन गाढ़ो करैं पग द्वैक चलैं फिर होत हैं ठाढ़े ॥३८३॥

(दोहा)

निरखो नेह दुहून की[1] दई नई यह बात।
सूखति देंह दुहूँन की त्यौं पानिप सरसात ॥३८४॥

मानवर्णन

मान कहत हैं तीनि बिधि लघु मध्यम गुरु नाम।
तिनके भेद बनायकै बरने कबि *मतिराम* ॥३८५॥

लघुमान-लक्षण

और बाल कौं लखत जहँ लखै कंत कौं बाल।
बरनत हैं लघुमान सो छूटत तनकहि[2] ख्याल ॥३८६॥

उदाहरण (सवैया)

देखत और तियाहि छबीले कौं[3] मान छबीली के नैनन छायो।
प्रीतम यौं चतुराई करी *मतिराम* कछू परिहास बढ़ायो।

---

१ नवीन मैं। २ नेकहि। ३ देखत औरै तिया पिय को लखि।

[३८२] प्रथमहिं, पहिलै (सभा, भारत)। बढै; बाढ़े (गोपाल); चढ़े (सभा)। की लाग, सभाग (गोपाल)।

[३८३] पर, चढि (गोपाल)। दुख; द्रग (गोपाल)। सुनिकै······तिय; घर कौ फिरि बाल के (गोपाल); घर को सुनिकै तिम (सभा); सुनिकै घर को तिय (भारत)।

[३८४] दुहूँन की; परवीन (गोपाल); नवीन (सभा, भारत)।

[३८५] हैं; कबि (गोपाल)। बनायकै; बताइकैं, (गोपाल)।

[३८६] बाल, नारि (गोपाल), बाम (सभा)।

रीति रची बिपरीति जु प्रीति सौं[1] ताको कबित्त बनाय सुनायो।
भूलि गई रिस लाजन तैं मुसकाय पिया[2] मुख नीचे कौं नायो ॥३८७॥

(दोहा)

मानु जनावति सबनि कौं मान न मन को ठाट।
बाल मनावन कौं लखै लाल तिहारी बाट ॥३८८॥

मध्यममान-लक्षण

पिय मुख औरहि[3] नारि को सुनै नाँव जब[4] नारि।
होत मान मध्यम तहाँ बरनत सुकबि बिचारि ॥३८९॥

उदाहरण (सवैया)

दोऊ अनंद सौं[5] आँगन माँझ बिराजैं असाढ़ की साँझ सुहाई।
प्यारी को बूझत और तिया को अचानक नाउँ लियो रसिकाई।
आई उनै मुँह मैं हँसी कोपि[6] प्रिया[7] सुरचाप[8] सी भौंह चढ़ाई।
आँखिन तैं गिरे आँसू के बूँद सुहासु गयो उड़ि हंस की नाई ॥३९०॥

---

१ प्रीतम। २ तिया। ३ औरै। ४ जहँ। ५ आनद सौं दोउ। ६ कोह। ७ तिया। ८ सर चाप।

[३८७] तियाहि छबीले कौं, तिया पिय कौं लषि (सभा)। यौं; सौं (गोपाल)। रीति; राति (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)। ताको, जाको (गोपाल)। रिस लाजन; रिसजालन (सभा)। पिया; तिया (गोपाल, भारत), प्रिया (रत्ना, सभा)। कौं नायो, नवायो (गोपाल)।

[३८८] बाल······लाल; प्रानपियारी रावरी लषति (गोपाल)।

[३८९] औरहि, औरे (सभा, भारत)। जब; जो (गोपाल); जहँ (सभा, भारत)। तहाँ; जहाँ (गोपाल)।

[३९०] बूझत; पूछत (सभा)। रसिकाई; रसराई (रत्ना)। मुँहु मैं हँसी; मुष मेह सौं (गोपाल); मुह मेह सौं (रत्ना); मन मे हँसे (सभा); मुह मे हँसी (भारत)। कोपि, क्रोध (गोपाल), कोह (रत्ना, सभा, भारत)। प्रिया; तिया (गोपाल, सभा, भारत)। सुरचाप; सरचाप (भारत)।

(दोहा)

भई देवता भाव बस[1] वह तुमकौं बलि जाउँ।
वाही को मन ध्यान है वाही को मुख नाउँ ॥३६१॥

गुरुमान-लक्षण

बोलत और तियान सौं पिय कौं देखै बाम।
होत तहाँ गुरुमान सो बरनत कबि *मतिराम* ॥३६२॥

उदाहरण (कबित्त)

तेरे प्रानप्यारे कहूँ सहज सुभाय प्यारी
कहा भौ कही जो कछू बात[2] काहू बाल सौं।
ताको एती[3] रिस है[4] अयानिन की रीति तू तौ
दीप को सी जोति जगे जोबन रसाल सौं।
कबि *मतिराम* मेरो कह्यौ उर आनि आली
ठान जिन मान ऐसे मदनगुपाल सौं।
भौहैं करि सूधी बिहसौंहैं कै कपोल नैक[5]
सौंहैं करि लोचन रसौंहैं[6] नंदलाल सौं ॥३६३॥

(दोहा)

बहु नायक सौं बात मैं मानु भलो न सयानु।
दुखसागर मैं डूबिहै बाँधि गरे गुरुमानु ॥३६४॥

प्रवास-लक्षण

पीतम बसे बिदेस मैं बिरह जहाँ सरसाय।
बरनत तहाँ प्रबास कहि जे प्रबीन कबिराय ॥३६५॥

---

१ सब। २ भयो बात जो कही सु। ३ ऐसी। ४ कै। ५ गोल। ६ रिसौहैं।

[३६१] बस, उह (गोपाल), सब (सभा, भारत)। वह, मैं (गोपाल)।

[३६३] कहा······बात, कहा धौं भयौ जु कही बात (गोपाल), कहा भयो बात जो कही (भारत)। रिस, रस (गोपाल)। उर आनि; मन मानि (गोपाल)। बिहसौंहैं, वहसौंहैं (गोपाल)। नैक; गोल (सभा)। रसौंहैं, रचौंहैं (गोपाल), रिसौंहैं (सभा)।

[३६५] तहाँ; ताहि (गोपाल, भारत)। प्रबास; प्रलाप (गोपाल)। कहि; हैं (गोपाल, सभा, भारत)।

उदाहरण (सवैया)

धुरवानि की धावनि मानो अनंग की तुंग धुजा फहरान लगी।
नभमंडल तें छितिमंडल छ्वै छनदा की छटा छहरान लगी।
मतिराम समीर लगे लतिका बिरही बनिता थहरान लगी।
परदेस में पीव सँदेस न पायो पयोदघटा घहरान लगी ॥३९६॥

(दोहा)

चलत लाल के मैं कियो सजनी हियो पखान।
कहा करौं[1] दरकत नहीं इतें बियोग कृसान ॥३९७॥

नव दशा-वर्णन

होत बियोग सिंगार में प्रगट दसा नव जानि।
प्रथम कहै अभिलाष[1] पुनि चिंता[2] समृति[3] बखानि ॥३९८॥
गुनबर्नन[4] उद्बेग[5] पुनि कहि प्रलाप[6] उन्माद[7]।
व्याधि[8] बहुरि जड़ता[9] कहत कबि कोबिद अबिवाद ॥३९९॥

अभिलाष-लक्षण

ताहि कहत अभिलाष है जो[2] मिलाप की चाह।
प्रेम कथन तें जानिये बरनत सब कबिनाह ॥४००॥

उदाहरण (सवैया)

मोरपखा *मतिराम* किरीट मनोहर मूरति सों मनु लैगो।
कुंडल डोलनि गोल कपोलनि बोल सनेह के बीज से बैगो।

---

१ कहौं। २ जहँ।

[३९६] धावनि, धामनि (गोपाल) तुंग; तुरग (गोपाल)। छनदा की; छनजोति (गोपाल), चचपला की (सभा)। पायो; आयौ (गोपाल)। पयोदघटा, बियोगघटा (गोपाल)। 'भारत' में दूसरा चरण नहीं है।

[३९७] करौं; कहौं (गोपाल, रत्ना, भारत)।

[३९८] दसा नव; नवा दस (गोपाल)। बखानि; मानि (गोपाल); मनमानि (सभा)।

[४००] ताहि; जाहि (गोपाल)। जो; जहाँ (गोपाल); जहँ (भारत)।

लोल बिलोचनि कौलनि[1] सौं मुसकाइ इतै अरुझाइ चितैगो।
एक घरी घन से तन सौं अँखियान घनौं घनसार सौं द्वैगो ॥४०१॥

(दोहा)

मो मन सुक लौं उड़ि गयो अब क्यौंहूँ न पत्याय।
बसि मोहन बनमाल में रहो बनाउ बनाय ॥४०२॥

चितालक्षण

दरसन सुख की भावना करे चित्त की चाह।
चिंता तासौं कहत हैं जे प्रबीन रसनाह[2] ॥४०३॥

उदाहरण (सवैया)

जैये अकेली महाबन बीच तहाँ *मतिराम* अकेलोई आवै।
आपने आनन चंद की चाँदनी सों पहिलैं तनताप बुझावै।
कूल कलिंदी के कुंजन मंजुल मीठे अमोल वै[3] बोल सुनावै।
ज्यौं हँसि हेरि लियो हियरो हरि त्यौं हँसिकै हियरे हरि लावै ॥४०४॥

(दोहा)

काजु कहा[4] कुलकानि सौं लोक लाज किन जाय।
कुंजबिहारी कुंज में कहूँ मिलै[5] मुसकाय ॥४०५॥

---

१ कोरनि। २ कबि। ३ सु। ४ आज काम। ५ मिलैं मोहि।

[४०१] सौं, मैं (गोपाल)। गोल कपोलनि, कपोलनि गोलनि (गोपाल)। बोल, सनेह, प्रेम सनेह (गोपाल), बोलनि नेह (रत्ना, सभा, भारत)। लोल; चारु (गोपाल)। कौलनि; कोरन (गोपाल); कोरनि (रत्ना, सभा)। इतैं; चितै (सभा)। घन; घर (सभा)। आँखियान, असुवान (गोपाल)।

[४०२] बसि; मन (गोपाल)।

[४०३] करे, इहै (गोपाल)। चित्त; चिंत (गोपाल)। रसनाह, कबिनाह (गोपाल, रत्ना), कबिराह (सभा)।

[४०४] अकेली; अब केसी (भारत)। वै; सु (रत्ना, भारत)।

[४०५] काजु, आब (भारत)। कहूँ मिलैं, मिलै मोहि (सभा)। मुसकाय; अकुलाइ (गोपाल)।

स्मृतिलक्षण

लखी सुनी पिय बात को जो सुमरन मन होय।
स्मृति तासों कबि कहत हैं सब रसग्रंथ बिलोय ॥४०६॥

उदाहरण (कवित्त)

आलसबलित कोरे काजरकलित
मतिराम वे ललित अति पानिप धरत हैं।
सारस सरस सोहैं सलज सहास सग-
रबस बिलास है मृगनि निदरत हैं।
बरुनी सघन बंक तीछन कटाक्ष बड़े
लोचन रसाल उर पीर ही करत हैं।
गाढ़े है गड़े हैं न निसारे निसरत मैन
बान से बिसारे न बिसारे बिसरत हैं ॥४०७॥

(दोहा)

सोभा सो रतिसुंदरी नव सनेह सौं बाम।
तन बूड़त रँग पीत में मन बूड़त रँग स्याम ॥४०८॥

गुणवर्णन-लक्षण

बिरह बीच जो पीव की सुंदरतादि सराह।
गुनबर्नन तासों कहैं जो प्रबीन कबिनाह ॥४०९॥

---

[४०६] लखी, सखी (भारत)। तासौं·····हैं; जासौं कहत हैं (गोपाल); तासो कहत हैं (भारत)। सब, कबि (भारत)।
[४०७] बहु; अति (सभा)। सलज, सरस (गोपाल)। सगरब; गर सुबन (गोपाल)। बूढे, बडे (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत) कटाक्ष, बिसाल (गोपाल)। करत, हरत (गोपाल)। गडे; गढ़े (गोपाल)। निसारे; बिसारे (भारत)। मैन, नैंन (गोपाल)।
[४०८] सो रति सुदरी, ही सौं मिलि रही (गोपाल); सोनति सुंदरी (भारत)। नव सनेह, नवल नेह (गोपाल, सभा)। बाम, बाल (सभा)। पीत; प्रीति (गोपाल)।
[४०९] सुंदरतादि सराह, सुंदरि देखै राह (गोपाल)।

उदाहरण (सवैया)

मोरपखा *मतिराम* किरीट मैं कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुसकानि मनोहर कुंडल डोलनि मैं छबि छाई।
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई।
या मुख की मधुराई कहा कहौं मीठी लगै अँखियान लुनाई ॥४१०॥

(दोहा)

सरद चंद की चाँदनी जारि डारि किनि मोहि।
वा मुख की मुसकानि सम[1] क्यौंहूँ कहौं न[2] तोहि ॥४११॥

उद्वेगलक्षण

बिरहबिथा की बिकलता जहाँ कछू न सुहाय।
ताहि कहत उद्बेग हैं जे प्रबीन कबिराय ॥४१२॥

उदाहरण (सवैया)

चाहि तुम्हैं *मतिराम* रसाल परी तिय के तन मैं पियराई।
काम के तीछन तीरन सौं भरि भीर तुनीर भयो हियराई।
तेरे बिलोकिबे कौं उतकंठित कंठ लौं आय रह्यौ जियराई।
नैक परे न मनोज के ओजनि सेज सरोजनि मैं सियराई ॥४१३॥

(दोहा)

जे अंगनि पियसंग मैं बरसत हुते पियूख।
ते बीछू के डंक से भए मयंक - मयूख ॥४१४॥

प्रलापलक्षण

उतकंठा ते कहत हैं जहाँ मोहमय बैन।
बरनत तहाँ प्रलाप हैं जे प्रबीन रस ऐन ॥४१५॥

---

१ सरि। २कबहुँ कहौ नहिं।

[४१०] डोलनि; लोलनि (रत्ना)। बिसाल, बिलास (भारत)। लुनाई; गुलाई (सभा)।

[४११] कहौं, करू (गोपाल)।

[४१३] तीछन; तीक्षण तीक्ष्ण (गोपाल)। जियराई, हिराई (गोपाल)। नैक; नेन (गोपाल)। मैं, की (गोपाल)।

[४१४] से, सम (गोपाल)। भए; मए (सभा)।

(कवित्त)

कहियो सँदेसो प्रानप्यारी को गमन कीनो[1]
बिक्रम बिलास जे वे आपने परस के।
चंदकर बरछीन छेदि छेदि हारयौ तीर
तीछन मनोज के कछुक करि न सके।
कबि *मतिराम* ये कुलिस कैसे घाय क्यौंहू
गनत न कोकिल की कूकन के कसके।
कैसे दरकतु मेरो उर सदा सहि रह्यो
तेरे कुच निपट कठोरनि के मसके ॥४१६॥

(दोहा)

बिकल लाल कौं बाल तू क्यौं न बिलोकति आनि।
बोलि कोकिलनि सौं कहै बोल तिहारे जानि ॥४१७॥

उन्मादलक्षण

उतकंठा तें मोहमय बृथा करत कछु काज।
ताहि कहत उन्माद हैं कबि कोबिद सिरताज ॥४१८॥

उदाहरण (सवैया)

जा छिन तें *मतिराम* कहै मुसकात कहूँ निरख्यौ नँदलालहि।
ता छिन तें छिन ही छिन छीन बिथा बहु बाढ़ी बियोग की बालहि।
पोछति है कर सौं किसलै गहि बूझति स्याम सरीर गुपालहि।
भोरी भई है मयंकमुखी भुज भेटति है भरि अंक तमालहि ॥४१९॥

---

१ पयान कीने।

[४१६] को गमन कीनो; सौं गवन कियो (गोपाल); सो पवन कीन्हे (सभा); सौं पयान कीने (भारत)। कुलिस, कलस (गोपाल)। उर, हियो (सभा)।

[४१७] लाल कौं बाल; बाल कूँ लाल (गोपाल)।

[४१९] पोछति, बूझति (गोपाल, भारत); पौंछति (रत्ना); पूछति (सभा)। सरीर, सरूप (गोपाल, सभा, भारत)। भोरी; बौरी (गोपाल)।

(दोहा)

रोय उठै छिन हँसि उठै छिन उठि चलै रिसाय।
बौरी करी[1] बनायकै रूप ठगौरी लाय ॥४२०॥

व्याधिलक्षण

काम पीर तैं पियरई ताप दूबरी होय।
तासौं व्याधि बखानहीं कबि कोबिद सब कोय ॥४२१॥

उदाहरण (कबित्त)

बरखा सी लागी निसिबासर बिलोचननि
बाढ़यौ परबाह भयो नावनि उतरिबो।
सहौ[2] जात कौन पै सुकबि *मतिराम* अति
बिरह अनल-ज्वाल-जालन ते[3] जरिबो।
जैयत समीप तो उड़ैयत उसासनि सौं
हमकौं तौ होत उत हेरत हहरिबो।
कियो कहा चाहत सो करो[4] न कुँवर कान्ह
रह्यो अब वाको उपचारनि को करिबो ॥४२२॥

(दोहा)

देखि परै नहिँ दूबरी सुनियो स्याम सुजान।
जान परै परजंक मैं अंग आँच अनुमान ॥४२३॥

जड़तालक्षण

उतकंठादिक तैं जु ह्वै अचल चित्त अरु अंग।
तासौं जड़ता कहत हैं कबि कोबिद रसरंग ॥४२४॥

---

१ भोरी बाल। २ रह्यो। ३ सो। ४ कहो।

[४२०] हँसि उठै, उठि चलै (गोपाल)। उठि चलै; उचि परै (गोपाल)।

[४२२] सहौ; कह्यौ (गोपाल), रह्यो (भारत)। अति, अब (सभा, भारत)। अनल, जलनि (गोपाल)। ते, कौ (गोपाल); सौं (सभा, भारत)। होतु; भयो (भारत)। करो; कहो (गोपाल, सभा, भारत)।

[४२३] आँच; अंग (गोपाल)।

[४२४] कबि कोबिद; जे प्रबीन (रत्ना, सभा, भारत)।

उदाहरण (कबित्त)

सूँघै न सुबास रहै राग रंग तैं उदास
भूलि गई सुरति सकल खान पान की।
कबि *मतिराम* इकटक अनमिष नैन
बूझै न कहति बैन समुझै न आन की।
थोरी सी हँसनि मैं ठगोरी तैंने डारी स्याम[1]
बौरी कीनी गोरी[2] तैं किसोरी बृषभान की।
तब तैं बिहारी वह भई है पखान की सी
जब मैं निहारी रुचि मोर के पखान की ॥४२५॥

(दोहा)

अनमिष लोचन बाल के यातैं नंदकुमार।
मीच गई जरि बीच[3] ही बिरहानल की झार ॥४२६॥

कविनिवेदन

समुझि समुझि सब रीझिहैं सज्जन सुकबि समाज।
रसिकन के रस को कियो नयो ग्रंथ रसराज ॥४२७॥

इति श्रीसुकवि मतिराम विरचितायाम् रसराजग्रंथ संपूर्णम्।

---

१ तुम। २ भोरी। ३ बीज।

[४२५] सूँघै, चाहै (गोपाल)। इकटक, एक (सभा)। बातु; बैंन (गोपाल); बैन (भारत)। मैं; सौं (गोपाल); औ (भारत)। तैं ने, ऐसी (गोपाल, रत्ना, सभा, भारत)। स्याम, करि (गोपाल, सभा); ठग (रत्ना, भारत)। बौरी; भोरी (सभा)। कीनी गोरी; करी भोरी कीसी, (गोपाल), कैसी (सभा, भारत)। मैं, तैं (गोपाल)। रुचि, छबि (गोपाल)।

[४२६] के; उह (गोपाल), वह (सभा)। बीच ही, परस तें (गोपाल)।

इसके पश्चात् 'गोपाल' में निम्नलिखित छंद है—

मोरपखान किरीट बन्यौ मुकतान के कुंडल स्रोन बिलासी।
चारु चितौनि चुभी मतिराम सु क्यौं बिसरै मुसुकानि सुधा सी।
काजु कहा सजनी कुलकानि सौं लोग हँसैं सिगरे ब्रजबासी।
मैं तो भई मनमोहन को मुखचंद लखै बिन मोल की दासी॥

[४२७] नयो, भयौ (गोपाल)।

ललितललाम

ललितललाम

मंगलाचरण

(दोहा)

सुखद साधुगन[1] कौं सदा गजमुख दानि उदार ।
सेवनीय[2] सब जगत को जग - मा-बाप-कुमार[3] ॥ १ ॥
कबि *मतिराम* गनेस कौं सुमिरत सुख सरसात[4] ।
श्रौन पौन लागैं बिघन तूल तूल उड़ि[5] जात ॥ २ ॥
मद्रस मत्त मिलिंदगन गान मुदित गननाथ ।
सुमिरत कबि *मतिराम* कौं ऋद्धि-सिद्धि-निधि हाथ ॥ ३ ॥

(सवैया)

पारवती के पयोधर के पय ज्योति जगै अति उज्जल जो है ।
ईस के सीस ससी सुरसिंधु अमीजुत पावन पाप बिमोहै ।
सिद्धि-बधू-कुच मंडन को *मतिराम* मनौ मुकता मन मोहै ।
साधुन को सु बसी[6] करतार - करी - मुख के कर सीकर सोहै ॥ ४ ॥

(छप्पय)

मुकुट मोरपर पुंज मंजु सुरधनुष बिराजत ।
पीत बसन छन छन नवीन छन छन छबि छाजत ।
बचन मधुर गंभीर घोष बरषत प्रमोद बर[7] ।
बृंदावन बर बाल - बेलि - बृंदन बिलास कर ।

---

१ जन । २ बर्ननीय । ३ माया सुकुमार । ४ दरसात । ५ डुरि ।
६ सँबसी । ७ भर ।

[१] सेवनीय, बदनीय (रत्ना) । मा-बाँप-कुमार, माया सुकुमार (रत्ना) ।

[२] बिघन, विघन (रत्ना) ।

[४] पाप; पाथ (रत्ना) । बिमोहै; बियो है, (रत्ना, भारत) । सु बसी; सब श्री (रत्ना) ।

मतिराम सकल संतापहर भावसिंह भूपाल मन।
गोबिंद नंदनंदन सुखद घन सुंदर आनंदघन ॥ ५ ॥

बूँदीवर्णन (दोहा)

जगत बिदित बूँदीनगर सुख[1] संपति को धाम।
कलिजुग हूँ में सत्यजुग तहाँ करत बिश्राम ॥ ६ ॥
पढ़त सुनत मन दै निगम आगम समृति पुरान।
गीत कबित्त कलानि को जहँ सब लोग सुजान ॥ ७ ॥
सरद बारिधर से लसत अमल धौरहर धौल।
चित्रनि चित्रित सिखर जहँ इंद्रधनुष से नौल ॥ ८ ॥
महलनि ऊपर जहँ बने कंचन कलस अनूप।
निज प्रभानि सौं करत हैं गगन पीत अनुरूप[2] ॥ ९ ॥
जहँ बिमान बनितान के श्रमजल हरत अनूप।
सौध-पताकनि के बसन होइ बिजन अनुरूप ॥१०॥
बीनाबेनु-निनाद मृग मोहि अचल करि चंद।
सौधसिखर ऊपर[3] जहाँ दंपति करत अनंद ॥११॥
जहाँ छहौं ऋतु मैं मधुर सुनि मृदंग मृदु सोर।
संग ललित ललनानि के नृत्य करत गृह मोर ॥१२॥
मरकत लाल प्रबाल मनि मुकुत हीर अवदात।
ललित राजपथ मैं जहाँ जरकस बसन बिकात ॥१३॥
मदजल बरषत भूमि के जलधर सम मातंग।
बिना परनि के खग जहाँ सुंदर[4] तरल तुरंग ॥१४॥
सदा[5] प्रफुल्लित फलति जहँ द्रुम बेलिन के बाग।
अलि कोकिल कलधुनि सुनत[6] लहत श्रवन अनुराग ॥१५॥
कमल कुमुद[7] कुबलयन के परिमल मधुर पराग।
सुरभि सलिल पूरे जहाँ बापी कूप तड़ाग ॥१६॥
सुक चकोर चातक चुहिल[8] कोक मत्त कलहंस।

---

१ सब। २ पीत गग तल रूप। ३ ऐसे। ४ चंचल। ५ सरस। ६ करत। ७ कुद। ८ चडुल।

[५] छन छन छबि, छन छबि छबि (रत्ना); छिन छबि छबि (भारत)।
९ बर; भर (रत्ना)। बिलास; बिनोद (रत्ना)।

जहँ तरबर सरबरन के लसत ललित अवतंस ॥१७॥
अछयबट बालक उदर ज्यौं संसार समाय[1]।
सकल जगत पानिप रह्यौ बूँदी मैं ठहराय[2] ॥१८॥
तामैं प्रतिबिंबित मनौ संपतिजुत सुरलोक।
घर घर नर नारी लसैं दिव्य रूप के ओक ॥१९॥
चंद्रमुँखिन के भौंह जुग कुटिल, कठोर उरोज।
बाननि सौं मन कौं जहाँ मारत एक मनोज ॥२०॥
जहाँ चित्त चोरी करै मधुर-बदन-मुसकानि।
रूप ठगत है दृगन कौं और न दूजो जानि ॥२१॥
ता नगरी को प्रभु बड़ो हाड़ा सुरजनराव।
रच्यो एक सब गुननि को बर बिरंचि समुदाव ॥२२॥

नृपवंशवर्णन (छप्पय)

एक धर्म[3] गृहखंभ जंभरिपु रूप अवनि पर।
एक बुद्धि गंभीर धीर बीराधिबीरबर।
एक ओज[4] अवतार सकल सरनागतरच्छक।
एक जासु करबाल निखिल[5] खलकुल[6] कहँ तच्छक।
मतिराम एक दातानिमनि जगजस अमल प्रगट्टियउ।
चहुवान-बंस-अवतंस इमि एक राव सुरजन भयउ ॥२३॥

(कवित्त)

दानसमै गनै धन तृन सौं कुबेरहू को
तनक सुमेरु महादानि ऊँचे मन को।
पृथु सौं प्रथित[7] पृथ्वी प्रबल प्रतापवंत
प्रभु पुरहूत सौं प्रगट पूरे पन को।
मतिराम कहै बैरी बारन बिदारिबे कौं
रूप धरैं राजै मृगराज रन बन को।
दुरजनबधू उरजन को सिंगारहार
ऐसो जस गावैं सुरजन सुरजन को ॥२४॥

---

१ अमाय। २ त्यों बूँदी मै आय। ३ धरम। ४ भोज। ५ सकल।
६ अरिकुल। ७ पृथीप।
[१७] चुहिल; चुहल (रता)।

(दोहा)

भयो भोज सुरजन तनै अतुल ओज[1] की खानि।
हिंदुन की राखी सरम निज मूँछन में आनि ॥२५॥

(कवित्त)

जेते ऐंड़दार दरबार[2] सिरदार सब
ऊपर प्रताप दिल्लीपति को अभंग भो।
मतिराम कहै करवार के कसैया केते[3]
गाड़र से मूँड़े जग हाँसी को प्रसंग भो।
सुरजनसुत रज लाज रखवारो एक
भोज ही तैं साहु को हुकुम-पग पंग भो।
मूँछनि सौं रावमुख लाल रंग देखि मुख
औरनि को मूँछनि बिना हो स्याम रंग भो ॥२६॥

(दोहा)

बंस-बारिनिधि-रतन भो रतन भोज को नंद।
साहनि सौं रन रंग मैं जीत्यो बखतबिलंद ॥२७॥

(कवित्त)

बिगर हथ्यारन हजूर आइबे को न
हुकुम मान्यो दिल्लीपति आलम पनाह को।
मतिराम कहै दल दक्खिनी समेत
साहिजहाँ सो हटायो बीर बारिधि उछाह को।
भोज को सपूत भयो फौज को सिंगार अति[4]
ओज को दिनेस दुरजन दिलदाह को।
राव रतनेस कर ओट राख्यो करवार[5]
करि वार ओट राख्यौ कोट पातसाह को ॥२८॥

(दोहा)

भयो राव रतनेस को गोपीनाथ कुमार।
सुजस अपार बखानिबै दान-कृपान-उदार ॥२९॥

---

१ योग। २ जेते ये उदार दरबार। ३ गहि। ४ अरु। ५ वार।
[२८] न हुकुम मान्यो, हुक्मैं नहि (भारत)। कर ओट; कर ओटि (रत्ना)। करवार, करि वार (भारत)।

(कबित्त)

संगर मैं सिंह सम कीने करिबर सुर-
पुर के निवासी सूर सत्रुन के साथ के।
कहै *मतिराम* गज गाँव दै निवाज कीनें
सकल निहाल जे गवैया गुनगाथ के।
राव रतनेस के कुमार के सुजस फैलि
रहे पुहुमी मैं ज्यौं प्रबाह गंगपाथ के।
रीझ-खीज-मौज-फौज-दान औ कृपान ऊँचे
जगत बखानै दोऊ हाथ गोपीनाथ के ॥३०॥

(दोहा)

गोपीनाथ - तनै भयो पानिप पारावार।
सत्रुसाल[1] छितपालनि[2] छत्र - धर्म अवतार ॥३१॥

(कबित्त)

पंडित सुकबि भाट चारन को गुन
समुझैया सावधान सदा सुजस बिधान मैं।
कबि[3] *मतिराम* जाको तेजपुंज दिनकर
दुज्जन को दाहकर दसहू दिसान मैं।
गोपीनाथ - नंद चितचाही बकसीसनि सौं
जाचक धनेस[4] कीनें सकल जहान मैं।
ज्ञान मैं दिवान सत्रुसाल सुरगुरु
साहिबी मैं सुरपति सुर - तरबर दान मैं ॥३२॥

(सवैया)

औरँग दारा जुरे दोऊ जुद्ध[5] भए भट क्रुद्ध[6] बिनोद बिलासी।
मारू बजै *मतिराम* बखानैं भई अति अस्त्रनि की बरखा सी।
नाथतनै तिहि ठौर भिर्‌यो जिय जानिकै छत्रिन कौं रन कासी।
सीस भयो हरहार सुमेरु छता[7] भयो आपु सुमेरु को बासी ॥३३॥

---

१ छत्र। २ छिति। ३ कहै। ४ जनेस। ५ जंग। ६ जुद्ध। ७ सता।

[३३] जुद्ध, जंग (भारत)। क्रुद्ध; युद्ध (भारत)।

(दोहा)

सत्रुसाल सुत सत्य मैं भावसिंह भूपाल।
एक जगत मैं जगत है सब-हिंदुन की ढाल ॥३४॥

(छप्पय)

तिमिर तुलित तुरकान प्रबल दिसि बिदिसि प्रघट्टत।
चलत पंथ पंथीन धरम श्रुति[1] करम निघट्टत।
लखत न लोचन[2] लोक अवनिपति मोह नींद रस।
धरनि बलय सब करत जानि[3] कलिकाल आप बस।
मतिराम तेज अति जगमगत भावसिंह भूपाल महँ।
दिनकर दिवान दिन दिन-उदित करत सुदिन सब जगत[4] कहँ ॥३५॥

(कवित्त)

परम प्रबीन धीर धरमधुरीन दीन-
बंधु सदा जाकी परमेसुर मैं मति है।
दुज्जन बिहाल करि जाचक निहाल करि
जगत मैं कीरति जगाई जोति अति है।
राव सत्रुसाल को सपूत पूत भावसिंह
मतिराम कहै जाहि साहिबी फबति है।
जानपति दानपति हाड़ा हिंदुवानपति
दिल्लीपति दलपति बलाबंधपति है ॥३६॥

(सवैया)

मौजन सौं *मतिराम* कहै कबि लोगन कौं जिमि भोज बढ़ावै।
रोस किये रनमंडल मैं खलदेह की खालनि भूमि मढ़ावै।
रीझहू खीज मैं राव सतासुत कीरति मैं अति जोति चढ़ावै।
भाऊ दिवान गुरू सब भू पर भूपन दान कृपान पढ़ावै ॥३७॥

(दोहा)

भावसिंह की रीझ कौं कबिता भूषन धाम।
ग्रंथ सुकबि *मतिराम* यह कीनौं ललितललाम ॥३८॥

---

१ सत। २ लोचननि। ३ रजनि। ४ संसार।

[३४] मैं; मंय (रत्ना)।

[३७] जिमि भोज; मन मौज (रत्ना)।

उपमा-लक्षण

जाको बर्नन कीजिये सो उपमेय प्रमान।
जाकी समता दीजिये ताहि कहत उपमान ॥३९॥
जहाँ बरनिये दुहुनि की सम छबि को उल्लास।
पंडित कबि *मतिराम* तहँ उपमा कहत प्रकास ॥४०॥

उदाहरण (कबित्त)

एक रजपूत है दिवान भावसिंह जाको
जंग जुरेँ चौगुनो चढ़त चित चाव मैँ।
सत्रुसालनंद को सुजस *मतिराम* यातैँ
फैलत महीपति समाज समुदाव मैँ।
दिल्ली के दिनेस के प्रचंड तेज आँच लागे
पानिप रह्यो न काहू भूपति तलाव मैँ।
ऐसे सब खलक तैँ सकल सकिलि रही
राव मैँ सरम जैसे सलिल दरयाव मैँ ॥४१॥

(सवैया)

प्रानपियारो मिल्यो सपने मैँ परी जब नैसुक नींद निहोरे।
कंत को आइबो त्यौंही जगाय सखी कहे बैन पियूष निचोरेँ।
यौँ *मतिराम* भयो हिय मैँ सुख बाल के बालम सौँ दृग जोरेँ।
ज्यौँ पट मैँ अति ही चटकीलो चढ़ै रँग तीसरी बार के बोरेँ ॥४२॥

पूर्णोपमा-लक्षण (दोहा)

बाचक अरु उपमेय जहँ साधारन उपमान।
पूरनउपमा कहत हैँ तहँ *मतिराम* सुजान ॥४३॥

उदाहरण (कबित्त)

आलसबलित कोरैँ काजरकलित *मति-*
राम वे ललित अति पानिप धरत हैँ।
सारस सरस सोहैँ सलज सहास सग-
रब सबिलास है मृगनि निदरत हैँ।
बरुनी सघन बंक तीछन कटाछ बड़े
लोचन रसाल उर पीर ही करत हैँ।

गाढ़े ह्वै गड़े हैं न निसारे निसरत मैन-
बान से बिसारे न बिसारे बिसरत हैं ॥४४॥

(दोहा)

भौंह कमान कटाच्छ सर समरभूमि बिचलैं न।
लाज तजेहु दुहुनि के सजल सूर से नैन ॥४५॥

लुप्तोपमा-लच्छण

होत एक द्वै तीन कौं इन चारिहु मैं लोप।
तहाँ होत लुप्तोपमा बरनत कबि मति-ओप ॥४६॥

उदाहरण (कबित्त)

सत्ता को सपूत भावसिंह भूमिपाल जाकी
किर्त्ति जोन्ह करत जगत चित चाव है।
कबिन को *मतिराम* कामतरु ऐसो कर
अंगद को ऐसो रन मैं अडोल पाँव है।
चंद कैसी जोति चंडकर कैसो तेज पुर-
हूत कैसो पुहुमी मैं प्रगट प्रभाव है।
अरजुन पन मुनि मन धनपति धन
जगपति तन मृगपति रन राव है ॥४७॥

मालोपमा-लच्छण (दोहा)

जहाँ एक उपमेय कौं होत बहुत उपमान।
तहाँ कहत मालोपमा कबि *मतिराम* सुजान ॥४८॥

उदाहरण (सवैया)

तेज निधाननि मैं रबि ज्यौं छबिवंतन मैं बिधु ज्यौं छबि छाजै।
सैलनि मैं ज्यौं सुमेर लसै बर बृच्छनि मैं कलपद्रुम साजै।
देवनि मैं *मतिराम* कहै मघवा जिमि[1] सोहत सिद्ध समाजै[2]।
राव सतासुत भाऊ दिवान जहान के राजनि मैं इमि राजै ॥४९॥

---

१ सम। २ सदा जै।

[४४] आलस; आरस (रत्ना)।

[४५] सजल; सलज (रत्ना, भारत)।

[४९] समाजै; सदा जै (रत्ना)।

(दोहा)

रूपजाल नँदलाल के परि करि बहुरि छुटै न।
खंजरीट मृग मीन से ब्रजबनितन के नैन ॥५०॥

रसनोपमा-लक्षण

जहाँ प्रथम उपमेय सो होत जात उपमान।
तहाँ कहत रसनोपमा कबि *मतिराम* सुजान ॥५१॥

उदाहरण (कबित्त)

काहू को न बड़ो कुल काहू को न बड़ो भाग
देखे बर[1] भूमिपाल सकल जहान के।
काहू को न बड़ो हियो काहू को न बड़ो हाथ
काहू के न बड़े हाथी सुकबि बखान के।
कहै *मतिराम* सब राजत अनूप गुन
राव भावसिंह बलाबंध सुलतान[2] के।
बंस सम बखत बखत सम ऊँचो मन
मन सम कर कर सम करी दान के ॥५२॥

अनन्वय-लक्षण (दोहा)

जहाँ एक ही बात कौं उपमेयो उपमान।
तहाँ अनन्वय कहत हैं कबि *मतिराम* सुजान ॥५३॥

उदाहरण (कबित्त)

सुरजन कैसी सुरजन हीं में साहिबी है
भोज कैसी भोज में अकड़[3] बड़ भाल में।
रतनेस कैसी रतनेस में कहत *मति-*
राम करतूति जीति जाके करबाल में।
गोपीनाथ कैसी गोपीनाथ में सपूती भई
सत्रुसाल कैसी रजपूती सत्रुसाल में।
भूमि सब[4] देखी और काहू में[5] न पेखी छबि
भावसिंह कैसी भावसिंह भूमिपाल में ॥५४॥

---

१ बडे। २ सुरतान। ३ अगड़। ४ बर। ५ ऐसी और मै।

[५०] करि...छुटै न, क्यौँ हूँ निकरैं न (रत्ना)।

[५२] बर; बड़े (रत्ना)।

उपमेयोपमान-लक्षण (दोहा)

जहाँ होत है परसपर उपमेयो उपमान।
तहँ उपमेयोपमा कहि बरनत सुकबि सुजान ॥५५॥

उदाहरण (सवैया)

बारन ते बकसै जिनकी समता न लहै बढ़ि बिंध्य समूचो।
किंत्ति सुधा दिगभित्ति पखारत चंदमरीचिन को करि कूचो।
राव सतासुत कौं *मतिराम* महीपति क्यौं करि और पहूँचो।
भू पर भाऊ भुवप्पति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँचो ॥५६॥

प्रतीप-लक्षण (दोहा)

जहँ प्रसिद्ध उपबर्न[1] कौ पलटि कहत उपमेय।
बरनत तहाँ प्रतीप हैं कबिजन जगत अजेय ॥५७॥

उदाहरण (कबित्त)

जाकी[2] खीज[3] भूपति भिखारी से निहारे होत
भूप से भिखारी जाकी रीझ पै सराह की।
नृपति को थप्पन उथप्पन समर्थ सत्रु-
साल-सुत करै करतूति चित चाह की।
कहै *मतिराम* फैली चहूँ चक्क आन चहु-
वान-कुल-भानु भावसिंह नरनाह की।
राव सरिबर उमराव कैसे पावैं पात-
साह सरि पावै बलाबंध पातसाह की ॥५८॥

द्वितीय प्रतीप-लक्षण (दोहा)

जहाँ और उपमान[4] लहि बर्न्य अनादर होय।
तहाँ प्रतीपहि कहत हैं कबि कोबिद सब[5] कोय ॥५९॥

उदाहरण (कबित्त)

सागर मैं गहिराई मेरु मैं उचाई रति-
नायक मैं रूप की निकाई निरधारिये।
दान देवतरु मैं सयान सुरगुरु मैं
प्रसाद गंगनीर मैं सु कैसे कै बिसारिये।

---

१ उपमान। २ के। ३ खीझे। ४ उपमेय। ५ जन।
[५७] उपबर्न; उपमान (रत्ना)।
[५८] खीज; खीझ (रत्ना)। नृपति; नृपनि (रत्ना)।

तरनि मैं तेज बरनत *मतिराम* जोति
जगमगै जामिनीरमन मैं बिचारिये।
राव भावसिंह कहा तुम ही बड़े हौ जग
रावरे के गुन ओर ठौरहू निहारिये ॥६०॥

तृतीय प्रतीप-लक्षण (दोहा)

जहाँ अनादर आन को उपावर्न्य[1] उपमेय।
बरनत तहाँ प्रतीप हैं कोऊ सुकबि अजेय ॥६१॥

उदाहरण

जलधर छोड़ि गुमान कौं हौं ही जीवनदानि।
तोसो हो[2] पानिप भर्‌यो भावसिंह को पानि ॥६२॥

चतुर्थ प्रतीप-लक्षण

जहाँ बर्न्य सौं और को उपमा बचन न होय।
ताहू[3] कहत प्रतीप हैं कबि कोबिद सब कोय ॥६३॥

उदाहरण (कबित्त)

बिक्रम म बिक्रम धरमसुत धरम मैं
धुंधमार धीर मैं धनेस वारौं धन मैं।
मतिराम कहत प्रियब्रत प्रताप मैं
प्रबल बल पृथु पारथहि वारौं पन मैं।
सत्रुसालनंद रैयाराव भावसिंह आजु
मही के महीप सब वारौं तेरे तन मैं।
नल वारौं नैननि मैं बलि वारौं बैननि मैं
भीम वारौं भुजनि मैं करन करन मैं ॥६४॥

पञ्चम प्रतीप लक्षण (दोहा)

कहा कछु न उपमान को यौं जहँ करत बखान।
तहाँ प्रतीपहि कहत हैं कोऊ कबि सज्ञान ॥६५॥

---

१ पापबर्न्य। २ है। ३ को।

[६१] उपावर्न्य; उपजावै (रत्ना)। तहाँ; तहौं (रत्ना)।

[६२] हो, है (रत्ना)।

[६४] करन करन, करनि करन (रत्ना)।

[६५] तहाँ; तहौं (रत्ना)।

उदाहरण (कवित्त)

दिन दिन दीने दूनो संपति बढ़त जाति
ऐसो याको कछू कमला को बर बर है।
हेम हाथ हाथी हीर बकसि अनूप जिमि
भूपनि को करत भिखारिन को घर है।
कहै *मतिराम* और जाचक जहान सब
एक दानि सत्रुसालनंदन को कर है।
राव भावसिंहजू के दान की बड़ाई देखि
कहा कामधेनु है कछू न सुरतरु है ॥६६॥

(दोहा)

कहा दवागनि के पिये कहा धरे गिरि धीर।
बिरहानल मैं जरत ब्रज बूड़त लोचन - नीर ॥६७॥

रूपक-लक्षण

बरनत बिषयी बिषय कौं[1] करि अभिन्न तद्रूप।
अधिक हीन सम उक्ति[2] सौं रूपक त्रिबिध अनूप ॥६८॥

समोक्ति अभिन्न-रूपक

उदाहरण (कवित्त)

मौजदरियाव राव सत्रुसालतनै जाको
जगत मैं सुजस सहज सतिभान है।
बिबुधसमाज सदा सेवत रहत जाहि
जाचकनि देत जो मनोरथ को दान है।
जाके गुन - सुमन - सुबास ते मुदित मन
साँच *मतिराम* कबि करत बखान है।
जाकी छाँह बसत बिराजै ब्रजराज यह
भावसिंह सोई कलपद्रुम दिवान है ॥६९॥

---

१ जहँ बरनत है बस्तु को। २ उकुति।

[६६] दीने; दूनी (रसा)। हीर, कीर (रसा)।
[६७] धीर; भीर (रसा)।
[६९] यह, वह (रसा)।

हीनोक्ति अभिन्न-रूपक

उदाहरण (दोहा)

महादानि जाचकन कौं भाऊ देत तुरंग।
पच्छनि बिगिर बिहंग हैं[1] सुंडन बिगिर मतंग ॥७०॥

अधिकोक्ति अभिन्न-रूपक

उदाहरण (सवैया)

जंग मैं अंग कठोर महा मदनीर झरै झरना सरसे हैं।
झूलनि रंग घने *मतिराम* महीरुह फूल-प्रभा निकसे[2] हैं।
सुंदर सिंदुरमंडित कुंभनि गैरिकश्रृंग उतंग लसे हैं।
भाऊ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी बकसे हैं ॥७१॥

समोक्ति तद्रूप-रूपक

उदाहरण

छाँह करैं छितिमंडल कौं सब ऊपर यौं *मतिराम* भए हैं।
पानिप कौं सरसावत हैं सगरे[3] जग के मिटि ताप गए हैं।
भूमि-पुरंदर भाऊ के हाथ पयोद नहीं बर काज ठए हैं।
पंथिन के पथ रोकिबे कौं घने[4] बारिदबृंद बृथा उनए हैं ॥७२॥

हीनोक्ति तद्रूप-रूपक

उदाहरण (दोहा)

बिप्रनि के मंदिरन तजि करत ताप सब ठौर।
भावसिंह भूपाल को तेज तरनि यह और ॥७३॥

अधिकोक्ति तद्रूप-रूपक

उदाहरण (कबित्त)

दूरि भयो अधरम अंधकार अति[5] सब
मुदित निहारि[6] द्विज चक्कनि को गोत है।
बैरिबधू-बदन कलानिधि मलीन भयो
सकल सुखानो पर पानिप को सोत है।

---

१ जे। २ प्रभानि फँसे। ३ सि। ४ घन। ५ दूरि भई अधरमिनी अब अँधयारी। ६ रौ।

[७०] हैं, जो (रत्ना)।

[७२] सगरे; सिगरे (रत्ना)। पयोद नहीं, पयोदनि हीं (रत्ना)।

कीरति की कौमुदी सुछाई छिति छोरनि लौं
बिमल कलानिधि है कुल चहुवान को।
दानि - कलपद्रुम सुजानमनि भावसिंह
भानु भूमितल को दिवान हिंदुवान को ॥७६॥

स्मृति भ्रम संदेह-लक्षण (दोहा)

एक बस्तु लखि आन को सुमरन भ्रम संदेह।
बरनत भूषन तीन बिधि जे कबिजन मतिगेह ॥८०॥

स्मृति-उदाहरण

सोय संग सुख जागि दुख लहि समुभयो निरधार।
छीन पुन्य सुरलोक ते लेत अवनि अवतार ॥८१॥

भ्रम-उदाहरण

उँजियारी मुख इंदु की परी उरोजनि आनि।
कहा अँगोछति मुगुध तिय पुनि पुनि चंदन जानि ॥८२॥
आभा तरिवन लाल की परी कपोलनि आनि।
कहा छपावति चतुर तिय कंत - दंत - छत जानि ॥८३॥

(सवैया)

मान कियो सपने मैं सुहागिनि भौंहैं चढ़ौं *मतिराम* रिसौंहैं।
बातैं बनाय मनाय लई मनभावन कंठ लगाय हसौंहैं।
एते अचानक जागि परी सुख ते अँगिरात उठी अलसौंहैं।
लालन के लखि लोचन लाज ते होत न बाल के लोचन सौंहैं ॥८४॥

संदेह-उदाहरण (दोहा)

परचि[1] परै नहि अरुन रँग अमल अधरदल माँझ।
कैधौं फूली दुपहरी कैधौं फूली साँझ ॥८५॥

(कबित्त)

बानी को बसन कैधौं बात के बिलास डोलै
कैधौं मुखचंद चारु चंद्रिका प्रकास है।
कबि *मतिराम* कैधौं काम को सुजस कै
परागपुंज प्रफुलित सुमन - सुबास है।

---

१ बरनि।

[७६] परिमान; परिवान (भारत)।
[८५] परचि; परखि (रसा)।

नाक नथुनी के गजमोतिन की आभा कैधौं
देहवंत प्रगटित हिये को हुलास है।
सीरे करिबे कौं पियनैन घनसार कैधौं
बाल के बदन बिलसत मृदु हास है ॥८६॥

शुद्धापह्नुति-लक्षण (दोहा)

औरै को आरोप करि साँच छुपावत धर्म।
सुद्धापह्नुति कहत हैं जे प्रबीन कबिकर्म ॥८७॥

उदाहरण (कवित्त)

पारावार पीतम को प्यारी ह्वै मिली है गंग
बरनत कोऊ कबि कोबिद निहारिकै।
सो तो मतो *मतिराम* के न मनमानै निज
मति सौं कहत यह बचन बिचारिकै।
जरत बरत बड़वानल सौं बारिनिधि
बीचिनि के सोर सौं जनावत पुकारिकै।
ज्यावत बिरंचि ताहि प्यावत पियूष निज
कलानिधिमंडल कमंडल तैं ढारिकै ॥८८॥

हेत्वपह्नुति-लक्षण (दोहा)

जुक्तिसहित *मतिराम* जहँ सुद्धापह्नुति होय।
हेतु अपह्नुति कहत हैं तहाँ सुकबि सब कोय ॥८९॥

उदाहरण

बालबदन प्रतिबिंब बिधु उयो रह्यो तिहि[१] संग।
उयो रहत अब रजनि दिन तपन तपावत अंग ॥९०॥

पर्यस्तापह्नुति-लक्षण

धर्म और मैं राखिये धर्मी साँचु छुपाय।
परजस्तापह्नुति कहत ताहि बुद्धि सरसाय ॥९१॥

उदाहरण

कोमल कमलन से कहैं तिन्हैं न नैक सयान।
होत पार लागत[२] हियै नैन मैन के बान ॥९२॥

---

१ उदित बिंब रह्यो। २ लागे।

भ्रान्त्यपह्नुति-लक्षण

जहाँ और संका भए[1] करत झूठ भ्रम दूरि।
भ्रांतपह्नुति कहत हैँ तहाँ सुकबि मतिभूरि ॥९३॥

उदाहरण (सवैया)

सेवत हैँ बिबुधै *मतिराम* सदा गुरुबैन प्रनाम कै मान्यो।
कोप किये सब भूतल के अरि भूभृत पत्तनि को गन भान्यो।
पानिपपूरन बारिद हाथनि ताप हर्‌यो जग मैँ जस ठान्यो।
तैँ समुझे पुरहूत के रूपहि मैँ प्रभु भाऊ दिवान बखान्यो ॥९४॥

छेकापह्नुति-लक्षण (दोहा)

जहाँ और की संक ते साँच छुपावत बात।
छेकापह्नुति कहत हैँ तहाँ बुद्धि अवदात ॥९५॥

उदाहरण

ओठ खंडिबे कौँ अर्‌यो मुख-सुबास-रस-रत्त।
स्यामरूप नँदलाल अलि नहिँ अलि अलि उनमत्त ॥९६॥

(सवैया)

पावस भीति बियोगिनि बालनि यौँ समुझाय सखी सुख साजैँ।
जोति जवाहिर की *मतिराम* नहीँ सुरचाप छिनौ छबि छाजैँ।
दंत लसैँ बकपाँति नहीँ धुनि दुंदुभी की न घने घन गाजैँ।
रीझिकै भाउ नरिंद दिये कबिराजनि के गजराज बिराजैँ ॥९७॥

छलापह्नुति-लक्षण (दोहा)

जहँ छल आदिक पदनि सौँ साँच छुपावत बात।
तहँ छलपह्नुति कहत हैँ कबिजन मति अवदात ॥९८॥

उदाहरण (कबित्त)

सुंदरबदनि राधे सोभा को सदन तेरो
बदन बनायो चारिबदन बनायकै।
ताकी रुचि लैन कौँ उदित भयौ रैनपति
मूढ़मति राख्यो निज कर बगरायकै।

---

१ को शंक ते।

[९४] सेवत, सेवित (रत्ना)।

मतिराम कहै निसिचर चोर जानि याहि
दीनी है सजाय कमलासन रिसायकै।
रातौ दिन फेरै अमरालय के आसपास
मुख मैं कलंक मिसि कारिख लगायकै ॥९९॥

उत्प्रेक्षा-लक्षण (दोहा)

जहँ कीजे संभावना सो उत्प्रेक्षा जानि।
बस्तु - हेतु - फल - रूप ते ताकौं त्रिबिध बखानि ॥१००॥
एक उक्तबिषया कही अनुक्तबिषया और।
बहुरि भेद द्वै वस्तु मैं जानहु कबि सिरमौर ॥१०१॥
एक सिद्धबिषया कही असिद्धबिषया और।
भेद - हेतु - फल दुहुनि मैं द्वै कहियत मतिदौर ॥१०२॥

उक्तविषया-वस्तूत्प्रेक्षा

उदाहरण

बासव की राजै रुचि ललित बसंत खेल
खेलत दिवान कलाबंध सुलतान मैं।
कहै मतिराम कबि मृगमद पंक छबि
छावत फुलेल औ गुलाब आपगान मैं।
कुंकुम गुलाल घनसार औ अबीर लहि
छाय रहे सघन अवनि आसमान मैं।
मेरे जानि राव भावसिंह को प्रताप जस
रूप धरे फैलि रह्यो दसहू दिसान मैं ॥१०३॥

अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

उदाहरण

जगमग जोबन अनूप तेरो रूप चाहि
रति ऐसी। रंभा सी रमा सी बिसराइये।
देखिबे कौं प्रानप्यारी पास प्रानप्यारो खरो
घूँघट उघारि नैक बदन दिखाइये।
तेरे अंग अंग मैं मिठाई औ लुनाई भरी
मतिराम कहत प्रगट यह पाइये।

[१०३] गुलाल; गुलाब (रत्ना)। जानि; जान (रत्ना)।

नायक के नैननि मैं नाइये सुधा सो सब
सौतिन के लोचननि लौन सो लगाइये ॥१०४॥

सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा

उदाहरण

प्रबल बिलंद बर बारनि के दंतनि सौं
बैरिन के बाँके बाँके दुरग बिदारे हैं।
कहै *मतिराम* दीने दीरघ दुरदबृंद
मुदिर से मेदुर मुदित मतवारे हैं।
तेग त्याग राजत जगतराव भावसिंह
मेरे जान तेरे गज याही तैं पियारे हैं।
दुज्जनि के दल कबि लोगनि के दारिदनि
नीकै करि गजन की फौजनि सौं मारे हैं[1] ॥१०५॥

सिद्धविषया

उदाहरण (सवैया)

मोचन लागी भुराई की बातनि सौतिनि सोच भुरावन लागी।
मंजनकै नित न्हायकै अंग अँगोछिकै बार झुरावन लागी।
मोरि मुखै मुसकायकै चारु चितै *मतिराम* चुरावन लागी।
ताही सकोच मनो मृगलोचनि लोचन लोल दुरावन लागी ॥१०६॥

सिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा

उदाहरण

बारन[2] धूपि अगारनि धूपिकै धूम अँध्यारी पसारी महा है।
आननचंद समान उग्यो मृदु मंजु हँसी जनु जौन्हछटा है।
फैलि रही *मतिराम* जहाँ तहाँ दीपति दीपनि की परभा है।
लाल तिहारे मिलाप कौं बाल सु आज करी दिन ही मैं निसा है ॥१०७॥

असिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा

उदाहरण (दोहा)

मनौ भजी अरितियन कौं पकरन को दृढ़ दाप।
भावसिंह को दिसनि मैं फैलत प्रबल प्रताप ॥१०८॥

---

१ दुज्जन के दल कबि लोगन के दारिद गयंदनि की फौजनि सौं मौजनि सो मारे हैं। २ द्वारनि।

गुणोत्प्रेक्षा-लक्षण

उत्प्रेक्षा बाचक जहाँ सब्द कह्यो नहिं होय।
गुणोत्प्रेक्षा कहत हैं तहाँ सुकबि सब कोय ॥१०६॥

उदाहरण

बाल रही इकटक निरखि ललित लालमुखइंदु।
रीझ भार अँखियाँ थकीं झलके श्रमजलबिंदु ॥११०॥

रूपकातिशयोक्ति-लक्षण

जहँ केवल उपमान ते प्रगट होत उपमेय।
रूपकातिसय उक्ति तहँ बरनत सुकबि अजेय ॥१११॥

उदाहरण

इंद्रजाल कंदर्प को कहै कहा *मतिराम*।
आगि लपट बर्षा करै ताप घरै घनस्याम ॥११२॥
चलो लाल या बाग में लखौ अपूरब केलि।
आलबाल घन समय को ग्रीषमरितु की बेलि ॥११३॥

सापह्नवातिशयोक्ति-लक्षण

जहाँ अपह्नुतिसहित सो बरनत मति अभिराम।
सापह्नव अतिसय उकति तहाँ कहत *मतिराम* ॥११४॥

उदाहरण

झूठ[1] इंदु अरबिंद में कहत सुधा मधुबास[2]।
तो मुख मंजुल अधर में तिनको प्रकट प्रकास ॥११५॥

भेदकातिशयोक्ति-लक्षण

औरे यों करिकै जहाँ बरनत सोई बात।
भेदकातिसय उक्ति तहँ कहत बुद्धि - अवदात ॥११६॥

उदाहरण

औरै कछु चितवन चलनि औरै मृदु मुसकानि।
औरै कछु सुख देति है सकै न बैन बखानि ॥११७॥

द्विविध संबंधातिशयोक्ति-लक्षण

जहँ अजोग है जोग में जहँ अजोग में जोग।
संबंधातिसयोक्ति यह भाषत सब कबि लोग ॥११८॥

---

१ मूड़, मूड़ु।
[११७] मृदु; कछु (रत्ना)।

उदाहरण (कबित्त)

सुरजनबंस राव भावसिंह सूरज तू
तो ते आज जगै जग जप तप जाग हैं
झलकै ललाई मुख अमल कमल तेरे
हिये हरिचरन - कमल अनुराग हैं।
सत्ता के सपूत तैं जगाई *मतिराम* कहै
लहलही कीरति कलपबेलि बाग हैं।
ऊँचे मन ऊँचे कर ऊँचे ऊँचै करी दै कै
ऊँचे करे भूमि के भिखारिन के भाग हैं ॥११९॥

सजल जलद जिमि झलकत मदजल
छितितल हलत चलत मंद गति मैं।
कहै *मतिराम* बल बिक्रम बिहद सुनि
गरजनि परै दिगवारन[1] बिपति मैं।
सत्ता के सपूत भाऊ तेरे दिये हलकनि
बरनी उँचाई कबिराजन की मति मैं।
मधुकरकुल करनीन[2] के कपोलन तैं
उड़ि उड़ि पियत अमिय[3] उड़पति मैं ॥१२०॥

द्वितीय सबंधातिशयोक्ति-लक्षण

उदाहरण

चरन धरै न भूमि बिहरै तहाँई जहाँ
फूले फूले फूलन बिछायो परजंक है।
भार के डरनि सुकुमारि चारु अंगनि मैं
करत न अँगराग कुंकुम को पंक है।
कहै *मतिराम* देखि बातायन बीच आयो
आतप मलीन होत बदन - मयंक है।
कैसैं वह बाल लाल बाहर बिजन आवै
बिजन - बयारि लागे लचकत लंक है ॥१२१॥

अंगनि उतंग जंग जैतवार जोर जिन्हैं
चिक्करत दिक्करि हलत कलकत हैं।

---

१ दिगदतिन। २ करटीन। ३ पियूष।

कहै *मतिराम* सैन सोभा के ललाम अभि-
राम जरकस भूल झाँपे झलकत हैं।
सत्ता को सपूत राव भावसिंह रीझि देत
छहूँ रितु छके मदजल छलकत हैं।
मंगन की कहा है मतंगन के माँगिबे को
मनसबदारन के मन ललकत हैं ॥१२२॥

अक्रमातिशयोक्ति-लक्षण (दोहा)

जहाँ हेतु अरु काज मिलि होत एक ही अंग।
अक्रमातिसय उक्ति तहँ बरनत कबि रसरंग ॥१२३॥

उदाहरण (कवित्त)

जूथपति पैठ्यो पानी[1] पोषत प्रबल मद
कलभ करेनुकनि लीने संग सुख ते।
ग्राह गह्यो गाढ़े बैर पीछले के बाढ़े भयो
बलहीन बिकल[2] करन दीह दुख ते।
कहै *मतिराम* सुमिरत ही समीप लखे
ऐसी[3] करतूति भई साहिब सुरुख ते।
दोऊ बातैं छूटीं गजराज की बराबरि ही
पाँव ग्राह मुख ते पुकार निज मुख ते ॥१२४॥

चचलातिशयोक्ति-लक्षण (दोहा)

बरनत हेतु प्रसक्ति ते उपजत है जहँ काज।
चंचलातिसय उक्ति तहँ बरनत हैं कबिराज ॥१२५॥

उदाहरण (कबित्त)

बारि के बिहार बरबारनि के बोरिबे कौं
बारिचर बिरची इलाज जय काज की।
कहै *मतिराम* बलवंत जलजंतु जानि
दूर भई हिम्मत दुरद सिरताज की।
असरनसरन के चरनसरन तके
त्यौंही दीनबंधु निज नाम की सुलाज की।

---

१ मानी। २ भयो बदन निकल है। ३ कैसी।

धाए रति[1] माम अति आतुर गुपाल मिली
बीच ब्रजराज कौं गराज गजराज को ॥१२६॥

(दोहा)

अंतरौंही भौंहनि नहीं दुरत दुराए नेह।
होत नाम नँदलाल के नीपमाल सी देह ॥१२७॥

अत्यंतातिशयोक्ति-लक्षण

होत हेतु पीछे जहाँ होत प्रथम ही काज।
अत्यंतातिसयोक्ति तहँ बरनत सब कबिराज ॥१२८॥

उदाहरण (कबित्त)

जीते जोर जंग[2] अति अतुल उतंग तन
दूनी स्यामरंग छबि छपदनि छाए तैं।
कहै *मतिराम* नभनदी के कुसुम[3] सम
उड़ै उड़गन सुंड अनिल उड़ाए तैं।
मदजलधार बरषत जिमि धाराधर
धकनि सौं धुकरैं[4] धरनिधर धाए तैं।
आवैं कबिराज ऐसे पावैं गजराज राव
भाव सतासुत सौं अगार गुन गाए तैं ॥१२९॥

प्रथम तुल्ययोगिता-लक्षण (दोहा)

जहाँ अबर्न्यन को धरम कै बर्न्यन को एक।
तुल्ययोगिता कहत हैं तहाँ सुबुद्धि बिबेक ॥१३०॥

अवर्ण्य-उदाहरण (कबित्त)

सूबनि कौं मेटि[5] दिल्ली देस दलिबे कौं चमू
सुभट समूहनि सिवा की उमहति है।
कहै *मतिराम* ताहि रोकिबे कौं संगर में
काहू के न हिम्मति हिये में उलहति है।

---

१ एते। २ अग। ३ कमुद। ४ धुकत। ५ उमेड़ि।

[१२६] रति, एतै (रत्ना)। गराज, गरज (रत्ना)।

[१२७] होत, होति (रत्ना)।

[१२९] नभ; नव (रत्ना)।

सत्रुसालनंद के प्रताप की लपट सब
गारबी गनीम बरगीन कौं दहति है।
पति पातसाह[1] की इजति उमरावन की
राखी रैया राव भावसिंह की रहति है ॥१३१॥

वर्ण्य-उदाहरण (दोहा)

अभिनव जोबन जोति सों जगमग होत बिलास।
तिय के तन पानिप बढ़ै पिय के नैननि प्यास ॥१३२॥

द्वितीय तुल्ययोगिता-लक्षण

जहँ हित मैं अरु अहित मैं बरनत बन्यँहि तूल।
तुल्ययोगिता और तहँ कहत सुकबि मतिमूल ॥१३३॥

उदाहरण

जे निसिदिन सेवन करैं अरु जे करैं बिरोध।
तिन्हैं परमपद देत हरि कहौ कौन यह बोध ॥१३४॥

दीपक-लक्षण

बन्र्य अवन्र्यनि को जहाँ धरम होत है एक।
बरनत हैं दीपक तहाँ कबि करि बिमल बिबेक ॥१३५॥

उदाहरण

चंचल निस उदबस रहैं करत प्रात बसि राज।
अरबिंदनि मैं इंदिरा सुंदरि नैननि लाज ॥१३६॥

दीपिकावृत्ति-लक्षण

जहँ दीपक मैं होत है आवर्तन को जोग।
त्रिबिध कहत आवृत्तिजुत दीपक सब कबि लोग ॥१३७॥

शब्दावृत्ति-उदाहरण

जागत हौ तुम जगत मैं भावसिंह की बान[2]।
जागत गिरिबर कंदरनि अरिबर तजि अभिमान ॥१३८॥

---

१ पातसाही। २ दीवान।

[१३१] समूहनि सिवा की; समूह निंशि वाकी (भारत)।
[१३४] यह; हरि (रत्ना)।
[१३८] की बान; दीवान (रत्ना)।

अर्थावृत्ति-उदाहरण

लखौ लाल तुमकौं लखत यौं बिलास अधिकात।
बिहँसत ललित कपोल हैं मधुर नैन मुसकात ॥१३९॥

शब्दार्थावृत्ति-उदाहरण (कवित्त)

मंदर बिलंद मंद गति के चलैया एक
पल मैं दलैया पर दल बलखानि के।
मदजल झरत झुकत जरकस[1] झूल
झालरिनि झलकत झुंड मुकतानि के।
ऐसे गज बकसे दिवान दुहूँ दीननि कौं
मतिराम गुन बरनैं उदार पानि के।
फौज के सिंगार हाथी और महिपालन के
मौज के सिंगार भावसिंह महादानि के ॥१४०॥

सकल सहेलिन के पीछे पीछे डोलति है
मंद मंद गौन आज आपु ही करत है।
सनमुख होत सुख होत *मतिराम* जब
पौन लागे घूँघट के पट उघरत है।
जमुना के तट बंसीबट के निकट
नंदलाल पै सँकोचन से चाह्यो ना परत है।
तन तो तिया को वर भाँवरैं भरत मन
साँवरे बदन पर भाँवरैं भरत है ॥१४१॥

प्रतिवस्तूपमा-लक्षण (दोहा)

पदसमूह जुग धर्म जहँ भिन्न पदनि सौं एक।
परगट प्रतिबस्तूपमा तहँ कबि कहत अनेक ॥१४२॥

उदाहरण (कवित्त)

संकर कौं ध्याय सरस्वती कौं रिझाय सीष
सेषहू की पाय मति अति सरसायकै।
कहै *मतिराम* सत्रुसालनंद भावसिंह
तब कोऊ सकै तेरे गुननि गनायकै।

---

१ जरबाफ।

औरनि के औगुननि तचि कबिजन राव
होत हैं सुखित तेरी किति-सर न्हायकै।
खायक अंगार आँच औटिकै चकोर गन[1]
होत हैं मुदित चंद चाँदनी कौं पायकै ॥१४३॥

(दोहा)

पिसुन बचन सज्जन चितै सकै न फोरि न फारि।
कहा करै लगि तोय मैं तुपक तीर तरवारि ॥१४४॥

दृष्टांत-लक्षण

पदसमूह जुग धर्म जहँ जिमि बिंबहिँ प्रतिबिंब।
सुकबि कहत दृष्टांत है जे मन दर्पन बिंब ॥१४५॥

उदाहरण

पगी प्रेम नँदलाल के हमैं न भावत जोग।
मधुप राजपद पायकै भीख न माँगत लोग ॥१४६॥

(सवैया)

भोज बली रतनेस भए *मतिराम* सदा जस चाड़न ही मैं।
नाथ सता समरत्थ दुहूनि दले अरि तेज सौं ताड़न ही मैं।
भाऊ नरिंद के धाक धुके अरि जाय गिरे गिरि गाड़न ही मैं।
जीत महीपति हाड़न हीं महँ जोति दधीच के हाड़न ही मैं ॥१४७॥

प्रथम निदर्शना-लक्षण (दोहा)

सदस वाक्य जुग अर्थ को जहाँ एक आरोप।
बरनत तहाँ निदर्सना कबिजन मति अति ओप ॥१४८॥

उदाहरण (सवैया)

जो गुनबृंद सतासुत मैं कलपद्रुम मैं सो प्रसून समाजै।
कीरति जो *मतिराम* दिवान मैं चंद मैं चाँदनी सो छबि छाजै।
राव मैं तेज को पुंज प्रचंड सो आतप सूरज मैं रुचि[2] साजै।
जो नृप[3] भाऊ के हाथ कृपान सो पारथ के कर बान बिराजै ॥१४९॥

---

१ जैसे। २ शुभ। ३ प्रभु।

[१४३] सरस्वती, सरसुति (रत्ना)। सीष; सीस (रत्ना); सीस (भारत)।
सर; बर (भारत)।

द्वितीय निदर्शना-लक्षण (दोहा)

जहँ बरनन[1] पद अर्थ को बरनत हैं कविराज।
निदरसना यह दूसरी बरनत[2] बिबुध समाज ॥१५०॥

उदाहरण

जब कर गहत कमान सर देत परनि कौ भीति।
भावसिंह में पाइये तब अर्जुन की रीति ॥१५१॥

तृतीय निदर्शना-लक्षण

करत असत सत अर्थ को एक क्रिया सौं बोध।
निदरसना यह औरहू कहत सुकबि मति सोध ॥१५२॥

असत-उदाहरण

मधुप त्रिभंगी हम तजी प्रगट परम करि प्रीति।
प्रगट करत सब जगत में कटु कुटिलन की रीति ॥१५३॥

सत-उदाहरण

हरिमुख लखि लोचन सखी सुख में करत बिनोद।
प्रगट करत कुवलयन कौं चंद्रोदय तैं मोद ॥१५४॥

व्यतिरेक-लक्षण

जहाँ होत उपमान ते उपमेय बिसेख।
तहाँ कहत व्यतिरेक हैं कबिजन मति उल्लेख ॥१५५॥

उदाहरण (कवित्त)

बड़े बंस अवतंस राव भावसिंह तेरे
बड़े तेज तप गए देसपती दबि हैं।
कहै *मतिराम* बड़ी कित्ति उमड़ाई यातैं
सकल बड़ाई आज तोमैं रही फबि हैं।
सुनिये पुराननि में जंबूदीप बड़ो एक
जंबू तरु जामैं फल हाथिन की छबि हैं।
ताहू ते बड़ो है तेरो कर कामतरु जासौं
बड़े करिबर फल पावत सुकबि हैं ॥१५६॥

---

१ बरनत। २ समुझत।

[१५०] बरनत[2]; भाखत (रत्ना)।

[१५४] मैं; मय (रत्ना)।

सहोक्ति-लक्षण (दोहा)

काज हेतु कौं छोड़ि जहँ ओरनि के सहभाव।
बरनत तहाँ सहोक्ति हैं कबिजन बुद्धि प्रभाव ॥१५७॥

उदाहरण (कवित्त)

महाबीर राव भावसिंह को प्रताप साथ
जस के पहूँच्यौ छोर दसहूँ दिसानि के।
दल के चढ़त फनमंडल फनीपति को
फूटि फाटि जात साथ सैल की सिलानि के।
दुज्जन के गन कलपद्रुम के बागनि में
करत बिहार साथ सुरप्रमदानि के।
संपत्ति के साथ कबि लोघनि बसत बन
दारिद बसत साथ बैरी - बनितान के ॥१५८॥

बिनोक्ति-लक्षण (दोहा)

जहँ प्रस्तुत कछु बात बिन कै नीको कै हीन।
बरनत तहाँ बिनोक्ति हैं कबि *मतिराम* प्रवीन ॥१५९॥

उदाहरण

बिषयनि ते निर्बेदबर ज्ञान योग ब्रत नेम।
बिफल जानिये ये बिना प्रभु - पद - पंकज - प्रेम ॥१६०॥
देखत दीपति दीप की देत प्रान अरु देह।
राजत एक पंतग मैं बिना कपट को नेह ॥१६१॥

समासोक्ति-लक्षण

जहँ प्रस्तुत मैं होत है अप्रस्तुत को ज्ञान।
समासोक्ति तहँ कहत हैं कबिजन परम सयान ॥१६२॥

उदाहरण (कवित्त)

चिंता मैं चितैकै सब सुधि बिसरावत है
मंडल बिमल तेरे मुख द्विजराज को।
सोयबे कौं साजत सरस परजंक तेरी
स्याम अंग छबि इंदीबर के समाज को।

कबि *मतिराम* कामबाननि सौं बेध्यो यौं
जु दुःख भयो सकल समूह सुखसाज को।
कहा कहौं लाल तलबेली तलफत परयो
बाल अलबेली को बियोगी मन लाज को ॥१६३॥

परिकर तथा परिकरांकुर-लक्षण (दोहा)

साभिप्राय बिसेषननि सो परिकर *मतिराम*।
साभिप्राय बिसेष्य तैं परिकर अंकुर नाम ॥१६४॥

परिकर-उदाहरण (कबित्त)

समर के सिंह सत्रुसाल के सपूत
सहजहि बकसैया सदसिंधुर[1] मदंध के।
मतिराम चारिहूँ समुद्रनि के कूलनि लौं
फैलत समूह तेरे सुजस सुगंध के।
जगत बखानी चहुवानी सुलतानी और
नहीं अवनी मैं अवनीप समकंध के।
तोमैं दोऊ देखिये दिवान भावसिंह चहु-
बान कुत्रभानु सुलतान बलाबंध के ॥१६५॥

(दोहा)

क्यौं न फिरै सब जगत में करत दिगबिजै मार।
जाके दग सामंत हैं कुबलय जीतनहार[2] ॥१६६॥

परिकरांकुर-उदाहरण

देखें बानिक आजु को वारौं कोटि अनंग।
भलो चलौ मिलि साँवरे अंगरंग पटरंग ॥१६७॥

श्लेष लक्षण

स्लेष कहावत है जहाँ उपजत अर्थ अनेक।
प्रकृत अप्रकृत मिलि त्रिबिध प्रकृताप्रकृत बिबेक ॥१६८॥

---

१ वर। २ वार।

[१६३] तलबेली तलफत, तनाबेली की तलफ (भारत)।

[१६५] बकसैया सदसिंधुर, बिदलैया सत्रुसिंधुर (रत्ना)। अवनीप; अवनीस (रत्ना)।

प्रकृत-उदाहरण

ललित राग राजत हिये नायक जोति बिसाल।
बाल तिहारे कुचन बिच लसत अमोलिक लाल ॥१६९॥

अप्रकृत-उदाहरण

कहा भयो जग मैं बिदित भए उदित छबि लाल।
तो ओठनि की रुचिर रुचि पावत नहीं प्रबाल ॥१७०॥

प्रकृताप्रकृत-उदाहरण (कबित्त)

छबिजुत छीरधि तरंगनि बढ़ावत है
जगत पसारत चमेली की सुबास कौं।
कहै *मतिराम* कुमुदिनि के परागनि[1] सौं
सरस करत चारु चाँदनी प्रकास कौं।
सब ही के प्रानरूप हिय मैं बसत अति
व्यापक है फैलि रह्यौ अवनि अकास कौं।
राव भावसिंह जस रावरो करत दिसि-
बिदिसि बिहार गहे बात के बिलास कौं ॥१७१॥

(छप्पय)

बसत जासु हिय बासुदेव पानिप अति छाजत।
तजत न बर मरजाद परम गंभीर बिराजत।
रतन सुतन[2] अवलोकि लोकपतिमान सलुंभहि[3]।
मुकुतरूप धरि सुजस नृपति श्रवननि सुभसुंभहि।
महिमा अपार *मतिराम* कहि जगत जगत सब घेरि तिमि।
भुव भावसिंह भूपाल मनि रोज मौज दरियाव इमि ॥१७२॥

अप्रस्तुतप्रशंसा-लक्षण (दोहा)

अप्रस्तुतै प्रसंसिये प्रस्तुत लीमै नाम[4]।
तहँ अप्रस्तुत परसंस को बरनत है *मतिराम*[5] ॥१७३॥

---

१ प्रकासनि। २ सतन। ३ सालुंभहि। ४ बात। ५ मति अवदात।

[१७२] जगत जगत; जगति जगत (रत्ना)।

[१७३] तहँ अप्रस्तुत; अप्रस्तुत (रत्ना)। है; तहँ (रत्ना)।

उदाहरण (सवैया)

आननचंद निहारि निहारि नहीं तनु औ धन जीवन वारैं।
चारु चितौनि चुभी *मतिराम* हिये मति कौं गहि ताहि निकारैं।
क्यौं करि धौं मुरली मनि कुंडल मोरपखा बनमाल बिसारैं।
ते धनि जे ब्रजराज लखैं गृहकाज करैं अरु लाज सँभारैं ॥१७४॥

प्रस्तुतांकुर-लक्षण (दोहा)

प्रस्तुत करि प्रस्तुत जहाँ प्रगट होत *मतिराम*।
प्रस्तुत अंकुर कहत हैं तहाँ बुद्धि के धाम ॥१७५॥

उदाहरण

सुबरन बरन सुबासजुत सरस दलनि सुकुमार।
चंपकली कौं तजत अलि तेहीं होत गँवार ॥१७६॥

प्रथम पर्यायोक्ति-लक्षण

गम्य अर्थ प्रगटै तहाँ और बचन रचनानि।
बरनत पर्यायोक्ति तहँ कबिजन ग्रंथन जानि ॥१७७॥

उदाहरण

जाके लोचन करत हैं कुबलय कंज[1] प्रकास।
सो भाऊ भूपाल के करत हिये नित[2] बास ॥१७८॥
प्रगट दरप कंदरप को तेरो अंग अनूप।
सुतौ लियो कंदर्प[3] जिति सुंदर स्याम सरूप ॥१७९॥

द्वितीय पर्यायोक्ति लक्षण

जहाँ कपट सौं करत है रुचिर मनोरथ काज।
बरनत पर्यायोक्ति तहँ दूजी सुकबि समाज ॥१८०॥

उदाहरण (सवैया)

मनमोहन आय गए तित ही जित[4] खेलति बाल सखीगन[5] में।
तहँ आपुही मूँदे सलोनी के लोचन[6] चोरमिहीचनी[7] खेलनि में।

---

१ कमल। २ करो हिए निज। ३ नँदलाल। ४ जहँ। ५ जन। ६ नैन। ७ लला, लरिकाई।

[१७४] जीवन, जोबन (रत्ना)।
[१७७] तहाँ; जहाँ (रत्ना)।

दुरिबे को गई सगरी सखियाँ[1] *मतिराम* कहै इतने छन में।
मुसकायकै राधिके कंठ लगाय छिप्यौ कहूँ जाय निकुंजन में ॥१८१॥

व्याजस्तुति-लक्षण (दोहा)

निंदा में स्तुति पाइये स्तुति में निंदा होय।
व्याजस्तुति सो कहत हैं कबि कोबिद सब कोय ॥१८२॥

उदाहरण (कवित्त)

देखत ही सबके चुरावती[2] है चित्तनि कौं
फेरिकै न देती यौं अनीति उमड़ाई है।
कबि *मतिराम* कामतीरहू तें तीछन
कटाछनि की कोरें छेदि छाती में गड़ाई है।
खंजरीट कंज मीन मृगनि के नैननि की
छीनि छीनि लेती छबि ऐसी तैं लड़ाई है।
तेरी अँखियानि में बिलोकी यह बड़ी बात
इते[3] पर बड़ी बड़ी पावती बड़ाई है ॥१८३॥

याही कौं पठाई बड़ो[4] काम करि आई बड़ी
तेरी ये बड़ाई लखै लोचन लजीले सौं।
साँची क्यों[5] न कहै कछू[6] मोकौं किधौं आपु ही कौं
पाय बकसीस लाई बसन छबीले सौं।
मतिराम सुकबि सँदेसो अनुमानियत
तेरे नखसिख अंग हरख कटीले सौं।
तू तो है रसीली रस बातनि बनाय जानैं
मेरे जानि आई रस राखिकै रसीले सौं ॥१८४॥

व्याजनिंदा-लक्षण (दोहा)

निंदा सौं जहँ और की निंदा प्रगटित होय।
तहाँ व्याजनिंदा कहत कबि कोबिद सब कोय ॥१८५॥

---

१ सहेली गईं सिगरी। २ चुरावत। ३ एते। ४ ऐसो। ५ सा। ६ यह।

[१८३] इते; एते (रसा)।

[१८४] लाई; आई (रसा)। जानि; जान (रसा)।

उदाहरण

प्रगट कुटिलता जो करी हम पर स्याम सरोस।
मधुप जोग बिष उगलिये कछु न तिहारो दोस ॥१८६॥

प्रथम आक्षेप-लक्षण

जहाँ कही निज बात कौं समुझि करत प्रतिषेध।
तहाँ कहत आछेप हैं कबिजन मति उत्सेध ॥१८७॥

उदाहरण (सवैया)

दै[1] मृदु पाँयन जावक को रँग नाह को चित्त रँगे रँग जातैं।
अंजन दै करी नैननि मैं सुषमा बढ़ि[2] स्याम सरोज प्रभातैं।
सोने के भूषन अंग रचौ *मतिराम* सबै बस कीबे की घातैं।
यौंही चलै न सिँगार सुभावहि मैं सखि भूलि कहीं सब बातैं ॥१८८॥

द्वितीयाक्षेप-लक्षण (दोहा)

जहँ न साँच निषेध है है निषेध आभास।
तहँ औरो आछेप को कबिजन करत प्रकास ॥१८९॥

उदाहरण

हौं न कहत[3] तुम जानिहौ लाल बाल को बात।
अँसुवा उड़गन परत[4] हैं होन चहत उतपात ॥१९०॥

तृतीयाक्षेप-लक्षण

जहँ बिधि प्रगट बखानिये छुप्यौ निषेध प्रकास।
तहँ औरो आछेप कहि बरनत बुद्धि बिलास ॥१९१॥

उदाहरण

जा दिन ते चलिबे की चरचा चलाई तुम
ता दिन ते वाकै पियराई तन छाई है।
कबि *मतिराम* छोड़े भूषन बसन पान
सखिन सौं खेलनि हँसनि बिसराई है।

---

१ है। २ अंजनि सो करि सुंदरि नैननि यों कुवलै दल। ३ कही।
४ गिरत।
[१८८] करौ; कर (रचा)।

आई रितु सुरभि सुहाई प्रीति वाके चित्त
ऐसे में चलौ तौ लाल रावरी बड़ाई है।
सोवति न रैनदिन रोवति रहति बाल
बूझैं तैं कहत सुधि मायके की आई है ॥१९२॥

(दोहा)

कोपनि तैं किसलय जबै होहिं कलिन तैं फौल।
तब चलाइये चलन की चरचा नायक नौल ॥१९३॥

बिरोधाभास

जहँ बिरोध सौं लगत है होत न साँच बिरोध।
कहत बिरोधाभास तहँ बुधजन बुद्धि बिबोध ॥१९४॥

उदाहरण (सवैया)

दोऊ जुरे सहजादन के दल जानत है सगरो जग साखी।
मारू बजै[1] रस बीर छके बर बीरनि किन्ति बड़ी अभिलाखी।
नाथतनै करतूति करी जस जोति जगी *मतिराम* सुभाखी।
श्रोनित बैरिन को बरसायकै राव सता रन मैं रज राखी ॥१९५॥

प्रथम बिभावना-लक्षण (दोहा)

बिना हेतु जहँ बरनिये प्रगट होत है काज।
प्रगटित तहाँ बिभावना कहत सकल कबिराज ॥१९६॥

उदाहरण (सवैया)

बातनि जाय लगाय लई रस ही रस मैं मन हाथ कै लीनौं।
लाल तिहारे बुलावन को *मतिराम* मैं बोल कह्यो परबीनौं।
बेग चलौ न बिलंब करौ लख्यौ बाल नवेली को नेह नबीनौं।
लाज भरी अँखियाँ बिहँसीं बलि बोल कहैं बिन उत्तर[2] दीनौं ॥१९७॥

---

१ मचै। २ उतरु।

[१९४] बुधजन; कबिजन (रत्ना)।
[१९५] जग; दल (रत्ना)। बीर; बीज (रत्ना)।
[१९७] रस मैं; रस कै (रत्ना)। लख्यौ; लखि (रत्ना)। 'रत्ना' में तृतीय तथा चतुर्थ चरण में व्यत्यय है।

द्वितीय विभावना-लक्षण (दोहा)

थोरे हेतुनि सों जहाँ प्रगट होत है काज।
तहँ बिभावना औरऊ बरनत बुद्धि जहाज ॥१९८॥

उदाहरण (सवैया)

तेरो कह्यो सिगरो मैं कियो निसिद्योस तप्यो[1] तिहुँ तापन पाई[2]।
मेरो कह्यो अब तूँ करि जो सब दाह मिटै परिहै सियराई।
संकर पाँयनि मैं लगि रे मन थोरे ही बातनि सिद्धि सुहाई।
आक धतूरे के फूल चढ़ाए तैं रीझत हैं तिहुँ लोक के[3] साँई ॥१९९॥

तृतीय विभावना-लक्षण (दोहा)

जहाँ हेतु प्रतिबंधहू बरनत प्रकटै काज।
बरनत और बिभावना तहँ कबिराज समाज ॥२००॥

उदाहरण

मानत लाज-लगाम नहिं नैक न गहत मरोर।
होत तोहि[4] लखि बाल के दृगतुरंग मुँहजोर ॥२०१॥

चतुर्थ विभावना-लक्षण

हेतु काज को जो नहीं ताते काज उदोत।
यासौं और बिभावना कहत सकल कबिगोत ॥२०२॥

उदाहरण

हँसत बाल के बदन मैं यौं छबि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि तैं झरत चमेली फूल ॥२०३॥

(कबित्त)

चंदमुखी हाँसी मैं चमेली की लता सी होति
चंपकलता सी अंग जोति कौं[5] धरति है।
कबि *मतिराम* तेरे अंग की सुबास लहै
कौन बेलि रूप यह जानी ना परति है।

---

१ ते यों। २ तताई। ३ को। ४ लाल। ५ सों।

[२०१] तोहि; लाल (रत्ना)।

[२०२] यासौं, तासौं (रत्ना)।

नैसुक निहारिकै छबीली नैनकोरनि ते
ऐसी अचरज की कलानि आचरति है।
ललित तमाल स्याम रसिक रसाल कौंते
कदम मुकुल के कुलनि[1] सो करति है ॥२०४॥

पंचम विभावना-लक्षण (दोहा)

उदाहरण (सवैया)

बरनत हेतु बिरोध ते उपजत हैं जहँ काज।
तहँ बिभावना औरऊ बरनत कबि[2] सिरताज ॥२०५॥

उदाहरण (सवैया)

मोरपखा *मतिराम* किरीट मैं कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुसकानि मनोहर कुंडल डोलनि मैं छबि छाई।
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई।
वा मुख की मधुराई कहा कहौं मीठो लगै अँखियान लुनाई ॥२०६॥

षष्ठ विभावना-लक्षण (दोहा)

जहाँ काज ते हेतु कौं बरनत प्रगट प्रकास।
तहँ बिभावना औरऊ बरनत बुद्धि बिलास ॥२०७॥

उदाहरण

भयो सिंधु ते बिधु सुकबि बरनत बिना बिचार।
उपज्यौ तो मुख इंदु तैं प्रेमपयोधि अपार ॥२०८॥

विशेषोक्ति-लक्षण

जहँ परिपूरन हेतु ते प्रगट होत नहिं काज।
विसेषोक्ति तहँ कहत हैं सकल सुकबि सिरताज ॥२०९॥

उदाहरण

पियत रहत पिय नैन यह[3] तेरी मृदु मुसुकानि।
तऊ न होति मयंकमुखि तनक प्यास की हानि ॥२१०॥
प्यौ राख्यो परदेस तैं अति अद्भुत दरसाय[4]।
कनक कलस पानिप भरे सगुन उरोज दिखाय ॥२११॥

१ कंदब हू पुलक मुलकनि, कंदब मुकलित के। २ कहत सुकबि।
३ वह। ४ सरसाय।
[२०४] ललित; कलित (रत्ना)।

असंभव लक्षण

जहाँ अर्थ की सिद्धि को संभव बचन न होय।
तहाँ असंभव होत हैं बरनत हैं सब कोय ॥२१२॥

उदाहरण (सवैया)

यौं दुख दै ब्रजबासिन कौं ब्रज कौं तजिकै मथुरा सुख पैहैं।
वै रसकेलि[1] बिलासिनि कौं बनकुंजनि की बतियाँ बिसरैहैं।
जोग सिखावन कौं हम कौ बहुरयौं तुम से उठि धावन पैहैं[2]।
ऊधो नहीं हम जानत ही मनमोहन कूबरी हाथ बिकैहैं ॥२१३॥

प्रथम असंगति-लक्षण (दोहा)

होत हेतु जहँ और थल काज और थल होय।
तहाँ असंगति कहत हैं कबि रस बुद्धि समोय ॥२१४॥

उदाहरण (सवैया)

दारुन तेज दिलीस के बीरन काहू न बंस के बाने बजाए[3]।
छोड़ि हथ्यारन हाथन जोरि तहाँ सबही मिलि मूँड़ मुड़ाए।
हाड़ा हठी रह्यो पैंड़ किये *मतिराम* दिगंतन मैं जस छाए[4]।
भोज के मूछनि लाज रही मुख औरनि लाज के भार नवाए ॥२१५॥

(दोहा)

राधा के दृग खेल मैं मूँदे नंदकुमार।
करन लगी दृगकोर सो भई छेदि उर पार ॥२१६

द्वितीय असंगति-लक्षण

और ठौर करनीय जो करत और ही ठौर।
बरनत सब कबिराज हैं यहौ असंगति और ॥२१७॥

उदाहरण

पिय नैननि के राग कौ भूषन सजे बनाय।
लखैं तिहारी छबि सु तौ सौति-दृगन अधिकाय ॥२१८॥

---

१ निसि के केलि। २ धैहैं। ३ बमाए। ४ गाए।

[२१४] होत, होइ (रसा)।

तृतीय असंगति-लक्षण

करन लगै जो काज कछु ताते करे बिरुद्ध।
यही असंगति कहत हैं कबि *मतिराम* बिबुद्ध ॥२१९॥

उदाहरण

उदित भयो है जलद तू जग को जीवनदानि।
मेरो जीवन लेत है कौन बैर मन आनि[1] ॥२२०॥

प्रथम विषम-लक्षण

जहाँ न हैं अनुरूप द्वै तिनकी घटना होय।
बिषम तहाँ बरनन करत[2] कबि कोबिद सब कोय ॥२२१॥

उदाहरण (सवैया)

ऊधोजू सूधो बिचार है धौं जू कछू समुझैं हमहूँ ब्रजबासी।
मानिहैं जो अनुरूप कहौ *मतिराम* भली यह बात प्रकासी।
जोग कहाँ मुनि लोगन जोग कहाँ अबला मति है चपला सी।
स्याम कहाँ अभिराम सरूप कुरूप कहाँ वह कूबरी दासी ॥२२२॥
मानहु आयो है राज कछू चढ़ि बैठ्यो है ऐसे पलास की खोढ़ैं।
गुंज गरैं सिर मोरपखा *मतिराम* हो गाय चरावत चोढ़ैं।
मोतिन को मेरो तोरयो हरा गहि हाथन सौं रहि चूनरी पोढ़ैं।
ऐसे ही डोलत छैल भए तुम्हैं लाज न आवत कामरी ओढ़ैं ॥२२३॥

द्वितीय विषम-लक्षण (दोहा)

जहाँ बरनिये हेतु ते उपजत काज बिरूप।
और बिषम तहँ कहत हैं कबि *मतिराम* अनूप ॥२२४॥

उदाहरण (कबित्त)

वारने सकल एक रोरी ही की आड़ पर
हाहा[3] न पहिरि आभरन और अंग मैं।
कबि *मतिराम* जैसे तीछन कटाच्छ तेरे
ऐसे कहाँ सर हैं अनंग के निखंग मैं।

---

१ मानि। २ कहैं। ३ योहीं।

[२२१] तहाँ; तहीँ (रत्ना)।

सहज सरूप सुथराई रीझो मेरो मन
डोलत है तेरो अद्भुत[1] की तरंग मैं।
सेत सारी ही सौं सब सौतैं रँगी स्याम रंग
सेत सारी ही सौं स्याम रँगे लाल रंग में ॥२२५॥

तृतीय विषम-लक्षण (दोहा)

इष्ट अर्थ उद्यमहि ते जहँ अनिष्ट ह्वै जाय।
और बिषम बरनत तहाँ जे कबि कोबिद राय ॥२२६॥

उदाहरण

बिरह[2] आँच डरि मन सखी घन सुंदर तन जाय।
दुगुन दाह बाढ़ै तहाँ आपुहि जाय सिराय[3] ॥२२७॥

प्रथम सम-लक्षण

जहाँ दुहूँ अनुरूप को कबिजन करत बखान।
तहाँ समुझि सब कहत हैं जे सुरंग रस[4]-ज्ञान ॥२२८॥

उदाहरण (सवैया)

मोहन को मुखचंद अली निज नैन चकोरन को दरसावै।
लोचन भौंर गुपाल के आपने आनन बारिज बीच बसावै।
तोतैं लहै *मतिराम* महा छबि प्रानपियारे तैं तू छबि पावै।
तौ सजनी सबके मन भावै जु सोन[5] से अंगनि लाल मिलावै ॥२२९॥

द्वितीय सम-लक्षण (दोहा)

जहाँ हेतु से काज को बरनत उचित सरूप।
बरनत तहँ सम औरऊ जे कबि कोबिद भूप ॥२३०॥

उदाहरण

करत लाल मनुहारि[6] पै तू[7] न लखति इहि ओर।
ऐसो उरजु कठोर तौ उचितहि[8] उरज कठोर ॥२३१॥

---

१ अचरज। २ ताप। ३ शिलाय। ४ सम सुरगुरु। ५ सोने। ६ प्रानपियारी पग पर्यो। ७ है। ८ न्यायहि।

[२२५] निखग, न खंग (भारत)। सुथराई, सुघराई। (रसा)।
[२२९] बारिज, बारिधि (रसा)। सोन, सोने (रसा)।
[२३१] इहि, यहिं (रसा)।

तृतीय सम-लक्षण

ताकी सिद्धि अनिष्ट बिन उद्यम जाके अर्थ।
तासौं सम औरो कहत जे कबिराज समर्थ ॥२३२॥

उदाहरण (सवैया)

कोऊ नहीं बरजै मतिराम रहौ तित ही जित ही मन भायो।
काहे को सौहैं हजार करो तुम तौ कबहूँ अपराध न ठायो[1]।
सोवन दीजै न दीजै महा दुख यौंही कहा रसबाद बढ़ायो।
मान रह्योई नहीं मनमोहन मानिनी होय सो मानै मनायो ॥२३३॥

विचित्र-लक्षण (दोहा

जहाँ करत उद्यम कछू फल चाहत बिपरीति।
बरनत तहाँ बिचित्र कहि जे कबित्त-रस-प्रीति ॥२३४॥

उदाहरण (कबित्त)

औरनि के तेज सीरे करिबे के हेत आँच
करै तेज तेरो दिसि बिदिसि अपार मैं।
परमुख[2] अधिक अँधेरो करिबे कौं फैली
जस की उजेरी तेरी जग के पसार मैं।
राव भावसिंह सत्रुसाल के सपूत यह
अद्भुत बात मतिराम के बिचार मैं।
आयकै मरत अरि चाहत अमर भयो
महाबीर तेरी खग्गधार गंगधार मैं ॥२३५॥

प्रथम अधिक लक्षण (दोहा)

जहाँ बड़े आधार तैं बरनत बढ़ि आधेय।
कहत सुकबिजन अधिक तहँ जिनकी बुद्धि अजेय[3] ॥२३६॥

उदाहरण

जिनके अतुल बिलोकिये पानिप पारावार।
उमड़ि चलत नित दृगनि भरि तो मुखरूप अपार ॥२३७॥

१ ढायो। २ परमुख। ३ अमेय।

[२३६] बढ़ि; बधि (भारत)।
[२३७] जिनके, जिनकौं (रत्ना)। नित; तिन (रत्ना)।

द्वितीय अधिक-लक्षण

जहाँ बड़े आधेय तें बरनत बढ़ि आधार।
तहाँ अधिक औरौ कहत कबिजन बुद्धि अपार ॥२३८॥

उदाहरण (कबित्त)

जाके कोस भीतर भुवन करतार ऐसो
जाके नाभिकुंड में कमल बिकसत है।
कहै *मतिराम* सब थावर जँगम जग
जाकी दिग्घ उदरदरी मैं दरसत है।
जाके एक एक रोमकूपनि मैं कोटिन
अनंत ब्रह्मांडनि को बृंद बिलसत है।
राव भावसिंह तेरी कहाँ लौं बढ़ाई करौं
ऐसो बड़ो प्रभु तेरे मन मैं बसत है ॥२३९॥

अल्प-लक्षण (दोहा)

जहँ सूछम आधेय तें अति सूछम आधार।
अल्प अलंकृत कहत हैं कबिजन बुद्धि उदार ॥२४०॥

उदाहरण

मन जद्यपि अनुरूप है तऊ न छूटति संक।
टूटि परै जनि भार ते निपट पातरी लंक ॥२४१॥

परस्पर-लक्षण

जहाँ परस्पर उपकरत तहाँ परस्पर नाम।
बरनत सब ग्रंथनि मते कबि कोबिद *मतिराम* ॥२४२॥

उदाहरण

तुहि राखी सखि लाल करि निज उर की बनमाल।
तैं राख्यो करि लाल निज कंठमाल को लाल ॥२४३॥

(कबित्त)

कब की हौं देखति चरित्र निज आँखिन सौं
राधिका रसीली स्याम रसिक रसाल के।
मतिराम बरनै दुहूँनि के मुदित अति
मन भए मीन से अमृतमय ताल के।

इकटक देखैं लिये ब्रत से निमेषनि के
नेम किये मानौं पूरे प्रेम प्रतिपाल के।
लालमुख इंदु नैन बाल के चकोर-बाल
मुख अरबिंद चंचरीक नैन लाल के ॥२४४॥

प्रथम विशेष-लक्षण (दोहा)

जहाँ अधेय बखानिये बिन प्रसिद्ध आधार।
कबिजन तहाँ बिसेष कहि बरनत बुद्धि उदार ॥२४५॥

उदाहरण

चलौ लाल वाकी दसा लखौ कही नहिँ जाय।
हियरे है सुधि रावरी हियरो गयो हिराय ॥२४६॥

द्वितीय विशेष-लक्षण

जहँ अनेक थल मैं कछू बात बखानत एक।
तहँ बिसेष औरो कहत कबिजन बुद्धि बिबेक ॥२४७॥

उदाहरण (सवैया)

मंदर बिंध्य सुमेर कलिंद[1] गिरिंदन कौं हिम सैलहि साजै।
देवनदी सम तीनिहु लोक पवित्र[2] करै सब जीव समाजै।
छाय रही *मतिराम* कहैं छिति छोरनि छीरधि की छबि छाजै।
पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन भाऊ दिवान की कीरति राजै ॥२४८॥

तृतीय विशेष-लक्षण (दोहा)

करत कछू आरंभ ते जहँ असक्य कछु और।
तहँ बिसेष औरो कहत कबि कोबिद सिरमौर ॥२४९॥

उदाहरण (कवित्त)

छीरधि की छबि छितिछोर चारयो ओरनि मैं
फैलि रह्यो जस कुल ललितललाम को।
बखतबिलंद मुख सुंदर सरदचंद
देखि करि गरद गुमान होत काम को।

---

१ किंकिण। २ पुनीत।

[२४४] बाल-मुख, वा मुख (भारत)।

बाढ़ै पुन्य ओघ अघमरषण आखरनि
मतिराम करत जगत जप नाम को।
सत्ता के सपूत राजऋषि भावसिंह कीन्हौ
आपुने चरित्रनि प्रगट रूप राम को ॥२५०॥

प्रथम व्याघात-लक्षण (सोरठा)

जो जैसो करतार सो बिरुद्धकारी जहाँ।
बरनत सुमति उदार तहाँ कहत व्याघात हैं ॥२५१॥

उदाहरण (कवित्त)

मोहन लला कौं मनमोहनी बिलोकि बाल
कसि करि[1] राखति है उमगे उमाह कौं।
सखिनि की दीठि कौं बचायकै निहारत है
आनँदप्रवाह बीच पावति न थाह कौं।
कबि *मतिराम* और सब ही के देखत ही
ऐसी भाँति देखति छिपावति उछाह कौं।
वे ही नैन रूखे से लगत और[2] लोगनि कौं
वेई नैन लागत सनेहभरे नाह कौं ॥२५२॥

द्वितीय व्याघात-लक्षण (दोहा)

जहाँ क्रिया की सुकरता बरनत काज बिरोध।
तहाँ कहत व्याघात हैं औरौ बुद्धि बिबोध ॥२५३॥

उदाहरण

जु पै सखी ब्रज गाँव मैं घर घर चलत[3] चबाव।
तौ हरिमुख लखि देति किन नैन चकोरनि चाव ॥२५४॥

प्रथम हेतुमाला-लक्षण

पूरब पूरब हेतु जहँ उत्तर उत्तर काज।
तहाँ हेतुमाला कहत कबि कोबिद सिरताज ॥२५५॥

---

१ बिलोकिबे को दीठि गहि। २ लागत रुखाई भरे। ३ सहज।

[२५४] चलत, सहज (रत्ना)।

उदाहरण (छप्पय)

मन प्रगटित हरि प्रीति प्रीति तिहिँ तेज प्रकासिय।
प्रबल तेज तिहिँ जगत जीव रच्छा उल्लासिय।
तिहिँ रच्छा बढ़ि धर्म धर्म तिहिँ संचित संपति।
तिहिँ संपति किय दान दान तिहिँ सुजस बिमल अति[1]।
मतिराम सुजस दिन प्रति[2] बढ़त सुनत दुजन उर फट्टियउ।
भुव भावसिंह सत्रुसालसुत[3] इहि बिधि चरित प्रगट्टियउ ॥२५६॥

द्वितीय हेतुमाला-लक्षण (दोहा)

उत्तर उत्तर हेतु जहँ पूरब पूरब काज।
इहौ हेतुमाला कहत कबिजन बुद्धि जहाज ॥२५७॥

उदाहरण (छप्पय)

दुःख मूल गनि पाप पाप कहँ कुमति प्रकासै।
कुमति मोह बिस्तरै क्रोध मोहै उल्लासै।
क्रोध लोभ कहँ रचै काम कहँ लोभ करत पुनि।
संगजनित जग काम कहत *मतिराम* बेदधुनि।
इहिँ बिधि बिबेक कर संग तजि सुमिरत मन संकर चरन।
संसार सकल संताप तजि लहत परम आनंदघन ॥२५८॥

एकावली-लक्षण (दोहा)

एक अर्थ लै छोड़िये और अर्थ लै ताहि।
अर्थपाँति इमि कहत हैं एकावली सराहि ॥२५९॥

उदाहरण (छप्पय)

सुरजनसुत नृप भोज भूमि सुरजन रच्छाकर।
भोजतनय नृप रतन भोज सम दानि बिदितबर।
रतनपुत्र नृप नाथ रतन जिमि ललित जोतिमय।
नाथनंद तिमि सत्रुसाल नरनाथ महोदय।

---

१ अति। २ दिन दिन। ३ सुव।

[२५६] सत्रुसाल; सतुसाल (रत्ना)।

[२५८] कुमति मोह; मोह कुमति (भारत)। क्रोध लोभ; लोभ क्रोध (रत्ना, भारत)। काम कहँ लोभ; लोभ कहँ काम (रत्ना, भारत)।

जग सत्रुसालनंदन नवल सत्रुन उर सालत रहिय।
नृप भावसिंह *मतिराम* कहि सुजस अमल प्रति दिन लहिय ॥२६०॥

मालदीपक-लक्षण (दोहा)

जहँ दीपक एकावली होत दुहुनि को जोग।
मालादीपक नाम तहँ बरनत सब[1] कबि लोग ॥२६१॥

उदाहरण (कवित्त)

महाबीर सत्रुसालनंद राव भावसिंह
हाथ[2] मैं तिहारे खग्ग जीति कौ जमान है।
परम पुरुष परमेस्वर कृपा ते आज
तिहारो सरूप रज लाज को निधान है।
अरिन के मुंडन सौं रावरौं रिझायो हर
कीन्हौ *मतिराम* बकसीस को बखान है।
तुम पायो सुजस सुजस गायो[3] कबि लोग
पायो कबि लोगनि गयंदनि को दान है ॥२६२॥

(दोहा)

कनक बेलि मैं कोकनद तामैं स्याम सरोज।
तिनमैं मृदु मुसकानि तामैं मुदित मनोज ॥२६३॥

सार तथा यथासख्य-लक्षण

उत्तर उत्तर उतकरष सार कहत सज्ञान।
यथासंख्य क्रम सौं कहैं क्रम ही बहुरि बखान[2] ॥२६४॥

सार-उदाहरण (सवैया)

सैलनि को जग ऊँचे कहैं तिनमैं कनकाचल कौं श्रुति गावै।
तापर ऊँचो पुरंदर मंदिर ज़ो छबिबृंदनि सौं नभ छावै।
तापर यौं *मतिराम* बखानत ऊँचो मनोरथ दानि कहावै।
दान मैं भाऊ के हाथ उँचाई कौं सोऊ नहीं कलपद्रुम पावै ॥२६५॥

---

१ कहत हैं तहाँ सकल। २ कर। ३ पाए।

[२६२] तिहारो सरूप, तिहारोई रूप (भारत)। पाया, पातो (भारत)। गायो, पायौ (रत्ना)।

[२६४] बखान; निदान (रत्ना)।

यथासंख्य-उदाहरण (कबित्त)

महाबीर सत्रुसालनंद राव भावसिंह
तेरी धाक अरिपुर जात भय भोय से।
कहै *मतिराम* तेरे तेजपुंज लिये गुन
मारुत और मारतंड मंडल बिलोय से।
उड़त नवत टूटि फूटि मिटि फाटि जात
बिकल सुखात बैरी दुखनि समोय से।
तूल से तिनूका से तरोबर से तोयद से
तारा से तिमिर से तमीपति से तोय से ॥२६६॥

द्विविध पर्याय-लक्षण (दोहा)

कै अनेक हैं एक मैं कै अनेक मैं एक।
रहत जहाँ पर्याय सो है पर्याय बिबेक ॥२६७॥

एक मैं अनेक-उदाहरण (सवैया)

मृदु बोलत कुंडल डोलत कानन कानन कुंजनि ते निकस्यो।
बनमाल बनी *मतिराम* हिये पियरो पट त्यौं कटि मैं बिलस्यो।
जब तैं सिर मोरपखानि धरें चित चोरि चितै इत ओर हँस्यो।
जब तैं दुरि भाजिकै लाज गई अब लालचु नैननि आनि बस्यो ॥२६८॥

अनेक मैं एक-उदाहरण (दोहा)

सखी तिहारे दृगनि की सुधा मधुर मुसकानि।
बसी रहत निसद्यौस हू अब उनकी अँखियानि ॥२६९॥

परिवृत्ति-लक्षण

घाटि बाढ़ि द्वै बात को यहाँ पलटिबो होय।
तहाँ कहत परिवृत्ति हैं कबि कोबिद सब कोय ॥२७०॥

उदाहरण

मो मन मेरी बुद्धि लै करि हर कौं अनुकूल।
लै त्रिलोक की साहिबी दै धतूर के फूल ॥२७१॥

---

१ निदान।

[२६६, अरिपुर; रिपुपुर (रत्ना)।

[२६८] चित चोरि, चितचोर (रत्ना)।

(कबित्त)

जोर दल जोरि साहिजादो साहिजहाँ जंग
जुरि मुरि गई रही राव मैं सरम सी[1]।
कहै *मतिराम* देवमंदिर बचाए जाके
बर बसुधा मैं बेद श्रुति बिधि यौं बसी।
जैसो रजपूत भयो भोज को सपूत हाड़ा
ऐसो और दूसरो भयो न जग मैं जसी।
गायनि कौं बकसी कसायनि की आयु[2] सब
गायनि की आयु सो कसायनि कौं बकसी ॥२७२॥

परिसंख्या-लक्षण (दोहा)

और ठौर ते मेटि कछु बात एक ही ठौर।
बरनत परिसंख्या कहत कबि कोबिद सिरमौर ॥२७३॥

उदाहरण (कबित्त)

सोवत ही मोह गुन सुजस को लोभ तरु
बरनि कौं छोभ जहाँ करत बयारियै।
कहै *मतिराम* एक मान बिना मानिनी
सयान बिना चित्रनि के रूप निरधारियै।
तुरँग चपल चंद्रमंडल बिकल बेला
कुंद हूँ बिफल जहाँ नीच गति बारियै।
दानहीन कलभ कदलिदल कंपजुत
राव भावसिंहजू के राज मैं निहारियै ॥२७४॥

विकल्प-लक्षण (दोहा)

सम बलजुत द्वै बात को बरनत जहाँ बिरोध।
कबि कोबिद सब कहत हैं तहँ बिकलप श्रुति[3] सोध॥२७५॥

---

१ राव भावसिंह में विजय सी। २ मीचु। ३ मति।

[२७४] कुंद, कुड (रता)। वारियै, वादियै (रता)। दानहीन कलभ
कदलिदल, कदलि दल (रता)।

[२७५] श्रुति; मति (रता)।

उदाहरण (कवित्त)

बिपिनसरन कै चरन तकौ राव ही के
चढ़ौ गिरि पर कै तुरंग परवर मैं।
राखौ परिवार कौं कि आपनीये हठ राज-
संपति दै मिलौ कै नगारे दै समर मैं।
कहै *मतिराम* रिपुरानी निज नाहन सौं
बोलैं यौं डरानी भावसिंहजू के डर मैं।
बैर तौ बढ़ायो[1] कह्यो काहू कौ न मान्यो अब
दाँतनि तिनूका कै कृपान गहौ कर मैं ॥२७६॥

प्रथम समुच्चय-लक्षण (दोहा)

बहुत भए इकबारगी तिनको गुंफ जु होय।
ताहि समुच्चय कहत हैं कबि कोबिद सब कोय ॥२७७॥

उदाहरण (सवैया)

पाइ इकंत कै बाल सो बालम जो रति रूप कला दरसावै।
नाहीं कढ़ै मुख नारि के नाह जहीं हिय सौं हियरो परसावै।
काम बढ़ौ *मतिराम* तहीं[2] अति लाल[3] बिलासनि कौं सरसावै।
जोवै त्रसै मन मोवै अनंद मैं रोवै हँसै रस कौं[4] बरसावै ॥२७८॥

द्वितीय समुच्चय-लक्षण (दोहा)

बहुसि करत बहु हेतु जहँ एक काज को सिद्धि।
इहाँ समुच्चय कहत हैं जिनकी है मति सिद्धि[5] ॥२७९॥

उदाहरण (कवित्त)

कुंदन के आँग माँग मोतिन सँवारी सारी
सोहत किनारीवारी केसरि के रंग की।
कहै *मतिराम* मनि मंजुल तरौना छोटी
नथुनी बिराजै गजमुकतन संग की।

---

१ बैर तब ठान्यो। २ तहाँ। ३ लाज। ४ यौं। ५ रिद्धि।

[२७६] तो, सौ (रत्ना)।
[२७८] बो, ज्यौं (रत्ना)।
[२७९] इहाँ, यशौ (रत्ना)।

कुसुम के हार हियो हरति कुसंभी आँगी
सकै को बरनि आभा उरज उतंग की।
जोबन जरब महा रूप के गरब गति
मदन के मद मद मोकल मतंग की ॥२८०॥

कारकदीपक-लक्षण (दोहा)

एकहि मैं · क्रम सौं भए तिनको गुंफ जु होय।
सो कारकदीपक कह्यो कबिन ग्रंथ मत जोय ॥२८१॥

उदाहरण

फिरि फिरि आवति जाति भजि राति[1] मधुर मुसकाति।
बाल लाल को ललित मुख लखि ललचाति लजाति ॥२८२॥

समाधि-लक्षण

और हेतु के मिलन ते सुकरु होत जहँ काज।
बरनत तहाँ समाधि है सकल सुकबि सिरताज ॥२८३॥

उदाहरण (सवैया)

आयो बसंत रसाल प्रफुल्लित कोकिल बोलनि भौन सुहाई।
भौंरनि को *मतिराम* किये गुन काम - प्रसून - कमान चढ़ाई।
रावरो रूप लग्यो मन मैं तन मैं तिय के झलकी तरुनाई।
धीर धरौ अकुलात कहा अब तौ बलि बात सबै बनि आई ॥२८४॥

प्रत्यनीक-लक्षण (दोहा)

प्रबल सत्रु के पच्छ पर जहँ बिक्रम उल्लास।
प्रत्यनीक तासौं कहत कबिजन बुद्धिबिलास ॥२८५॥

उदाहरण

तो मुखछबि सौं हारि जग भयो कलंक समेत।
सरद इंदु अरबिंदमुख अरबिंदन दुख देत ॥२८६॥

---

१ अँगराति।

[२८०] के[1], ते (रत्ना), से (भारत)।
[२८२] ललित; मधुर (रत्ना)।
[२८६] अरबिदमुख, अरबिदमुखि (रत्ना, भारत)।

काव्यार्थापत्ति-लक्षण

जोपै यौं तो यह कहा[1] इहिं बिधि जहाँ बखान।
कहत काव्यपद[2] सहित तहँ[3] अर्थापत्ति सुजान ॥२८७॥

उदाहरण (कवित्त)

बिंब से अरुन अति अमल अधर पर
मंद बिलसत चारु चाँदनी सुहास है।
कासौं जाय बरनि बनक नाकबेसरि की
ललित बिलोकनि पै बिबिध बिलास है।
कबि *मतिराम* पाय सहज सुबास आस
भौंरनि की भीर न तजत आसपास है।
कहा दरपन कैसैं पावत बदनजोति
चंद जाको चेरो अरबिंद जाको दास है ॥२८८॥

अर्थांतरन्यास-लक्षण (दोहा)

कहि बिसेष सामान्य पुनि कै सामान्य बिसेष।
सो अर्थांतरन्यास हैं बरनत मति उल्लेष ॥२८९॥

उदाहरण (सवैया)

रावरे नेह कौं लाज तजी अरु गेह के काज सबै बिसराए।
डारि दियो गुरु लोगनि को डर गाँव चवाय मैं नाव धराए।
हेत कियो हम जो तो कहा तुम तो *मतिराम* सबै बहराए[4]।
कोऊ कितेक उपाय करौ कहूँ होत हैं आपने पीव पराए ॥२९०॥

(दोहा)

गुन औगुन कौं तनकऊ प्रभु नहिँ करत बिचार।
केतक कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार ॥२९१॥

बिकस्वर-लक्षण

कहि बिसेष सामान्य पुनि कहिये बहुरि बिसेष।
कहत बिकस्वर नाम तहँ[5] जे कबि अति मति लेष ॥२९२॥

---

१ पावै यो तो कहा। २ हित। ३ पद। ४ बिसराए। ५ सौ।

[२८७] यौं तो; जोतो (भारत)।

[२८८] सुबास; सुहास (रत्ना)।

उदाहरण

मधुप मोह मोहन तज्यो यह स्यामन की रीति।
करौ आपने काज लौं तुम्हँ भाँति सौं[1] प्रीति ॥२६३॥

प्रौढोक्ति-लक्षण

जो अहेतु उत्कर्ष को ताहि बखानत हेत।
प्रौढ़ोकति तासौं कहत जे कबि सुमति सचेत ॥२६४॥

उदाहरण

गंगनीर बिधु रुचि झलक मृदु मुसकानि उदोति।
कनक भौन के दीप लौं जगमगाति तन जोति ॥२६५॥

संभावन-लक्षण

जो यौं होय तु होय यौं जहँ सँभावन होय।
संभावन[2] तासौं कहत बिमल ज्ञान मतिधोय[3] ॥२६६॥

उदाहरण (कवित्त)

चलत सुभाय पाय पैंजनिन की झनक
उर उपजन लागे केलि के कलोल हैं।
फूलन के हार हियरे सौं हिरकन लागे
छलकन रस नैन तामरस लोल हैं।
श्रौन के सरोज के परम *मतिराम* लाल
कंटकित होन लागे कोमल कपोल हैं।
तौ बनै बनाव मिलै जोबन मैं कहूँ नीके[4]
लोचन के जोबन के बासर अमोल हैं ॥२६७॥

मिथ्याध्यवसित-लक्षण (दोहा)

एक झुठाई सिद्धि कौं झूँठो बरनत और।
तहँ मिथ्याध्यवसाय कौं[5] कहत सुमति मति दौर ॥२६८॥

---

१ तुमौं जाति सौं। २ प्रौढ उकुति। ३ सोय। ४ वाके। ५ यौं।

[२६७] सरोज के, सरोज तैं (रत्ना)।

मुसकानि अमल कपोलनि के रुचिबृंद
चमकै तरयोननि के रुचिर चुनीन के।
पीतम निहारयो बाँह गहत अचानक ही
जामैं *मतिराम* मन सकल मुनीन के।
गाढ़ै गही लाज मैं न कंठ ह्वै फिरत बैन
मूल छ्वै फिरत नैन बारि बरुनीन के ॥३०७॥

तृतीय प्रहर्षण-लक्षण (दोहा)

जहाँ अर्थ को सिद्धि को जतनहि ते फल होय।
इहौ प्रहर्षन कहत हैं कबि कोबिद सब कोय ॥३०८॥

उदाहरण

हरि की सुधि कौं राधिका चली अली के भौन।
हँसत बीच ही मिल गए बरनि सकै कबि कौन ॥३०९॥

बिषाद लक्षण

मनइच्छित के अर्थ की प्रापति जहाँ बिरुद्ध।
तहाँ बिषादहि कहत हैं जे कबिजन मतिसुद्ध ॥३१०॥

उदाहरण (सवैया)

आवत मैं हरि कौं सपने लखि नैसुक बाट सकोचन छोड़ी।
आगे ह्वै आड़े भए *मतिराम* चली सुचितै चष लालच ओड़ी।
ओठनि को रस लैन कौं मोहन मेरी गही कर कंपत ठोड़ी।
और भटू न भई कछू बात गई इतने ही मैं नींद निगोड़ी ॥३११॥

उल्लास-लक्षण (दोहा)

औरैं के गुन दोष ते औरै को गुन दोष।
बरनत यौं उल्लास हैं जे पंडित मतिकोष ॥३१२॥

गुण से गुण उदाहरण (सवैया)

गुच्छनि के अवतंस लसै सिषिपच्छनि अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी करपल्लव सो *मतिराम* सुहायो।
गुंजनि के उर मंजुल हार निकुंजनि ते कढ़ि बाहिर आयो।
आजु को रूप लखे ब्रजराज को आजु ही आँखिन को फल पायो ॥३१३॥

---

[३०९] कबि, सुख (रत्ना)।

दोष से दोष-उदाहरण (दोहा)

मंत्रिन के बस जो नृपति सो न लहत सुखसाज।
मनहि बाँधि दृग देत हैं मनकुमार कौं राज॥२१४॥

गुण से दोष-उदाहरण

दुख न मानि जो तजि चल्यो जानि अँगार गँवार।
छितिपालनि की माल मैं तैं ही लाल सिंगार॥२१५॥

दोष से गुण-उदाहरण

दधि छुड़ाय मोहन लियो सखी सघन बन ठौर।
बड़ो लाभ मन मैं गुन्यौं जो न कियो कछु और॥२१६॥

अवज्ञा-लक्षण

औरै के गुन दोष ते औरै के गुन दोष।
जहँ न अवज्ञा तहँ कहत कबिजन बुद्धि अदोष॥२१७॥

उदाहरण (सवैया)

रावरे नेह को लाज तजी अरु गेह के काज सबै बिसराए।
डारि दिये गुरु लोगनि को डर गाँव चवाय मैं नाँव धराए।
हेत कियो हम जो तो कहा तुम तौ *मतिराम* सबै बहराए।
कोऊ कितेक उपाय करौ कहुँ होत हैं आपने पीव पराए॥२१८॥

(दोहा)

मेरे दृग बारिद बृथा बरषत बारि प्रवाह।
उठत न अंकुर नेह को तो उर ऊसर माह॥२१९॥
कहा भयो जो तजत है मलिन मधुप दुख मानि।
सुबरन बरन सुबासजुत चंपक लहै न हानि॥२२०॥

अनुज्ञा-लक्षण

करत दोष की चाह जहँ ताही मैं गुन देखि।
तहाँ अनुज्ञा कहत हैं कबिजन ग्रंथनि लेखि॥२२१॥

उदाहरण (सवैया)

मोरपखानि किरीट बन्यो मुकुतानि के कुंडल औन बिलासी।
चारु चितौनि चुभी *मतिराम* सु क्यौं बिसरै मुसकानि सुधा सी।

---

[२१८] चवाय, चवाव (रत्ना)।

काज कहा सजनी कुलकानि सौं लोग हँसैं सिगरे ब्रजवासी।
मैं तो भई मनमोहन को मुखचंद लखैं बिन मोल की दासी ॥३२२॥

क्यौं इन आँखिन सौं निरसंक है मोहन को तन पानिप पीजे।
नैक निहारें कलंक लगै इहि गाँव बसे कहौ कैसे के जीजे।
होत रहै मन यौं *मतिराम* कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजे।
ह्वै बनमाल हिये लगिये अरु ह्वै मुरली अधरारस लीजे ॥३२३॥

लेस-लक्षण (दोहा)

जहाँ दोष गुन होत है जहाँ होत गुन दोष।
तहाँ लेस यह नाम कहि बरनत कबि मतिकोष ॥३२४॥

दोष से गुण-उदाहरण

कत सजनी ह्वै अनमनी अँसुवा भरति ससंक।
बड़े भाग नँदलाल सौं झूठहु लगत कलंक ॥३२५॥

गुण से दोष-उदाहरण

प्रतिबिंबित तो बिंब मैं भूतल भयो कलंक।
निज निर्मलता दोष यह मन मैं मानि मयंक ॥३२६॥

मुद्रा-लक्षण

प्रकृत अर्थ पर पदनि सौं सुद्ध प्रकासत अर्थ।
मुद्रा तासौं कहत हैं कबि *मतिराम* समर्थ ॥३२७॥

उदाहरण

देह दीप दीपति दिपै बदनचंद की जोति।
दामिनिदुति मुसकानि मृदु सुख की खानि उदोति ॥३२८॥

रत्नावली-लक्षण

प्रस्तुत अर्थनि कौ जहाँ क्रम तैं थापन होय।
तहाँ कहत रत्नावली कबि रस बुद्धि समोय ॥३२९॥

---

[३२२] श्रौन, सौन (रत्ना)।
[३२५] कत; कछु (रत्ना)।

उदाहरण (कवित्त)

जीतय जे रावत ऐरावत सौं जंग अंग
पुंडरीक के गनत पुंडरीक छुद हैं।
बामन बामन मृदु कुमुद कुमुद गनै
अंजन के जैतवार अंजन से कद हैं।
पुष्पदंतहू के दंत तोरयो ज्यौं पुहुप सार
छीन लेत सार्वभौमहू के सदा मद हैं।
प्रबल प्रतीक सुप्रतीक के जितैया रैया-
राव भावसिंह तेरे दान के दुरद हैं॥३३०॥

तद्गुण-लक्षण (दोहा)

जहाँ आपनो रंग तजि लेत और को रंग।
तदगुन तहँ बरनन करत जे कबि बुद्धि उतंग॥३३१॥

उदाहरण (सवैया)

हीरनि मोतिन के अवतंसनि सोने के भूषन की छबि छावै।
हार चमेली के फूलन के तिनमैं रुचि चंपक की सरसावै।
अंग के संग तें केसरि रंग की अंबर सेत मैं जोति जगावै।
बाल छबीलो छपाएँ छपै नहिं लाल कहौ अब क्यौं करि आवै॥३३२॥

प्रथम पूर्वरूप-लक्षण (दोहा)

जहाँ और को रंग तजि बहुरि आपनो लेत।
बरनत पूरबरूप तहँ कबि *मतिराम* -सचेत॥३३३॥

उदाहरण

मुकुतहार हरि के हिये मरकत मनिमय होत।
पुनि पावत रुचि राधिका मुख मुसकानि उदोत॥३३४॥

द्वितीय पूर्वरूप-लक्षण

प्रगटित पूरब दसहि को जहँ अनुबर्तन होत।
दूजो पूरब रूप तहँ बरनत पंडित गोत॥३३५॥

---

[३३०] जीतय; जीतत (रसा)। तोरयो; तोरय (भारत)। सार्वभौम; सर्वभूम (रसा)।

[३३५] तहँ; कहिं तहाँ (भारत)।

उदाहरण

बदन चंद की चाँदनी देह दीप की जोति।
राति बितेहू लाल वहि भौन राति सी होति ॥३३६॥

अतद्‌गुण-लक्षण

जहाँ संग मैं और को रंग कछू नहिँ लेत।
तहाँ अतदगुन कहत हैँ कबिजन बुद्धिनिकेत ॥३३७॥
लाल बाल[1] अनुराग सौं रँगत रोज सब अंग।
तऊ न छोड़त रावरो रूप साँवरो रंग ॥३३८॥

अनुगुण-लक्षण

सम रुचि संगति और के बढ़त आपनो रंग।
अनुगुन तासौं कहत हैँ जे कबि बुद्धि उतंग ॥३३९॥

उदाहरण

बिरी अधर अंजन नयन मेहदी पग अरु पानि।
तन कंचन के आभरन लसत सरस छबि खानि[2] ॥३४०॥

मीलित-लक्षण

एक रूप है जाति मिलि जहाँ होत नहिँ भेद।
बरनत मीलित हैँ तहाँ जिनकी बानी बेद ॥३४१॥

उदाहरण (कबित्त)

अंगनि मैं चंदन चढ़ाय अंगराग सेत[3]
सारी छीरफेन की सी आभा उफनाति है।
राजत रुचिर रुचि मोतिन के आभरनि
कुसुमकलित केस सोभा सरसाति है।

---

१ चित्त। २ नीठि परति पहिचानि। ३ चंनन कपूर अंगराबजुत अंग सेत।

[३३६] वहि; उहिँ (रत्ना)।

[३४१] होत; रहत (रत्ना)।

कबि *मतिराम* प्रानप्यारे कौं मिलन जाति[1]
करिकै मनोरथनि मृदु मुसुकाति है।
होति न लखाई निसि चंद की उज्यारी मुख-
चंद की उज्यारी तन छाहौं छपि जाति है ॥३४२॥

सामान्य-लक्षण (दोहा)

भिन्न रूपहू में जहाँ पैए कछु न बिसेष।
तहाँ कहत सामान्य हैं पंडित लोग असेष ॥३४३॥

उदाहरण (कबित्त)

सारी जरतारी की झलक झलकति तैसी
केसरि[2] को अंगराग कीन्हौं सब तन मैं।
तीछन तरनि की किरिनि तैं दुगुन जोति
जागति जवाहिर जटित आभरन मैं।
कबि *मतिराम* आभा अंगनि अँगारनि की
धूम कैसी धारा छबि छाजति कचन मैं।
ग्रीषम दुपहरी मैं हरि कौं मिलन चली
जानी जाति नारि ना दवारिजुत बन मैं ॥३४४॥

उन्मीलित विशेष-लक्षण (दोहा)

जहँ मीलित सामान्य मैं पैयत भेद बिसेख।
उन्मीलित सबिसेष कबि बरनत मति उल्लेख ॥३४५॥

उन्मीलित-उदाहरण

सरद चाँदनी मैं प्रगट होत न तिय के अंग।
सुनत मंजु मंजीर धुनि सखी न छोड़ति संग ॥३४६॥

विशेष-उदाहरण

आई फूलनि लैन कौं चली बाग मैं लाल।
मृदु बोलनि सौं जानिये मृदु बोलिनि मैं बाल ॥३४७॥

---

१ चली। २ कुंकुम।

[३४२] चढ़ाय; घनसार (भारत)। उज्यारी, उज्यार (भारत)।

गूढोत्तर-लक्षण

अभिप्राय सौं सहित जो उत्तर कोऊ देय।
तिहिं गूढोत्तर कहत हैं सुकबि सरस्वति सेय ॥३४८॥

उदाहरण

ग्वालिन देहु बताइ हौं मोहिं कछू तुम देहु।
बंसीबट की छाँह मैं लाल जाय लखि लेहु ॥३४९॥

प्रथम चित्र-लक्षण

जहँ बूझत कछु बात कौं उत्तर सोई बात।
चित्र कहत *मतिराम* कबि सकल सुमति अवदात ॥३५०॥

उदाहरण

सरद चद की चाँदनी को कहिये प्रतिकूल।
सरद चंद की चाँदनी कोक हिये प्रतिकूल ॥३५१॥

द्वितीय चित्र-लक्षण

बहुती बातनि को जहाँ उत्तर दीजै एक।
चित्र बखानत हैं तहाँ कबिजन बुद्धिविबेक ॥३५२॥

उदाहरण

को हरिबाहन जलधिसुत को है ज्ञानजहाज।
तहाँ चतुर उतर दियो एक बचन द्विजराज ॥३५३॥

सूक्ष्म-लक्षण

जानि पराये चित्त की ईहा जो आकूत।
होय जहाँ सूछम तहाँ कहत सुकबि पुरहूत ॥३५४॥

उदाहरण (सवैया)

लाल सखीनि मैं बाल लखी *मतिराम* भयो उर आनँद भीनौं।
हाथ दुहूनि सौं चंपकगुच्छनि को जुग छाती लगायकै लीनौं।
चंदमुखी मुसकाय मनोहर हाथ उरोजन अंतर दीनौं।
आँखिनि मूँदि रही मिसिकै मुख ढाँपि निचोल को अंचल कीनौं ॥३५५॥

पिहित-लक्षण (दोहा)

जानि पराई बृत्ति जहँ क्रियासहित आकूत।
तहाँ पिहित बरनन करत जे कबि सुमति सपूत ॥३५६॥

उदाहरण (सवैया)

और तिया सँग कुंजबिहारी रह्यो निसि मैं बसिकै रसभीनो।
प्रात समै *मतिराम* बखानत राधिका मंदिर आवन कीनो।
बोली न बोल कछू लखिकै घन सुंदर को पट नील नवीनो।
अंबर केसरि रंग रँग्यो मुसकायकै मोहन के कर दीनो ॥३५७॥

व्याजोक्ति-लक्षण (दोहा)

और हेतु बचननि[1] जहाँ आकृति गोपन होय।
व्याज उक्ति तहँ कहत कबि ग्रंथसमुद्र बिलोय ॥३५८॥

उदाहरण (सवैया)

लैन गई हुती बागहिँ फूल अँध्यारी लखे डर बाढ़्यौ तहाँई।
रोम उठे तन कंप छुट्यो *मतिराम* भई श्रम की सरसाई।
बेलिनि सौं उरझी अँगिया छतियाँ अति कंटनि की छनछाई।
देह मैं नेकु सम्हार रह्यो नहिँ ह्याँ लगि भागि मरू करि आई ॥३५९॥

गूढोक्ति-लक्षण (दोहा)

कहिबे जो कछु और सौं कहै और सौं बोल।
गूढ़ उक्ति[2] तासौं कहत जिनकी बुद्धि अमोल ॥३६०॥

उदाहरण

यौं न प्यार बिसराइये लई[3] मोहि तैं मोल।
मुख निरखत नँदलाल को कहै सखी सौं बोल ॥३६१॥

विवृतोक्ति-लक्षण

जहाँ स्लेष सौं[4] गुप्त सौं[5] सुकबि प्रकासत अर्थ।
बिवृतोक्ति तहँ कहत हैं जे कबि[6] सुमति समर्थ ॥३६२॥

---

१ रचननि। २ उकति। ३ लियो। ४ को। ५ जो। ६ जग।

[३५९] सौं; मैं (रत्ना)।
[३६१] लई, लियौ (रत्ना)।

उदाहरण (कवित्त)

आई है निपट साँझ गैया गई घर माँझ
हातैं दौरि आई कहै मेरो काम कीजिये।
हौं तो हौं अकेली और दूसरो न देखियत
बन की अँध्यारी सौं अधिक भय भीजिये।
कबि *मतिराम* मनमोहन सौं पुनि पुनि
राधिका कहति बात साँची कै पतीजिये।
कब की हौं हेरति न हेरैं हरि पावति हौं
बछुरा हिरान्यो सो हिराय नैक दीजिये ॥३६३॥

युक्ति-लक्षण (दोहा)

मरम[1] छुपावन कौं जहाँ क्रिया आन संधान।
तहाँ जुक्ति बरनन करत कबि कोबिद सज्ञान ॥३६४॥

उदाहरण (सवैया)

लेन कौं फूल निकुंजन माँझ गयो मिलि गोपिन को गन भायो।
नंदलला तिय के हिय मैं *मतिराम* तहाँ हगबान खुभायो।
गेह चलीं सखियाँ सगरो चित सुंदर साँवरे रूप लुभायो।
आँखिनि पूरि कटीले कपोलनि कंटक कोमल पाय चुभायो ॥३६५॥

लोकोक्ति तथा छेकोक्ति-लक्षण (दोहा)

जहँ कहनावति अनुकरन लोक उक्ति *मतिराम*।
और अर्थ लीन्हे सु जो छेक उक्ति अभिराम। ३६६॥

लोकोक्ति-उदाहरण (सवैया)

मोहन कौं मुखचंद[2] लखैं बढ़ि आनँद आँखिन ऊपर आवै।
रोम उठै *मतिराम* कहैं तनु चारु कदंबलता छबि छावै।
बूझति हौं हित कै सखि तोहि कहा रिसकै यह भौंह चढ़ावै।
मैं तृन[3] सो गन्यो तीनहु लोकनि तू तृन ओट पहार छुपावै ।।३६७॥

१ सरम। २ रूप। ३ तिन।

[३६३] है, ह्वै, (भारत)। हातैं, ह्वाँ तैं (रत्ना)।

[३६४] मरम, सरम (भारत)।

[३६७] गन्यो, गुन्यौ (रत्ना)।

छेकोक्ति-उदाहरण

छिति नीर कृसानु समीर अकास ससो रवि होत निरूप धरै।
अरु जागत सोवति हू *मतिराम* सु आपनी जोति प्रकास करै।
जग ईस अनादि अनंत अपार वही सब ठौरनि मैं बिहरै।
सिगरे तनु[1] मोह मैं मोहि रहे तृन[2] ओट पहार न देखि परै॥३६८॥

वक्रोक्ति-लक्षण (दोहा)

स्लेष काकु सौं अर्थ की रचना और जु होय।
बक्र उक्ति सौं जानिये ज्ञानसलिल मति धोय॥३६९॥

श्लेष-उदाहरण

मेरे मन तुम बसत हो मैं न कियो अपराध।
तुम्हैं दोष को देत हरि है यह काम असाध॥३७०॥

काकु-उदाहरण (सवैया)

आज कहाँ तजि बैठी हौ भूषन ऐसे ही अंग कछू अरसीले।
बोलत बोल रुखाई लिये *मतिराम* सनेह सने हौ सुसीले।
क्यौं न कहै दुख प्रानपिया अँसुवानि रहे भरि नैन लजीले।
कौन तिन्हैं दुख है जिनकै तुम से मनभावन छैल छबीले॥३७१॥

जाति-लक्षण (दोहा)

जाको जैसो होय सो बरनत जहाँ सुभाव।
तहाँ जाति यह नाम कहि बरनत सब कबिराव॥३७२॥

उदाहरण (कबित्त)

जानत जहान एँड़ करि सुलतानन सौं
कीनो कछवाह कामधुज को बचाव है।
देत *मतिराम* भाट चारन कबिन जौन
कौन पै गनायो जात गज समुदाव है।

---

१ नर। २ तिन।

[३६८] होत निरूप, ह्वै तिनु (रता,) भारत।

तेग त्याग सालिम सपूत सत्रुसालजू की
खीझैं रन रुद्र रीझैं मौज दरियाव है।
साहनि सौं अकसिबो हाथिन को बकसिबो
राव भावसिंहजू को सहज सुभाव है ॥३७३॥

भाविक-लक्षण (दोहा)

जहाँ भयो भावी अरथ बरनत हैं परतच्छ।
तहँ भाविक सब कहत हैं जिनकी मति है अच्छ ॥३७४॥

उदाहरण (कवित्त)

निसि दिन स्रौननि पियूष सौं पियत रहैं
छाय रह्यो नाद बाँसुरी के सुरग्राम को।
तरनि-तनूजा-तीर बन कुंज बीथिन मैं
जहाँ तहाँ देखति हैं रूप छबि धाम को।
कबि *मतिराम* होत हाँतो न हिये ते नैक
सुख प्रेम गात को परस अभिराम को।
ऊधो तुम कहत बियोग तजि जोग करौ
जोग तब करैं जो बियोग होय स्याम को ॥३७५॥

(दोहा)

जनि चलाइये चलन की चरचा स्याम सुजान।
मैं देखति हौं वाहि यह बात सुनत बिन प्रान ॥३७६॥

द्विविध उदात्त-लक्षण

संपति को अधिकार जो अरु उपलच्छन और।
सो उदात्त द्वै भाँति को बरनत कबि सिरमौर ॥३७७॥

उदाहरण (कबित्त)

पुहुमि को पुरहूत सत्रुसाल को सपूत
संगर फतूहैं सदा जासौं अनुरागती[1]।
दान देत रीझ मैं दिवान भावसिंह जू कौं
धनद के धाम की तनक निधि लागती।

---

१ संचार की सिरी सदा जासो अनुरागती।

[३७३] बौन, जात (भारत)। गनायो, बखान्यो (रत्ना)।

कहै *मतिराम* मजलिस मैं महीपति की
कबिन की बानी हाड़ा सुजस मैं पागती।
जेती[1] और राजनि के राजनि मैं संपति है
तेती रोज राव कै चिराकैं जोति जागती ॥३७८॥

पियुषपयोधि मद्ध मनिन सौं बद्ध भूमि
रोध सौं रुचिर रुचि रोचक रवन मैं।
कामतरु बिपिन कदंब उपबन सीरो
सुरभि पवन डोलै मृदु सी गवन मैं।
चिंतामनि मंडप बिराजै जगदंब सदा
सावधान *मतिराम* सेवक सेवन मैं।
लंपट लुबुध मन भव मैं भँवत कहा
करि भूरि भावना भवानी के भवन मैं ॥३७९॥

उपलक्षण-उदाहरण (दोहा)

निकसत जीवहिँ बाँधिकै तासौं राखति बाल।
जमुनातट वा कुंज मैं तुम जु दई बनमाल ॥३८०॥

अत्युक्ति-उदाहरण

जो सुंदरतादिकनि की अधिक झुठाई होय।
ताहि कहत अत्युक्ति हैँ कबि पंडित सब कोय ॥३८१॥

उदाहरण (कबित्त)

ललित बिलास कोटि मंद मृदुहास अति
अंग की सुबास[2] मृगमदबास मंद की।
मदन के मद उनमद नैन मंदिर मैं[3]
गति गरबीली मद मोकल गयंद की।

---

१ एती। २ अभिराम। ३ से।

[३७९] सेवन; श्रवन (रत्ना, भारत)। लुबुध, लुगुधि (रत्ना)। भावना; भाव ताको (भारत)। भवानी के; भावना (भारत)।

जोबन की जोति जगमग होत *मतिराम*
लोचन चकोरनि की संपति अनंद की।
अधिक अँध्यारी मैं उज्यारी होत ज्यौं ज्यौं कछू
चंद की[1] उजारी मैं उजारी मुखचंद की ॥३८२॥

(दोहा)

बाल बिलोचन बारि के बारिधि बढ़ै अपार।
जारै जो न बियोग की बड़वानल की झार ॥३८३॥

निरुक्ति-लक्षण

जहाँ जोग ते नाम की अर्थकलपना और।
बरनत तहाँ निरुक्ति हैं कबि कोबिद सिरमौर ॥३८४॥

उदाहरण (कबित्त)

मोहनि मंत्रनि मनमोहन कियौ तैं बस
बारन ज्यौं बाँधि राखै तामरस ताग सौं।
कबि *मतिराम* आली अलि सो गुबिंद कीन्हों
मंडित चरन अरबिंद के पराग सौं।
ऐसो पति पायो[2] बड़े भागनि सौं प्यारी[3] सदा
सुबरन ही कौं पघिलावत सुहाग सौं।
स्याम स्याम कहिये सिंगाररस राच्यौ[4] ताते
लाल लाल कहिये रँग्यो है अनुराग सौं ॥३८५॥

ह्वैकै डहडहे दिन समता के पाएँ बिन[5]
साँझ सरसिजनि सरमि सिर नायो है।
निसा भरि निसापति करिकै उपाय बिन
पाएँ रूप बासर बिरूप ह्वै लखायो है।
कहै *मतिराम* तेरे बदन बराबरि को
आदरस बिमल बिरंचि न बनायो है।
दरप न रह्यो ताते दरपन कहियत
मुकुर परत ताते मुकुर कहायो है ॥३८६॥

---

१ होत चद की त्यो। २ प्यारी। ३ पायो। ४ रँग्यो। ५ बिना।

[३८२] मंदिर मैं, मंद रमै (रसा)। ज्यौं ज्यौं, ज्यौं त्यौं (रसा)।

प्रतिषेध-लक्षण (दोहा)

जहाँ प्रसिद्ध निषेध को अनुकीरतन प्रकास।
तहाँ कहत प्रतिषेध है कबिजन बुद्धिबिलास ॥३८७॥

उदाहरण (सवैया)

ऐसी करौ करतूति बलाय ल्यौं नीकी बड़ाई लहौ जग जातैं।
आई नई तरुनाई निहारी ही ऐसे छके चितवौ दिन रातैं।
लीजिये दान हौं दीजिये जान तिहारी सबै हम जानती घातैं।
जानौं हमैं जनि वै बनिता जिनसौं तुम ऐसी करौ बलि बातैं ॥३८८॥

विधि लक्षण (दोहा)

जहाँ सिद्धि ही बात को करत प्रसिद्ध बखान।
बिधि भूषन तहँ कहत हैं सकल सुकबि सज्ञान ॥३८९॥

उदाहरण (कबित्त)

कोप करि संगर मैं खग्ग कौं पकरिकै
बहायो बैरिनारिन को नैन नीरसोत है।
कहै *मतिराम* कीन्हौ रीझकै निहाल मही-
पालनि के रूप सब गुनिन को गोत है।
जागे जग साहिब सपूत सत्रुसालजू को
दसहूँ दिसानि जस अमल उदोत है।
खलनि के खंडिबे कौं मंगन के मंडिबे कौं
महाबीर भावसिंह भावसिंह होत है ॥३९०॥

हेतु-लक्षण (दोहा)

जहाँ हेतुमत साथ ही कीजै हेतु बखान।
तहाँ हेतु भूषन कहत कबि *मतिराम* सुजान ॥३९१॥

---

[३८८] हमैं, हम (रत्ना)।

उदाहरण (सवैया)

र सकै कहि को *मतिराम* सतासुत के बरनै गुन बानी।
। सही दरियाव जहान को आय जहाँ ठहरात है पानी।
मतरोवर धेनु औ पारस नैकु न मंगल के मनमानी।
रेद दैत्य बिदारिबे[1] को भई भाऊ दिवान की रीझ भवानी॥३६२॥

(दोहा)

दरपन मैं निज रूप लखि नैननि मोद उमंग।
तियमुख पिय बस करन को बढ्यो गर्ब को रंग॥३६३॥

द्वितीय हेतु-लक्षण

जहाँ हेतुमत हेतु को बरनत एक सरूप।
तहाँ हेतु औरौ कहत सब कबि पंडित भूप॥३६४॥

उदाहरण

नैननि को आनंद है जिय को जीवन जानि।
प्रगट दरप कंदर्प को तेरी मृदु मुसकानि॥३६५॥

तृतीय हेतु-लक्षण

जहँ समर्थिबो अर्थ को प्रगट समर्थन होय।
तहाँ हेतु औरौ कहत कबि कोबिद सब कोय॥३६६॥

उदाहरण (सवैया)

ह कमान कै लोचन बान कै लाजनि मारि रहै बिसवासी।
ल कपोलनि केलि करै भयो कुंडल लोल हिंडोल[2] बिलासी।
ट किरीट किये *मतिराम* करै चढ़ि मोरपखानि मवासी।
ाँ मन हाथ करौं सजनी बनमाल मैं बैठि[3] भयो बनवासी॥३६७॥

(कबित्त)

देखि महिपालनि की कंपति है छाती ऐसी
संपतिसहित देत जाचकनि दान[4] है।
देत सरनागत नरेसनि अभयदान
महाबीर बैरिन कौं देत भयदान है।

---

१ बिदारन। २ डोलहि डोल। ३ पैठि। ४ मान।

६३] बस, बसि (भारत)।
६७] लाजनि, लाजहिं (रत्ना), लाजहि (भारत)।

कहै *मतिराम* दिल्लीपति कौं बड़ाई देत
सत्रुसालनंद बलाबंध सुलतान है।
राव भावसिंहजू को सुजस बखानियत
लीबे को जहान सब दीबे कौं दिवान है ॥३९८॥

समाप्ति (दोहा)

रुचिर अर्थ भूषन इते[1] रचि जानै *मतिराम*।
ताकी बानी जगत मैं बिलसै अति अभिराम ॥३९९॥

आशीर्वाद (छप्पय)

जब लगि कच्छप कोल सहसमुख धरनिभारधर।
जब लगि आठौं दिसनि दिग्ध सोभित दिग्गज बर।
जब लगि कबि *मतिराम* सगिरि सागर महिमंडल।
अनिल अनल जब लग्गि जोतिमंडल आखंडल।
नृप सत्रुसालनंदन नवल भावसिंह भूपालमनि।
जग चिरंजीव तब लगि सुखद कहत सकल संसार धनि ॥४००॥

(दोहा)

कंठ करै सो सभनि मैं सोभै अति अभिराम।
भयो सकल संसार हित कविता ललितललाम ॥४०१॥

इति श्रीसुकवि मतिराम विरचितायाम् ललितललाम ग्रंथ संपूर्णम् ।

---

१ जिते।

[३९८] दान; मान (रक्षा)।

मतिराम सतसई

मतिराम सतसई

वंदना

(दोहा)

मो मन तम तोमहि हरौ राधा को मुखचंद।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नँदनंदन आनंद ॥ १ ॥
मुंज गुंज के हार उर मुकुट मोर पर पुंज।
कुंजबिहारी बिहरियै मेरेई मन कुंज ॥ २ ॥
रतिनायक सायक सुमन सब जग जीतनवार।
कुवलयदल सुकुमार तन मन कुमार जय मार ॥ ३ ॥
राधा मोहन लाल को जाहि न भावत नेह।
परियौ मुठी हजार दस ताको आँखिनि खेह ॥ ४ ॥

सुंदरीवर्णन

नागरि नैन कमान सर करत न ऐसी पीर।
जैसैं करत गँवारि के दृग धनुहीं के तीर ॥ ५ ॥
तन रोचित रोचन लहै रंचन कंचन गोतु।
पिया पियाबालो दिया छिया छिया जग होतु ॥ ६ ॥
सुत को सुनो पुरान यौं लोगनि कह्यो निहोरि।
चाहि चाहि जुत नाह मुख मुसिक्यानी मुख मोरि ॥ ७ ॥
कंत चौक सीमंत की बैठी गाँठि जुराइ।
पेखि परोसी कौं प्रिया घूँघुट मैं मुसिक्याइ ॥ ८ ॥

---

[२] मुकुट, मुकुत (रत्ना)।
[५] जैसैं, जैसी (रत्ना)।
[६] रंचन; रंच न (रत्ना)। गोतु, दोतु (रत्ना)।
[८] परोसी, परोसिन (रत्ना)।

गुरुजन दूजे ब्याह कौं प्रति दिन कहत रिसाइ।
पति की पति राखे बहू आपुन बाँझ कहाइ ॥ ६ ॥

बरषा रितु बीतन लगी प्रति दिन सरद उदोति।
लहलह जोति जुवार की अरु गँवारि की होति ॥ १० ॥

नए बिरह अँसुवानि कौ छिन छिन होत उदोत।
अँखियनि लग्यो अपार वह तन पानिप कौ सोत ॥ ११ ॥

नवल नेह मैं दुहुनि की लखी अपूरब बात।
ज्यौं सूखति सब देह है त्यौं पानिप अधिकात ॥ १२ ॥

कत सजनी है अनमनी अँसुवा भरति ससंक।
बड़े भाग नँदलाल सौं झूँठहु लगत कलंक ॥ १३ ॥

अवगुन बरनि उराहनो ज्यौं ज्यौं ग्वालिनि देहि।
त्यौं त्यौं हरि तन हेरि हँसि हरषति महरिहि येहि ॥ १४ ॥

लगनि लगे लोचन लखे जासौं मोहन लाल।
करि सनेह ता बाल सौं सिखै सकल ब्रजबाल ॥ १५ ॥

तेरी औरै भाँति की दीपसिखा सी देह।
ज्यौं ज्यौं दीपति जगमगै त्यौं त्यौं बाढ़त नेह ॥ १६ ॥

पानिप मैं घर मीन को कहत सकल संसार।
दृग मीननि को देखियत पानिप पारावार ॥ १७ ॥

देखैं बानिक आजु की वारौं कोटि अनंग।
भलो चल्यो मिलि साँवरे अंग रंग पट रंग ॥ १८ ॥

अबहीं सब तुम हेरती हँसि हँसि बातनि पागि।
मेरे चितवत नेकहीं ब्रज मैं लागति आगि ॥ १९ ॥

पगी प्रेम नँदलाल के भरन आपु जल जाइ।
घरी घरी घर के तरैं घरनि देति ढरकाइ ॥ २० ॥

---

[११] अपार, अपर (रत्ना)।

[१४] येहि; पेहि (रत्ना)।

लपटानी अति प्रेम सौं दै उर उरज उतंग।
घरी एक लगि छुटे हूँ[1] रही लगो सी अंग॥ २१॥
नींद भूख अरु प्यास तजि करती हो तन राख।
जलसाई बिन पूजिहैं क्यौं मन के अभिलाख॥ २२॥
जावक सौं रागी पगनि हरित नगन अँगुरीन।
जावक सौं रागी पगनि मनु कीनो परबीन॥ २३॥
प्रानपियारो पग पर्यो[2] तू न लखति यहि ओर।
ऐसो उर जु कठोर तो उचितै[3] उरजु कठोर॥ २४॥
लचकौहीं सो लंक उर उचकौहीं सो ऐन।
बिहसौंहैं से बदन मैं लसत नचौहैं नैन॥ २५॥
ज्यौं ज्यौं परसे लाल तन त्यौं त्यौं राखति गोइ।
नवल बधू लाजन ललित[4] इंदुबधू[5] सो होइ॥ २६॥
नवल बधू के संग मैं अहितौ बात हिताति।
ताती साँसनि के लगे छाती अति सियराति॥ २७॥
सूखति है वह सुंदरी कनक बेलि अभिराम।
वाकी तपनि मिटै जु रस बरसो घन घनस्याम॥ २८॥
नंदलाल कहियै कहा लह्यो अपूरब हार।
गुनबिहीन किंसुकनि की तिन मधि मुकुट सुधार॥ २९॥
नैन बिसारे बान सौं चली बटाउइ मारि।
बचन सुधारस सीचिकै वाहि जीव दै नारि॥ ३०॥
हन्यो मोहिं उहि नैन सौं नैननि कियो अचेत।
काढ़ि बहुरि बिष आपनो ज्यौं बिषधर हर लेत॥ ३१॥
तेरी मुख समता करी साहस करि निरसंक।
धूरि परी अरबिंद मुख चंदहि लग्यो कलंक॥ ३२॥

---

१ छुटेहु पर। २ करति लाल मनुहार पै। ३ न्यायहि। ४ उर लाज ते। ५ इंद्रबधू।

[२१] लगि; लौं (रत्ना)।
[२६] लाजन ललित; डर लाज तैं (रत्ना)। इंदुबधू, इंद्रबधू (रत्ना)।
[३०] बटाउइ, बटाउहि (रत्ना)। वाहि; ताहि (रत्ना)।
[३१] अचेत, सचेत (रत्ना)। हर, हरि (रत्ना)।
[३२] करि; तजि (रत्ना)।

खेलत मार सिकार है डोरे पास समेत।
नैन मृगन सौं बाँधिकै नैन मृगन गहि लेत॥ ३३॥

मृगपति जित्यो सुलंक सौं मृगलच्छन मृदु हास।
मृगमद जित्यो सुनैन सौं मृगमद जित्यो सुबास॥ ३४॥

छपै छपाए अब नहीं मैं पायो लखि अंक।
नाहिँन जु पै कलंक तौ कैसे बदन ससंक॥ ३५॥

चौंसठि कला बिलासजुत बदन कलानिधि पेखि।
दुतिया की देखैं कला को दुति याकी देखि॥ ३६॥

पावै पेपन ओपनी कहै कुरंटक कौन।
सोनो सोनजुही लहै ललित देह दुति सौन॥ ३७॥

तामैं अनमिष नैनता किये लाल बस पेन।
अनमिष नैन सुनैनि ये निरखत अनमिष नैन॥ ३८॥

नारि नैन के नीर को नीरधि बढ़ै अपार।
जारे जौन बियोग की बड़वानल की झार॥ ३९॥

जातरूप रूपहि लखति बाँधत प्रभु मन पेन।
निपट निहारे निलज ये लौन हरामी नैन॥ ४०॥

रोस न कर जौ तजि चल्यो जानि अँगार गँवार।
छितिपालनि की माल मैं तैहीं लाल सिंगार॥ ४१॥

कहा भयो *मतिराम* हिय जो पहिरी नँदलाल।
लाल मोल पावै नहीं लाल गुंज की माल॥ ४२॥

गुन औगुन को तनकऊ प्रभु नहिँ करत बिचार।
केतक कुसुमन आदरत हर सिर धरत कपार॥ ४३॥

भाल लाल बैंदी दिये उठे प्रात अलसात।
लोनी लाजनि गड़ि गई लखे लोग मुसकात॥ ४४॥

---

[३९] नीरधि; बारिधि (रत्ना)।
[४२] पहिरी; पहिनी (रत्ना)।
[४३] केतक; केतिक (रत्ना)।

जो तैं पहिरे सुंदरी सो दुति अधिक उदोतु।
तेरे सुबरन रूप तैं रूपौ सुबरन होतु॥ ४५॥
भजे अँध्यारी रैनि मैं भयो मनोरथ काज।
पूरे पूरब पून्य तैं परयो *परावन आज॥ ४६॥
निज बल के परिमान तुम तारे पतित बिसाल।
कहा भयो जु न हौं तरतु तुम न खिस्याहु गुपाल॥ ४७॥
कर धरि काँधे कंत के चलैं लटपटी चाल।
थकित करति पथिकनि सबनि थकित पंथ मैं बाल॥ ४८॥
नेकु न थाकत पंथ मैं चलैं जु कोस हजार।
चञ्चल लोइनि हयनि पर भए जात असवार॥ ४९॥
ललित नाक नथुनी बनी चुनी रही ललचाइ।
गजमुकतनि के बिच परयो कहो कहाँ मन जाइ॥ ५०॥
झूठे ही ब्रज मैं लग्यो मोहिँ कलंक गुपाल।
सपनेहूँ कबहूँ हिये लगे न तुम नँदलाल॥ ५१॥
चंदकिरनि लगि बालतन उठे अंग अति[1] जागि।
परसत कर दिनकरकिरनि[2] ज्यौं दरपन मैं आगि॥ ५२॥
दसा सुने निज बाग की लाल मानिहो झूठ।
पावस रितुहूँ मैं लखैं डाढ़े ठाढ़े ठूठ॥ ५३॥
तरनिकिरनि झलमलितमुख लालो ललित कपोल।
प्यास लगावति दृगनि मैं प्यासी बाल अमोल॥ ५४॥
लाल निहारे संग मैं खेले खेल बलाइ।
मूँदत मेरे नैन हो करनि कपूर लगाइ॥ ५५॥
खेलन चोरमिहीचनी परे प्रेम पहिचानि।
जानी प्रगटत परस तैं तिय लोचन पिय पानि॥ ५६॥
खेलत खेल सखीनि मैं उतै धूरि अवगाहि।
पलक न लागत एक पल इतै नाह मुख चाहि॥ ५७॥

---

१ उठै आगि। २ दुपहर दिनकर करि परस।

[४६] यह छद 'रत्ना' में नहीं है।

[५२] उठे अग, उठै आगि (रत्ना)। परसत कर, परस करत (रत्ना)।

निडर बटोही बाट में ऊखनि लेत उखारि।
अरे गरीब गँवार तैं काहे करत उजारि॥ ५८॥

मेरे सिर कैसी लगै यों कहि बाँधी पाग।
सुंदरि रति बिपरीति में प्रगट कियो अनुराग॥ ५९॥

नहिँ सुहाइ परगोत है गोत आपनो पाइ।
बिदा करी कुलकानि की नैननि नैन बलाइ॥ ६०॥

ग्रीषमहूँ रितु में भरी दुहूँ कूल पैराउ।
खारे जल की बहति है नदी तिहारे गाउ॥ ६१॥

हियो हिये सों मिलि चल्यो नैन चले मिलि नैन।
इतै उतै मारी फिरै लाज कहूँ ठहरै न॥ ६२॥

बसिबे कौं निज सरबरनि सुर जाको ललचाहिं।
सो मराल बक ताल में पैठन पावत नाहिं॥ ६३॥

अद्भुत या घन को तिमिर मो पै कह्यो न जाइ।
ज्यों ज्यों मनिगन जगमगत त्यों त्यों अति अधिकाइ॥ ६४॥

कहा दवागिनि के पियें कहा धरें गिरि धीर।
बिरहानल में बरत जो[1] बूड़त लोचन नीर॥ ६५॥

सतरौहीं भौंहनि नहीं दुरैं दुराए नेह।
होति नाम नँदलाल की दीपमाल[2] सी देह॥ ६६॥

सूखी सुता पटेल की सूखी ऊखनि पेखि।
अब फूली फूली फिरै फूली अरहर देखि॥ ६७॥

चपल चित्त बेध्यो निरखि याही डरनि दुराति।
नैनबान वै देखिकै लाज नहीं ठहराति॥ ६८॥

भलो एक मन हीं गह्यो सज्जनता को नेम।
दृगनि मारि घायल कियो तासों बाँधत प्रेम॥ ६९॥

कोटि कोटि *मतिराम* कहि जतन करो सब कोइ।
फाटे मन अरु दूध में नेह न कबहूँ होइ॥ ७०॥

---

१ ब्रज। २ नीपमाल।

[६५] जो, ब्रज (रत्ना)।

[६६] दीपमाल, नीपमाल (रत्ना)।

पानिपियूख पयोधि में नेक नहीं ठहराइ।
नैन मीन ये पलक में मन जहाज गिलि जाइ॥ ७१॥
पानिप पूर पयोधि में रूप जाल बगराइ।
नैन मीन ये नागरनि बरबट बाँधत आइ॥ ७२॥
कंटक काढ़त लाल की चंचल चाह निबाहि।
चरन खैंचि लीनो तिया हँसि झूठे करि आहि॥ ७३॥
सुबरन बरन सुबासजुत सरस दलनि सुकुमार।
ऐसे चंपक कौं तजै तै हीं भौंर[1] गँवार॥ ७४॥
देखेहूँ बिन देखिहूँ लगी रहै अति आस।
कैसेहुँ न बुझाति है ज्यौं सपने की प्यास॥ ७५॥
सखिन दियो उपदेस जो नहिँ कैसेहुँ ठहरात।
नवल नेह चित चीकने ढरकि तोय लौं जात॥ ७६॥
सौंहनि करि पाँइनि पर्‌यो तेरे रिसैं उदोति।
नाह नेह तोमैं लह्यो तू कत रूखी होति॥ ७७॥
भौंहनि संग चढ़ाइयो कर गहि चाप मनोज।
नाह नेह साथहि बढ़्यो लोचन लाज उरोज॥ ७८॥
लई जु पीर जनाइकै करि मिलाप की आस।
मन उड़ात अजहूँ रहै ऊँची उहीं उसास॥ ७९॥
नैन मिली मनहूँ मिली बातनि मिली बनाइ।
क्यौं न मिलावति देह सौं नेह रहचटो लाइ॥ ८०॥
लाज छुटी गेहौ छुट्यो सुख[2] सो छुट्यो सनेह।
सखि कहियौ वा निठुर सौं रही छूटिबैं देह॥ ८१॥
दुरजन वे निंदित रहैं गुरुजन गारी देत।
सहियत बोल कुबोल ये लाल तिहारे हेत॥ ८२॥
लगे लूत के जाल ये लखो लखत इहि भौन।
जानि कुहू रजनी मनो कियो नखतगन गौन॥ ८३॥

---

१ चंपकली को तजत अलि तैं ही होत। २ सब सों।

[७१] ये, इक (रत्ना)।
[७३] चाह निबाह, चालनि चाहि (रत्ना)।
[८०] नेह, देह (रत्ना)।

मेरे तन के रोम ये मेरे नहीं निदान।
उठि आदर अगमन करैं करौं कौन बिधि मान ॥ ८४ ॥
अनमिष लोचन बाल के यातैं नंदकुमार।
गई मीच[1] परसत पजरि बिरहानल की झार ॥ ८५ ॥
जलदनि की सी रैनि दिन रहै नैन झरि लागि।
बाढ़ति जाति बियोग की बिद्युत की सी आगि ॥ ८६ ॥
मौर नूत नूतन रहे देखि धरैं क्यौं धीर।
मनो मनोज महीप के तीरनि भरे तुनीर ॥ ८७ ॥
दिपै देह दीपति गयौ दीप बयारि बुझाइ।
अंचल ओट किये तऊ चली नवेली जाइ ॥ ८८ ॥
ऐसे बोलो बोल बलि जैसे याहि सुहात।
बेलि नवेली कनक की झुकति तनक ही बात ॥ ८९ ॥
सारी लटकति पाट की बिलसनि फुँदी लिलार।
मनो रूपमंदिर बँधे सुंदर बंदनवार ॥ ९० ॥
पति आयो परदेस तैं हिय हुलसी अति बाम।
टूक टूक कंचुक कियौ करि कमनैती काम ॥ ९१ ॥
लाल तिहारे नैनसर अचिरज करत अचूक।
बिन कंचुक छेदैं करै छाती छेद छटूक ॥ ९२ ॥
पिय के दरपन में निरखि प्रतिबिंबित निज रूप।
बाल लाल मुख लखि भई रिस भरि भौंह अनूप ॥ ९३ ॥
और बात कहियै कहा सुनियै नंदकुमार।
बिरह आँच साँचे भए याके अंग अँगार ॥ ९४ ॥
ललित लाइ की लपट सी चली जाति जहँ नारि।
बिरह अगिनि की झार तहँ जारि जात झौंकारि ॥ ९५ ॥
जहाँ तहाँ रितुराज में फूले किंसुक जाल।
मानहु मान मतंग के अंकुस लोहू लाल ॥ ९६ ॥
बितैं सिसिर रितु रजनि के मधुर प्रताप सुबैन।
जाग्यो मैन महीप सुनि पिक बंदिनि के बैन ॥ ९७ ॥

---

१ मीच गई बरि बीच ही।

होत दसगुनो अंकु है दियें एक ज्यौं बिंदु।
दियैं दिठोना यौं बढ़ी आनन आभा इंदु ॥ ९८ ॥
तूँ सोने को सटक है रही और गुन पागि।
बिन लागैं पीरहि करै हरै पीर उर लागि ॥ ९९ ॥
मान जनावति सबनि कौं मन न मान को ठाट।
बाल मनावन कौं लखै लाल तिहारी बाट ॥१००॥
नखतावलि नख इंदु मुख तनु दुति दीप अनूप।
होति निसा नँदलाल मन लखे तिहारो रूप ॥१०१॥
इतै उतै सचकित चितै चलै[1] डुलावति बाँह।
डीठि[2] बचाइ सखीन की छिन इक निरखति छाँह ॥१०२॥
साँझ समै वा छैल को छलनि कही नहिँ जाइ।
बिन डर बन डरपाइकै लियो मोहि उर लाइ ॥१०३॥
राति अँध्यारी झझकि झुकि झूँठे ही भय भागि।
ललित बाल मन मालती रहो लाल उर लागि ॥१०४॥
हम सौं तुम सौं लाल इत नैननि ही को नेह।
उत प्यारो के हगनि के सलिल सींचियत देह ॥१०५॥
जैतवार यह मार सौं अकस करो जिन चेत।
भामिनि भौंह कमान के गोसा ही गहि लेत ॥१०६॥
सुधा मधुर तेरो अधर सुंदर सुमन सुगंध।
पीव जीव को बंधु यह[4] बंध जीव को बंध ॥१०७॥
पग जराइ को गूजरी नथुनो मुकुत सुढार।
घने घेर को घाँघरो घूँघरवारे बार ॥१०८॥
बंदन तिलक लिलार मैं ऐसो मुखछबि होति।
रूप भौन में जगमगै मनौ दीप की ज्योति ॥१०९॥

---

१ चलत। २ दीठि। ३ छनुक निहारति। ४ है।

[९८] दिठाना; डिठौना (रत्ना)।
[१०२] चलै, चलति (रत्ना)। छिन इक निरखति, छिनक निहारति (रत्ना)।
[१०४] रहो, रही (रत्ना)।
[१०६] यह; इहिँ (रत्ना)।
[१०७] बंध यह…को बध, बंधु है बंधु जीव को वधु (रत्ना)।

मन तैं नैननि कौं चली नैननि ते मन काज।
ह्वै दीपक की छाँह लौं बीच बिलानी लाज॥११०॥
पीन पयोधर भार यह धरैं छीन कटि पैन।
छोटे मुख में लसत हैं बड़े बड़े ये नैन॥१११॥
तेरे मुख की मधुरई जो चाखी चख चाहि।
लगत जलज जंबीर सो चंद चूक सो ताहि॥११२॥
तेरी मुखछबि लखि लखै होत चंद ता तूल।
कंद खाइकै चूमिये ज्यौं रूसे को फूल॥११३॥
निज नीचे कौं निरखि नित ऊँचे होत उरोज।
यातैं मुख के होत हैं नीचे नननसरोज॥११४॥
ज्यौं ज्यौं ऊँचे होत हैं उरज बाल के पैन।
सब सौतिन के होत हैं त्यौं त्यौं नीचे नैन॥११५॥
जब जब चढ़त अटानि दिन चंदमुखी यह बाम।
तब तब घर घर धरत हैं दीप बारि सब गाम॥११६॥
छुवत परस्पर हेरकैं राधा नंदकिसोर।
सबमैं वेई होत हैं चोरमिहचनी चोर॥११७॥
खंजन कमल चकोर अलि जिते मीन मृग पैन।
क्यौं न बड़ाई कौं लहैं तरुनि तिहारे नैन॥११८॥
अँसुवा बरुनी ह्वै चलत जल चादर के रूप।
अमल कपोलनि की झलक झलकति दीप अनूप॥११९॥
कुच तैं श्रम जलधार चलि मिली रुमावलि रंग।
मनो मेरु के तरहटी भयो सितासित संग॥१२०॥
सरदागम पिय आगमन जगी जोति मुखइंदु।
अंग अमल पानिप भयो फूले दृग अरबिंदु॥१२१॥
मो मन सुक लौं उड़ि गयो अब क्यौंहूँ न पत्याइ।
बसि मोहन बनमाल मैं रह्यो[1] बनाउ बनाइ॥१२२॥
बैंदी ललित मसूर की लसति सलोने भाल।
मनो इंदु के अंक मैं इंदु कामिनी लाल॥१२३॥

---

१ कह्यो।

*[११४] यह छंद 'रसा' में नहीं है।

फिरि फिरि आवत द्वार तैं झूठे झुकि अलसाति।
लेति आगि तितनी बहू जो बीचहीं बुझाति ॥१२४॥
अमल कपोलनि मैं अरुन झलकनि पीक अनूप।
उठी मनो रबि किरन सौं आगि लपट के रूप ॥१२५॥
बार बार वा गेह सौं बारि बारि लै जाति।
काहे तैं बिन बात ही बाती आजु बुझाति ॥१२६॥
नीठि नीठि आगैं परै पैंगु परयौ जनु फंद।
को न होति गति मंद है लखि तेरी गति मंद ॥१२७॥
नैन जोरि मुख मोरि हँसि नैसुक नेह जनाइ।
आगि लैन आई हियें मेरे गई लगाइ ॥१२८॥
सुबरन बेलि तमाल सौं घन सौं दामिनि देह।
तूं राजति घनस्याम सौं राधे सरस सनेह ॥१२९॥
है साँचो कैधौं भयो मेरीई मति भंग।
आजु बदलि काहे गयो बदलि बसन तन रंग ॥१३०॥
सुरत अंत सुख अमित है भोर भए निसि जागि।
उर सोई लाली अज्यौं जो उर सोई लागि ॥१३१॥
दूनो मुख मैं छबि भई बेसरि धरी उतारि।
हरि के उर सोई लगी करति रसोई नारि ॥१३२॥
जब तैं मिलि बरुनीनि सौं अच्छिन की छबि अच्छ।
जनु अवनीप अनंग के तरल तुरंग सपच्छ ॥१३३॥
लसत बूँद अँसुवानि के बरुनिनि छोर उदार।
दृग तुरंग भूलनि मनो झलकत मुकुत सुढार ॥१३४॥
मानहुँ मैं बिन भूषननि धरति अधिक छबि अंग।
नैन तरंगनि तैं भए तरल तुरंग सुरंग ॥१३५॥
ज्यौं ज्यौं छबि अधिकाति है नवल बाल मुखइंदु।
त्यौं त्यौं मुरझत सौति कौ अमल बदन अरबिंदु ॥१३६॥

---

[१२९] सरस; सरिस (रत्ना)।
[१३०] इस छंद का दूसरा चरण 'रत्ना' में नहीं है।
[१३३] जब तैं, राजति (रत्ना)।
[१३५] तरंगनि, कुरगनि (रत्ना)। तुरग सुरग; सुरग, तुरग (रत्ना)।

अंजनजुत अँसुवानि की धार धसति जुग नैन।
मनो डोर मखतूल के बाँधे खंजन मैन ॥१३७॥
बिंदु लसत अँसुवानि के लाल भए दृग कोर।
देखेँ बिन पिय चंदमुख त्रिनगी चुगत चकोर ॥१३८॥
सपने में लालन चलत लखि रोई अकुलाइ।
जागतहूँ पिय हिय लगी हिलकी तऊ न जाइ ॥१३९॥
पिय आगम सुनि बाल तन बाढ़े हरख बिलास।
प्रथम बूँद बारिद उठैं, ज्यौं बसुमती सुबास ॥१४०॥
याके मन मैं जानियत कोऊ लग्यो सभाग।
कहत गान बिन अरथ को प्रगट अरथ अनुराग ॥१४१॥
छाप तरौना नगनि की सोवत लगी कपोल।
मनो मदन की मोहनी मूँगा माल अमोल ॥१४२॥
मोकौं तुम क्यौं कहति हौ लै गुपाल को नाँऊ।
रिस मिस नेह गोबिंद को कहति फिरै सब गाँउ ॥१४३॥
नर नारी सब जपत हैँ घर घर हरि को नाँउ।
मेरे मुख धोखैं कढ़त परत गाज ब्रज गाँउ ॥१४४॥
पगनि परे पिय पीठ पर परे नैन जल टूटि।
सींची मनो सनेहरस गयो मान मन छूटि ॥१४५॥
पगनि परयो लखि प्रानपति दियो मुगध तिय रोइ।
कज्जल छल मन मलिनता त्याए अँसुवा धोइ ॥१४६॥
इंदु उपल उर बाल कौ कठिन मान में होत।
देखे बिन कैसे द्रवै तो मुखइंदु उदोत ॥१४७॥
भौंह बीच तिल तनक सै सोहत सुषमा संचि।
दियो डिठौना रीझि सौं मानहुँ बिरचि बिरंचि ॥१४८॥
चलत लाल के मैं कियो सजनी हियो पखान।
कहा करौं दरकत नहीं भरे[1] बियोग कृसान ॥१४९॥
चढ़ी रहै प्रतिदिन अटा सखि सनेह सुख सौरि।
लोचन पियत पियूष हैँ प्रेषि प्रानपिय पौरि ॥१५०॥

---

१ इतै।

[१४९] भरे; इते (रता)।

[१५०] प्रेषि; पेखि (रता)।

कहा छुपावति मुगध तिय बोलि चातुरी बोल।
कहैं देत अनुराग की कीरति कलित कपोल ॥१५१॥
बरसाइति बर को चहूँ बहु बिधि पूजि बिसेखि।
पूरत है मनकाम कौं कामतरोवर लेखि ॥१५२॥
सहज बात बूझत कछुक बिहसि नवाई ग्रीव।
तरुन हिये तरुनी दई नई नेह की नीव ॥१५३॥
करति मनोरथ बहु बहू दृगनि अनंद उदोत।
उठत सीतलायत सखी सीतल हीतल होत ॥१५४॥
दसा हीन राधा भई सुनिये नंदकिसोर।
दीपसिखा लौं देखियत बारि बयारि झकोर ॥१५५॥
निसि दिन निंदति नंद है छिन छिन सासु रिसाति।
प्रथम भए सुत को बहू अंकहि लेति लजाति ॥१५६॥
कुसुम खेत को खेद सब कहत तिहारो रूप।
ऊँची लेत उसास तन श्रम जल कलित अनूप ॥१५७॥
बाँचत कुसुम कुसुंभ के रहे लागि अभिराम।
कंटक छत छतियाँ छुपै क्यौं न छुपावति बाम ॥१५८॥
जानति हौं वा खेत सौं आई बीन कुसुंभ।
कलित कंटकनि कायकुल कुसुम कलित कुच कुंभ ॥१५९॥
जानति खेत कुसुंभ के तेरी प्रीति अमोल।
चुभत करनि कंटकनि तौ कत कंटकित कपोल ॥१६०॥
अब तेरो बसिबो इहाँ नाहिंन उचित मराल।
सकल सूखि पानिप गयो भयो पंकमय ताल ॥१६१॥
तिय पग पिय अँगुरी परसि भो उर आनँदखानि।
कह्यो सु परि पिय पीठि पर सुधा सीत अँसुवानि ॥१६२॥
बिछुरत रोवत दुहुनि की सखि यह बात[1] लखै न।
दुख अँसुवा पियनैन मैं[2] सुख अँसुवा तियनैन ॥१६३॥

---

१ रूप। २ हैं।

[१५८] इस छंद के दूसरे चरण में 'बाँचत कुसुम' के आगे का अंश 'रत्ना' में नहीं है।

[१६३] मैं, हैं (रत्ना)।

पग परिबो मुरि बैठिबो यहै निहारे काज।
तुम्हैं मनावन की नई इहै मान की लाज ॥१६४॥
परसत ही याकी भई तन कदंब की माल।
रह्यौ कहा परि पगनि मैं क्यौं न अंक भरि लाल ॥१६५॥
नील नलिन दल सेज मैं परी सुतनु तनु देह।
लसै कसौटी मैं मनो तनक कनक की रेह ॥१६६॥
मुख नीचे ऊँचे लसैं तरुनि उरज उर माँह।
मनो मुद्रित मन कोक जुग पाइ कोकनद छाँह ॥१६७॥
पिय अपराध अनेक निज आँखिनि[1] हूँ लखि पाइ।
तिय इकंतहूँ कंत[2] सौं मानो करति लजाइ ॥१६८॥
तो रसु रात्यो रैनि दिन सुखसमुद्र के सोत।
याही तैं सौतीनि के ये अनखहु छत होत ॥१६९॥
निसि नियराति निहारियति इनको मुख[3] अरबिंदु।
सखी एक यह देखियत तेरोई मुख[4] इंदु ॥१७०॥
उजियारी मुखइंदु की परी कुचनि उर[5] आनि।
कहा निहारति[6] मुगध तिय पुनि पुनि चंदन जानि ॥१७१॥
दुबराई गिरि जातु है कंकन कामिनि बाँह।
उपदेस न ठहरात ज्यौं दुरजन के उर माँह ॥१७२॥
मन दै सुनिये लाल यह तनक तरुनि की बात।
अँसुवा उडुगन गिरत हैं होन चहत उतपात ॥१७३॥
कहति आपु ही बैन हैं ऊख पियूष रसाल।
कित बोलति कोकिल अली पुनि पुनि बूझति बाल ॥१७४॥
जिनमैं निस दिन बसुतु है तुम घन सुंदर नाह।
क्यौं न चलै तिय दृगन तैं बहुल बाह परबाह ॥१७५॥

१ नैननि। २ पीय। ३ सौतिबदन। ४ तेरो आनन। ५ उरोजनि। ६ अँगोछति।

[१६५] क्यौं; त्यौ (रत्ना)।
[१६६] यह छंद 'रत्ना' मैं नहीं है।
[१७१] कुचनि उर; उरोजनि (रत्ना)। निहारति; अँगोछति (रत्ना)।
[१७३] तनक; कनक (रत्ना)।
[१७५] तिय; तिन (रत्ना)।

जलद स्याम निज नाम यह करत कहा इत आपु।
जा उर नेक बसो करौ ताही के तन तापु ॥१७६॥
दिस दिस बिगसित मालती निसि नियराति निहारि।
ऐसे अतनु अराम मैं भ्रम भ्रम भौंर निवारि ॥१७७॥
नारिनैन को नीर अरु तरुनी तीर उतंग।
बहुत सरित परवार के गिरत एक ही संग ॥१७८॥
बाल सखिनि की सीख तैं मान न जानति ठानि।
पिय बिन अगमन[1] भौन मैं बैठी भौंहनि[2] तानि ॥१७६॥
परिकर पंकज के कियैं नैननि राज बिलास।
मैन मित्र मंत्री मिरग खंजन किये खवास ॥१८०॥
लाल जनायो मैं तुम्हैं लागन चहत कलंक।
चंद्रमुखी वह चंद सौं अब चितवत निरसंक ॥१८१॥
बड़े हमारे दृग कहौ तुम कहि सकौ सुमैं न।
पियनैननि भीतर सदा बसत तिहारे नैन ॥१८२॥
आभा[3] तरिवन[4] लाल की परी कपोलनि आनि।
कहा छुपावति चतुर तिय कंत दंतछद जानि ॥१८३॥
गहि कोमलता सरसता सोनो होइ सुगंधु।
तबहूँ कबहूँ होइ सखि तेरे तन को बंधु ॥१८४॥
दुख दीनेहूँ सुजन जन छोड़त निज न सुदेस।
अगरु डारियत आगि मैं करत सुबासित केस ॥१८५॥
तू राखो करि लाल है निज उर मैं बनमाल।
तैं राख्यो करि लाल है कंठमाल को लाल ॥१८६॥
जगैं जोन्ह की जोति यौं छुपै जलद की छाँह।
मनो छीरनिधि की उठै लहरि छहरि छिति माँह ॥१८७॥

---

१ पिय बिन आगम। २ भौहैं। ३ प्रभा। ४ तरौना।

[१७७] बिगसित; बिदिसित (रत्ना)।
[१७८] के; तैं (रत्ना)।
[१७६] बिन अगमन, आगम बिनु (रत्ना)।
[१८०] तबहूँ; कबहुँ (रत्ना)। कबहूँ, कबहुँ न (रत्ना)।

अभिनव जोबन जोति सों जगमग होत बिलास।
तिय के तन पानिप बढ़ै पिय के नैननि प्यास ॥१८८॥
बासन को पानिप घट्यौ तन पानिप की आस।
मिटी पथिक की बदन तें लगी दृगनि मैं प्यास ॥१८९॥
दिनकरतनया स्याम जल द्वै घट भरे बनाइ।
ताके भरु गरुए भए हरषैं धारति पाइ ॥१९०॥
चलत सुन्यो परदेस कों हियरो रह्यो न ठौर।
लै मालिनि मीतिहिं दियो नव रसाल को मौर ॥१९१॥
त्यौं राख्यो परदेस तें करामात अधिकाइ।
कनक कलस पानिप भरे सगुन उरोज दिखाइ ॥१९२॥
सुन्यो माइके तें बहू[1] आयो बाभन कंत।
कुसल पूछिबे के मिसनि लीनो बोल इकंत ॥१९३॥
स्रमजलकन झलकन लगे अलकनिकलित कपोल।
पलकनि रस छलकन लगे ललकन लोचन लोल ॥१९४॥
गौने की चरचा चलैं दियैं तहाँ चित बाल।
अधमूँदी अँखियानि सों गूँदी गूँदति माल ॥१९५॥
सखी तिहारे नेह के होत घरहि घर घेर।
पीतम तन पानिप परे फेलि रह्यो चहुँ फेर ॥१९६॥
तूँ न करति मनभाँवती रति बिपरीत बिचार।
ह्वैहै सूधे सुरत मैं बिछियनि को छनकार ॥१९७॥
कहति साँच तूँ भाँवती मेरे चित अति प्रीति।
कियैं बिना बिपरीति रति हिये न होति प्रतीति ॥१९८॥
दानबीर रस के सखी तेरे नैन निकेत।
दान समैं मन दान दै हँसि उछाह कहि देत ॥१९९॥
रोस किये कैसो करै सखी तिहारे नैन।
सहज मधुर मुसिक्यानि मैं हनत मानसनि पैन ॥२००॥

---

१ जबहि।

[१८९] पानिप; पानी (रसा)।

[१९०] गरुए; भरुये (रसा)। धारति; ढारति (रसा)।

[१९७] छनकार; झनकार (रसा)।

चंचलता तो चखनि की कही न जाइ बनाइ।
जिन्हैं चाहि चंचल महा चितौ अचल ह्वै जाइ ॥२०१॥
तेरे अंगनि लाल छबि मुख मयंक सुख माहिँ।
त्यौं चकोर लखि लाल के क्यौं न बाल ललचाहिँ ॥२०२॥
नंदलाल[1] के रूप पर रीझि परी एक बारि[2]।
अधमूँदी अँखियनि दई मूँदी प्रीति उघारि ॥२०३॥
कोंपनि तैं किसलय जवै होहिं कलिन तैं कौल।
तबै चलाई चलन की चरचा नायक[3] नौल ॥२०४॥
कामिनि दामिनि दमक सी बरनि कौन पै जाइ।
डीठि नहीं ठहराइयै डीठिन हीं ठहराइ ॥२०५॥
रात्यो दिन जागति रहै अगिनि लगनि की मोहिँ।
मो हिय मैं तू बसतु है आँच न पहुँचति तोहिँ ॥२०६॥
चलन लगी अँखिया चपल चलन लगी लखि छाँह।
तन जोबन आवन लग्यो मनभावन मन माँह ॥२०७॥
बिन देखैं दुख के चलैं देखैं सुख के जाहिँ।
कहो लाल इन दृगनि के अँसुवा क्यौं ठहराहिँ ॥२०८॥
बरसाइति मैं सखिनि हठि साजे अंग सिँगार।
पघिले कंचन आभरन लगनि अगिन की झार ॥२०९॥
डारि तिहारे नेह मैं अगिनि लगनि की मैन।
तलफत याके मीन से लाल सलोने नैन ॥२१०॥
कौन बसत है कौन मैं यौं कछु कही परै न।
पियनैननि तियनैन हैं तियनैननि पियनैन ॥२११॥
लाल बाल को उर कठिन उरजनि निपट कठोर।
ताहि छेदि तीछन गई तेरी ईछन कोर ॥२१२॥

---

१ नँदनंदन। २ रही रिझवाय। ३ नागर।

[२०२] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।

[२०३] परी एक बारि, रही रिझवारि (रत्ना)।

[२०५] डीठि···ठहराइ, डीठिनि हीं ठहराइयै डीठि नहीं ठहराइ (रत्ना)।

[२०७] लखि, लगि (रत्ना)।

[२०८] इन, उन (रत्ना)।

बाल निहाल भई लखै[1] ललित लाल[2] मुख इंदु।
मनु पियूष बरषा भई नैननि झलके बिंदु[3] ॥२१३॥
तिय हिय लौं पहुँचे कही सीखि सखिनि की बात।
बिरह आँच जरि जाति है श्रौन समीपहिं जात ॥२१४॥
भुज फुलेल लावत सखी कर चलाइ मुसिक्याइ।
गाढ़ैं गह्यो उरोज तिय[4] बिहँसी भौंह चढ़ाइ ॥२१५॥
इंद्रजाल कंदर्प को कहै कहा मतिराम।
आगि लपट बरषा करै ताप धरै घनस्याम ॥२१६॥
दुहूँ अटारिनि मैं सखी लखी अपूरब बात।
उतै इंदु मुरझातु है इतै कंज कुम्हिलात ॥२१७॥
जोबन मैं अँखिया सखी परी लाज के जेल।
लरिकाई के सौंरियत चोरमिहचनी खेल ॥२१८॥
राधिक[5] के दृग खेल मैं मूँदे नंदकुमार।
करनि लगी दृगकोर सौं भई छेद उर पार ॥२१९॥
मैं मूँदति हौं खेल मैं तेरे लोचन बाल।
मेरे कर अति प्यार सौं चूमत हैं नँदलाल ॥२२०॥
सुरभि लोभजुत अलिनि मैं सहत अधर को रंग।
मनो तरनितनया मिली बानी गंगतरंग ॥२२१॥
सेत बसन मैं यौं लगै उघरत गोरे गात।
उड़ै आगि ऊपर लगी ज्यौं बिभूति अवदात ॥२२२॥
रूप लाल नँदलाल के परि करि बहुरि छूटै न।
खंजरीट मृग मीन से ब्रजबनितनि के नैन ॥२२३॥
जाके सील समान है साँचे होत सुमित्र।
तेही चंचल चखनि कौं चाह्यो चंचल चित्त ॥२२४॥

---

१ रही इकटक निरखि। २ लाल बदन अरबिंदु। ३ रीझ भार अँखियाँ थकीं झलके श्रम जल बिंदु। ४ पिय। ५ राधा।

[२१४] जात; ज्ञात (रत्ना)।

[२१५] तिय; पिय (रत्ना)।

[२१९] राधिक; राधा (रत्ना)।

[२२१] सहत; दंत (रत्ना)।

[२२४] जाके; जिनि कैं (रत्ना)।

खिन मैं प्रफुलित होत हूँ खिन मैं मुकुलित होत।
इंदीबर अरबिंद से चख मुख इंदु उदोत ॥२२५॥
ग्रीषम हूँ रबि तपत हूँ रहे जलद जनु भूमि।
तपी दृगनि सीतल करै गाँउ निकट की भूमि ॥२२६॥
नैन निवासी सौं चल्यो मन परदेस अनेह।
लखति आजु अनभाँवती सपने नैननि गेह ॥२२७॥
आजुहि चल्यो बिदेस कौं तजि सनेह चितचोर।
लखति भरे घर भाँवती जमी घास चहुँ ओर ॥२२८॥
परी दूबरी सेज मैं सखी निहारहि नीठि।
परसति नहीं डराति सो धरिबे के उर डीठि ॥२२९॥
लखति एकटक साँवरी मूरति को मुखइंदु।
रीझ भार अँखिया थकी झलके श्रम-जल-बिंदु ॥२३०॥
चलो लाल वह बाग मे लखो अपूरब केलि।
आलबाल घन समय को ग्रीषम रितु की बेलि ॥२३१॥
कहा कहौं वाकी दसा निठुर कही नहिं जाइ।
अंग अँगारनि को मिटै रंग आँच अधिकाइ ॥२३२॥
बड़वानल से जे लगे अलिनि करत उपचार।
मिलत लगे घनस्याम उर ते अँग ज्यौं घनसार ॥२३३॥
गई छबीली छूटि वह छल सौं नेह जनाइ।
कहौ कौन के लै छला आए लाल छलाइ ॥२३४॥
पियराई तन मैं परी पानिप रह्यो न देह।
राख्यौ नंदकुँवार ने करि कुँवार को मोह ॥२३५॥
बाँधी दृग डोरानि सौं घेरी बरुनि समाज।
गई तऊ नैनानि तैं निकसि नटी सी लाज ॥२३६॥
लोकलाज कुलकानि सौं गरब करो जिन बीर।
पैन मैन ब्रजराज के नैन मैन के तीर ॥२३७॥

---

[२२७] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।

[२२९] निहारहि; निहारैं (रत्ना)। धरिबे के उर डीठि, जरिबे के उर डीठि (रत्ना)।

[२३१] वह; उहिं (रत्ना)।

भलो न केतक रूख यह[1] सजनी गेह अराम।
बसन फटैं कंटक लगैं निसि दिन आठो जाम ॥२४८॥
जुपै द्वार मैं बसत तौ पथिक आइ जिन सोइ।
मेरो घर सूनो इहाँ चोरनि को डर होइ ॥२४९॥
ग्रीषम रितु मैं देखिकै बन मैं लगी दँवारि।
बड़ो अपूरब बात है मन मैं जरति गँवारि ॥२५०॥
जरद भई तिय हरद रँग बाढ़े दरद अतूल।
लागे बीतन संग ही कुसुम फूल हिय सूल ॥२५१॥
छरी सपल्लव लाल कर लखि तमाल की बाल[2]।
मुरझानो हिय साल धरि फूलमाल सी हाल[3] ॥२५२॥
लसति गूजरी ऊजरी बिलसति लाल इजार।
हिये हजारनि के हरे बैठी बाल बजार ॥२५३॥
कहत तिहारो रूप सखि[4] यह[5] पैंडे[6] को खेद।
ऊँची लेत उसास है कलित सकल तन स्वेद ॥२५४॥
लै आवति हौं सेज इत तेरी प्रीति गुपाल।
बात कहो अंकहि भरौ दुख न दीजिये लाल ॥२५५॥
कैसे ल्याऊँ[7] हौं इहाँ है जित नंदकिसोर।
दिनहूँ मैं मुखचंद कौं लखि ललचात चकोर ॥२५६॥
औरनि के पाइनि दियो नाइनि जावक लाल।
प्रानपियारी रावरी पेखति[8] तुम्हैं गुपाल[9] ॥२५७॥

---

१ भलो नहीं यह केवरो। २ हाल। ३ बाल। ४ यह। ५ सखि। ६ पैडे। ७ आऊँ। ८ निरखति। ९ रसाल।

[२४८] केतक, केतकि (रत्ना)। यह, है (रत्ना)।
[२५१] सूल, फूल (रत्ना)।
[२५५] यह छंद 'रत्ना' मैं इस प्रकार है—

प्रीतम तुम्हरी सेज पै हौं आवति नदलाल।
दया गहौ बात न कहौ दुख न दीजियै लाल ॥

[२५६] ल्याऊँ, आऊँ (रत्ना)।
[२५७] पेखति; परखति (रत्ना)।

प्रियवियोग तियदृगजलधि जलतरंग अधिकाइ ।
बरुनि मूल बेला परसि बहुरो बहुरि[1] बिलाइ ॥२५८॥
धन के हेत बिलासिनी रहे सवारे[2] बेस ।
जो तिय के हिय मैं बसै सो पिय बसे बिदेस ॥२५९॥
कोऊ करो अनेक यह[3] तजौ न टेक गुपाल ।
निसि औरनि के पग परो दिन औरनि के लाल ॥२६०॥
कंत कहा सौहनि करो जानि परयो अब नेह ।
दैन कह्यो सो बिन दिये जान न पैहो गेह ॥२६१॥
आई गौने कालि ही है[4] सीख्यौ कहा सयान ।
अबही तैं रूसन लगी अबहीं तैं पछितान ॥२६२॥
जोरत सुनि[5] सजनी बिपति तोरत तपत समाज ।
नेह कियो बिन काज पुनि नेह कियो बिन काज ॥२६३॥
लख्यो न कंत सहेट मैं लखत[6] नखत को राइ ।
अमल कमल सो बाल को[7] बदन गयो कुम्हिलाइ ॥२६४॥
तिय कौं मिल्यो न प्रानपति सजल जलद तन मैन ।
सजल जलद लखिकै भए सजल जलद से नैन ॥२६५॥
बिहँसि केलिमंदिर गई लख्यो न जिय को नाथ ।
मैन करनि तैं जल बलय गिरे एक ही साथ ॥२६६॥
साहस करि कुंजनि गई लख्यो न नँदकिसोर ।
दीपसिखा सी थरहरी लगैं बयारि झकोर ॥२६७॥
कत न कंत आयो सखी लाजनि बूझि सकै न ।
नवल बाल पलिका परी पलक न लागत नैन ॥२६८॥
पीउ न आयो नींद[8] कौं मूँदैं लोचन बाल ।
पलक उघारे पलक मैं आयो होइ न लाल ॥२६९॥

---

१ जात । २ सँभारे । ३ कितेकहूँ । ४ ही । ५ हूँ । ६ लख्यो । ७ नवल बाल को कमल से । ८ क्यो । ९ ध्यान ।

[२५८] बहुरि; जाति (रत्ना) ।

[२६०] अनेक; कितेक (रत्ना) । तजौ न टेक; टेक न तजौ (रत्ना) ।

[२६२] है; हीं (रत्ना) ।

[२६३] सुनि; हूँ (रत्ना) । तपत, बिपति (रत्ना) ।

कंत बाट लखि गेह कौं कुंज देहली[1] आइ ।
पेहँ पीव बिचारियो नारि फेरि फिरि जाइ ॥२७०॥
लखत बाट पिय की तिया अँगरानी अँग मोरि ।
पौढ़ि रही पलिका मनो डारी मदन मरोरि ॥२७१॥
डीठि[2] बचाइ सखीनि की केलिभौन मैं जाइ ।
पौढ़ि परै पलिका पलक पलक अंग[3] अधिकाइ ॥२७२॥
सब सिँगार सुंदरि सजैं बैठी सेज बिछाइ ।
भयौ द्रौपदी को बसन बासर नहिँन[4] बिहाइ[5] ॥२७३॥
मनभावन[6] के मिलन के[7] करै मनोरथ नारि ।
धरै पौन के सामुहैँ दिया भौन को बारि ॥२७४॥
पिय मिलाप के हेत तिय सजे उछाह सिँगार ।
दृगकमलनि के द्वार मैं बाँधे बंदनवार ॥२७५॥
अली चली नवलाहि लै पिय पै साजि सिँगार ।
ज्यौं मतंग अँड़दार कौं लिये जात गँडदार ॥२७६॥
जोबन मद गज मंद गति चली बाल पतिगेह ।
पगनि लाज आँदू परी चढ़यो महावत नेह ॥२७७॥
सजि सिँगार सेजहि चली बाल प्रानपति[8] प्रान ।
चढ़त अटारी की सिढ़ी भई कोस परिमान ॥२७८॥
स्याम बसन मैं स्याम निसि दुरै न तिय की देह ।
पहुँचाई चहुँ ओर घिरि[9] भौंर भोर पिय गेह ॥२७९॥
मलिन करी छबि जोन्ह की तन छबि सौं बलि जाँउ ।
क्यौं जैहै पिय पै सखी लखि जैहै सब गाँउ ॥२८०॥

१ देहरी । २ दीठि । ३ रही छिन सेज तिय अति आनँद । ४ नहीं । ५ बिताइ । ६ मनमोहन । ७ को । ८ जहाँ । ६ मिलि ।

[२७०] देहली, देहरी (रत्ना) ।
[२७२] 'पलक अंग अधिकाइ' इतना अंश 'रत्ना' में नहीं है ।
[२७३] नहिँन, नाहिँ (रत्ना) ।
[२७४] के, कौ (रत्ना) ।
[२७८] प्रानपति, जहाँ पति (रत्ना) ।

जेठ मास की दुपहरी चली बाल पियभौन ।
आगि लपट तीखन लुवैं भए मलय के पौन ॥२८१॥
नागरि सकल सिंगार करि चली प्रानपिय[1] पास ।
बाढ़ि चली बिहसनि मनो सोभा सरस सुबास[2] ॥२८२॥
क्यों सहिहै सुकुमारि वह पहिलो बिरह गुपाल ।
जब वाके निस हिन भयो चलन लगे तब लाल ॥२८३॥
अबहीं तो मिलि मोहि सखि चलन आजु ब्रजराज ।
अँसुवनि राखति राखि तिय जियहि निकासति लाज ॥२८४॥
फूली नागरि कमलिनी उदित गए मित्र मलिंद ।
आयो मित्र विदेस तैं भयो सु दिन आनंद ॥२८५॥
भरी भाँवरैं साँवरे रास रसिक रस जान ।
तिनहीं मैं मनु भँवतु है है बौंडर को पान ॥२८६॥
चलत पीय परदेस कौं बरजि सकौं नहिं तोहिं ।
लै पैहौ आभरन जौ जीवत पहौ[3] मोहिं ॥२८७॥
सजनी मेरो मन परयो मनमोहन के अंग ।
चटपटात छूटत न ज्यों पंजर परयो पतंग ॥२८८॥
जा दिन ते गौनो भयो आई बाल रसाल ।
ता दिन तैं बिरहिनि भई उर मोतिन की माल[4] ॥२८९॥
सपने हूँ मनभाँवतो करत नहीं अपराध ।
मेरे मन हूँ मैं सखी रही मान की साध ॥२९०॥
दच्छिन नाइक एक तुम नंदलाल[5] ब्रजचंद ।
फुलए ब्रज बनितानि के हग इंदीवर बृंद ॥२९१॥

---

१ प्रानपति । २ बारिधि बीच बिलास । ३ बियत पाइहौ । ४ हरि उर की बनमाल । ५ मनमोहन ।

[२८१] भए; भई (रत्ना) ।
[२८४] तिय; हिय (रत्ना) ।
[२८५] गए; गे (रत्ना) ।
[२८६] भँवतु; भ्रमत (रत्ना) ।
[२८७] जीवत पैहौ, जियति पाइहौ (रत्ना) ।
[२८९] उर मोतिन की माल; हरि उर तैं बनमाल (रत्ना) ।
[२९०] हूँ, ही (रत्ना) । सखी रही; रही सखी (रत्ना) ।

निलज नैन कुलटानि के आइ बसे ब्रजराज।
हिये तिहारे तें सकल मारि निकारी लाज ॥२९२॥
पियत रहो अधरानि को रसु अति मधुर अमोल।
तातें मीठे कढ़त हैं लाल[1] बदन के बोल ॥२९३॥
लोचन पानिप ढिग सजी लट बंसी परबीन।
मो मन बारबिलासिनी फाँसि लियो मनु[2] मीन ॥२९४॥
यामें कौन सयान है मोहनलाल सुजान।
आपु करत अपराध हो आपुहि पुनि अभिमान ॥२९५॥
पिय मिलाप को सुख सखी कह्यो न जाइ अनूप।
सौतुक तौ सपनो भयो सपनो सौतुक रूप ॥२९६॥
चित्रहु में सखि जाहि लखि[3] होत अनंत अनंद।
नैन कुवलयन सों कहूँ सो लखिबौ[4] ब्रजचंद ॥२९७॥
वाको मन लीने लला बोलो बोल रसाल।
झुकति तनक सी बात में कनक बेलि वह बाल ॥२९८॥
सखी सलोनी[5] देह में सजे सिंगार अनेक।
कजरारी अँखियानि में भूल्यो काजर एक ॥२९९॥
सरद चाँदनी में प्रगट होत न तिय के अंग।
सुनत मंजु मंजीर अब[6] सखी न छोड़ति संग ॥३००॥
सखी सरस रस केलि में आपुनि यों सुधि जाति।
कंत संग हेमंत की छिन सी राति सिराति ॥३०१॥

---

१ बाल। २ जनु। ३ चित्रहु में जाके लखे। ४ सपनेहूँ कबहूँ सखी मोहिं मिलिहैं। ५ तिया की देह। ६ धुनि।

[२९२] निलज, निरज (रत्ना)। आइ, आनि (रत्ना)।

[२९३] कढत, कहत (रत्ना)। लाल, बाल (रत्ना)। के, तैं (रत्ना)।

[२९४] फाँसि, बाँधि (रत्ना)। मनु; जनु (रत्ना)।

[२९६] तौ; सौ (रत्ना)।

[२९७] सखि जाहि लखि; जाके लखैं (रत्ना)। नेन···लखिबौ, सपनैं हूँ कबहूँ सखी सो मिलिहैं (रत्ना)।

[३००] अब, धुनि (रत्ना)।

[३०१] सिराति, बितात (रत्ना)।

लाल तिहारे बिरह तैं माह मास की राति।
करि कपूर की कीच सो सखी समीपहि जाति ॥३०२॥
कहा जनावति चातुरी कहा चढ़ावति भौंह।
अघनिकरे अखरानि सौं सौंहें कीजै सौंह ॥३०३॥
लाल तिहारैं नेक हीं नैन तिहारैं तीर।
वाके कंचुककलित कुच काँपत जोघ अघीर ॥३०४॥
बाल रही इकटक निरखि लाल बदन अरबिंदु।
सियराई अँखियन परी पियराई मुखइंदु ॥३०५॥
पिय समीप को सुख सखी कहँ देत ये बैन।
अबल अंग निरबल बचन नवल सुनींदे नैन ॥३०६॥
खाटे फल आगैं घरैं सखी आनि मुसिक्याइ।
पिय समीप प्यारी प्रिया रही सकुचि सिर नाइ ॥३०७॥
पिय आयो परदेस तैं बहुतै द्योस बिताइ।
सखी उठाई पास तैं मूँडे ही[1] जमुहाइ ॥३०८॥
पासे गर्भवती तिया सिथिल हाथ ढरकाइ।
हसत लाल लोचन लखैं लोचन रही नवाइ ॥३०९॥
ध्यान करत नँदलाल को नए नेह मैं बाम।
तनु बूड़त रँग पीत मैं मन बूड़त रँग स्याम ॥३१०॥
पिय आयो परदेस तैं हिय मैं आयो प्रान।
मिलत बिरहिनी कैं भयो छिन जनु जुग परिमान ॥३११॥
कहा भयो मेरी हितू हो तुम सखी अनेक।
सपने मिलवत नाथ कैं नींद आपनी एक ॥३१२॥
कंप प्रसेद बढ़ै चढ़ै भौंह मनोभव चाप।
अपने पिय सौं जानियत सपने करति बिलाप ॥३१३॥
प्यारी की मुसिक्यानि सी सरद जोन्ह तूँ है न।
वह नैननि सीतल करै तूँ कत जारति नैन ॥३१४॥
अली चली कहु कौन पै बड़े कौन के भाग।
उलट्यो कंचुक कुचन पर कहँ देत अनुराग ॥३१५॥

१ साँझहिं तैं।

[३१५] अली; सखी (रखा)।

सकुचि न रहियै साँवरे सुनि गरबीले बोल।
चढ़ति भौंह बिकसत नयन बिहसत गोल कपोल ॥३१६॥
मनभाँवन की भाँवती भेंटति रस उतकंठ।
बाँही छुटै न कंठ तैं नाँहीं छुटै न कंठ ॥३१७॥
बिरी अधर अंजन नयन मिहिदी पग अरु पानि।
तन कंचन के आभरन नीठि परति पहिचानि ॥३१८॥
कहा काज कुलकानि सौं लोकलाज किन जाइ।
कुंजबिहारी कुंज मैं कहूँ मिलैं मुसिकाइ ॥३१९॥
लखी अपूरब बाल मैं वाकी दसा बनाइ।
हियरैं है सुधि रावरी हियरो गयो हिराइ ॥३२०॥
सरद चंद की चाँदनी जारि डार किन मोहिं।
वा मुख की मुसिक्यानि सी क्योंहूँ कहौं न तोहिं ॥३२१॥
मोहिं रसाल की मंजरी क्यौं न करी करतार।
सुंदर स्रौन समीप जौ राखै नंदकुमार ॥३२२॥
बिकल लाल को बाल हूँ क्यों न बिलोकति आनि।
बोलि कोकिलनि सौं कहै बोल तिहारे जानि ॥३२३॥
सुजस ओज सौं साहसुत सिवा सूर सिरदार।
सरद चंद आतप कियो सुचि आतप इकबार ॥३२४॥
पिसुन बचन सज्जन चितै सकै न फोरि न फारि।
कहा करे लगि तोय मैं तुपक तीर तरवारि ॥३२५॥
निहचैं नखत निहारियत नथुनी मुकत प्रकास।
कैसैं करि पावै कहौ नीचन नाक निवास ॥३२६॥
खेत तिहारो धान को यौं बूझति मुसिक्याइ।
यहौ हमारो पिय[1] कहौ सघन ज्वारि दरसाइ ॥३२७॥

---

१ है।

[३१७] रस, रति (रत्ना)।

[३२०] बाल, लाल (रत्ना)।

[३२३] बाल हूँ; हाल तूँ (रत्ना)।

[३२४] 'सुचि...बार' तक 'रत्ना' में नहीं है।

[३२७] पिय; है (रत्ना)।

राखै भरि दुपहर सखी सघन छाँह मैं गोइ।
सहै घाम कौ क्वार को ज्वार खेत जुन होइ ॥३२८॥
भौंह कमान कटाच्छ सर समरभूमि बिचलै न।
लाज तजेहूँ दुहुँन के सजल[1] सुभट[2] से नैन ॥३२९॥
अरुन बसन सिकरी पहरि पावस मैं छबिखानि।
इंद्र गोप सी गोपिका गोप इंदु लखि आनि ॥३३०॥
अति सुढार अति हीं बड़े पानिप भरे अनूप।
नाक मुकत नैनानि सौं होड़ परी यह रूप ॥३३१॥
कियो और को सब कछू मान आपनो लेइ।
क्यों न लहै संताप जो भार आप सिर देइ ॥३३२॥
लीने तो अँखियानि उन औ मुसिक्यानि रसाल।
तुहूँ लाल लोचननि को लेहि लालसा बाल ॥३३३॥
सखी तिहारे दृगनि की मधुर[3] मंद मुसिक्यानि।
बसति रहै निसि द्योस हूँ अब उनकी अँखियानि ॥३३४॥
रूप सदन सिति तन बसन रदन रुचिर रुचि होति।
दामिनि मैं बिधु बिंब जनु बिधु मैं दामिनि जोति ॥३३५॥
मो जीवन तूँ कहतु है ब्रज जीवन तूँ पीउ।
जुपै जीय बिन जियत तौ धिग जीवन यह जीउ ॥३३६॥
प्रान निवासी तोहि तजि कब को कियो उजार।
तू अजहूँ लौं बसतु है प्रान कहा सुबिचार ॥३३७॥
तुरत डीठि लगि आइगी हौं बिलखी अति आनि।
अनखन दैकै कीजियै अनखन भरि अँखियानि ॥३३८॥

---

१ सलज। २ सूर। ३ सुधा।

[३२९] सजल; सलज (रत्ना)।
[३३१] यह; इहिं (रत्ना)।
[३३२] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।
[३३५] बसन; बदन (रत्ना)।
[३३६] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।
[३३८] डीठि, दीठि (रत्ना)।

बिषमय किधौं पियूषमय तेरी मृदु मुसिक्यानि।
यहै मूरछित करति है यहै जिवावति आनि ॥३३९॥
निज पग सेवक समुझि करि करि उर तैं रिस दूरि।
तेरी मृदु मुसिक्यानि है मेरी जीवन मूरि ॥३४०॥
लाल अमोलक लालची करत कोटि मनुहारि।
मंदिर आवत इंदिरा दै न किवार गँवारि ॥३४१॥
तरु ह्वै रह्यो करार को अब करि कहा करार।
उर धरि नंदकुमार कौ चरन कमल सुकुमार ॥३४२॥
अरुन बरन बरनिन परै अमल अधर दल माँझ।
कैधौं फूली दुपहरी कैधौं फूली साँझ ॥३४३॥
बालबदन प्रतिबिंब बिधु बिंब रह्यो[1] तिहिं संग।
ज्यौ रहत अब रैनि दिन तपन तपावत अंग ॥३४४॥
प्रगट दरप कंदरप[2] कौ तेरो अंग अनूप।
सुतौ लियौ नँदनंद[3] जित सुंदर स्याम सरूप ॥३४५॥
रोमावली कृपान सौं मारयो सिवहिं मनोज।
ताके भए स्वरूप द्वै सोहत बाल उरोज ॥३४६॥
कुंद न पावत रदन रुचि कुंदन अंग प्रकास।
चंद न पावत बदन छबि चंदन अंग सुबास ॥३४७॥
रूपरासि यह लच्छ की तुला चढ़ी वह बाल।
तऊ न पावति रावरौ मिलन अमोलिक लाल ॥३४८॥
ललित मंद कलहंस गति मधुर मंद मुसिक्याति।
चली सारदा बिसद रुचि सरद चाँदनी राति ॥३४९॥
मैं जानी ही मिलन तैं मिटिहै तन संताप।
अब सजनी दूनो चढ़यो हतक मनोजहिं दाप ॥३५०॥
साँच मदनजित आजु तुम रंजन रसिक रसाल।
अनलज्वाल दृग देखियत लाल लाल रुचि भाल ॥३५१॥

---

१ ज्यो रह्यो तिहि। २ कंदर्प। ३ नँदलाल।

[३४३] बरनिन परै, बरनीन पर (रत्ना)।
[३४४] बिंब; ज्यो (रत्ना)। रैनि; रजनि (रत्ना)।
[३४५] नँदनंद; नँदलाल (रत्ना)।

पाइनि प्रेम जनाइ जिन परियै नंदकुमार ।
अनलज्वाल पग लगति है जावक लीक लिलार ॥३५२॥
रोसभरी अँखियानि लखि लोगनि मे अनखाइ ।
हँसि इकंत लपटाइकै एक रूप ह्वै जाइ ॥३५३॥
प्रीति द्वैज द्विजराज की कला कलप करि मित्र ।
जगत लोकबंदित उदित बढ़त मित्र जो मित्र ॥३५४॥
अँखियनि उमँग अनंग की छुवत अंग अनखाइ ।
प्रीतम तन तावति तरुनि लाइ लगनि की लाइ ॥३५५॥
दिन दिन दुगुन बढ़ै न क्यौं लगनि अगिनि की झार ।
उनै उनै दृग दुहुनि के बरसत नेह अपार ॥३५६॥
लिखत बाल नख भूमि तन लखत लाल मुसिक्यानि ।
लाज छुटी निसि जानियति लाज भरी अँखियानि ॥३५७॥
चंचल निसि उदबसि रहौ करनि प्रात बलि राज ।
अरबिंदनि पै इंदिरा सुंदर नैननि लाज ॥३५८॥
बढ़त बढ़त बढ़ि जाइ पुनि घटत घटत घटि जाइ ।
नाह रावरे नेहबिधु मंडल जिलौ बनाइ ॥३५९॥
तलफत घाइनि जीव कौ कौन जियावत आनि ।
जो न होति उन दृगनि मैं सुधा मधुर मुसिकानि ॥३६०॥
सोइ संग सुख जागि दुख लहि समुझौ निरधार ।
छीन पुन्य सुरलोक तैं लेत अवनि अवतार ॥३६१॥
तनु आगैं को चलतु है मन वाही मग लीन ।
सलिलसोत मैं ज्यौं चपल चलत चढ़ाऊ मीन ॥३६२॥
प्रतिबिंबित तो बिंब मैं भूतल भयो कलंक ।
निज निरमलता दोष यह मन मैं मानि मयंक ॥३६३॥

---

[३५२] जिन; जिनि (रत्ना) ।
[३५४] जो; सौं (रत्ना) ।
[३५५] लगनि; अगन (रत्ना) ।
[३५६] नेह; मेंह (रत्ना) ।
[३५८] प्रात, प्राक (रत्ना) ।

तिहिँ पुरान नव द्वै पढ़े जिहिँ जानी यह बात ।
जो पुरान सो नव सदा नव पुरान ह्वै जात ॥३६४॥
सपने मेँ सपनो समुझि होत दूरि ज्योँ संक ।
संक छोड़ि संसार की रही जानि निरसंक ॥३६५॥
तियहिय आनँद बढ़त हूँ पर न प्रानपिय पेखि ।
बिन देखत को दुख परै दीन दृगनि मेँ देखि ॥३६६॥
लिखति अवनितल चरन से बिहसत बिमल कपोल ।
अधनिकरे मुखइंदु तेँ अमृतबिंदु ते बोल ॥३६७॥
उमगी उर आनंद की लहरि छहरि दृग राह ।
बूड़ी लाजजहाज लौँ नेहनीरनिधि माह ॥३६८॥
हौँ मनमोहन के लखति हौँ न आपुनी बाउ ।
करत नैन नँदलाल के हँसत हेरि उर गाउ ॥३६९॥
बसत रहत *मतिराम* निसि द्यौस काम अभिराम ।
इंदीबर छबि दृगनि मेँ इंदीबर छबि स्याम ॥३७०॥
ज्वलित ज्वाल सी जोन्ह इह डारति अंग उलीचि ।
भई पियूष मरीचि की मोकौँ मरिचि मरीचि ॥३७१॥
लोक प्रसून पराग तेँ लखत पिंजरनि भृंग ।
भए चँबेली के बिरह पीत रंग सब अंग ॥३७२॥
मानत लाज लगाम नहिँ नेक न गहत मरोर ।
होत लाल लखि बाल के दृगतुरंग मुँहजोर ॥३७३॥
सघन स्याम कादंबिनी राख्यो रोकि अकास ।
अति संकट पावत नहीँ जिय हिय मेँ अवकास ॥३७४॥
हिये बसत मुख हसत हौ हमको करत निहाल ।
घट घट व्यापी ब्रह्म तुम प्रगट भए नँदलाल ॥३७५॥
बरनत साँच असंग कै तुमकौँ बेद गुपाल ।
हिये हमारे बसत हौ पीर न पावत लाल ॥३७६॥

[३६६] यह छंद 'रत्ना' मेँ नहीँ है ।
[३६७] बिमल, अमल (रत्ना) ।
[३६९] यह छंद 'रत्ना' मेँ नहीँ है ।
[३७२] इस छंद का दूसरा चरण 'रत्ना' मेँ नहीँ है ।
[३७६] कै, कहि (रत्ना) । बेद; देगि (रत्ना) ।

चढ़े उरोज पहार ये उर उनके अठिलाहिं ।
तो तन नित लाली चढ़ै ललित लाल पियराहिं ॥३७७॥
कुच कठोर पाषान तें क्यों न करैं उर पीर ।
बड़े नरम जग नैन कत होत विषम विष तीर ॥३७८॥
सखी तिहारो साँच यह दीपसिखो सी देह ।
दिन दीपति पियराति है अधिक राति रति नेह ॥३७९॥
दरपन मैं निज रूप लखि नैननि मोद उमंग ।
तियमुख पिय मसकरन कौं बढ़्यो गरब को रंग ॥३८०॥
निज पाइनि चलि आइकै तो घर बाइनि देइ ।
जाति बाल निज गेह कौं उर उछाह दृग सेइ ॥३८१॥
तो तन सुबरन बरन है कुटिल स्याम मन माँह ।
सखि सनेह कैसैं रहै छुवन न पैयत छाँह ॥३८२॥
तियहिय मैं पिय इंदुमुख निसि दिन करत प्रकास ।
सीखो सखिनि की छाँह लौं नेक न पावति बास ॥३८३॥
नेक ओट करि गिरि धरौ लसत सकंप गुबिंदु ।
ब्रज बोरत अब इंद्र लौं यह तेरो मुखइंदु ॥३८४॥
करबर पर गिरिबर धरै ललित लाल ललचाइ ।
जाके चितवन चखनि कुच सो सकुचति मुसिक्याइ ॥३८५॥
हारे बरषत बारि अरु तन दीपति अभिराम ।
निदरे सब घनस्याम तूँ भाँति भाँति घनस्याम ॥३८६॥
छाती कुच कुंकुमनि को छाप करी जिहिं बाल ।
ताको डर मन मैं नहीं मिलत मोहिं नँदलाल ॥३८७॥
नैन मीन वह बाल के लाजजाल परि आनि ।
पियत रहत तो बदन की सुधा मधुर मुसिक्यानि ॥३८८॥

---

[३७७] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है ।

[३७९] दीपसिखो; दीपसिखा (रत्ना) ।

[३८१] इस छंद का दूसरा चरण 'रत्ना' में नहीं है ।

[३८६] हारे···अरु, के पश्चात् 'रत्ना' में नहीं है ।

[३८८] वह, उहिं (रत्ना) । तो; सो (रत्ना) ।

मेरे दृग बारिद वृथा बरषत बारि प्रबाह ।
उठत न अंकुर नेह को तो उर ऊसर माँह ॥३८९॥
राधा चरन सरोज नख इंदु किये ब्रजचंद ।
मोर मुकुट चंद्रकनि तूँ चख चकोर आनंद ॥३९०॥
सुखद साधुजन को सदा गजमुख दानि उदार ।
सेवनीय सब जगत को जग मा बाप कुमार ॥३९१॥
मदरव[1] मत्त मिलिंद गन गान मुदित गननाथ ।
सुमिरत कबि *मतिराम* के सिद्धिरिद्धिनिधि हाथ ॥३९२॥
अंग ललित सित रंग पट अंगराग अवतंस ।
हंसबाहिनी कीजियै बाहन मेरो हंस ॥३९३॥
नृपति नैन कमलनि वृथा चितवत बासर जाहिं ।
हृदय कमल मैं हेरि लै कमलमुखी कमलाहिं ॥३९४॥
ब्रज ठकुराइनि राधिका ठाकुर किये प्रकास ।
ते मन मोहन हरि भए अब दासी के दास ॥३९५॥
पियत अधर यौं देति है कर कमलनि की मारु ।
लगति स्वादु के सिंधु मैं मिरचि किरच लौं चारु ॥३९६॥
पियत अधर तूँ देति है कर कमलनि की मारु ।
होत पंच अँगुरी लगैं सबल पंचसर मारु ॥३९७॥
करति केलि अति प्रेम सौं पगे प्रेम मद नैन ।
अंबर मैं चंचल लसैं खंजरीट से नैन ॥३९८॥
प्राननाथ परदेस कौं चलियै समै बिचारि ।
स्याम नैन घन बाल के बरसन लागे बारि ॥३९९॥
सरद चाँदनी मैं बिकच बिमल मालती कुंज ।
जगत जोतिमय मैन के मनो सुजस के पुंज ॥४००॥

---

१ मदरस ।

[३८९] 'राधा...नख' के पश्चात् 'रत्ना' में नहीं है ।
[३९१] जग मा बाप कुमार, जगमाया सुकुमार (रत्ना) ।
[३९२] मदरव; मदरस (रत्ना) ।

कोमल कमलनि सों कहूँ तिन्हूँ न नेक सयान ।
होत पार लागत हियैं नैन मैन के बान ॥४०१॥
ओठ खंडिबे को अरथो मुख सुवास रस रत्त ।
स्याम रूप नँदलाल अति नहिं अलि अलि उनमत्त ॥४०२॥
मूढ़[1] इंदु अरबिंदु में कहत सुधा मधु[2] बास ।
तो मुख मंजुल अधर में तिनको प्रगट प्रकास ॥४०३॥
औरै कछु चितवनि चलनि औरै मृदु मुसकानि ।
औरै कछु सुख देत हैं सकै न बैन बखानि ॥४०४॥
जो निसि दिन सेवन करै अरु जौ करै बिरोध ।
तिन्हैं परमपद देत प्रभु कहौ कौन यह बोध ॥४०५॥
लखो लाल तुमकों लखै[3] ये[4] बिलास सरसात ।
बिहसत ललित कपोल हैं मधुर नैन मुसिक्यात ॥४०६॥
पगी प्रेम नँदलाल के हमैं न भावत जोग ।
मधुप राजपद पाइकै भीख न माँगत लोग ॥४०७॥
मधुप त्रिभंगी हम तजी प्रगट परम करि प्रीति ।
प्रगट करी सब जगत में कटु कुटिलनि की रीति ॥४०८॥
हरिमुख लखि लोचन सखी सुख में करति बिनोद ।
प्रगट करत कुबलयनि कौ चंद्रोदय तें मोद ॥४०९॥
बिषयनि तें निरबेदबर ग्यान जोग ब्रत नेम ।
बिफल जानियों ये बिना प्रभु पग पंकज प्रेम ॥४१०॥
देखत दीपति दीप की देत प्रान अरु देह ।
राजत एक पतंग में बिना कपट को नेह ॥४११॥
ललित राग रंजित हियो नायक जोति बिसाल ।
बाल तिहारे कुचनि बिच लसत अमोलिक लाल ॥४१२॥

---

१ झूँठ । २ मृदु । ३ लखत । ४ यों ।

[४०१] लागत; लागैं (रत्ना) ।
[४०२] अति; अलि (रत्ना) ।
[४०६] ये; यौं (रत्ना) ।
[४१०] बर, अरु (रत्ना) । पग; पद (रत्ना) ।

कहा भयो जग मैं बिदित भए उदित छबि लाल ।
तो ओठनि की रुचिर रुचि पावत नहीं प्रबाल ॥४१३॥
प्रगट कुटिलता जो करी हम पर स्याम सरोस ।
मधुप जोग बिष उगिलियै कछु न तिहारो दोस ॥४१४॥
हसत बाल के बदन मैं यौं छबि कछू अतूल ।
फूली चंपक बेलि तैं झरत चमेली फूल ॥४१५॥
भयो सिंधु ते बिधु सुकबि बरनत सुमति[1] बिचार ।
उपज्यौ तो मुख इंदु तैं प्रेमपयोधि अपार ॥४१६॥
पियत रहत पिय नैन यह तेरी मृदु मुसिक्यानि ।
तऊ न होत मयंकमुखि तनक प्यास की हानि ॥४१७॥
पियनैननि के राग कौं भूषन सजे बनाइ ।
निरखि[2] तिहारी छबि सुतौ सौति दृगनि सरसाइ ॥४१८॥
उदै भयो है जलद तूँ जग कौ जीवनदान ।
मेरो जीवन हरतु है कौन बैर मन मान ॥४१९॥
बिरह आँच[3] मन उड़ि[4] सखो घन सुंदर तन जाइ ।
दुगुन दाह बाढ़ै तहाँ आपुहि जात बिलाइ[5] ॥४२०॥
जिनमैं[6] अतुल बिलोकियै पानिप पारावार ।
उमड़ि चलत नित दृगनिभरि तो मुख रूप अपार ॥४२१॥
मन जद्यपि अनुरूप है तऊ न छूटति संक ।
टूटि परै जिन भार तैं निपट पातरी लंक ॥४२२॥
जुपै सखी ब्रज गाँउ मैं घर घर सहज[7] चवाउ ।
तौ हरिमुख लखि देति किन नैननि चकोरनि चाउ ॥४२३॥
कनकबेलि मैं कोकनद तामैं स्याम सरोज ।
तिनमैं मृदु मुसिक्यानि है तामैं मुदित मनोज ॥४२४॥

---

१ विना । २ लखें । ३ ताप । ४ डरि । ५ सिराइ । ६ के । ७ चलत ।

[४१६] सुमति; बिना (रत्ना) ।

[४१९] मान, आनि (रत्ना) ।

[४२०] उड़ि, डरि (रत्ना) ।

[४२१] जिनमैं; जिनकौं (रत्ना) । नित; तिन (रत्ना) ।

मो मन मेरी बुद्धि लै करि हरि को अनुकूल।
लै त्रिलोक की साहिबी दै धतूर को[1] फूल ॥४२५॥
फिरिफिरिआवति जानिचलि[2] अँगरानी[3] मुसिक्याति।
बाल लाल कौ ललित मुख लखि लजाति ललचाति॥४२६॥
तो मुखछबि सौं हारि जग भयो कलंक समेत।
सरस इंदु अरबिंदमुखि अरबिंदनि दुख देत ॥४२७॥
मधुप मोह मोहन तज्यो यह स्यामनि की रीति।
करो आपने काज को तुम्हैं जाति[4] सी प्रीति ॥४२८॥
गंग नीर बिधु रुचि झलक कछु[5] मुसिक्यानि उदोति।
कनक भौन के दीप लौं जगमगाति तनजोति ॥४२९॥
खलबचनन की मधुरई[6] चाखि साँप निज स्रौन।
रोम रोम पुलकित भए कहत मोद गहि मौन ॥४३०॥
मेरी सिख[7] सीखे[8] न सखि मोसौं उठै रिसाइ।
सोयो चाहति नींद भरि अंग[9] अँगार बिछाइ ॥४३१॥
हरि की सुधि कौं राधिका चली अकेली भौन।
हँसत बीच ही मिलि गए बरनि सकै सुख कौन ॥४३२॥
मंत्रिन के बस जो नृपति सो न लहतु सुख साज।
मनहिं बाँधि दृग देत दृग[10] मन कुमार[11] को राज ॥४३३॥
दधि छिनाइ[12] मोहन लियो सखी सघन बन ठौर।
बड़ो लाभ मन मैं गनौं जो न कियो कछु और ॥४३४॥

१ के। २ भजि। ३ राति मधुर। ४ भाँति। ५ मृदु। ६ मधुरता। ७ सीख। ८ सिखै। ९ सेज। १० है। ११ मनहु मार। १२ छुड़ाइ।

[४२६] चलि; भजि (रत्ना)।

[४२८] की, कै (रत्ना)। को; लौं (रत्ना)। जाति; भाँति (रत्ना)। सी; सौं (रत्ना)।

[४२९] कछु; मुह (रत्ना)।

[४३०] मधुरई; मधुरता (रत्ना)। मोद; मोष (रत्ना)।

[४३१] अंग, सेज (रत्ना)।

[४३२] अकेली; अली के (रत्ना)।

[४३३] देत दृग; देत हैं (रत्ना)।

कहा भयो तजि जात है मलिन मधुप दुख मानि।
सुबरन बरन सुबास जुत चंपक लहै न हानि ॥४३५॥
देह दीप दीपति दिपै बदन चंद की ज्योति।
दामिनिदुति मुसिक्यानि मृदु सुख की खानि उदोति ॥४३६॥
मुकुतहार हरि के हियैं मरकत मनिमय होति।
पुनि पावत रुचि राधिका मुख मुसक्यानि उदोति ॥४३७॥
बदन चंद की चाँदनी देह दीप की जोति।
राति बितैं हूँ लाल वह भौन राति सी होति ॥४३८॥
लाल चित्र अनुराग सौं रँगति निच सब अंग।
तऊ न छाड़त साँवरो रूप साँवरो रंग ॥४३९॥
आई फूलनि लैन कौं चलौ बाग मैं लाल।
मृदु बोलनि सौं जानिहौ मृदु बेलिन मे बाल ॥४४०॥
ग्वालिनि देउ बताइ हौं मोहिं कछू तुम देहु।
बंसीबट की छाँह मैं लाल जाइ लखि लेहु ॥४४१॥
सरद चंद की चाँदिनी को कहिये प्रतिकूल।
सरद चंद की चाँदनी कोक हिये प्रतिकूल ॥४४२॥
को हरिबाहन जलधिसुत को को[1] ज्ञानजहाज।
तहाँ चतुर उत्तर दियो एक बचन द्विजराज ॥४४३॥
भोर भए आए भवन स्याम बसनजुत स्याम।
हँसि अंबर केसरि रँग्यो आगे राख्यो बाम ॥४४४॥
यौं न प्यार बिसराइयै लियो मोहिं तू मोल।
मुख बिलोकि[2] नँदलाल कौ कहै सखी सौं बोल ॥४४५॥

---

१ है। २ निरखत।

[४३५] मलिन मधुप; मधुप मलिन (रत्ना)।
[४३८] वह; इहिँ (रत्ना)।
[४३९] चित्र; बाल (रत्ना)। निच, रोम (रत्ना)। छाड़त; छोड़त (रत्ना)। साँवरो; रावरो (रत्ना)।
[४४१] लाल जाइ, जाइ लाल (रत्ना)।
[४४३] को को, को है (रत्ना)।

लखत लाल मुख पाइहौ बरनि सकै नहिं बैन।
लसत बदन सतपत्र सौं सहसपत्र से नैन ॥४४६॥
उड़ि गुलाल पिय करनि तें लगत प्रिया - मुख - चंद।
मनो कोकनद रजनिकर करत रजनिकर मंद ॥४४७॥
सेत बसन की चाँदनी परत गुलाल सुरंग।
मानो सुरसरिता मिलति सुरसुति तरल तरंग ॥४४८॥
सित अंबरजुत तियनि में उड़ि उड़ि परत गुलाल।
पुंडरीक पटलनि मनो बिलसत आतप जाल ॥४४९॥
स्याम रूप अभिराम अति सकल बिमल गुनधाम।
तुम निसि दिन *मतिराम* की मति बिसरौ *मतिराम* ॥४५०॥
प्रेम लग्यो अंगार है सीता मन बिन श्रान।
देत अँगूठी राम को मानिक भो हनुमान ॥४५१॥
रहै और ही रूप है विषम बिरह दुख सानि।
डीठि परे हूँ परसपर नीठि परै पहिचानि ॥४५२॥
मोही को किन मार तूँ बिरह बिपति में गाड़ि।
जलजमुखी कों जलद जिन तड़ित चाबुकनि ताड़ि ॥४५३॥
अजहूँ प्रगटित होत है पुलक पटल ता माँह।
जौन अंग ढिग ह्वै कढ़त छुहौ छैल की छाँह ॥४५४॥
सिरिस कुसुम सम बाल के कुम्हिलाने सब गात।
करत प्रात अलसात अति सौति हियनि उतपात ॥४५५॥
प्रतिपालत सेवक सकल खलन दलमलत डाँटि।
संकर तुम सब साँकरे सबल साँकरैं काटि ॥४५६॥
सेवक सेवा के सुनैं सेवा देव अनेक।
दीनबंधु हरि जगत है दीनबंधु हर एक ॥४५७॥

---

[४५१] प्रेम… है के पश्चात् 'रत्ना' में नहीं है।
[४५२] डीठि; दीठि (रत्ना)।
[४५३] जलजमुखी; जलदमुखी (रत्ना)।
[४५४] छुहौ, छुवै (रत्ना)।
[४५७] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।

सघन तिमिर मैं तरुनि की जगमगाति तन जोति।
प्रेम हेम पावस कुहू निसा कसौटी होति ॥४५८॥
रूप बैस मदिरा मदन मदन मदरि से नैन।
प्रेम छके पिय छबि छके हटके नैन रहैं न ॥४५९॥
पिय मुख रुचि चारो चुगैं करत परस्पर चैन।
मदन मदर से बाल के बदन मदरि से नैन ॥४६०॥
बदन इंदु अरबिंदु सौं सुधा मधुर मधु बैन।
मेरे होत चकोर से चंचरीक से नैन ॥४६१॥
बरनत भौंह कमान जुत बरनत बैन बनै न।
सरल सरल सत मदन के तरल तरलतर बैन ॥४६२॥
तेरी मूरति जुत लिखी निज सूरति लखि बाल।
धनि मानति मनभाँवती निज तनु तैं नँदलाल ॥४६३॥
तची न तो औगुननि सौं रची न तो अनुराग।
ब्रज मैं देहु बताइकै ऐसी लिया सभाग ॥४६४॥
बिहसि बढ़ायो लाल तुम तिय हिय मैं अनुराग।
बिफल क्यौं न दुख देत ज्यौं आप लगायो बाग ॥४६५॥
निसा समैं अरबिंद रुचि द्यौस इंदु की ज्योति।
बालबदन छबि तो बिरह लाल कहा धौं होति ॥४६६॥
चली सहेटनिकुंज कौं धरि सित भूषन चीर।
जोन्ह बीच अंबुजमुखी भई कंबु को छीर ॥४६७॥
मेरे मन तो बसति है नैन कियो अपराध।
तुम्हैं दोस को देतु है है यह काम असाध ॥४६८॥
जमुनातट वा कुंज मैं तुम जु दई ही माल।
निकसति जीवहि बाँधिकै तासौं राखति बाल ॥४६९॥
जिन चलाइयै चलन की चरचा स्याम सुजान।
हौं देखित हौं, वाहि यहिँ बात सुनत बिन प्रान ॥४७०॥

---

[४५९] रूप···मदन, के पश्चात् 'रत्ना' मैं नहीं है।
[४६०] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।
[४६१] मदन, बदन (रत्ना)।
[४६२] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।
[४६८] यह छद 'रत्ना' में नहीं है।

नैननि को आनंद है जिय को जीवनि जानि ।
प्रगट दरप कंदरप को तेरी मृदु मुसिक्यानि ॥४७१॥
कहा करौं परबस भई लखि मुख रूप रसाल ।
बेची मैं नँदलाल है लीनी मैं नँदलाल ॥४७२॥
निठुराई नहिं निठुर पै कहति साँच कित बात ।
लगे कंटकित कुचनि मैं भए कंटकित गात ॥४७३॥
कहा भयो सो तूँ भट्ट गुनगनमय सब देह ।
जोबनवारी तो सफल जो बनवारी नेह ॥४७४॥
मुकतमाल मंडित लसै बाल उरोज उतंग ।
नखतपाँति सोभित मनो बिबि सुमेरु के शृंग ॥४७५॥
दीपज्योति के जाल से जगमगाति अति अंग ।
मानस मानस के चपल उडि उडि परैं पतंग ॥४७६॥
निंदति अति अभिराम तौ इंदीबरनि अनूप ।
झलकनि तो अँखियानि मैं अति घनस्याम स्वरूप ॥४७७॥
लसत सुरत श्रम सलिल कन ललित बाल नँदलाल ।
फली मनो मुकता फलनि कंचन बेलि तमाल ॥४७८॥
बिहसत नील दुकूल मैं लसत बदन अरबिंदु ।
झलकत जमुना रूप मैं मानो पूरन इंदु ॥४७९॥
जरतारी सारी हके नैन लसति *मतिराम* ।
मनो कनक पंजर परे खंजरीट अभिराम ॥४८०॥
कान्ह-करज-छत देत यौं सोहत बाल उरोज ।
सरसरोज सौं संभु कौं मारत मनो मनोज ॥४८१॥
स्याम नैन प्रतिबिंब जुत तिय के उरज उतंग ।
मनो मनोज सरोज सर लगे ईस के अंग ॥४८२॥
रचे बिरंचि बनाइकै तेरे ईस उरोज ।
तिनके पूजन कौं किये हरि के हाथ सरोज ॥४८३॥

---

[४७२] मैं नँदलाल; मैन दलाल (रत्ना) ।
[४७३] निठुराई; निठुर गई (रत्ना) ।
[४७४] सो; जौ (रत्ना) ।
[४७९] नील दुकूल, नींद दुहून (रत्ना) ।

बदन इंदु तेरो अली दृग अरबिंदु अनूप।
तिनमें निसि बासर सदा बसत इंदिरा रूप ॥४८४॥
तो मुख मंजुल हास मृदु मदन मोद कौ मूर।
पिय नैननि सीतल करत ह्वै कपूर को चूर ॥४८५॥
तेरे आनन चंद को मधुर मंद मृदु हास।
मेरो जानि मनोज को कीरति-पुंज-प्रकास ॥४८६॥
रची बिरंचि बनाइ तूँ सुबरनमय बर बाल।
बढ़ै जोति जौ तो मिलै इंदु नील रुचि लाल ॥४८७॥
बिमल बाम के बदन मैं राजत ओठ रसाल।
मनो सरद बिधु बिंब मैं लसत बिंबफल लाल ॥४८८॥
लसत मुकुत रुचि लाल की मेरे ओठनि सेइ।
अति अदभुत यह बात पुनि लाल मुकुत रुचि लेइ ॥४८९॥
अली तिहारे अधर मैं सुधाभोग को साज।
द्विजराजिनि जुत ज्योतिये लाल बदन दुजराज ॥४९०॥
दुहुँ दिसि सघन नितंब कुच खैंचत है निधि सार।
छीजै क्यौं न मयंकमुखि ललित लंक सुकुमार ॥४९१॥
क्यौं न लहै सुख भोग कौं ललित बाल के साथ।
नीबी नीबी मदन को परी नाह के हाथ ॥४९२॥
कर सरोज सौं गहि रही पिय कर गहत उरोज।
लाज प्रबल मन मैं भई मन मैं सबल मनोज ॥४९३॥
बैठि रहै रोवै हँसै आतुर उतरि उताल।
प्रथम सुरति बिपरीति की रीति न जानति बाल ॥४९४॥
थकी सुरत बिपरीत मैं लियो बिजन कर बाल।
लोचन रही छपाइकै लख्यो हँसत मुख लाल ॥४९५॥

---

[४८६] मेरो जानि, मेरे जान (रत्ना)।
[४८७] बढ़ै, बढ़ै (रत्ना)।
[४८९] मुकुत; मुकुट (रत्ना)।
[४९०] दुजराज, द्विजराज (रत्ना)।
[४९३] रही; गही (रत्ना)।

भोर होत पिय को लख्यो छोड़्यो चहत समीप।
बिघुमुख लोचन कमल से तनु दीपति तनु दीप ॥४९६॥
परै न धुनि सुनि सखिन कों लाजनि होति अधीर।
कर कमलनि सों गहि रहै सुरत मुखर मंजीर ॥४९७॥
बाल सुरत रस रीति मैं गही लाज अरु मैन।
करनि बिरल अँगुरीनि करि मूंदति नायक नैन ॥४९८॥
लाज मैन दुहुँ बिच परी सुरत समैं मुसिक्याइ।
कमल चलावै करनि गहि दीप समीप बचाइ ॥४९९॥
रति बिपरीति प्रस्वेदकन पिय कों सींचति बाम।
मनो प्रौढ़ पुन्नाग के मुकुलनि पूजति काम ॥५००॥
राजत अरुन सरोज हैं मानहु रंगे कुसुंभ।
जोबन मद गज कुंभ के सातकुंभ से कुंभ ॥५०१॥
ऊँची स्वासनि सों प्रिया सुरत अंत मुसिक्याइ।
पुनि पीतम के मैन की दीनी आगि जगाइ ॥५०२॥
मनो मैन के निधि कलस तेरे तरुनि उरोज।
चाहत जे तिय पै इन्हें बाननि हनत मनोज ॥५०३॥
पल्लव पग कर अधर हैं फल उरोज नख फूल।
भौंर भौंर बर बार हैं बाल बेलि के तूल ॥५०४॥
नखगाँसी सर आँगुरी कर पग चारु तुनीर।
दसौं दिसनि जिन बर जिते पवर पंचसर बीर ॥५०५॥
ज्वालजाल बिज्जुलिछटा घटा धूम अनुहारि।
बिरहिनि जारनि को मनो लाई मदन दँवारि ॥५०६॥
बलय पीठि तरिवनि भुजनि उर कुच कुंकुम छाप।
जितै जाहु मनभाँवते जितै बिकाने आप ॥५०७॥
इन झूठी सौंहनि कियैं नहिं ह्वैहौ अकलंक।
कियो अधर-अंजन-प्रभा बदनचंद सकलंक ॥५०८॥

---

[४९६] कमल; कुमुद (रत्ना)।
[५०३] इस छंद का दूसरा चरण 'रत्ना' में नहीं है।
[५०५] पवर; प्रबर (रत्ना)।

बैठ्यो आननकमल के अरुन अधरदल आइ।
काटत चाहत भाँवते दीजो भौंर उड़ाइ ॥५०९॥

चित्रन इत उत चटपटे कहत लटपटे बात।
× × × × ॥५१०॥

जावक दीयो पगनि में जुवती जाति सिँगार।
पुरुष प्रानप्रिय जानियत मंडन करयो लिलार ॥५११॥

भली लगै मनभाँवते करी आभरन आप।
काम निसेनी सी बनी यह बेनी की छाप ॥५१२॥

अजौं उड़ावत हौ नहीं पीर न होत सभाग।
ठौर ठौर या भौंर के दसैं अधरदल दाग ॥५१३॥

झीने झगा बिलोकियत नख-छत-छबि घर नाह।
भले बिराजत ये नए चंद्रहार हिय माह ॥५१४॥

ललित तिहारे गुननि सौं अति सनेह सरसाइ।
काम ओज वाके हिये दीनो दीप जगाइ ॥५१५॥

अतनु तेज तलफ सुतनु तनु जीवन ज्यौं मीन।
नंदलाल वह ह्वै रही चंदकला सम छीन ॥५१६॥

कहा कहौं वाकी दसा सुनो साँवरे बात।
देखे बिन कैसे जियै देखत दृग न अघात ॥५१७॥

धरै कौन बिधि धीर वह सुनो धीर बलबीर।
काम तीर की भीर भरि हियरो भरयो तुनीर ॥५१८॥

वाके हिय के हनन कौं भयो पचसर बीर।
लाल तुम्हैं बसकरन कौं रहै न तरकस तीर ॥५१९॥

बचन कहत आवत न बनि ,चलौ लखौ बलि आपु।
प्रबल अनंग प्रताप सौं अंग अंग सतापु ॥५२०॥

सखिन करति उपचार अति परति बिपति उत रोज।
झुरसत ओज मनोज के परसि उरोज सरोज ॥५२१॥

---

[५१०] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।
[५११] जाति; जानि (रत्ना)। जानियत, बानिइहि (रत्ना)।
[५१३] दसैं; डसे (रत्ना)।

जागत ओज मनोज के परसि प्रिया के गात।
पापर होत पुरैनि के चंदन पंकिल पात ॥५२२॥
घन सुंदर तो छबिघटा उनै रही मन छाइ।
लाज चंचला लौं चमकि चंचल जानि बिलाइ ॥५२३॥
सुंदरि नगर अनंग को तेरो अंग अनूप।
सोभित सुबरन बरन मैं उरज गुरज के रूप ॥५२४॥
तुम लाइक हम हैं कहाँ तुम हम तें कमनीय।
मो मन तो तन मैं बसौ बसति पाइ रमनीय ॥५२५॥
रंध्रजाल[1] मग ह्वै कढ़त तियतन दीपतिपुंज।
झिझिया को[2] सो घट भयौ दिन ही मैं बन कुंज ॥५२६॥
सुनिसुनि गुन सब गोपिकनि समुझ्यो सरस सवाद।
कढ़ी अधर की माधुरी मुरली ह्वै करि नाद ॥५२७॥
अब फिरि आवत है नहीं मो तन जीवन हीन।
तो तन पानिप रूप मैं मो मन रूप बिलीन ॥५२८॥
भई देवता भाव वह[3] हौं[4] तुमकौं बलि जाउँ।
वाही को मुख रूप मन[5] वाही को मुख नाउँ ॥५२९॥
कहैं चोर के चोर सो बातैं भौंह चढ़ाइ।
लखैं परस्पर गोपिका आपुस मैं मुसिक्याइ ॥५३०॥
बिसर जात सब दुख सखी मन मैं आवत जाहि।
अवलोकन पैयत नहीं अवलोकनि सो ताहि ॥५३१॥
करियै संग सखीनि के कहौ कौन बिधि सैल।
अलि रोकत मग बास मैं छैल गाउँ मैं गैल ॥५३२॥

---

१ जालरंध्र। २ कैसो। ३ सब। ४ वह। ५ मन ध्यान है।

[५२४] अंग; रूप (रला)।

[५२६] कुंज, पुंज (रला)।

[५२७] गुन; गुनि (रला)। करि; कौ (रला)।

[५२८] मो मन; भौ मन (रला)।

[५२९] वह हौं, सब वह (रला)। मुख रूप मन; मन ध्यान है (रला)।

[५३२] बास मैं; बा समै (रला)।

सिला सघन घनस्याम उर तिय कुच सैल कठोर।
मुकुतहार चुरि जात हैं परिरंभन के जोर ॥५३३॥
लगी रहै हरि हिय इहै करि ईरखा बिसाल।
परिरंभन में बल्लवी भली दली बनमाल ॥५३४॥
अधम अजामिल आदि जे हाँ तिनको हौं राउ।
मोहू पर कीजै मया कान्ह दयादरियाउ ॥५३५॥
लसति दाँत की ज्योति यौं बालबदन मुसिक्यात।
अमल किंजलक झलक ज्यौं कमल प्रफुल्लित प्रात ॥५३६॥
मिलि बिसरे हो आपुकौ सुमिरत सुधि न सँभार।
किंकिन कौ उर हार करि करिहौ कहा बिहार ॥५३७॥
अधर रंग बेसरि मुकत मानिक बानिक लेत।
हँसत बदन दीपति बहुरि होति हीर छबि सेत ॥५३८॥
अनमिष नैन कहै न कछु समुझै सुनै न कान।
निरखे मोरपखानि के भई पखान समान ॥५३९॥
उठे अयात दुख दैन कौं तो कठोर कुच कुंभ।
निसिचर कुंभ निकुंभ ज्यौं दानव सुंभ निसुंभ ॥५४०॥
प्रतिबिंबित निज रूप लखि पिय के नैनन माँह।
मुख चुंबन को प्रेम सौं गह्यो कंठ दुहुँ बाँह ॥५४१॥
सकल कला कमनीय पिय मिलन मोद अधिकात।
बिलसति मालति मुकुल निसि निसिमुख मृदु मुसिक्यात ॥५४२॥
दरकत नहीं बियोग में लगे घनक घन घोर।
तेरे उरजनि मिलि भयो मेरो हियो कठोर।५४३॥
हरि रानिनि में राधिका जुवतिन बानी एक।
बर सुहाग अनुराग कौ कीनो बिमल बिबेक।५४४॥
राधा की बेनी लखी जो हरि गूँदी आप।
चित सुख सागर कौं भयो बड़वानल संताप ॥५४५॥
लसति लाल रुचि तरुनि के अमल कपोलन पीक।
रुचि रुचि परसत मुकुर में मनो अनल की लीक ॥५४६॥

---

[५३४] बल्लवी, बल्लगी (रत्ना)।
[५३५] हाँ; हौं (रत्ना)।

बाल लाल मुख सौति को सुन्यो नाम परकास।
बरषै बादर सेन पर उड़यो हंस सम हास ॥५४७॥
कहा रहे निहचिंत ह्वै लखौ लाल चलि आप।
प्रलय अनिल सम स्वास हैं प्रलय अनल सम ताप ॥५४८॥
चाहत फल तेरो मिलन निसि बासर वह बाल।
कुच सिव पूजति नैन जल बुंद मुकतमय माल ॥५४९॥
तरुनि अरुनि एड़ीनि के किरन समूह उदोति।
बेनी मंडन मुकुत के पुंज गुंज दुति होति ॥५५०॥
लाल बदन लखि बाल के कुचनि कंप रुचि होति।
चपल होत चकवा मनो चाहि चंद की जोति ॥५५१॥
गयो महाउर छूटि यह रह्यो सहज इक अंग।
फिरि फिरि झाँवति है कहा रुचिर चरन के अंग ॥५५२॥
लसत कोकनद करनि में यों मिहदी के दाग।
ओस बिंदु परि कै मिटयो मनो पल्लवनि राग ॥५५३॥
सुनि इत दै मन मानिनो बिन अपराध रिसानि।
नेह जनावन[1] कों महा दीपजोति उर आनि ॥५५४॥
सुनि मानिनि अपराध बिन कहा तजत दृग बारि।
निसि बासर यह भानियै डारै राग पखारि ॥५५५॥
बैठ्यो ओज जगाइकै मन सिंहासन माह।
मनो छपाकर छत्र छबि किरनै चाँवर चाह ॥५५६॥
हसनि जोन्ह तेरी लखैं सुनियै नंदकिसोर।
वाके नैननि होत हैं कुवलय किधौं चकोर ॥५५७॥
मंडित मृदु मुसक्यानि दुति देखत हरत कलेस।
ललित लाल तेरो बदन तिय लोचन तारेस ॥५५८॥
रह्यो हारि बिपरीति में पिय नैननि में आइ।
चंदमुखी सींचति मनो सुधा-कलस-कुच नाइ ॥५५९॥

---

१ जरावन।

[५५३] राग; लाग (रत्ना)।
[५५४] जनावन; जरावन (रत्ना)।
[५५५] भानियै; मानियै (रत्ना)।

सखी सबै सिंगार सुभ सजि सुंदरि के अंग।
केलि भौन पहुँचाइकै फिरी लाज के रंग ॥५६०॥
नीबी खोलनि कौ गही पिय अनुराग निखोटि।
हरष नयन जलमय बसन कियो लाज निज ओटि ॥५६१॥
आँसु छपा के हरष के सजनी भौंह चढ़ाइ।
कुच कंचुक रोमंच कौ क्यों न दुरायो जाइ ॥५६२॥
ह्वै छपाइ भूषननि सौं आप गात छपाइ।
भए चीन्ह उत छपारत ये नहिं जात छपाइ ॥५६३॥
रहत नहीं मो जीव यह चलत तिहारे संग।
याकौं नीकैं राखियो पिय बलाइ निज अंग ॥५६४॥
डीठि रूप श्रुति बचन तनु परस सुखद दिन राति।
जीभ अधररस नासिका मुख सुबास न अघाति ॥५६५॥
परसत तिय के करनि ते चल्यो पिघिल नवनीत।
चलनहार परदेस कौं कियो न पुनि मन मीत ॥५६६॥
कहा भयो जो सुरत मैं फूले रूख बिसाल।
कलकंठी सुख लहति है प्रफुलित पाइ रसाल ॥५६७॥
कलकंठी तो नाम हौ रही मौन सब काल।
पाइ प्रसाद रसाल कौ बोलन लगी रसाल ॥५६८॥
भौंर भाँवरे भरत हैं कोकिल कुल मँडरात।
या रसाल की मंजरी सौरभ सुभ सरसात ॥५६९॥
कासौं जाति बखानि है आँब कली रस मित्त।
बिसरायौ जिहिं जाति तैं चंचरीक कौ चित्त ॥५७०॥
लीनो रस कोकिल कुलनि आँब कली को झारि।
तासौं मन मान्यो मधुप सुमना सुमन बिसारि ॥५७१॥

[५६२] छपा के, छपाये (रत्ना)।
[५६३] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।
[५६५] डीठि, दीठि (रत्ना)।
[५७१] आँब कली, आम कलिन (रत्ना)। दूसरा चरण 'रत्ना' में नहीं है।

बहु नायक सौं बावरी मधुर बचन मुख बोलि।
उतरि जाइगो रूपमद कटुक बचन मुख बोलि ॥५७२॥
कियौ कंत चित चलन कौं तियहिय भयो बिषाद।
बोल्यो चरनायुध सुतौ भयो नखायुध नाद ॥५७३॥
फूल कपोल मधूक के अधर बिंब फल रत्त।
रस चाखत पिय बुद्धि बन क्यौं न होय उनमत्त ॥५७४॥
निरखि तरनिकर निकर कौ अरुन बरन आलोक।
होत प्रफुल्लित सोक तजि सकल कोकनद कोक ॥५७५॥
प्रिया अलोकनि मैं निरखि पीक अरुन बर जोति।
तन दीपति छिन दीप सब सब सौतिन ही होति ॥५७६॥
बसन हरयो पिय सुरत मैं तियतन जोति समीप।
केलिभौन मैं रातहू भए द्यौस के दीप ॥५७७॥
अटा ओर नंदलाल उत निरखी नेक निसंक।
चपला चपलाई तजी चंदा तजो कलंक ॥५७८॥
पियमुख पंकज मैं परे तिय - दृग - मधुप उड़ाइ।
अरुन भए रस पान बस राग पराग लगाइ ॥५७९॥
आनँद आँसुन सौं रहैं लोचन पूरि रसाल।
दीनी मानो लाज कौं जल अंजुलि बर बाल ॥५८०॥
बिरह अनल कुमुदिनि हियैं डारयो जोन्ह बुझाइ।
कुमुदिनि तैं मनो धूम छबि अलि कुल चले उड़ाइ ॥५८१॥
रति बिलास सुक सारिकनि कहै गुरुनि मैं प्रात।
लाज ललित गुन गौरि के दुरे गात मैं गात ॥५८२॥
परी बाल मुख चंद मे बिरह राहु की छाँह।
कै दृग दान छुड़ाइयै सुकृत हेतु करि नाँह ॥५८३॥
अति अवदात महा मिही कसी उरोज उतंग।
केसरि रँग रंगी लगै अँगिया अंगनि संग ॥५८४॥

---

[५७२] यह छंद 'रसा' में नहीं है।

[५७४] रस चाखत पिय, के पश्चात् 'रसा' में नहीं है।

[५८१] कुमुदिनि तैं मनौ; तिन तैं मोकौं (रसा)।

[५८३] कै; है (रसा)।

फूले नहीं; पलास ये बन में लगी दँवारि।
साँच कहति सजनीनि तौ सकै न नैननि जारि ॥५८५॥
उड़त भौंर ऊपर लसै पल्लव लाल रसाल।
मनो सधूम मनोज को ओज अनल की ज्वाल ॥५८६॥
बिकच अरुन मेचक बरन गुंजा बीज समान।
किंसुक मनो मनोज के कालकूट जुत बान।५८७॥
प्रथम कामिजन मननि कौं[1] रँगत सुरभि रितु राग।
करत अलंकृत[2] पल्लवनि पुनि पीछे बन बाग ॥५८८॥
देखि परे नहिं दूबरी सुनिये स्याम सुजान।
जानि परे परजंक में अंग आँच अनुमान ॥५८९॥
सपने हूँ चितवत नहीं और ओर बर बाल।
तूँ अपने अनुराग के रँग्यो रंग में लाल ॥५९०॥
कहा होति अति हीं निठुर तूँ न बिलोकति बाम।
तो सिंगार रस रंग में अंग रँगे निज स्याम ॥५९१॥
दिसिदिसि तुम्हैं बिलोकिवह बाल तजति अति सोक।
तो प्रतिबिंबित सहित सब भयो मुकुर नृप लोक ॥५९२॥
कीनो अति अनुराग सौं पीतम आधे रूप।
मनो लिये गुन गौरि तैं गुन गौरितैं अनूप ॥५९३॥
जे अंगनि पिय संग में बरखत हुते पियूष।
ते बीछू के डंक से भए मयंक मयूष ॥५९४॥
जाहि चाहि उद्दिम कियो गने न निसि मग डाभ।
कंत बिकान्यो अनत सो रह्यो अजस कौ लाभ।५९५॥
मनमोहन तो सकत क्यौं यौं अपराधनि ठानि।
जो न मनावन हेतु यह होति मधुर मुसिक्यानि ॥५९६॥

---

१ काम कामिजन मानिकों। २ मडत है नव।

[५८५] सजनीनि, सजनी न (रत्ना)।

[५८६] मनो, मनोज (रत्ना)।

[५९२] नृप, नर (रत्ना)।

[५९५] अनत, अंत (रत्ना)।

पियहि उठावति पगनि तैं क्यौं न कौन यह बान।
दुखसागर मैं बूड़िहै बाँधि गरे गुरु मान ॥५९७॥
जो सजनी गुनगननि बस अति सनेह रस मानि।
भयो दास तब सो लखै अब उदास अँखियानि ॥५९८॥
सुनि सजनी वह साँवरो धरि गुंजनि के हार।
राखतु है हिय आपुनो तो सनेह घनसार ॥५९९॥
अलि यह अनल अनंग को अंग अंग अधिकात।
क्यौं धौं चंचल प्रान ये पारद लौं न उड़ात ॥६००॥
कहा लियो गुरु मान को अति ताती है नेम।
पारद सो उड़ि जाइगो अलि चंचल यह प्रेम ॥६०१॥
जानति सौति अनीति है जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानति लाज है प्रीतम जानति प्रीति ॥६०२॥
लसत चारु तारनि सहित तिय लोचन कमनीय।
चढ़े खंजरीटनि मनो चंचरीक रमनीय ॥६०३॥
नींद भार दाबे दृगनि लसत पीक पर भाग।
कुवलय मुकलित होत ज्यौं परसि प्रात रवि राग ॥६०४॥
दरपन अमल कपोल मैं परत पानि प्रतिबिंब।
पुनि पुनि पोंछति पीक भ्रम देखि आदरस बिंब ॥६०५॥
कलकल कलिका कुल ललक कोकिल कुल की केलि।
लोलै कला कलोल कै लाल लाल कंकेलि ॥६०६॥
जलपूरित घनस्याम रुचि उनई अँखियनि आइ।
रही कदंब कलीनि की अंग बेलि छबि छाइ ॥६०७॥
तन दुरबल मनमथ प्रबल ढिग बसंत पिय दूरि।
अचलबिरह चलि जीव सखि तनक न सुख दुख भूरि ॥६०८॥
हरयो बसन मन भाँवते फिरि किंकिनि गुन तोट।
करै मनो मनभाँवती पुलक पटल पट ओट ॥६०९॥

---

[६००] चंचल प्रान, चंचलता न (रत्ना)।
[६०४] पर; बड़ (रत्ना)।
[६०६] यह छंद 'रत्ना' मैं नहीं है।
[६०९] यह छंद 'रत्ना' मैं नहीं है।

औरनि हू के लसत हैं अति अनियारे नैन।
मन मानत हैहैं न वे सो मन लागत पैन ॥६१०॥
है यह गाँव गुलाब बर पुर ठाकुर के गेह।
चलौ न आवति बास है जो देवर की देह ॥६११॥
पूरित मन की लालसा जगत जगति गुनगाथ।
सुरतरु पल्लव अरुन रुचि भोगनाथ के हाथ ॥६१२॥
कलपद्रुम पल्लव भयो तूँ अति दानि निदान।
भोगनाथ नरनाथ के हाथ साथ पढ़ि दान ॥६१३॥
लाल भाल जावक लगे उठे रसिक सिरताज।
सौति लखी सुंदर दृगनि रोस हास अरु लाज ॥६१४॥
लगे निसा अभिसार में कंटक तिय के पाइ।
अजौं न सरुहै निठुर तुम भए और ही भाइ ॥६१५॥
मो नैननि नीकी लगै रही लपट यह भाल।
तनक रँगी यह पाग अब लाल करै सब लाल ॥६१६॥
लाल तिहारे चलन की सुनी बाल यह बात।
सरद नदी के सोत लौं प्रतिदिन सूखति गात ॥६१७॥
कियो प्यार मो पर प्रगट मैं लीनो धरि सीस।
पिय प्यारी के नाम यह दियो मोहिं बकसीस ॥६१८॥
तुरतहिं गयो बिलाइकै हुत्यो परम अभिराम।
नाह रावरे नेह यह भए गंधरब गाम ॥६१९॥
हिय अनुराग रँगे लला वे कछु और अमोल।
ओठनि ही के रँग भए रँगि रँगि बोलत बोल ॥६२०॥
छोड़ि नेह नँदलाल को हम नहिँ चाहति जोग।
रंग बाति क्यों लेत हैं रतन पारखी लोग ॥६२१॥
भोगनाथ नरनाथ के गुनगन बिमल बिसाल।
भिच्छुक सेवत पानि हैं पग सेवत महिपाल ॥६२२॥

---

[६१०] 'मन मानत' के पश्चात् 'रत्ना' में नहीं है।
[६११] यह; इहि (रत्ना)।
[६१२] गुनगाथ; गुनगात (रत्ना)।
[६१४] सुंदर, सुंदरि (रत्ना)।

अद्‌भुत गावत जगत सब भोगनाथ गुन गाथ।
भूमिपाल सेवत चरन भिच्छुक सेवत हाथ ॥६२३॥
एक द्यौस की औधि पिय अति साहस आरंभ।
मन सौं कहु तरि जात क्यौं भुजनि जलधि कौ अंभ ॥६२४॥
हरद बरन तैं अधिक बढ़ि जरद होत वह मित्त।
सरद जोन्ह मैं मानिनी दरद न आवत चित्त ॥६२५॥
जौ बियोग बड़वागि की ज्वालन नेक जरयो न।
सो सागर अनुराग कौ सूखत जानि परयो न ॥६२६॥
ज्यौं ज्यौं बिषम बियोग की अनल ज्वाल अधिकाइ।
त्यौं त्यौं तिय की देह मैं नेह उठत उफिनाइ ॥६२७॥
बड़वानल झर बढ़ति है बिरह ताप तिय अंग।
अति अद्‌भुत अधिकाति है प्रेम पयोधि तरंग।६२८॥
वहै सबै अनुनय सहित मधुर बचन चित चाउ।
क्यौं राखे अब रोकि सब फूल्यो प्रेम तलाउ ॥६२९॥
आत उतंग उरजनि लसत चपल मुकत बर हार।
मनो मेरु बिबि शृंग तैं गिरत गंग जुग धार ॥६३०॥
सरस बाल को मन लला पारावार अनूप।
नीरस मानसरोवरो मारवार के रूप ॥६३१॥
चढ़त सुन्यो नहिं स्याम मैं और रंग अरु बाल।
अधर राग सौं तैं रँगे अद्‌भुत तैं नँदलाल।६३२॥
एक भए मन दुहुनि के छुटै न कियैं उपाय।
कहौं सिंधु संभेद को कोउ न सकत छुड़ाइ ॥६३३॥
हरिन रूप बिरहीन कौ जलद जाल बगराइ।
बाँधि बाँधि बाननि बधत मार बधक सम आइ ॥६३४॥

---

[६२५] आवत; आवति (रत्ना)।
[६२८] बढति; उठति (रत्ना)।
[६२९] सब; सखि (रत्ना)।
[६३२] अरु; पर (रत्ना)।
[६३४] बाँधि बाँधि; बाँधि बूँद (रत्ना)।

प्रफुली सुमन रसाल के कंध बिटप भुज मेल।
बात निवारी बिरह की फूल निवारी बेल ॥६३५॥
निज स्वरूप प्रभु देत हैं साँच कहत मुनि गोत।
भोगनाथ की रीझ मैं भोगनाथ कबि होत ॥६३६॥
सरल बान जाने कहा प्रान हरन की बात।
बंक भयंकर धनुष को गुन सिखवत उतपात ॥६३७॥
कियो भोग सपने रमन परम मुगध मन बाल।
सेतुक देति उराहनो लई अंक भरि लाल ॥६३८॥
दियो कान्ह निज कान तैं तुम गुलाब को गुच्छ।
गुरुजन मैं अवतंस करि फिरति लाज करि तुच्छ ॥६३९॥
सखी सिखावन रावरे कहो कहा अब होइ।
मोहन तन पानिप गई लाज दृगनि की धोइ ॥६४०॥
लाज गहै नींदहि लहै निसि दिन दहै न देह।
सुनो साँवरे रावरे तहाँ न दीजै नेह ॥६४१॥
चढ़ी अटारी बाम वह कियो प्रनाम निखोट।
तरनि किरनि तैं दृगनि को कर सरोज करि ओट ॥६४२॥
कढ़त पियूषहु ते मधुर मुख सरसुति के सोत।
भोगनाथ नरनाथ के साथ बसे कबि होत ॥६४३॥
दिन हू मैं अति जगमगै बालबदन की कांति।
लखौ लाल या संधि मैं उदै सैल की भाँति ।६४४॥
भोगनाथ मुखचंद की ओर लखत बरजोर।
करौं कौन बिधि मान ये लोचन होत चकोर ॥६४५॥
अंग करत परिरंभ मैं सुधा समुद्र बिनोद।
सुरत अंत हूँ पाइयै सुरत आदि को मोद ॥६४६॥
अँसुवनि के परबाह मैं अति बूड़िबैं डराति।
कहा करै नैननि कौं नींद नहीं नियराति ॥६४७॥

---

[६३५] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।

[६३६] लाल; लाज (रत्ना)।

[६४४] की, बिधु (रत्ना)।

[६४६] अंग करत, करत अग (रत्ना)। सुधा, प्रभा (रत्ना)।

अनलज्वाल सी लगति है बालपने मैं बाल।
जग जारन कौं जानियत जोबन मैं जंजाल ॥६४८॥
पलक पलक लागे बिना क्यौं करि दृगनि बिनोद।
सोवन देत न सरद मैं बिकच कुमुद आमोद ॥६४९॥
तेरो सखी सुहाग यह जानत हैं सब लोक।
होत चरन के परस पिय प्रफुलित सुमन असोक ॥६५०॥
प्रीतम प्रिया पियाइ कै सुख मुख सुधा अनूप।
पुलक मुकुल केसर पटल करि केसरि अनुरूप ॥६५१॥
पिय के मन मनभाँवती और बात नहिं फूल।
कुच परिरंभन सौं तरुनि करि कुरबक तरु तूल ॥६५२॥
करि चख चारु चितौनि सौं सुमन कलित अनुकूल।
तरुन तिलोकी तिलक कौ तरुनि तिलक तर तूल ॥६५३॥
चितवनि कुच परिरंभ मुख सिद्ध चरन हति कोलि।
कियो तिलक कर बकनिलित लाल बकुल कंकेलि ॥६५४॥
होत जगत मैं सुजन कौ दुरजन रोकनहार।
केतकि कमल गुलाब के कंटकमय परिहार ॥६५५॥
कछु न गनति दुरजननि लखि तोहि दृगनि सुख देति।
निदरि कंटकनि मधुकरी रस गुलाब कौ लेति ॥६५६॥
फूलति कली गुलाब की सखि यह रूप लखै न।
मनो बुलावति मधुप कौं दै चुटकी की सैन ॥६५७॥
भ्रमत रहत निस द्योस हू करी मधुकरी तूल।
कित वह डारी सो हितू किल बकिनव कौ फूल ॥६५८॥
मिले मोहि अति प्रेम सौं लटपटात उठि प्रात।
छोड़ि आपनौ भौन तुम भौन कौन के जात ॥६५९॥
हियो जरायो बाल कौ अनल ओज निज मैन।
तापर तेरे देत दुख लाल सलोने नैन ॥६६०॥

---

[६५१] सुख मुख; सुख दुख (रजा)।
[६५४] यह छंद 'रजा' में नहीं है।
[६५६] कौ; की (रजा)।
[६५८] यह छंद 'रजा' में नहीं है।

हरि हिय तें रति रंग में गिरे गुंजगुन टूटि।
मनो स्याम घन तें परे इंद्रगोपिगन छूटि ।।६६१।।
करति रसोई बाल वह मगन तिहारे ध्यान।
जरति आगि निजु आँगुरी होत नहीं मन ज्ञान ।।६६२।।
प्रथम अरध छोटी लगी पुनि अति लगी बिसाल।
बामन कैसी देह निसि भई बाल कौ लाल ।।६६३।।
करौ कोटि अपराध तुम वाके हिये न रोष।
नाह-सनेह-समुद्र में बूड़ि जात सब दोष ।।६६४।।
बिरह तचे तिय कुचनि लौं अँसुवा सकत न आइ।
गिरि उड़गन ज्यौं गगन तें बीचहि जात बिलाइ ।।६६५।।
स्याम तिहारे बिरह दृग करत सकज्जल रोज।
मनो बढ़ावत प्रेम सौं सूरसुताहि सरोज ।।६६६।।
छाँह बिना ज्यौं जेठ रबि ज्यौं बिन ओषधि रोग।
ज्यौं बिन पानी प्यास यौं तेरो दुसह बियोग ।।६६७।।
मो दृगकंजनि को दियो दरसनु मोद निदानु।
भोगनाथ मनभाँवते भए भोर के भानु ।।६६८।।
भोगनाथ नरनाथ कौ बदन इंदु अरबिंदु।
करत कबित्तनि करत बर मधुर सुधा मधु बिंदु ।।६६९।।
कमलमुखनि कुबलय दृगनि कुमुद मधुर मुसक्यानि।
लखौ लाल ऊपर महल कमलाकर सुखदानि ।।६७०।।
तब लौं नहिं जानति दृगनि जब लौं नहीं उदोति।
बिहसन छीर मिठासमय मठा चंद की जोति ।।६७१।।
जब जब तेरी बाल के चित्त चढ़ै मुसक्यानि।
अधर कपोल बिलोचननि तब दृग झलकति आनि ।।६७२।।
बासर मैं रबि हा तहीं जामैं निरखत भौंह।
सुनो लाल वो प्रेम के परी आह बिच सौंह ।।६७३।।
कपट बचन अपराध तें निपट अधिक दुखदानि।
जरे अंग में संकु ज्यौं होत बिथा की खानि ।।६७४।।

---

[६६८] दरसनु; दरसन (रत्ना)।
[६७३] यह छंद 'रत्ना' में नहीं है।

लाल तिहारे बिरह नित छीन बाल के अंग।
जानति हौं चाहति दियो निज सायुज्य अनंग ॥६७५॥
बाल अलप जीवन भई ग्रीषम सरित सरूप।
अब रस परिपूरन करौ तुम घनस्याम अनूप ॥६७६॥
मुख बिधु छिन छिन यों रहै एक द्यौस ही माँझ।
पूनो हुती प्रभात अब होति अमावस साँझ ॥६७७॥
कहा कहे रूखे बचन भ्रातिक भाव अपार।
तरुनि छपायो चहति तूँ तिन को ओट पहार ॥६७८॥
तेरी मृदु मुसक्यानि लखि सरद जोन्ह सम रंग।
बाढ़त मोद पयोधि के हगनि तरंग उतंग ॥६७९॥
अँसुवनि सौं छाए रहैं लाल बाल के नैन।
जब तें तो दरसन छुट्यो तब तें कछू लखै न ॥६८०॥
बाल गहति दसननि लसत लाल अधर बर बिंब।
मनो दसन अरबिंद है सरद इंदु को बिंब ॥६८१॥
सखि छपाव यह भाव अब चाहत भयो जनाउ।
अँखिया मैं उर की उमगि रह्यो तनीन तनाउ ॥६८२॥
अंजनजुत अँसुवा ढरत लोचन मीन समान।
लसत नीलमनि दंड जुत मनो मनोज निसान ॥६८३॥
सेदबिंदु चंदन सहित गिरत भाल तें छूटि।
बिधु उर तें जनु बिधु बधू परति भानु कर छूटि ॥६८४॥
जाके बर बरजोर यह करत सकल तन ऐनि।
बरछी मनो मनोज की तिरछी चारु चितौनि ॥६८५॥
दीठि परस्पर दुहुनि की दई बदन जनु चैन।
तिय मुख मैं पिय नैन हैं पिय मुख मैं तिय नैन ॥६८६॥
दुहूँ ओर मुख दुहुँनि के बिधु लौं करत प्रकास।
लाज अँध्यारी दुहुँनि की कहूँ न पावति बास ॥६८७॥

६८१] दसननि; रसननि (रत्ना)। दसन; डसत (रत्ना)।
६८४] सेद, सेदु (रत्ना)। भानु; मान (रत्ना)।
६८५] तन ऐनि, बस औनि (रत्ना)।
६८६] बदन जनु चैन; बदलि जनु मैन (रत्ना)।

कौन भाँति कै बरनियै सुंदरता नँदनंद।
वाके मुख की भीख लै भयो ज्योतिमय चंद ॥६८८॥

दिन मैं सुभग सरोज हूँ निसि मैं सुंदर इंदु।
द्यौस राति हूँ चारु अति वाको बदन गुबिंद ॥६८९॥

दियो दरस कीनी भलो मोहन नंदकुमार।
भलो बन्यो मुकतानि कौ अंग अंग सिंगार ॥६९०॥

लसत रतन दरपन बिमल तो कपोल बस नारि।
सनमुख रहि जो भाल मैं लीजै तिलक सँवारि ॥६९१॥

सुनत सदा गुरु बचन हित रहत बिबुध गन साथ।
भोगनाथ यह जानियत सदा भूमि सुरनाथ ॥६९२॥

सरनागत पालक महा दान जुद्ध अति धीर।
भोगनाथ नरनाथ यह पग्यो रहत रस बीर ॥६९३॥

भोगनाथ नरनाथ के लोचन लखत बिसाल।
रहत गरीबी गहि दुहूँनि नीबी गहि बर बाल ॥६९४॥

जगत जगत दोऊ भुजा जग्य रूप के रूप।
भोगनाथ नरनाथ की भौंह निहारत भूप ॥६९५॥

तब लौं सजनी बोलियै ये गरबीले बैन।
जब लगि तुम निरखे नहीं भोगनाथ के नैन ॥६९६॥

तुरग अरब ऐराक के मनि आभरन अनूप।
भोगनाथ सौं भीख लै भए भिखारी भूप ॥६९७॥

भोगनाथ नरनाथ को रीझयो खीझ अनूप।
होत भिखारी भूप है भूप भिखारी रूप ॥६९८॥

मुरलीधर गिरिधरन प्रभु पीतांबर घनस्याम।
बकी बिदारन कंस अरि चीरहरन अभिराम ॥६९९॥

पीत झँगुलिया पहिरिकै लाल लकुटिया हाथ।
धूरि भरे खेलत रहे ब्रजबासिन ब्रजनाथ ॥७००॥

---

[६९१] बस, बलि (रत्ना)। लीजै, दीजै (रत्ना)।
[६९५] जग्य रूप; जग्यतूप (रत्ना)।

फूलमंजरी

फूलमंजरी

(दोहा)

चंपा

चंपकबरनी यों कहै छूटै बास सुबास।
चंपमाल पहिरै हिये तेहि राखै पिय पास ॥ १ ॥

चमेली

फूल चमेली को सरस चौंसर लीयैं हाथ।
सरस चाँदनी आज की मेरैं रहिये नाथ ॥ २ ॥

बेलि

अलबेली लिये बेलि कौं देखत प्रीतम गैल।
मेरे न आए हे सखी कित बिरमे वे छैल ॥ ३ ॥

गुलाब

दंपति दोऊ एक ढिग भई काम की······।
लीये हाथ गुलाब को भए महा महबूब ॥ ४ ॥

केवरो

हाथ लिये तैं केवरो मीड़े मारत काम।
गवन करहु जनि पैंड भरि आजु करहु आराम ॥ ५ ॥

माधुरी

लियैं माधुरी हाथ म मधुरी बोलै बैन।
पल बिछुरैं ब्याकुल खरी ढिग ही मोकौं चैन ॥ ६ ॥

केतकी

हाथ केतकी नाथ जू मो दरसन को नेह।
मलिन भयो रहिहै कवन भँवर आजु रस लेहु ॥ ७ ॥

पाडर

नरम हिये पाडर लियैं ऊँचे लेत उसास।
पैंडो देखत रैन दिन आइ गए पिय पास ॥ ८ ॥

केसरि

कर केसरि कौ कुसुम लै खिल खिल माँडत खौर ।
देखे आवत हे सखी प्रीतम आवत पौर ॥ ९ ॥

सेवती

लिये सेवती सेवती कर जोरें निज रोज ।
अब सेवा पूरन भई पकेर (पकरे) आनि उरोज ॥१०॥

कमल

कमलनैन लीने कमल कमलमुखी के ठाँउ ।
तन नोछावर राज की इहि आवनि बलि जाँउ ॥११॥

करुना

करुना करुना फूल लै हौ तुमको आधीन ।
पकौ पल बिछुरौं नहीं ज्यौं जल जीवै मीन ॥१२॥

निवारो

निस कारी भारी दुखी तरसत मेरो जीव ।
फूल निवारी को सरस वारो तुम पर जीव ॥१३॥

खूजो

आवत आवत सहचरी कहिबे की है फूल ।
आए बालम हे सखी लिये खूजे को फूल ॥१४॥

मरुआ

मरुआ मोहि सुहावनो मेरे पिव के पास ।
बोल बोल प्यारी लगै बैठे प्रीतम साथ ॥१५॥

आकसपेचा

आकसपेचा माल गुहि पहिराई मो ग्रीव ।
हूँ निहाल बखिसा करी दासी जानि क जीव ॥१६॥

हजारा

लिये हजारा हाथ में पँखुरी गिनै सँवारि ।
प्रीतम दीनो मोह करि तो परि डारी वारि ॥१७॥

कसूँभो

पहिरि कसूँभी चूनरी लिये कसूँभो फूल।
अटा चढ़ी देखत घटा बनी छटा सम तूल ॥१८॥

कमोदनी

हित कमोदनी को लिये चंद्रमुखी के पास।
ताही छिन प्रफुलित भई पुरई मन की आस ॥१९॥

जाय

कर सिंगार बैठी हुती जाय फूल लिये हाथ।
अर बर मन ही मैं रहै कब घर आवै नाथ ॥२०॥

नागरा

नाग फूल लीयँ हुते नोग रीझि तास।
बन्यौ बन्यौ यो ही रह्यौ नैंकु न लीनी बास ॥२१॥

खुभी

खुमी फूल बालम लिये सो फिरि दीनो मोहि।
बाढ़ी प्रीति दुहूँन की बिछुरन कबहु न होहि ॥२२॥

सुदरसन

सरस सुदरसन कौं लिये बैठी महा गभीर।
द्यौस गमायौ सखिन मैं राति बिरह की पीर ॥२३॥

सूरजमुखी

सरसमुखी सूरजमुखी तो कर लीय बाम।
हसत हसत बालम मिले दच्छिन लच्छिन काम ॥२४॥

गुलतुररा

गुलतुररा तुररा किये आप आँगन माँझ।
आगैं वे प्यारी लियें सफल भई इहि साँझ ॥२५॥

सुहागी

प्यारि न प्यारी येक छिन देखौ थाको भाग।
सखी सुहागी मोहिनी तातैं सदा सुहाग ॥२६॥

भैचंया

भैचंया के फूल करि मानुत छाँडि निरंत।
हूँ पचहारी बहुत करि अपनै नाहिन कंत ॥२७॥

सहसमुखी

कंत मया तैं कामिनी सहचर सबहि कहंत।
सहसमुखी के फूल करि फूली सदा रहंत ॥२८॥

सदाबसंत

माला सदाबसंत की पहराई पिय गात।
सौतनि की छाती जरै देखौ याकी बात ॥२९॥

सुगनराय

बैठी हुती जु बिरहनी फिरकै देहु मनाय।
मेरे आए है सखी लिये सुगंधन राय ॥३०॥

अजुही

अजुही गुहि रेसमतगा कीनी माल बिसाल।
हरि हराउ तन को कियो मो कर कीनी लाल ॥३१॥

पोसत

करि सिँगार बैठी हुती केऊ रँग नद फूल।
सौतनि की मजलिस जुरी पोसत के से फूल ॥३२॥

सिंधूप

आछौ फूल सिँधूप कौ आछे पिय के हाथ।
चले बाम के धाम कौ मो तन चितवत जाथ ॥३३॥

गुललाला

गुललाला के फूल करि चितवत महा गभीर।
वार पार हिय मैं भयो काम बान के तीर ॥३४॥

सीरक

कंत अंत रहे रैन कौं आए मेरे गेह।

रतनमंजरी

रतनमंजरी को गुह्यौ पहिरैं नीकौ हार।
ते हरि ने ऊपर धरी बड़भागी वै डार ॥३६॥

खैरीगुल

खैरीगुल लिये हाथ मैं बार बार परखंत।
रूप बास के वे नहीं यो ही मेरे कंत ॥३७॥

तारायनि

फल मेवा बिधना रच्यौ फल गुठली दोउ काम।
तारायन के फूल कौं लाए मेरे धाम ॥३८॥

गुडहर

गुडहर गुल के फूल को पिय लीने परबीन।
मैं माँगे रँग देख के हँसि कर मोको दीन ॥३९॥

हारसिंगार

ऐसे हारसिंगार सौं रच गए पिय के प्यार।
मो ऊपर न्यारे रहौ वाके ऊपर हार ॥४०॥

जातसुरखा

जातसुरखा के फूल करि मोहि घर आए नाह।
रैन जगे प्यारे पिया नाही कै फिर जाह ॥४१॥

मोगरा

कंत मँगायो मोगरा कर जोरे कह बाम।
अरस परस तिनके भए सरसे आठौ जाम ॥४२॥

निबाला

बकस्यौ फूल निबाल कौ मोहि भई परतीत।
हाथनि हो ते जानियै उर अंतर की प्रीति ॥४३॥

मौलसरी

मौलसरी सिर पै धरी हसि हसि आप भौन।
न्योर न राखौ एक पल तुमतैं प्यारो कौन ॥४४॥

अनार

रातो फूल अनार को नैक लियौ हो नाथ।
मलिन होइ गई पलक मैं बैठे प्रीतम साथ ॥४५॥

पलास

रुतहि बसंत पलास लै रैन रहै है सोइ।
फलबे कों कालौ भयौ सिद्ध कहाँ तैं होइ ॥४६॥

बनका

लीये बनके फूल कों पिय समीप उर हार।
या बिन भूषन को सजै फीके सबै सिंगार ॥४७॥

कनेर

वारौं कली कनेर की कियो प्रीति सौं बैर।
बालम मो सौं लर गयौ घर घर मेरो घेरि ॥४८॥

कनक

कनक फूल लियैं कामिनी दिये केसर की आड़।
इही ओर बालम मिलै भई काम की चाड़ ॥४९॥

आक

तीनन मैं गिनती गनैं तीन लोक भगवान।
फूल धरै सिर आक को पारबती के प्रान ॥५०॥

गुलाबांस

नव सत साजे कामिनी बैठ पीय के पास।
फूल हिये आनंद की फूल लिये गुलबांस ॥५१॥

करौंदा

फूल करौंदा को लिये कामिन मनैं उछाह।
कंत मिले ताही समै गौने को सो चाह ॥५२॥

कदंब

बलिहारी वा ठौर की तहाँ धुरे वे पाय।
फूल लिये कर कदँब को दरसन दीनौ आय ॥५३॥

सेमरि

बनैं ठनैं बालम रहैं कहो कौन सम तूल।
आस बास के वे नहीं सेमरि केसे फूल ॥५४॥

कचनार

रैन बिना आधीन हो यातैं मोसौं प्यार।
ये आप देखौ सखी फूल लिये कचनार ॥५५॥

सहजनी

फूल सहजने को सखी तन मन मोहि न सुहाय।
प्रीतम मो सो यह कही 'तब ही दिये मगाय ॥५६॥

तिल

चारमास तलफत गए नेक न पुरई आस।
एक तिली······फूल तैं गई पपीहा प्यास ॥५७॥

सांखाहूली

सांखाहूली फूल की महिमा महा अकत्थ।
सीस धरैं पिय सीय के जिन तोरे दसमत्थ ॥५८॥

कटेरी

माया गर्व कोउ जनि करौ कहि तेकी बात सुहात।
कंत कटेरो फूल है पलक माँहि फिर जात ॥५९॥
हुकुम पाइ जहाँगीर को नगर आगरे धाम।
फूलन की माला करी मति सौं कबि मतिराम ॥६०॥

इति श्री कवि मतिरामकृत फूलमंजरी संपूर्ण समापिता ॥

प्रतीकानुक्रम

रसराज

[सख्याएँ छंदों की हैं]

ललितललाम

मतिराम सतसई

फूलमंजरी

रसराज

[संख्याएँ छंदों की हैं]

अँगरानी=अँगड़ाई ली, अँगड़ाई, १६६

अँगोछना=उपवस्त्र से शरीर को साफ करना, १०३

अँड़दार=अड़नेवाले; १६२

अँध्यारी=अँधियारी, अंधकार; ६८

अखरान=अक्षर, अखरा; ३२६

अखोट=निस्संकोच, साफ या स्पष्ट, ७४

अच्छ=सुंदर, स्वच्छ, २३८

अटा=अटारी, कोठा, ८३

अतनु=कामदेव; ६४

अथए = अस्त होने पर; १४६

अधिकानौ = अधिक या ज्यादा हुआ, बढा, ६२

अनतैं = अन्यत्र; १३१

अनमिख = अनिमेष, २७३

अनिमिषनैनता = नेत्रो की अपलक स्थिति; ३३८

अनौट = एक आभूषण, छल्ला, ८०

अमात = समाता है या पूरा पड़ता है, १७४

अमोल = अमूल्य, २४२

अयान = अज्ञान, अजानपन; २३४

अयानिन = अज्ञानियो, ३६३

अरस = रसहीनता; २४१

अरसीले = आलस्ययुक्त; आलस भरे, अलसित; ४४

अलीक = असत्य, झूठ; ३३१, १२४

अवतंस = शिर का आभूषण; मुकुट; २३८

आँदू = अंदू, बंधन, साँकल, १६४

आँसी = अश, बैना, बायन; ३६३

आड़ = तिरछा तिलक; ३५७

आधि = व्यथा, पीड़ा, २६४

आन = अन्य, दूसरा; २४४

आरसी = आइना, दर्पण; ४६

आलबाल = थाला, १५

इंद्रवधू = बीरबहूटी, २६

इकंत = एकात, २४

इजार = पायजामा, ६६

ईछन = ईक्षण, आँख, १४७

ईरषा = ईर्ष्या; १०७

ईहा = इच्छा, आकाक्षा, ३६८

उचरौगी = उच्चारण करूँगी; ३६०

उचाट = अन्यमनस्क, २६८

उज्जल = उज्वल, २८४

उठ्यौ = खड़ा हुआ, उठा; १

उतंग = उत्तुंग, उठे हुए; २

उत्का = उत्कठिता स्त्री; १४६

जुत = युक्त, ८६
जुन्हाई = चाँदनी, १५१
जंभा = जँभाई; ३३२
जेठी = पति के बड़े भाई की स्त्री, जेठानी, २६
जेल = बंधन, ३७६, १४५
जोन्ह = जुन्हाई, चाँदनी; १४२
जोवै = जोहती है, देखती है, १२३
झिझिया = अनेक छिद्रवाला घड़ा जिसमें दीप बाल कर लड़कियाँ कुआर के महीने में घुमाती हैं, ७
झार = ज्वाला, झाल, लपट, ४२६
झेली = झेला, सहा, स्वीकार किया; १३४
टेव = बान, आदत, २३५
ठगौरी = मोहिनी; ४२०
ठायो = किया, ४१
डगरी = भाग गईं, चल दीं; ३२५
डहडही = हरी भरी; १७६
डाढे = दग्ध हुए, संतप्त हुए; ३८३
डीठ = दृष्टि, १८०
डेल = ढेला, ३०७
ढिठाई = ढीठपन; १३४
तची = तप्त हुई, १४२
तनी = बंद; १२७
तनैनी = तननेवाली, तनी हुई; ७७
तमोल = ताम्बूल, पान, २१४
तरनि = सूर्य; २०१
तरल = चंचल, ४०७
तरहटी = तलहटी, ३२०
तरिन = कान का गहना, तरोना, तरय्यौना, ४२,
तरोना = कान का आभूषण, २६७
तरय्यौननि = तरिन, ३१
तलाबेली = तड़फड़ी, २१२
ताती = गर्म, तप्त, २३६
तिरछौहीं = तिरछी, बंकिम, ५३
तीखन = तीक्ष्ण; २०१
तीछन = तीक्ष्ण; १४७
तुनीर = तूणीर; ४१३
तेह = क्रोध, १४१
थरहरी = थरथराई, काँप उठी; १५३
दगतु है = दगता है, जलता है, ११४
दरकत = दरकना, फटता है, विदीर्ण होता है; ३६७
दवारि = दावाग्नि, दावानल; ८७
दाख = द्राक्षा, २७७
दीपति = प्रकाशित होती है, १७२
दीपति = दीप्ति, काँति; ३४
दृगकौल = नेत्र कमल, ३२
द्यौस = दिवस, दिन; १६
धुरवानि = उमड़ी हुई मेघमाला; ३६६
धूपि = धूपयुक्त करना, १७२
ध्याय = ध्यान करके; १
नखत्र = नक्षत्र, १४६
नहियाँ = नही, नहीं, ३६६
नही = नँधी, बधी; २८०
नाँधि कै = चलाकर, बाँधकर, ३६४

नाखियो = (प्रा नंख) डालना, छोड़ना, रखना; १६८
नायनि = नाइन, १०३
नायौ = नवाया, नमित किया; ३८७
नाह = नाथ, स्वामी, पति, ३८
निकाई = सुंदरता, सौंदर्य, ६
निखंग = निषंग, तरकस, ३५७
निदान = अंततः, आखिरकार, २३३
नियराति = नजदीक आती है; १७१
निरबात = वायुहीन; ३३७
निवारिए = निवारण कीजिए, दूर कीजिए १२४
नीठि = कठिनता से, मुश्किल से; ३७६
नीपमाल = कदंब के फूलों की माला; ७८
नीरे = नियरे, समीप, ३११
नेरे = समीप, नियरे; ६
नेवर = नूपुर, १६८
नैसुक = जरा सा, तनिक; १५१
नौल = नवल; ३२
न्यायहि = न्याय से, वाजिब तौर से; ३७२
पंचसर = कामदेव, १४१
पगरी = पाग, पगड़ी, ३५१
पट = वस्त्र, कपाट; २१७
पतिदेवत = पातिव्रत; ११
पतीजिए = विश्वास कीजिए; ७२
पत्यानी = पतियानी, विश्वास किया; १६८
परवीनो = प्रवीण, चतुर, १६१
परभा = प्रभा; १७२
परवेष = परिधि, घेरा; ३७५
पलका = पलँग, पर्यंक, ५३
पलिका = पलँग, पलका; १५८
पसार = प्रसार, फैलाव; ३१६
पहियाँ = पास, समीप; ३६६
पान = पत्ता, पत्र; २३६
पानिप = सरोवर, तालाब, २२०
पानिप = आब, पानी, १६
पियूषभानु = चंद्रमा; १५१
पीरी = पियरी, पीलापन, ६२
पुलक पलटता = रोमांचाधिक्य; ३२१
पूर = बाढ़, ३३९
पैंड़ = राह, १००
पोढ़े = प्रौढ़, मजबूत, ३७२
पौढ़ि रही = लेट रही, सो रही; ८३
पौरि = घर की ड्योढ़ी या पौरी; २४८
प्यौ = पिय; २१६
फाँसी = बंधन; ३६३
बजुल = वेतस, ८६
बंधुजीव = बंधूक, गुलदुपहरी नाम का पुष्प, १८४
बकसीस = बख्शिश; इनाम, ६६
बगारि = फैलाकर; ३१४
बगारी = फैलाई; १३४
बनक = सजावट; बाना; १६५
बयार = वायु; ११६
बर = बट; १७८
बार = बिलंब, देर; १४०
बारन = कंघी; १८७
बार बिलासिनि = वेश्या; १२०

बिछुवा = एक आभूषण; २६६
बिधु बारिज बिलास = चंद्रमा और कमल की शोभा, ५६
बिरी = पान की बीरी; १७६
बिसारे = विषवाले, जहरीले; ४०७
बिसूरना = रोना, १५६
बिहसौंहैं = हासयुक्त, विहसित; ३६३
बिहान = प्रभात; १०८
बीरी = पान का बीड़ा, ११२
बेला = तट, कूल, किनारा; ११३
बै गो = बो गया; ४०१
बैनी = वेनी, वेणी, ७७
बौंड़र = बवंडर; २३६
बौरी = बावरी; ४२०
भंगनि = भंगिमा; १०५
भावरैं = भौंवरी, परिक्रमा; १७८
भोरी = भोली, अनजान; ४१६
मंजन = स्नान, मार्जन, २१४
मंडन = शृंगार, ८
मनरंज = मनरंजन, मन का रंजन करनेवाले; ४५
मनरौन = मनरमण, प्रियतम; ३५४
मनुहारि = मनावन; विनती; १३४
मयूष = मयूख, किरण, १७५
मरकत = नीलम; १६७
मरू करि = मर कर; कठिनता से, ६८
मरोरनि = मुरेर, मरोड़; ११६
मरोरि = मरोर कर; तोड़ मोड़ कर, ११६
मलिंद = मिलिंद, भ्रमर; २२७
मसके = मसका, धक्का, दाब, ४१६
मसूसनि = मसोसकर; १२३
महमही = सुगंधित; १७६
महियाँ = मैं; माहीं; १६६
मित = मित्र, धन; १५५
मित्र = सूर्य, प्रियतम, २२७
मिस = व्याज, बहाना; ८१
मिहीं = महीन, बारीक; २२१
मीच = मृत्यु, ४३६
मुकुत = मुक्ता, मोती, ८
मेचक = श्याम वर्ण, १६७
मैन = कामदेव मदन; ३१
मैनका = मेनका, एक अप्सरा; १०२
मैनकामिनी = मदन कामिनी, मदन की स्त्री रति; १०२
मोए = रँगे हुए, भींगे हुए; २०८
मौरसिरी = मौलसिरी, बकुल; १७६
रतनारी = रक्तिम, लाल; ३६६
रदनछद = दतच्छद, ओठ, अधर, ६५
रसना = जीभ; करधनी, १८५
रसराई = रसराज; १५७
रसबाद = प्रेमकलह, ४१
रसौंहैं = रसिक, रस से युक्त, रसमय, ३६३
रिझवारि = रीझने या मुग्ध होनेवाली, २८३
रोचन = रोचना, रोली; २०८
लक = कटि; ३०४
लटू = लट्टू, लोटपोट, लहालोट; १०८
लहलही = तरोताजा; १७६
लाग = लगन; ३८२
लाजति = लज्जायुक्त, ११
लाय = अग्नि; २५७

लाल = प्रियतम; एक मणि; ७४
लीक = रेखा; १२५
लुएँ = लू, लपट; २०२
लुगाई = नारी, स्त्री; १४०
लुनाई = लोनापन, लावण्य, सुंदरता; १८१
लोन = लवण, नमक; १८१
लोल = चंचल; ५७
लौने = सुंदर; १७०
वलय = कंकण, चूड़ी; ४२
वसुमती = पृथिवी; २१८
वातायन = गवाक्ष, खिड़की; ३०४
वारने = वारना, न्यौछावर करना;५०
विजन = पंखा; ३०४
वोड़ी = ओड़ी; ओट; २७८
संबोध = ज्ञान, जानकारी; २
सतराय = चिढ़कर या क्रुद्ध होकर;५३
सरद पुनीन = सरद की पूनो, शरत्पूर्णिमाओं; ३१
सहेट = संकेत स्थान, मिलन स्थान;८६
सारस = कमल; ४०७
सितासित = गंगायमुना; ३२०
सियराई = संपूर्णता या ठंढापन; ३०१
सिहाइ कै = ईर्ष्या करके; ६५
सीमंत = एक संस्कार, ६५
सीरो = ठंढा; ११४
सुबरन = सुंदर रंग; स्वर्ण; ६५
सुरचाप = इन्द्रधनुष; ३६०
सुरति = स्मृति, स्मरण; २२६
सुही = सूही, हलके कासनी रंग की; ३७५
सुहेलो = सुंदर; सुखद; २४८
सेक = ऊष्मा, ताप; ३०७
सौंहैं = शपथ, कसम; ४१
सौतुक = प्रत्यक्ष; २७६
स्रौन = श्रवण, कान; २६६
हरा = हार, माला; ३७२
हरुए-हरुए = धीरे धीरे; १७४
हरुवै = हरुए, धीरे से, शनैः शनैः, ११६
हहरिबौ = हहरना, अधिक भय लगना; ४२२
हाँसी = हँसी; २०३
हारिल = एक पक्षी; २३५
हिमाचल = हिमालय, २५
हियराई = हृदय; ३०१
हीतल = हृत्तल, हृदयस्थल; २७३
हेत = प्रेम; १२६

ललित ललाम

अकासबो = ईर्ष्या करना और संघर्ष रखना; ३७३
अगार = आगार, निवास; १०७; अगाड़ी, पहले, १२६
अघमरषण = पापनाशक मंत्र; २४०
अतूल = अतुलनीय; १०३
अनिल = वायु; ११६
अभिराम = सुंदर; २२२
अमरालय = स्वर्ग; ६६
अमोलिक = अमूल्य; १६६

अलि = (१) सखी (२) भ्रमर; ६६
अवतंस = कर्णाभूषण, ३३
आँग = अंग; २८०
आँगी = अँगिया, चोली; २८०
आक = अर्क, मदार; १६६
आकूत = आकूति, उत्साह, चेष्टा; ३५४
आखंडल = इंद्र; ४००
आदरस = आईना, ३८६
आपगा = नदी १०३
आलबाल = थाला; ११३
इजति = इज्जत; १३१
इलाज = उपाय, तदबीर; ११६
उजेरी = उजियाली, प्रकाश; २३४
उडगनैं = तारागण, १६०
उडपति = चन्द्रमा १२०
उथप्पन = उखाड़ना, ध्वंटान; ५८
उदवस = (१) वासहीन (२) वश से परे; १३६
उदरदरी = पेट रूपी कंदरा; २३६
उनए = उमड़े, ओनए, ७२
उमाह = उत्साह; २५२
उयो = उगा: ६०
ऐंड = गर्व, गुमान; ३७३
ओक = समूह; १६
ओनितल = अवनितल, भूतल; ७६
कटीले = रोमांचित, १८४
कद = आकृति; ३३०
कमलासन = ब्रह्मा; ६६
करन = अंगराज कर्ण; ६४
करनीनि = हथिनियाँ; १२०
करबार = करवाल, २६
करवाल = कृपाण, तलवार; २३
करी = हाथी; ११६
करेनुकनि = करेणु, हथिनी; १२४
कलभ = हाथी का बच्चा; १२४
कलानिधि = चंद्रमा; ७६
कहनावति = कहावत; ३६६
किंत्ति = कीर्ति; ४७
कुंभ = मस्तक; गंडस्थल; ७१
कुवलय = (१) कमल, (२) पृथिवी-मंडल, १६६
कूचो = कूची; ५६
केतक = केतकी, केवड़ा; २६१
कोक = चक्रवाक; ३४१
कोकनद = लाल कमल; २६३
कोल = वाराह; ४००
खंजरीट = खंजन; ५०
खग्गधार = तलवार की धार; २३५
खलक = संसार, ४१
खुभायो = गड़ाया, चुभाया; ३६४
गनीम = शत्रु; १११
गरद = धूल; २५०
गरबी = गर्वयुक्त; १३१
गराज = गर्जन, गरज; १२६
गाड़ = गढ़ा, १४७
गाड़र = भेंड़, गड्डलिका; २६
गुन = डोरी, प्रत्यंचा; २८४
गुरु = बृहस्पति; ६४
गैरिक शृंग = गेरू की लाल चोटी ७१
गोत = (१) गोत्र; (२) समूह; ३६०
घन = घनसार, कपूर; २२७
चंडकर = सूर्य; ४७
चपला = विद्युत, चंचला; २२२

चिराक = चिराग; ३७८
चुहिल = चहचहाने वाले; १७
छपद = षट्पद, भौंरा; १२६
जंबू = जामुन; १५६
जभरिपु = इन्द्र; २३
जमान = जमाना; २६१
जरकस = जड़ाऊ, कामदार; १४०
जाग = यज्ञ; ११६
जानपति = ज्ञानपति, ज्ञाता; ३६
जामिनीरमन = चंद्रमा; ६०
जीवनदानि = जल देनेवाला; ६२
जैतवार = जीतनेवाला; ७६
जोवै = देखे; २७८
ज्यावत = जीवित करते हैं; ८८
डहडहे = प्रफुल्लित; ३८६
तए = तप्त, १४६
तपि = तपि, तपना; १४३
तमीपति = चंद्रमा; २६६
तरनि = सूर्य; ६०
तरोवर = तरुवर; २६६
तलबेली = हड़बड़ी, १६३
तामरस ताग = मृणाल सूत्र; ३८५
तिनूका = तिनका, तृण; २७६
तूल = (१)रूई; (२)तुल्य, समान;२
तोय = जल, १४४
तोयद = जलद; २६६
थप्पन = स्थापन; ५८
थावर = स्थावर; २३६
दरियाव = समुद्र; १७२
दलैया = दलन करनेवाले; १४०
दवागनि = दावानल; ६८
दाप = दर्प; १०६
दिक्करि = दिग्गज; ३६२

दिगभित्ति = दिशारूपी भीत या दीवाल; ५६
दिगवारन = दिग्गज; १२०
दिग्घ = दीर्घ, विशाल; २३६
दिपै = दिपती है; ३२६
दीन = धर्म; १४०
दीह = दीर्घ, बड़ा; १२४
दुज्जनि = दुर्जन; १०५
दुपहरी = गुलदुपहरी, ८५
दुरग = दुर्ग, किला; १०५
दुरद = द्विरद, हाथी; १२६
दुरिबै को = छिपने को; १८१
दुरावन = छिपाना; १०६
दुवन उर = शत्रु हृदय; १५६
द्विजचक्क = पक्षी चक्रवाक, ७८
द्विजराज = (१) पक्षिराज, गरुड़; (२) चंद्रमा; (३) ब्राह्मण; ३५३
धनेस = कुबेर; ६४
धरमसुत = युधिष्ठिर; ६४
धाराधर = मेघ, १२६
धावन = दूत; २१३
धौल = धवल, श्वेत; ८
नभनदी = आकाशनदी, १२६
नरनाह = नरनाथ, नृपति; ५८
निघट्टत = मिटाते, नष्ट करते हैं; ३५
निचोल = वस्त्र; ३५५
निपट = एकदम, अत्यंत; २४१
निरसंक = निश्शंक; ३२३
पच्छनि = (१) पक्षपाती, (२) पंख, पर; ६४
पच्छनि = पंख; ७०
पन = प्राण, प्रतिज्ञा; ४७
परबीनौ = चतुराई से भरी; १६७

परिमान = प्रमाण या परिमाण; ७६
पातरी = पतली, २४१
पानि = पाणि, कर, ६२
पानिप = आब, पानी;
पारावार = समुद्र; ८८
पिसुन = नीच; १४४
पुरहूत = इंद्र; ४७
पुहुमी = पृथिवी; ४७
पैजनिन = पायल, नूपुर; २६७
प्यौ = पिय; २११
प्रगट्टियउ = प्रगट किया; २५६
प्रथित = पूजित, विश्रुत, स्थित, २४
प्रमदा = स्त्री; १५८
प्रसाद = प्रसन्नता, निर्मलता; ६०
फहिवउ = फटता है; २५६
फतूहैं = फतह, विजय; ३७८
फनीपति = शेषनाग; १५६
फबना = शोभित होना; १५६
फूली साँझ = संध्या की लालिमा; ८५
बखत = भाग्य या इकबाल; २७
बगराय कै = फैलाकर; ६६
बरगीन = वर्गीय, दलवाले; १३१
बहराना = बहलाना; २६०
बलाबंध पति = अलाबेला, अरावली पर्वतमाला का स्वामी; ३६
बाना = शान, बीरता; २१५
बारनि = हाथी, १०५
बारिचर = ग्राह; १२६
बासव = इन्द्र; १०३
बिगर. बिगिर = बगैर, बिना; ७०
बिलोय = मथकर, मथकर; २१६
बिहद = बेहद, अत्यधिक; १२०
बीचिनि = लहरें; ८८
भुराई = भोलापन; १०६
भुवप्पति = भूपति, राजा; ५६
भूभृत = (१) राजा (२) पर्वत, ६४
भौन = भवन; १०६
मंगन = भिक्षुक; १२२
मंजीर = नूपुर, ३४६
मंदर = मंदराचल, १४०
मघवा = इंद्र; ४६
मदमोकल = मदस्रावी; २८०
मद्ध = मध्य; ३७६
मनकुमार = मनोज, कामदेव; ३१४
मरजाद = मर्यादा, ७६
मवासी = डकैती; ३६७
महीरुह = वृक्ष, पेड़; ७१
मुँहजोर = सबल, चंचल; १०१
मुगुध = मुग्धा, भोली; ८२
मुदिर = मेघ; १०५
मेदुर = स्निग्ध, चेक्कण; १०५
मेरु = सुमेरु; ९६
मोच्चन लागी = छोड़ने लगी, १०६
मोवै = मोदयुक्त करती है; २७८
रज = रजपूती; १६२
रति = प्रीति, १२६
रतिनायक = कामदेव; ६०
रुचि = शोभा, दीप्ति; ६६
लंक = कटि, कमर; १२१
लाल = (१) कृष्ण (२) रत्न; १६६
विबुध = (१) पंडित (२) देवता; ६४
शोनित = रक्त; १६४
समकंध = बराबरी; १६५
समाजै = समाते हैं; शोभते हैं; १४६
समोय = संयुक्त, युक्त; २६६
सरि = बराबरी, समता; ४८

सलुंभहि = ललचाते हैं; १७२
साँई = स्वामी, मालिक; १६६
साखी = साक्षी, गवाह; १६५
सिंधुर = हाथी; १६५
सिखि = मयूर; ३१३
सीख = (१) शिक्षा; (२) आशीर्वाद; १४२
सुकरता = सहजता; २४१
सुरग्राम = स्वरसमूह; ३७४
सोन = स्वर्ण; २२६
सौध = महल; १५८
हलकनि = समूह; १२०
हिंडोला = झूला, झूलना; ३६७
हेत = प्रेम; २६०

मतिराम सतसई

अकस = स्पर्धा; १०६
अच्छ = स्वच्छ, निर्मल; १३३
अच्छिन = आँखों; १३३
अराम = आराम, उपवन; १७७
अलोकनि = आँखों में; ४७६
अवदात = श्वेत; २२२
आँदू = साँकल, बंधन; २७७
इंदु उपल = चंद्रकांत मणि; १४७
ईछन = ईक्षण, दृष्टि, २१२
उद्दिम = उद्यम; ५६५
उनै उनै = उठ उठकर; ३५६
उराहनो = उरहना; १४
एक बारि = सहसा; २०३
ऐपन = एक मांगलिक लेपन; ३७
ओपनी = ओप, शान, प्रकाश; ३७
कंकेलि = अशोक वृक्ष; ६०६
कंबु = शंख; ४६०
करार = (१) कल, (२) इकरार; ३४२
कादंबिनी = मेघमाला; ३७४
किंजलक = केशर; ५३६
किंसुक = पलाश; ६६
किरच = चरपराहट; ३६६
कुरंटक = पियाबासा; ३७
कुरबक = कटसरैया; ६४२
कुसुंभ = कुसुम, बरें; १५८
कोकनद = कमल
खवास = सेवक; १८०
खेह = धूल; ४
गंधरब ग्राम = रात में पथिकों पड़ने और फिर लु.. ग्राम चिह्न; ६१६
गाउ = गाँव; ६१
गाज = वज्र; १४४
गिलि = निगल; ७१
गूजरी = एक आभूषण; १०८
गोसा = किनारा; १०६
चरनायुध = मुर्गा; ५७३
चाहि = देखकर; २०१
चुनी = चुन्नी, नगीना; ५०
चूक = अत्यधिक खट्टा; ११२
छट्टक = छह टुकड़े; ६२